ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

तुलसी का वर्णाश्रम धर्म : आदर्श समाज की आधार शिक्षा

डॉ0 अरूण कुमार मिश्र
असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
एम0डी0पी0जी0 कालेज प्रतापगढ

सारांश :

किसी भी आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है जब सभी लोग अपने दायित्व बोध से परिचित हों। आदर्श समाज प्रेम व सौहार्द्रपर आधारित होता है। इसलिए वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नहीं होता। प्राकृतिक रूप से संसार का प्रत्येक प्राणी एक दूसरे से भिन्नता रखता है। सभी किसी न किसी कार्य में पारंगत होते हैं तो किसी कार्य में अकुशल भी। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक प्राणी को उसकी कार्य कुशलताओं के आधार पर ही कार्य विभाजन किया जाए। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था लागू की गयी। इस व्यवस्था में प्रत्येक वर्ग को उसकी कुशलता के आधार पर ही कार्य विभाजन किया गया। यह कार्य विभाजन विषमता नहीं बल्कि समाज के समस्त व्यक्ति को समान अवसर तथा महत्व के रूप में समझा जाना चाहिए। समाज में चार प्रकार के वर्गों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की व्यवस्था की गयी। उसके कर्म के आधार पर ही उसे समाज में स्थान प्रदान किया गया। तुलसी के ग्रन्थों में वर्णाश्रम धर्म का बहुत सुन्दर वर्णन है। तुलसी का वर्णाश्रम धर्म सामाजिक समरसता का संस्थापक है। वर्णाश्रम धर्म को समाज की आधार शिला के रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत लेख में सन्त तुलसी की दृष्टि में वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है।

किसी भी समाज संरचना में व्यवस्था को सुचारू रूप प्रदान करने के लिए उसका सुनियोजित होना अत्यन्त आवश्यक है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था तभी उन्नत हो सकती है जब उसके समस्त अवयव सम्यक रूप से अपने लिए निर्धारित कार्य को निष्पादित करें। यदि किसी भी अवयव में किसी भी तरह का विकार या असन्तोष व्याप्त होगा तो समस्त सामाजिक ताना बाना बिखर जायेगा। प्राचीन भारतीय समाज धर्म प्रधान था। सभी व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत रूप से आचरित किये जाने वाले विशिष्ट धर्मों तथा कर्मों का उल्लेख हमें विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज कार्य व्यवहार की दृष्टि से विभिन्न स्तरों में विभक्त था। सभी स्तरों के लिए अलग–अलग कार्यों का विधान किया गया था। प्रत्येक प्राणी अपने लिए निर्धारित कार्य व्यवहारों को पूरे मनोयोग से संपादित करता था। उपर्युक्त व्यवस्था ही एक स्वस्थ समाज की आधाशिला है। वस्तुतः सामाजिक व्यवस्था का प्रथम प्रतिपादन वैदिककाल से हुआ माना जा सकता है। वैदिक काल में ही हमें षोडश संस्कार तथा वर्णाश्रम व्यवस्था का दिग्दर्शन होता है। वर्णाश्रम व्यवस्था से अभिप्राय चार वर्णों तथा उन वर्णों के लिए निर्धारित चार आश्रमों से था। वैदिक काल में हमें जिस वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रमाण प्राप्त होता है वह आधुनिक समाज में पूर्णतः बदला हुआ दृष्टिगोचर होता है। वैदिक कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था किसी जाति, लिंग तथा वर्ण (रंग) पर आधारित न होकर यह पूर्णतः मनुष्य के कर्म पर आधारित थी। दुर्भाग्यवश आज लोगों ने वर्णाश्रम धर्म को जाति व्यवस्था से जोड़ दिया है। जबकि वर्णाश्रम व्यवस्था जाति व्यवस्था के विपरीत है।

वर्णाश्रम धर्म का प्रसंग उठने पर यह कदापि संभव नहीं कि इस विषय में महाराज मनु तथा उनकी मनुस्मृति का उल्लेख न हो। यद्यपि कुछ लोग मनुस्मृति की गलत व्याख्या करके उसे दलितों तथा शोषित वर्गों के विरुद्ध मानसिकता का ग्रन्थ घोषित करते हैं। किन्तु वास्तविक रूप से ऐसा नहीं है। संस्कृत भाषा पर अच्छी पकड़ न रखने वाले लोगों ने मनुस्मृति की गलत व्याख्यायें समाज के सम्मुख प्रस्तुत करके मनुस्मृति को जनविरोधी करा दिया। मनुस्मृति के अनेक स्थलों पर यह उद्धृत है कि मनु वर्ण–व्यवस्था का निर्धारण कर्म के आधार पर किसी श्रेष्ठ घोषित नहीं करती। यदि जन्म के

आधार पर किसी को श्रेष्ठ माना जायेगा तो उत्तम कुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान करनी पड़ेगी चाहे वह कितना भी कर्मच्युत हो। इस आधार पर तो समाज पूर्णतः विकृत हो जायेगा और उसका ताना बाना ही नष्ट हो जायेगा। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि श्रेष्ठ कर्म करता हुआ शूद्र ब्राह्मण बन जाता है तथा अश्रेष्ठ कर्म करता हुआ ब्राह्मण भी शूद्र के समान है। इसी प्रकार क्षत्रिय तथा वैश्य भी श्रेष्ठ अथवा अश्रेष्ठ कर्म द्वारा प्रसंशित अथवा निन्दित हो जाते हैं। आपस्तम्भ धर्मसूत्र में इसी तथ्य को समर्थित किया गया है–

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ।

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तो।।[1]

अर्थात् धर्म का आचरण करने से निम्नवर्ग अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और उसे उसी वर्ण में गिनना चाहिए जिसके लिए वह योग्य हो। अधर्म का आचरण करने वाला अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त करता है और उसी वर्ण में गिना जाता है।

इस तथ्य से सम्बन्धित उद्धरण छान्दोग्योपनिषद में भी प्राप्त होता है जहाँ अज्ञात कुल में उत्पन्न सत्यकाम जाबालि अपने उत्तम गुण तथा कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किये। महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय राजा विश्वरथ से ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किये। दस्यु वाल्मीकि अर्ध कपि से विरत होकर धर्मयुत आचरण द्वारा महर्षि वाल्मीकि हो गये।

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में कल्याण व मोक्ष प्राप्ति प्रमुख उद्देश्य माने गये हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समाज में वर्णधर्म तथा आश्रम धर्म की व्यवस्था की गयी है। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को चार वर्णों में विभक्त किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। चार आश्रमों में क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासाश्रम प्रमुख हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में जीवन के प्रथम पच्चीस वर्ष समाहित हैं जिसमें मनुष्य गुरू के सानिध्य में रहकर वेद वेदांगों आदि का ज्ञान प्राप्त करता था। यही उसका अध्ययनकाल था। मनु के अनुसार प्रत्येक वेद को सांगोपांग पढ़ने में 12–12 वर्ष अथवा जब तक अध्ययन पूर्ण न हो जाए, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करें। ब्रह्मचर्य के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था जहाँ उसे अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के लिए सन्तानोत्पत्ति इत्यादि कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में निर्धारित किये गये सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर अगले वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता था। वानप्रस्थ आश्रम में उसे समस्त सामाजिक बन्धनों से मुक्त होकर वन में जाकर तप के माध्यम से मोक्ष का अनुसंधान करना था। वानप्रस्थ के बाद संन्यास आश्रम का विधान था। संन्यासियों का दायित्व था कि वे अपनी आत्मिक उन्नति के साथ–साथ समस्त जनमानस को धर्मयुत व्यवहार में प्रवृत्त कराते हुए मोक्ष तक पहुँचाये।

आधुनिक समाज में वर्ण व्यवस्था कर्म पर आश्रित न होकर जन्म आश्रित हो गयी है। जन्म से जाति व्यवस्था प्रकट होती है। मनुस्मृति इसका विरोध करती है–

जन्मना जायते शूद्रो संस्कारात द्विज उच्यते।[3]

अर्थात् जन्म से तो सभी शूद्र उत्पन्न होते हैं किन्तु संस्कारों द्वारा वे उच्चतम द्विजत्व को प्राप्त करते हैं।

यहाँ पर ग्रन्थों में प्रमुख रूप से चार वर्णों का उल्लेख है। कुछ लोग वर्ण का तादात्म्य रंग से करते हैं, किन्तु वर्ण का वास्तविक अर्थ कुछ भिन्न ही है। साहित्यिक रूप से वर्ण शब्द 'वृञ्वरणे' अथवा 'वरी' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– वरण करना या चुनना। इस अर्थ में यह कहा जाता है कि विभिन्न लोग जिस कार्य अथवा कर्म का चुनाव या अंगीकरण करते हैं, वही वर्ण कहलाता है। इस अर्थ में एक विशिष्ट वर्ण के लोग एक विशिष्ट प्रकार के कार्य (कर्म) में संलग्न रहते हैं। सामाजिक व्यवस्था के समुचित संचालन के लिए प्रत्येक कार्य महत्वपूर्ण होता है। इसलिए समस्त कार्यों का वर्गगत विभाजन कर दिया गया है। इसे ही वर्ण धर्म कहा जाता है। इसी वर्ण व्यवस्था के आधार पर सम्पूर्ण समाज का वर्गीकरण चार प्रकार से हुआ है। पहला– ब्राह्मण, दूसरा– क्षत्रिय, तीसरा– वैश्य तथा चौथा– शूद्र। स्मृतियों के अनुसार चारों वर्णों के कुछ सामान्य 'धर्म' या कर्तव्य भी होते हैं जिसे 'सामान्य

धर्म' कहा जाता है। यही सभी वर्गों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। इन सामान्य धर्मों में जीव हत्या न करना, सत्य की खोज करना, किसी दूसरे की वस्तु का अपहरण न करना, चरित्र एवं जीवन की पवित्रता बनाये रखना इत्यादि समाहित हैं। प्रत्येक वर्ण का अपना पृथक्–पृथक् कर्म भी निर्धारित है। इसे ही वर्ण धर्म कहा जाता है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का उद्‌गम इसी वर्णाश्रम धर्म से हुआ है। इस प्रकार चातुर्वर्ण्य एवं वर्णाश्रम व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव व संस्कारों पर निर्भर व्यवस्था है न कि जन्मजात व्यवस्था पर। वैदिक परम्परा में समाज के कल्याण तथा उसके सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ नियम बनाये जिसे वर्णाश्रम धर्म या चातुर्वण्य व्यवस्था कहा जाता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में उल्लेख है–

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।

वस्यं कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमक्ष्ययम्।।[3]

अर्थात् चारों वर्ण मेरे द्वारा ही गुण तथा कर्म के आधार पर बनाये गये है।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इत्यादि वर्णों का निर्धारण उसके चारों पुरुषार्थ पर निर्धारित कर दिया गया।

ब्राह्मण :

मनुस्मृति के अनुसार जन्मतः कोई भी ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से सभी शूद्र ही होते हैं। उत्तम संस्कारों द्वारा कोईभी ब्राह्मणत्व करके ब्राह्मण बन सकता है। उपनिषदों के अनुसार शुक्लवर्ण दिव्य वलय वाला व्यक्ति किसी भी जाति, धर्म अथवा त्वचा के रंग का हो, ब्राह्मण कहलाता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक प्रकाशवलय विद्यमान होता है। यही प्रकाशवलय व्यक्ति के गुण तथा स्वभाव से प्रभावित होकर तेजोवलय (Aura) में परिवर्तित हो जाता है। यह साधारण व्यक्ति को दृश्य नहीं होता है किन्तु उच्चकोटि के साधक, सन्त, महापुरुष, योगी इसे देख सकते है। आधुनिक विज्ञान में भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। विज्ञान में इसे विशेष मन्त्रों के माध्यम से देखा जाता है। इसी तेजोवलय को व्यक्ति के गुण, स्वभाव एवं प्रकृति के अनुसार वैदिक व्यवस्था में चार भागों में वर्गीकृत किया गया है जिसे वर्ण कहा गया और इसी व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था अथवा वर्णाश्रम कहा गया।

ब्राह्मण में शुक्ल (श्वेत) दिव्य वलयवर्ण पाया जाता है। उपनिषदों में यह कहा गया है कि शुक्ल वर्ण दिव्य वलय वाला व्यक्ति किसी भी जाति, धर्म, अथवा त्वचा के रंग का हो, ब्राह्मण ही माना जायेगा। ऐसा व्यक्ति सदैव साधना, चिन्तन तथा आत्मोसर्ग में संलिप्त रहता है। भौतिक भोग उसे प्रभावित नहीं कर पाते। यह विद्या का अधिष्ठाता होता है तथा सदैव ज्ञान के अनुसंधान में तत्पर रहता है। इसीलिए इस वर्ण को सर्वोच्चता प्राप्त है। यह सम्पूर्ण समाज को शिक्षित करता है। श्रीकृष्ण ने गीता में ब्राह्मण के नौगुण बताये है–

शमो यदस्तपः शौयं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमस्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।[4]

अर्थात् शम दम, तप, शोच, क्षान्ति, आर्नव, ज्ञान विज्ञान और आस्तिक्य ये सब ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं।

क्षत्रिय :

क्षत्रियों में रक्त दिव्य वलय वर्ण पाया जाता है। उपनिषदों के अनुसार ऐसे व्यक्ति अत्यन्त साहसी एवं पुरुषार्थ (बाहुबल) वाले होते है। इसीलिए इन्हें रक्षा कार्यदायित्व दिया गया है। क्षत्रिय शब्द का व्युत्पत्तिक अर्थ है 'जो क्षत (हानि) से बचाये' वही क्षत्रिय है। ब्राह्मण ग्रन्थों में क्षत्रियों को दूसरा स्थान प्राप्त है जबकि बौद्ध ग्रन्थों में क्षत्रियों को ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है। क्षत्रियों के कर्तव्य के बारे में गीता में उद्‌धृत है–

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं।

दानमीश्वर भावश्च क्षत्रं कर्म स्वभावजम।।[5]

अर्थात् सूर्यवीरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता, युद्ध से पलायन न करना, दानदेना तथा राज्य शासन करना, ये सभी क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। इस प्रकार क्षत्रिय को सात गुणों का उल्लेख है।

वैश्य :

प्रकाशवलय की धारणा के अन्तर्गत वैश्य में पीत वलयवर्ण पाया जाता है। उपनिषदों के अनुसार ऐसे व्यक्ति में धन या श्री की महत्ता होती है। यह धनार्जन में अत्यधिक संलग्न रहते है। 'वैश्य' शब्द की व्युत्पत्ति वैदिक शब्द 'विश्' से हुई है जिसका अर्थ प्रजा है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'विश्' धातु से मानी जाती है। इसका मूल अर्थ 'बसना' है। यह वर्णव्यवस्था के तृतीय स्तम्भ माने जाते हैं। इनका मुख्य कर्म व्यापार तथा कृषि है। विशति पण्यविद्यासु सः वैश्यः। अर्थात् जो वाणिज्य विद्याओं में प्रविष्ट रहता है, उसे वैश्य कहते हैं। गीता के अनुसार–

कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्।।[6]

अर्थात् कृषि, गौपालन तथा वाणिज्य, ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूद्र :

शूद्रों का वर्णव्यवस्था में चतुर्थ स्थान था। प्रकाशवलय की दृष्टि से इनमें काला (श्याम) वलय वर्ण पाया जाता है। मनुस्मृति के अनुसार संसार का प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र ही होता है। ब्राह्मण भी जन्म से शूद्र ही होता है। वेदों में शूद्र शब्द लगभग बीस बार आया है और कहीं भी उसका अपमान जनक अर्थों में प्रयोग नहीं हुआ है। वेद के किसी भी स्थल पर शूद्र के अछूत होने, उन्हें वेदाध्ययन से वंचित रखने, यज्ञ इत्यादि से अलग रखने तथा अन्य वर्णों से दर्जा कम होने का उल्लेख नहीं है। शूद्रों को सेवा का प्रभार दिया गया था। गीता के अनुसार–

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।[7]

अर्थात् परिचर्या (सेवा) करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। उपरोक्त तथ्य को दृष्टिगत करें तो वर्तमान समय में सेवा (नौकरी) करने वाले सभी शूद्र ही माने जा सकते है। बौद्धिक संरचना में शूद्रों का मानसिक विकास अन्य वर्गों की अपेक्षा कुछ कम पाया गया। इसीलिए उसे किसी जटिल कार्य में हीं लगाया गया। किन्तु सामाजिक रूप से उसकी उपेक्षा भी नहीं की गयी है। जीवन की समस्त धाराओं में शूद्र का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है।

जिस प्रकार शरीर संचालन के लिए उसके समस्त अंगों का सक्रिय होना ना आवश्यक है उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिए उसके सभी वर्णों का अपना–अपना कार्य करना आवश्यक है। यह अलग बात है कि व्यक्तिगत योग्यताओं को दृष्टिगत करते हुए किसी भी वर्ण का व्यक्ति किसी भी वर्ण के उत्तरदायित्व को निभा सकता है। वस्तुतः सभी वर्गों के अपने–अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन से ही आदर्श समाज की स्थापना संभव है।

तुलसीकृत रामचरितमानस में वर्णाश्रम धर्म की बहुत सुन्दर संकल्पना परिलक्षित होती है। गोस्वामी तुलसीदास युगीन समाज एक विघटित समाज था। इसलिए सन्त तुलसी ने अपने काव्य के माध्यम से एक आदर्श समाज की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया है। गोस्वामी तुलसीदास जी युगीन समाज में लोग लोक व वेद मर्यादाओं की अवहेलना कर रहे थे। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म की भी पूर्ण अवहेलना हो रही थी। कलियुग वर्णन में संत शिरोमणि तुलसीदास ने इन तथ्यों को उद्घाटित किया है–

बरन धरम नहिं आश्रमचारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।

मिथ्यारम्भ दम्भ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।।

जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवन्त बखाना।।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोई ग्यानी सो विरागी।।

जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।

असुभ बेष भूषन धरे भच्छा भच्छ जे खाहिं।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माँहि।।

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।

मन क्रम वचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ।।[8]

विनय पत्रिका में भी इसी तथ्य का प्रकटीकरण हुआ है–

आश्रम–बरन–धरम–विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।

प्रजा पतित पाखण्ड–पापरत अपने अपने रंग रई है।।[9]

तुलसी कालीन समाज में वैदिक आश्रम व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी अपने कर्मपथ से च्युत थे। इसीलिए चारों तरफ अनाचार तथा अत्याचार का बोलबाला था। समाज में प्रथम पूज्य व समाज का मस्तिष्क कहा जाने वाला ब्राह्मण वर्ग स्वयं धर्मच्युत था तो समाज में धर्म की स्थापना कैसे करता ? वह श्रुतियों को बेचने पर लगा था। कौड़ी भर के लाभ के लिए कोई कुछ भी करने को उद्यत था। जिसको जो भी मार्ग अच्छा लगे, वही उसका मार्ग था। जो अत्यधिक गाल बजाता था, वही विद्वान माना जाता था। दूसरों का धन हरण करने वाला चतुर समझा जाता था। पाखण्डी ही आचारवान होता था। जो भी झूठ बोलकर मसखरी करना जानता था, वही गुनवंत था। आचरणहीन और वेद मार्ग का त्याग करने वाले ही ज्ञानी तथा वैरागी समझे जाते थे। ब्राह्मण लोग अपने पवित्र कर्म का त्याग करके कपटी वेष धारण करके इधर–उधर विचरण करते थे। जिनके पास बड़ा–बड़ा नख व सिख (शिखा) होता था, वह कलयुग में बड़े तपस्वी कहे जाते थे। जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य–अभक्ष्य अर्थात् खाने योग्य और न खाने योग्य सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी तथा सिद्ध पुरुष माने जाते है तथा ऐसे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं। जिनके आचरण दूसरों का अपकार करने वाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य माने जाते हैं। जो मन वचन तथा कर्म से झूठ बोलने वाले (लबार) है, वे ही कलियुग में वक्ता कहे गये हैं।

तुलसीकालीन पूरा समाज ही अमर्यादित तथा विघटित हो गया था। पुरुष कामी क्रोधी तथा लोभी होकर स्त्रियों के वश में होकर नट–मर्कट की तरह व्यवहार करते हैं। शूद्र लोग ब्राह्मणों को ज्ञान का उपदेश करने लगे और यज्ञोपवीत धारण करके अभक्ष्य खाने लगे। सभी देवता ब्राह्मण, श्रुति तथा संत विरोधी हो गये थे स्त्रियां अपने गुणों के धाम सुन्दर पतियों का त्यागकर पर पुरुष का सेवन करती हैं। सुहागिनी स्त्रियां तो आभूषण से रहित हैं पर विधवायें नित्य नया श्रृंगार करती हैं।

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।

शूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।

सब नर काम लोभरत क्रोधी। देव विप्र श्रुति सन्त विरोधी।।

गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।

सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन के श्रृंगार नवीना।।[10]

तुलसीयुगीन समाज में गुरु–शिष्य परम्परा भी कलंकित हो चुकी थी। गुरु व शिष्य के मध्य वही सम्बन्ध शेष था जो एक बहरे व अंधे में। शिष्य गुरु के उपदेश को सुनता नहीं था अर्थात् बहरा था और दूसरी ओर गुरु को ज्ञान दृष्टि ही नहीं थी अर्थात् वह देखता नहीं था।

गुरु सिष बधिर–अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।

हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक मँह परई।।[11]

इस प्रकार सभी नर–नारी अपनी–अपनी कल्पना के अनुसार आचरण करते हैं। वेद सम्मत और ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्ति पथ को छोड़कर उस पर नहीं चलते तथा अनेको नये–नये पंथों की कल्पना करते हैं।

सब नर कल्पित करहि अचारा। बरनि न जाई अनीति अपारा।।

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक।

तेहिं न चलहिं नर मोहवश, कल्पहिं पंथ अनेक।।[12]

समाज में चतुर्दिक अन्याय का बोलबाला था। लोगों का जीवन पवित्रता के अभाव में दूषित हो गया था। चरित्रहीनता के परिणामस्वरूप मानव प्रजाति शंकरवर्ण हो गयी।

भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।

करहिं पाप पावहिं दुःख भय रुज शोक वियोग।।[13]

कलियुग के प्रभाव से लोग इस तरह से प्रभावित थे कि समस्त नैतिक मर्यादायें पूर्णतः ध्वस्त हो चुकी थी। भगिनी तथा पुत्री के साथ भी उचित आचरण नहीं किया जा रहा था।

कलिकाल विहाल किये मनुजा। नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा।

नहि तोष विचार न शीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता।।[14]

माता–पिता बच्चों को नैतिकता तथा मर्यादा की शिक्षा प्रदान नहीं करते। जिस भी प्रकार से पेट पालन हो वही धर्म बताते है।

मातु–पिता बालकन्ह पढ़ावहिं। उदर भरै सोई चरम सिखावहिं।।[15]

वस्तुतः वर्णाश्रम धर्म के क्षरण के कारण ही ऐसी विपरीत परिस्थितियां समाज में उत्पन्न हो गयी हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना से अत्यन्त क्षुब्ध थे। उनके विचार से वर्णाश्रम धर्म का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना वर्णाश्रम धर्म के पालन के सामाजिक आचार–विचार शुद्ध नहीं हो सकता। जो भी वर्ण या व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण नहीं करता वह अत्यन्त निन्दित है। तुलसी की दृष्टि से वह अत्यन्त सोचनीय है। उन्होंने समाज के सभी वर्ग को दर्पण दिखाने का साहस किया है। तुलसी का वर्णाश्रम धर्म किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। वह प्रत्येक समाज को उनके कर्तव्यों का दिग्दर्शन कराता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी को कर्मच्युत होने पर फटकार लगायी है। इस सम्बन्ध में निम्न पंक्तियां समीचीन है–

सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरम विषय लयलीना।।

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहिं न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।

सोचिय बयस कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगत सुजानू।।

सोचिय सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।।

सोचिय पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी।।

सोचिय बहुं निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरू आयसु अनुसरई।।

सोचिय गृही जो मोहबस करै करम पथ त्याग।

सोचिय जती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग।।

वैखानस सोइ सोचइ जोगू। तप विहाइ जेहिं भावइ भोगू।।

सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुरूबंध विरोधी।।

सब विधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी।।

सोचनीय सबही विधि सोई। जो न छांड़ि छल हरिजन होई।।[16]

अर्थात् सोचनीय वह ब्राह्मण है जो वेद को नहीं जानता और अपना धर्म छोड़कर विषयासक्त रहता है। सोचनीय वह राजा है जो नीति नहीं जानता तथा जिसे प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है। सोचनीय वह वैश्य है जो धनवान होकर भी अत्यन्त कृपण है और जो अतिथि सत्कार नहीं करता और शिव भक्ति नहीं करता। सोचनीय वह शूद्र है जो ब्राह्मणों का अपमान करता है तथा बहुत बोलने वाला, मान व बड़ाई चाहने वाला और ज्ञान का घमण्ड रखता है। पुनः वह नारी सोचनीय है जो पति को छलती है तथा कुटिल, कलहप्रिय तथा स्वेच्छाचारिणी है। सोचनीय वह ब्रह्मचारी है जो अपने ब्रह्मचर्य को छोड़ देता है तथा अपने गुरू की आज्ञानुसार नहीं चलता। सोचनीय वह गृहस्थ है जो मोहवश कर्मपथ का त्याग कर देता है तथा सोचनीय वह संन्यासी है जो दुनिया भर के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान–वैराग्य से हीन है। वह वानप्रस्थ सोचनीय है जिसे तपस्या छोड़कर भोग प्रिय लगते हैं। सोचनीय वह व्यक्ति है जो चुगलखोर है तथा अकारण क्रोधी है और माता–पिता, गुरु व भाई–बन्धुओं से विरोध रखता है। दूसरों का अनिष्ट करने वाला सोचनीय है जो सिर्फ अपने शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है। जो छल कपट का परित्याग कर भगवान श्रीहरि की भक्ति नहीं करता वह तो सब प्रकार से सोचनीय है। सार रूप में भक्त कवि का आशय यही समझा जा सकता है कि जो भी वर्ण अथवा व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण व व्यवहार नहीं करता, वह सर्वथा सोचनीय है।

भक्तिकाल में किसी रचनाकार के कृतित्व में उस समय के यथार्थ का इतना विशुद्ध तथा दारुण चित्र प्राप्त नहीं होता जितना कि संत तुलसी के साहित्य में। संत तुलसी कलिकाल की करालता से अत्यन्त व्याकुल हैं। तुलसी यद्यपि वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक हैं तथापि तुलसी के राम की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर है। इस अर्थ में तुलसी का वर्णाश्रम धर्म समता का पोषक है।

सब मम कृत सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोंहि भाये।।[17]

तुलसी के अनुसार भक्ति की भावभूमि से मानवीय समानता तथा एकता संभव है। श्रुतियों, स्मृतियों तथा वेदों के अनादर से तुलसी दुःखी है। ज्ञान के प्रतीक ब्राह्मणों का अनादर तुलसी को स्वीकार नहीं है, किन्तु ब्राह्मणों के पतन से भी तुलसी मर्माहत हैं। वैदिक धर्म के पतन के कारण समाज में सुख–शान्ति कायम नहीं हो सकती क्योंकि जिस समाज में नैतिक तथा धार्मिक बन्धनों का अभाव होता है वह समाज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। तुलसी सामाजिक व्यवस्था तथा मर्यादा की रक्षा के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के पक्षधर है। आदर्श समाज की संकल्पना वर्णाश्रम धर्म के अभाव में सम्भव नहीं है।

आदर्श सामाजिक व्यवस्था के उदाहरण के रूप में 'रामराज्य' का उल्लेख किया जा सकता है। रामराज्य में इसी वर्णाश्रम धर्म का विधिवत पालन किया जाता है और सभी वर्गों के लोग अपने–अपने दायित्वों का सम्यक् पालन करते है।

वरना श्रम निज–निज धरम निरत वेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।[18]

अर्थात् सभी लोग अपने–अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर रहकर सदा वेद विहित मार्गों का अनुसरण करते है और सुख पाते हैं। उन्हें किसी भी बात का भय नहीं है तथा उन्हें कोई रोग–शोक सताता नहीं है।

रामराज्य में किसी को भी दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रितापों से कोई क्लेश नहीं पहुँचता है। सभी अपने–अपने धर्म पर चलते है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।[19]

सम्पूर्ण जगत में धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से परिपूर्ण है। पाप तो स्वप्न में भी दृष्टिगत नहीं होता है। समस्त स्त्री–पुरुष राम भक्ति के परायण हैं तथा मोक्ष (परमगति) के अधिकारी है।

चारिउ चरन धर्म जग माही। पूरि रहा सपनेहुँ अध नाहीं।।

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।[20]

राम के राज्य में अल्प अवस्था में किसी की मृत्यु नहीं होती है। सभी सुन्दर तथा निरोगी हैं। न तो कोई दरिद्र है और न तो कोई दुःखी व दीन है। कोई भी व्यक्ति मूर्ख नहीं है और कोई भी शुभ लक्षणों से हीन नहीं है।

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा।।

नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लक्षन हीना।।[21]

रामराज्य में सभी नर नारी दम्भ रहित तथा धर्मात्मा व पुण्यात्मा है। सभी अत्यन्त गुणवान तथा चतुर हैं। सभी गुणवान तथा विद्वान हैं और सभी कृतज्ञ हैं। कपट तथा चतुराई (धूर्तता) किसी में भी दृष्टिगत नहीं होती है।

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी।।[22]

इस प्रकार राम के राज्य में सर्वत्र सुख ही सुख व्याप्त है। जड़ चेतन सारे जगत में काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों से उत्पन्न हुए दुःख से कोई भी पीड़ित नहीं है।

रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माँहि।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुःख काहुहि नाँहि।।[23]

राम के राज्य में राम स्वयं प्रजावत्सल, गुणवान, शीलवान तथा मर्यादा पुरुषोत्तम है। उन्होंने अनीति तथा अधर्म को कभी प्रश्रय नहीं दिया है। उन्होंने अपनी प्रजा के मध्य यह उद्घोषणा की थी–

जौ अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहिं बरजेहु भय बिसराई।।[24]

अतीति से राज्य नष्ट हो जाता है। दुराचारी शासन कभी भी स्थायी नहीं होता है। सुख और शांति की स्थापना तो नैतिक व्यवस्था से ही संभव होती है। रामराज्य पूरी तरह नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित होकर वर्णाश्रम धर्म के आधार पर ही संचालित होता था। इसीलिए उसमें सर्वत्र सुख शान्ति व्याप्त थी, चारों दिशाओं में प्रसन्नता व्याप्त थी। हम रामराज्य का निम्नवत् दर्शन कर सकते हैं–

कूजहिं खग मृग माना वृन्दा। अभय चरहि वन करहिं अनन्दा।।

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरन्दा।

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहि रत्न तटन्हि नर लहहीं।।

सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।।

फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।।

खग मृग सहज बयरू बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

लटा विटप माँगे मधु चवही। मन भावतो धेनु पय श्रवहीं।।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।।

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।

विधि महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।

माँगे वारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।।[25]

इस प्रकार राम के राज्य में व्याप्त सुख तथा समृद्धि का वर्णन करते हुए भक्त तुलसी कहते हैं कि राम के राज्य में पशु–पक्षी सुखी होकर कूज रहे है तथा आनन्दित होकर निर्भय रूप से वन में चर रहे है। शीतल मन्द सुगंधित वायु बह रही है। भौरे पुष्पों का मकरन्द लेकर चलते हुए गुंजार कर रहे हैं। नदियों में श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल तथा स्वादिष्ट जल प्रवाहमान रहता है। समुद्र कभी भी अपनी मर्यादा (सीमा) का उल्लंघन नहीं करता है और अपने तटों पर रत्नों को लाकर डाल देता है। रत्नों को पाकर नर–नारी प्रसन्न होते है। तालाबों में कमल शोभायमान हैं तथा दसों दिशायें अति प्रसन्न (आनन्दित) हैं। वनों में वृक्ष सदैव फलते तथा फूलते हैं। हाथी और सिंह परस्पर की वैमनस्यता त्यागकर एक साथ रहते हैं। पशु और पक्षियों ने स्वाभाविक वैर भाव भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है। बेलें और वृक्ष माँगने भर से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। धेनु (गाय) मनचाहा दूध प्रदान करती है। धरती सदैव फसलों से परिपूर्ण रहती है। ऐसे लगता है मानो त्रेता में सतयुग आ गया हो। जगदातमा भगवान को राजा जानकर पर्वतों ने अनेकों मणियों की खानों को प्रकट कर दिया है। श्रीरामचन्द्र के राज्य में चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से पृथ्वी को परिपूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितनी आवश्यकता है और बादल मांगने पर आवश्यक जल प्रदान करते है।

निष्कर्षतः उपरोक्त तथ्य यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि रामराज्य वास्तविक रूप से एक आदर्श राज्य था जहाँ चारों तरफ सुख शान्ति तथा प्रेम का ही बोलबाला था। राम के राज्य में राम एक आदर्श राजा थे। राम की प्रजा आदर्श थी। सच्चे अर्थों में राम काली समाज एक आदर्श समाज था। इस आदर्श समाज के मूल में वर्णाश्रम धर्म विद्यमान था, जिसमें प्रत्येक वर्ग के लोगों को अपने–अपने कर्तव्यों (कर्मों) का सम्यक् बोध था। इस प्रकार तुलसी का वर्णाश्रम धर्म पर परस्पर प्रेम का संस्थापक है। तुलसी के वर्णाश्रम में समाज के प्रत्येक अंग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सच्चे अर्थों में तुलसी का वर्णाश्रम धर्म एक आदर्श समाज की आधारशिला है।

संदर्भ सूची :

1. आतस्तम्बधर्मसूत्र
2. मनुस्मृति
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/13
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/42
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/43
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/44
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/44
8. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
9. विनयपत्रिका, 139/4
10. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
11. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

12. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
13. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
14. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
15. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
16. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड
17. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
18. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
19. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
20. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
21. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
22. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
23. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
24. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
25. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

राधाकृष्ण की कहानियों में हास्य–व्यंग्य

डॉ0 अविनाश कुमार पाण्डेय
स्नातक प्रशिक्षित शिक्षक
मध्य विद्यालय थनुआँ, थाना–शिवसागर
जिला–रोहतास

हास्य और व्यंग्य शब्द एक–दूसरे के बहुत समीप होते हैं। हास्य में त्रुटि, विसंगति, असफलता आदि का चित्रण करके उनकी हँसी उड़ायी जाती है, किन्तु इसमें लेखक की सहानुभूति सदैव वर्त्तमान रहती है। लेकिन हास्य की सहानुभूति व्यंग्य में नहीं होती। व्यंग्य इन पर आक्षेप प्रहार का उद्देश्य लिए होता है। यद्यपि हास्य और व्यंग्य दोनों अत्यधिक यथार्थवादी होते हैं, किन्तु हास्य में कल्पना के लिए अत्यधिक छूट होती है, जबकि व्यंग्य में कल्पना को हास्य की अपेक्षा कम अवसर दिया जाता है। हास्य के भीतर जहाँ करूणा की भावना प्रधान होती है, वहीं व्यंग्य के भीतर क्रोध और विरोध की। अपने विरोध को व्यंग्य इस प्रकार प्रकट करता है कि स्वयं जिसका विरोध किया जाय, वह भी उसे देख–सुन और समझ सके।

हास्य और व्यंग्य की प्रकृति बिल्कुल अलग है। दोनों का प्रभाव क्षेत्र अलग–अलग होता है। हास्य का कार्य जहाँ पाठक का मनोरंजन करना है, उसे हँसाना–गुदगुदाना है, वहीं व्यंग्य का कार्य प्रहार करना है तथा विसंगति के मर्म को पहचान कर उसके जिस्म में नश्तर चुभोने जैसा है। हास्य रचना की समाप्ति पर पाठक जहाँ खिलखिलाता है, वहीं अच्छे व्यंग्य की समाप्ति पर वह अव्यवस्था के विरूद्ध खींझ और आक्रोश से भर उठता है। तात्पर्य यह कि हास्य का आधार यदि मनोरंजन है तो व्यंग्य का आधार संवेदना है।

''व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियाँ, दुर्बलताओं, कथनी और करनी के अंतरों की समीक्षा या निन्दा भाषा की टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी–कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगंभीर होते हुए भी गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए दयालू हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए तटस्थ लग सकती है तथा अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है।''[1]

आजादी के बाद मोहभंग का दौर शुरू हो गया, क्योंकि जिस स्वतंत्र भारत का सपना देखा गया था, उसके मेल में यह बिल्कुल नहीं था। चारों तरफ फैली हुई विसंगतियों से प्रत्येक व्यक्ति अपने को त्रस्त एवं विक्षुब्ध पा रहा था। लोगों के होठों से मुस्कुराहट और हँसी दोनों छिन गयी थी। लोग मुस्कुराना और हँसना दोनों भूलने लग गये थे। लोगों के हृदय में आक्रोश, असंतोष तथा खींझ पैदा होने लग गये थे, इस अवस्था ने हीं साहित्यकारों को व्यंग्य लिखने के लिए विवश कर दिया था।

''व्यंग्य समसामयिक जीवन की अनचाही स्थितियों से जन्म लेता है। हम जो चाहते हैं उसके मेल में जब हमारा यथार्थ नहीं होता, तब हमारे भीतर असंतोष होता है, आक्रोश जन्म लेता है और उन्हीं से व्यंग्य की अभिव्यक्ति होती है। व्यंग्य आदर्श और यथार्थ की टकराहट से फुटी हुई चिंगारी है। आज हमारे राजनीतिक–सामाजिक जीवन में इतने और ऐसी विसंगतियाँ हैं कि जनजीवन उनसे विक्षुब्ध और त्रस्त है। इसी जनजीवन की चेतना व्यंग्य के रूप में रचनाकारों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही है।''[2]

अविभाजित बिहार के राँची शहर के अपर बाजार में 18 सितम्बर, 1990 को जन्में राधाकृष्ण हास्य–व्यंग्य के हिन्दी साहित्यकाश में एक चमकते सितारे थे, जिनकी रचनाएँ हास्य–व्यंग्य से ओत–प्रोत है। प्रारंभ में राधाकृष्ण 'घोष–बोस–बनर्जी–चटर्जी' के नाम से हास्य रचनाएँ लिखते रहे थे। राधाकृष्ण का समय हास्य–व्यंग्य लेखन वैविध्यपूर्ण है–वस्तु तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से। उन्होंने सबसे पहले ऐसी रचनाएँ दी जिनमें शिष्ट तथा परिष्कृत हास्य के दर्शन होते हैं। ऐसी रचनाओं से हीं

राधाकृष्ण को प्रारंभिक ख्याति और प्रतिष्ठा मिली। इन रचनाओं में 'वरदान का फेर' और प्रोफेसर भीम भंटा राव' का प्रमुख स्थान है। इन दोनों कहानियों में शब्दजनित हास्य की प्रधानता है। आगे चलकर राधाकृष्ण जी हास्य के स्थान पर व्यंग्य की प्रधानता देने लग गये। अपने कथ्य को प्रस्तुत करने के लिए राधाकृष्ण ने बराबर नये शिल्पों की तलाश की। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में विविध प्रविधियों का प्रयोग देखने को मिलता है।

व्यंग्यकारों के लिए 'पंचतंत्रम्' शिल्प की खान है। इस खान का व्यंग्यकारों ने खूब दोहन किया है। राधाकृष्ण को भी 'पंचतंत्रम्' से नये–नये शिल्प मिलते रहे हैं। पंचतंत्रम् के मानवेतर पात्र व्यंग्य को एक नयी धार एवं अर्थ प्रदान करने में बड़े सबल प्रमाणित होते रहे हैं। राधाकृष्ण ने अपनी अनेक कहानियों में इन मानवेतर पात्रों की सहायता ली है।

'फल की प्राप्ति' राधाकृष्ण की एक अनूठी व्यंग्य–रचना है। इसके दो पात्र हैं–सियार और भालू। सियार सत्तारूढ़ दल का प्रतीक है और भालू विरोधी दल का। दोनों ने मिलकर जंगल के फलों को खाने का अधिकार अपने–अपने तक सीमित कर लिया है। हमारे प्रजातंत्र में सत्तारूढ़ तथा विरोधी दल के बीच जो अलिखित संधि रहती है–तुम भी खाओ और हमें भी खाने दो, की उस अपवित्र समझौता को यह कहानी बड़े ही प्रभावशाली ढ़ंग से उद्घाटित करती है।

राधाकृष्ण की सतर्क दृष्टि केवल देश के नेताओं एवं राजनीतिज्ञों तक हीं सीमित नहीं है, बल्कि उनकी दृष्टि व्यवसाय करने वालों पर भी है। आज धोखा देना व्यवसाय का पर्याय बन गया है। जो जितना बड़ा धोखेबाज होता है, वह उतना हीं सफल व्यवसायी होता है। 'चन्द्रगुप्त की तलवार' इसी विषय पर लिखी गयी एक सशक्त व्यंग्यात्मक कहानी है। पंडित रूद्राक्ष मिश्र ने जब से 'चन्द्रगुप्त की तलवार' बेचने का नया धंधा शुरू किया है, उनकी आर्थिक स्थिति काफी तगड़ी हो गयी है। अब वह बेबी ऑस्टिन कार पर चलते हैं। एक दिन बच्चूलाल ने डरते–डरते पंडित जी से पूछा ''मेरा कहना यही है कि चन्द्रगुप्त ने तो एक हीं तलवार फेंकी थी और आपको चार कहाँ से मिल गयी?''

पंडित रूद्राक्ष मिश्र ने निःसंकोच भाव से उत्तर दे दिया ''इसमें अचम्भे की कोई बात नहीं है, जो लुहार चार तलवार बना सकता है वह पाँच तलवारें भी बना सकता है।''[3]

यह एक इतिहास प्रसिद्ध तथ्य है कि जहाँगीर ने एक 'इंसाफ का घंटा' लटकाया था। प्रजा कभी भी यह घंटा बजाकर जहाँगीर को अपनी फरियाद सुना सकती थी। इसी घटना को केन्द्र में रखकर राधाकृष्ण ने 'जहाँगीर का इंसाफ' और 'गंगा की धारा' नामक व्यंग्य कहानी लिखी है। एक इंसान इंसाफ का घंटा बजाता है, तब उसे जहाँगीर के सामने पेश किया जाता है। जहाँगीर उससे पूछता है कि बता तेरी तकलीफ क्या है ?

उस इंसान ने जवाब दिया ''आलमपनाह, मुझे माफ करें, आपका आराम देखते हीं मेरी तकलीफें खत्म हो गयी।'' इन दो छोटे–छोटे वाक्यों के सहारे कहानीकार जो कह जाता है, वह कई पृष्ठों में भी इतने प्रभावी ढ़ंग से नहीं कहा जा सकता। आज यही स्थिति है। जब जनता अपने नेताओं के महल और उनके विलासितापूर्ण जीवन को देखती है, तो वह अपनी तकलीफ को नगण्य मानने लग जाती है। वह भ्रम में पड़कर अपना कष्ट भी भूल जाती है।

जहाँगीर के बार–बार पूछे जाने पर इंसान अपनी एक तकलीफ का बयान कर ही डालता है ''आलमपनाह, इस साल अच्छी तरह वारिश नहीं हुई।''

मालूम है, बादशाह जहाँगीर ने कहा ''इसके लिए मैंने मुस्तैदी से इंतजाम किया है। गंगा की धारा को पटना से हैदराबाद और हैदराबाद से अलेप्पी और कोचीन पहुँचाया जायेगा। उसके बाद उसे पूना की तरफ मुम्बई से खींचा जायेगा और वहीं अरब के सागर में उसे गिरने के लिए कहा जायेगा। फिर तो मुल्क में तमाम पानी हीं पानी और मछली तथा मगरमच्छ हो जायेंगे। बोलो, ठीक है न ?''[4]

तात्पर्य यह कि कांग्रेसी शासन की उस महत्वाकांक्षी योजना पर यह करारा प्रहार है जिसके अनुसार देश की प्रमुख नदियों की धाराओं को मोड़ने की बात सुनते–सुनते जनता ने आधी शताब्दी

गुजार दी, लेकिन गंगा, कृष्णा, गोदावरी अपने पुराने मार्ग पर हीं आज भी बह रही है, जिस मार्ग पर वे स्वतंत्रता के पूर्व भी बहा करती थी।

यह व्यवस्था जिसमें हम जी रहे हैं, यह अपनी ही गति से चलती है। इसके अपने कायदे–कानून हैं। कानून आदमी के लिए नहीं, बल्कि आदमी ही कानून के लिए है। नतीजा यह है कि इस व्यवस्था में आदमी पिसता रहता है, मगर उसकी सुनवाई कहीं नहीं होती, क्योंकि यह व्यवस्था अंधी, बहरी और बेदिमाग भी है। उसके पास केवल जीभ है और वह भी अपनी नहीं, क्योंकि उसका इस्तेमाल दूसरे करते हैं। इस व्यवस्था की सही पहचान थी राधाकृष्ण को। उन्होंने अपनी अनेक हास्य–व्यंग्य कहानियों में इसका प्रमाण दिया है। 'काठ की घंटियाँ', 'गबन', 'पूँजी' तथा 'नेकलेस' आदि कहानियाँ कुछ इसी तरह के हास्य–व्यंग्य पर आधृत हैं।

'सड़ी हुई बिल्ली' व्यवस्था की सड़ांध को उघारने वाली एक प्रभावशाली कहानी है। रास्ते पर एक बिल्ली मरी पड़ी है और वह सड़ चली है, फलतः उसकी दुर्गन्ध से लोग परेशान हैं। उसे रास्ते से हटाना किसका दायित्व है– नगरपालिका का, इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट का या किसी अन्य का। यह मामला मंत्री तक पहुँचता है। कोई भी विभाग यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि रास्ते पर मरी हुई जो बिल्ली पड़ी है, उसे हटाना उसका दायित्व है। अंततः शिकायतकर्त्ता को अपना मुँह लटकाकर लौट आना पड़ता है।

व्यंग्यकार बड़ा निर्मम होता है–शल्य की तरह। शल्यक जिस प्रकार शरीर के सड़े–गले अंग पर चाकू चलाने में जरा भी नहीं हिचकता है, वैसा हीं होता है व्यंग्यकार। उसे भी अपनी लेखनी किसी भी विषय पर चलाने में कोई डर या भय नहीं होता। राधाकृष्ण ऐसे हीं व्यंग्यकार रहे हैं।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी हास्य–व्यंग्य साहित्य को समृद्ध करने में राधाकृष्ण ने अपने जीवन के पूरे पाँच दशक अर्पित कर दिये थे। इतने लम्बे समय तक निरन्तर सक्रिय लेखन इस क्षेत्र में कोई और नजर नहीं आता। राधाकृष्ण ने हिन्दी हास्य–व्यंग्य का शैशव भी देखा और यौवन भी। इस अवधि में उन्होंने गुणवत्ता और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से जो लिखा, वह अनुपम है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य : डॉ0 शेरजंग गर्ग, पृ0–27–28
2. कमाल कुर्सी का : डॉ0 सिद्धनाथ कुमार के 'दो शब्द' से उद्धरित
3. हिन्दी के साहित्य निर्माता–राधाकृष्ण : श्रवण कुमार गोस्वामी, पृ0–93
4. वही, पृ0–94

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

अस्पृश्यता अपराध अधिनियम और संवैधानिक व्यवस्थाओं का दलितों पर प्रभाव

डॉ0 मुहम्मद इकबाल खाँ
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

विविध संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद अस्पृश्यता समाज में विद्यमान थी। इसको पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए 1955 में अस्पृश्यता अधिनियम बनाकर इसको अपराध घोषित कर दिया गया। इस कानून की कुछ धाराएँ निम्नलिखित है–

धारा 3 (अ)– सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक धर्म स्थलों पर प्रवेश की स्वतंत्रता।

(ब) सभी व्यक्तियों को अपनी तरह से पूजा या धार्मिक संस्कार की स्वतंत्रता।

(स) सभी को पवित्र नदियों, तालाबों में स्नान करने तथा पानी लेने की स्वतंत्रता।

(द) राज्य द्वारा निर्धारित नियमों का पालन न होने पर राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता या भूमि वापस ली जा सकती है।

धारा 4 (क)– सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक स्थानों (होटल, पार्क, दुकान, सिनेमा घर आदि) में प्रवेश की स्वतंत्रता।

(ख)– सभी नागरिकों को अपनी मर्जीनुसार कारोबार करने या चुनने की स्वतंत्रता।

(ग, घ)– सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक धर्मार्थ की संस्थानों से लाभ या उपयोग करने का अधिकार।

(च)– सभी व्यक्तियों को धर्मशाला या मुसाफिर खाने के उपयोग का अधिकार।

(छ)– सभी व्यक्तियों को अपनी मर्जी अनुसार धार्मिक संस्कार को चुनने की स्वतंत्रता।

(ज)– सभी व्यक्तियों को पसन्द के आभूषण पहनने की स्वतंत्रता।

धारा 5 (अ)– यह धारा सभी व्यक्तियों को अस्पतालों, शैक्षिक संस्थाओं, छात्रावासों में बगैर किसी भेदभाव के प्रवेश का अधिकार देता है।

(ब)– कोई भी दुकान वाला, काम वाला, कम्पनी वाला या ऑनलाइन सामान प्रदान करने वाला अस्पृश्यता के आधार पर अपनी सेवाएँ देने से इन्कार नहीं करेगा। अगर कोई सेवा देने से मना करता है तो राज्य को यह अधिकार होगा कि इस तरह के संस्थान को दण्डित करे या हमेशा के लिए बन्द करा दे।

धारा 7 (अ)– इस धारा में दण्डित करने का प्रावधान है। अगर कोई उपरोक्त धाराओं में विद्यमान नियमों को भंग करता है तो उसे 6 महीने की सजा और रुपये 500 के जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

(ब)– भारत के प्रत्येक राज्य को अधिकार प्रदान किया गया है कि वह अस्पृश्यता की रोकथाम के लिए आवश्यक कानून बनाये। उपरोक्त संवैधानिक व्यवस्था तथा अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 होने के बावजूद अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करने के लिए सरकार द्वारा 'नागरिक अधिकार संरक्षण कानून', 1976 और 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम', 1989 पास किये गये हैं।[1]

अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 का नाम बदलकर 1976 में 'नागरिक अधिकार संरक्षण कानून' कर दिया। इसके अनुसार अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को सार्वजनिक स्थल, तीर्थ स्थल या धार्मिक स्थल में प्रवेश करने से रोकता है तो उसे अपराधी समझा जायेगा। यह कानून छुआछूत की भावना प्रदर्शित करने पर दंड का प्रावधान करता है। अनुसूचित जाति एवं जनताति अत्याचार निवारण अधिनियम 30 जनवरी 1990 से पूरे देश में लागू हो गया है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह कानून 23 धाराओं में अत्याचार या अपराध के श्रेणियों और उसके निवारण के उपाय सुझाता है–

दलित जाति के लोगों के साथ अपमानजनक व्यवहार करना, शोषण करना, पीने के पानी को गंदा करना, किसी भी पदार्थ को खाने के लिए मजबूर करना, शारीरिक यातना पहुँचाना, जमीन पर कब्जा करना, मकान से जबरन निकालना, खेती को बर्बाद करना, सामाजिक या आर्थिक बहिष्कार करना आदि। यह कानून अपराधी को दण्डित करता है और पीड़ित को सुरक्षा प्रदान करता है। इस कानून के तहत एस.सी./एस.टी. एक्ट के तहत एफ.आई.आर. दर्ज की जाती है जिसकी 60 दिन के अन्दर जाँच करनी आवश्यक है।[2]

दलितों पर संवैधानिक व्यवस्थाओं का प्रभाव–

दलितों के कल्याण के लिए राष्ट्रपति अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयुक्त की नियुक्ति करता है। इसके अलावा केन्द्र सरकार ने एक सलाहकार बोर्ड स्थापित किया है जो दलितों के कल्याण की योजना बनाता है। इसका कार्य है कि इन जातियों के विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाई, छात्रवृत्तियाँ, पुस्तकें तथा लेखन सामग्री आदि खरीदने के लिये आर्थिक सहायता दे। अम्बेडकर का कहना भी यही था कि ''किसी भी समाज के आर्थिक–सामाजिक विकास के लिए शिक्षा जरूरी है।'' इस क्षेत्र के आँकड़े यह बताते हैं कि दलित शिक्षा का प्रतिशत बढ़ रहा है। इन जातियों की साक्षरता 1951 में 18.3 प्रतिशत थी जो 2011 में बढ़कर 63 प्रतिशत हो गयी। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसकी मदद से अज्ञानता, अन्धविश्वास तथा असमानता को कम किया जा सकता है। शिक्षा केवल आय के साधन के रूप में ही नहीं बल्कि व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास तथा इज्जत की जिन्दी जीने के लिए आवश्यक है। नारी के लिए शिक्षा का महत्व और भी अधिक है क्योंकि शिक्षित नारी अपना ही नहीं बल्कि पूरे परिवार के जीवन स्तर को ऊँचा करती है और इस तरह समाज को सभ्य बनाती है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की साक्षरता दर 65 प्रतिशत और पुरुषों की 82 प्रतिशत है। ओवर आल साक्षरता 74 प्रतिशत है। इसकी तुलना में दलितों का साक्षरता उत्साहजनक है। अगर दलित जाति के 1951 के साक्षरता 180.3 प्रतिशत से 2011 की तुलना की जाए तो बढ़कर 36 प्रतिशत हो गयी है तो हम कह सकते हैं कि यह लगातार बढ़ रही है। शहर की अनुसूचित जाति की महिलायें ग्रामीण महिलाओं के मुकाबले अधिक शिक्षित हैं। 2007–08 में अनुसूचित जाति की महिलाओं का साक्षरता ग्रामीण 49.9 प्रतिशत जो शहरी महिला के 66.1 प्रतिशत से कम था। इसी प्रकार पुरुष साक्षरता ग्रामीण क्षेत्र में 70.6 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र में 83.1 प्रतिशत रही। अनुसूचित जनजाति का 2007–08 में पुरुष साक्षरता ग्रामीण 69.3 प्रतिशत, शहरी 86.0 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता ग्रामीण 55. 4 प्रतिशत, शहरी 69 प्रतिशत रही।[3] इसका सीधा कारण महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। मूल्यपरक शिक्षा दलितों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को मजबूत करेगी साथ ही सामाजिक तनाव को भी कम करेगी। आज वैश्वीकरण तथा निजीकरण के दौर में शिक्षा निजी हाथों में जाने के कारण महंगी होती जा रही है। अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के व्यक्तियों के पास इतना धन नहीं है कि वे मूल्य आधारित औद्योगिक एवं व्यवसायिक शिक्षा इन निजी संस्थानों से ग्रहण कर सके। केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपने शिक्षा के संस्थान खोलने की बजाय विभिन्न स्तरों पर निजी संस्थानों पर अधिक जोर दे रहे हैं। अगर यही सिलसिला जारी रहा तो आर्थिक रूप से समाज के कमजोर वर्गों के पास मूल्य आधारित उच्च शिक्षा की भविष्य में कमी हो जायेगी जिसका सीधा प्रभाव इनकी आर्थिक स्थिति पर पड़ेगा।

26 जनवरी 1950 के निर्णय के आधार पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विभिन्न सतरों पर अनुसूचित जातियों को 15 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजातियों को 7 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये

तथा आयु सीमा और शैक्षिक सीमा में भी छूट दी गयी। इस आरक्षण के लाभ की बदौलत इन जातियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में सुधार हुआ। सरकार की ए, बी, सी, डी कैटेगरी की सेवा में 1990 तक इनकी संख्या दिये गये आरक्षण के बराबर थी। इसके अलावा पब्लिक सेक्टर तथा बैंकों में भी इनकी संख्या आशा अनुरूप रही। 1990 के बाद वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उदारीकरण का दौर शुरू होने के बाद सी तथा डी कैटेगरी में 2004 तक लगभग 3 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। ए और बी कैटेगरी में कोई गिरावट नहीं आई। इसका सीधा अर्थ यह है कि जो सरकारी सेवा में उच्च पदों पर आसीन हैं उनके लिए निजी संस्थाओं से अपने बच्चों को महंगी उच्च शिक्षा दिलाना आसान रहा। आरक्षण–व्यवस्था का सबसे अधिक लाभ इसी वर्ग को प्राप्त हो रहा है। दलित समाज के अन्दर ही 'शिक्षित–दलित' का एक वर्ग बन गया है जिसकी वजह से दलितों के अन्दर ही असमानता बढ़ रही है।[4] आरक्षण व्यवस्था लागू करने से दलितों की आर्थिक स्थिति सुधरी है।

21 सूत्रीय दलित घोषणा–पत्र–

दलित बुद्धिजीवियों का एक महासम्मेलन भोपाल में (मध्यप्रदेश) 12–13 जनवरी 2002 को आयोजित किया गया। इस 21 सूत्रीय दलित घोषणा पत्र को 'भोपाल घोषणा पत्र'' के नाम से भी जाना जाता है। यह घोषणा पत्र दलितों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उजागर करता है और समस्याओं के समाधान के सुझाव भी देता है। इस घोषणा पत्र के कुछ बिन्दु और सुझाव निम्नलिखित हैं–

दलित खुशहाल जीवन व्यतीत करें इसके लिए आवश्यक है कि सरकार उन्हें खेती करने के लिए भूमि प्रदान करे। यह व्यवस्था उन्हें सम्मानपूर्ण जीवन जीने में मदद करेगी। उनका उत्थान करेगी और सामाजिक न्याय प्रदान करेगी। अधिकतर दलित खेतिहर मजदूर हैं। उन्हें मजदूरी मिले इसकी व्यवस्था की जाये। कार्य क्षेत्र में उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाये। दलितों को कोई भी सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयोग से न रोक सके इसके लिए कड़े कानून बनाये जाएँ। आयेदिन दलितों और आदिवासियों की जमीन पर कब्जे या छीनने के मामले सामने आते हैं। इन्हें शीघ्र निपटाया जाये और अपराधियों को दण्डित किया जाये। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के दौर में दलितों की क्षमताओं को पहचानकर उन्हें व्यवसायपरक तथा तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाए। दलितों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति बेहतर करने के लिए पहले से बने हुए कानूनों तथा संविधान के अनुच्छेदों में आवश्यक संशोधन किये जायें। दलितों का शैक्षिक स्तर बेहतर करने के लिए उन्हें निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा दी जाए और छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की जाए। दलित बच्चों की शिक्षा के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए। दलितों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए आवश्यक है कि उन व्यक्तियों तथा क्षेत्रों की पहचान की जाए जहाँ जातिवादी संघर्ष होते हैं। ऐसी जगहों पर पर्याप्त पुलिस या सशस्त्र बल तैनात किया जाए। दलितों को सुरक्षा देने के लिए हथियारों के लाइसेंस दिये जाएं। दलितों के विकास के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जाये और उन्हें दलित क्षेत्र विशेष में ही लागू किया जाए। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग की सालाना रिपोर्ट पर शीघ्र कार्यवाही की जाए और उसे प्रकाशित भी किया जाए। विभिन्न सरकारी आरक्षित पदों को शीघ्र भरा जाए और उन पदों पर केवल दलित व्यक्ति ही नियुक्ति प्राप्त करे।[5]

भारतीय सरकार द्वारा संवैधानिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अनेक कानून बनाकर दलितों को सामाजिक समानता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। उनकी शैक्षिक तथा राजनीतिक स्थिति को मजबूत करने के लिए भी व्यवस्थाएँ बनाई गई है। इसमें कोई शक नहीं कि दलितों की स्थिति में काफी बदलाव आया है लेकिन उतना बदलाव नहीं आया जितना संविधान निर्माताओं द्वारा आशा व्यक्त की गई थी। आज भी दलित उत्पीड़न या अत्याचार की घटनाएँ अखबारों की सुर्खियाँ बनती रहती हैं। यह घटनाएँ तब तक नहीं रूकेगी जब तक दलितों के प्रति समाज के अन्य वर्गों की सोच में बदलाव नहीं आता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 एम0पी0 सिंघल– भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 417–418
2. google; ni, m.wikipedia.org/w
3. Bharti Pandey and A.P. Tiwari- Dalit Education and Employment : Post Ambedkar Secenario, The Indian Economic Associastion, Dec. 2013, p. 84.
4. K.K. Bagchi – Affirmative Action Policies for Dalits in India : A Review of their achievement, the India, Economic Journal, Journal of Indian Economic Association, Dec. 2013, pp. 245-246.
5. डॉ0 एस0पी0 सिंहल– भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 414

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

''रवीन्द्र कालिया के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय समाज का संघर्ष एवं शोषण''

डॉ0 प्रद्युम्न सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
हण्डिया पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
हण्डिया, प्रयागराज (उ0प्र0)

हिन्दी कहानी जगत के सशक्त हस्ताक्षर रवीन्द्र कालिया का व्यक्तित्व स्वयं संघर्षी रहा है। उन्होंने अपने लेखन के द्वारा मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता और पाँव पसारते भ्रष्टाचार को बहुत गहराई और सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। उनके कथासाहित्य में पात्र सामाजिक–राजनीतिक शोषण से जूझ रहे हैं। इनकी प्रत्येक कहानी का अहम् हिस्सा जीवन सघर्ष से भरा है। इनकी कहानियों के नायक एवं नायिका अपनी सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न इस संकट कोझेल रहे हैं। समाज में राजनीतिक नेताओं की आर्थिक–नैतिक भ्रष्टता और चारित्रिक अन्तर्विरोध अपने समय का ज्वलन्त सत्य है। कोई भी राजनेता ऐसा नहीं जो सच्चरित्र, ईमानदार हो। नेताओं द्वारा अफसर द्वारा, पुलिस शासन व्यवस्था द्वारा, उच्च पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा, लोगों की मनोवृत्ति द्वारा आज समाज के सभी पात्र शोषित हैं।

'दादा दुबे', 'बुढ़वा मंगल', 'काला रजिस्टर', 'चाल', 'बांकेलाल', 'दफ्तर', 'रूप की रानी','चोरो का राजा' इत्यादि कहानी के माध्यम से समाज में हो रहे शोषण को दर्शाया गया है।

'खुदा सही सलामत है', '17 रानडे रोड' इत्यादि उपन्यास में भी समाज में फैले इस विषधर की काली करतूत अंकित है। इसका जहर समाज में धीरे–धीरे फैलता जा रहा है जिसकी चिन्ता तमाम साहित्यकारों के साहित्य में वर्णित है।

'17 रानडे रोड' उपन्यास में लेखक ने आकाशवाणी और फिल्म जगत में हो रहे शोषण तथा भ्रष्टाचार का यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हे।

"चौधरी और पुरुषार्थी को एक दूसरे के नजदीक लाने का परोक्ष श्रेय संगीत की प्रोड्यूसर नीलिमा अधीर को जाता था। नीलिमा अधीर एक चिर कुमारी थी। कुछ लोगों की राय थी कि वह एक राष्ट्रीय पार्टी के अध्यक्ष की चहेती थी और उनकी सिफारिश से ही इस पद पर पहँची थी, जबकि उसे न तो संगीत की जानकारी थी और न श्रव्य माध्यम का कोई अनुभव। जब वह पहले दिन दफ्तर में आयीं, परुषार्थी ने उसे देखकर तत्कालीन स्टेशन डायरेक्टर सोहन अवस्थी से कहा था, 'खंडहर बता रहे हैं इमारत हसीन थी।''[1]

कुछ पद की प्राप्ति ने औरत को देह का इस्तेमाल करना सिखा दिया है। वह प्रतिभा की जगह अपने अस्तित्व का सौदा करने से नहीं चूकती। आकाशवाणी में व्याप्त शोषण केस्थिति का पूरा सटीक चित्रण रवीन्द्र कालिया के इस उपन्यास में चित्रित है।

चौधरी, सोहन अवस्थी, परुषार्थी, भटनागर, नीलिमा आदि चरित्र पात्रों के माध्यम से इन्होंने आकाशवाणी की परिस्थिति से भिज्ञ कराते हुए हो रहे भ्रष्टाचार, अन्याय और शोषण को उजागर करते हैं।

तभी किसी फोटोग्राफर ने उसका चित्र खींच लिया जो अगले रोज अखबारों के पहले पृष्ठ पर छपा था। किसी समाचार–पत्र ने शीर्षक दिया था–फिल्म उद्योग में विष कन्याओं का प्रवेश। किसी ने शीर्षक दिया–दुष्ट अभिनेताओं की अब खैर नहीं। किसी ने चुटकी ली– अब हंटरवाली की जगह चाकू

वाली। एक फिल्मी वीकली ने बिकनी में उसकी ताज़ा तस्वीर छापी और शीर्षक दिया– चोली में जहर। कई पत्र–पत्रिकाओं में ओबी का नाम भी था।''[2]

'नग्नता की हद' तक जाकर कालिया के पात्र कुछ भी करने को तैयार है। उन्हें लोकलाज कुल मर्यादा का ज्ञान नहीं। वे किसी तरह स्वार्थपूर्ति में लगे हैं। ऐसे में एक स्त्री की सुरक्षा भगवान भरोसे है।

"आप शायद जानते नहीं, औरत हर इंडस्ट्री में असुरक्षित है। यहाँ तक कि भरे बाजार में भी वह सुरक्षित नहीं है।''[3]

फिल्म इंडस्ट्री सबसे बदनाम है क्योंकि औरतों का शोषण सबसे अधिक इसी क्षेत्र में होता है। 'दादा दुबे', 'बुढ़वा मंगल', 'बांकेलाल' आदि कहानियों में बदलते समाज तथा उसमें व्याप्त शोषण को रेखांकित करना रवीन्द्र कालिया का मुख्य उद्देश्य है। तत्कालीन समय में शोषण का रूप बदल चुका है। लेखक इस बात से अनभिज्ञ नहीं। परन्तु जिस परिक्षेत्र में उसका कड़वा अनुभव है वह केवल उन्हीं सन्दर्भों के विषय में लिखना पसन्द करता है। इनके कहानियों के परिप्रेक्ष्य में मधुरेश लिखते हैं कि–

''इन स्थितियो और संदर्भो को वे समूचे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने की अनिवार्यता भी जल्दी ही समझ लेतें है।''

रवीन्द्र कालिया ने जीविका के तमाम स्रोत बदले उन्होंने 'धर्मयुग' में भी कार्य किया। जीवन के विविध रास्तों पर चलकर तीखा अनुभव बटोरने मेंकथाकार अग्रणी हैं। अतः इनकी कहानियाँ सीधे तौर पर शोषण और शोषित के मध्य से होकर गुजरती है।

'दफ्तर', 'काला रजिस्टर', इत्यादि कहानी में तानाशाही रवैये से त्रस्तलोगों की करुण कथा है। रवीन्द्र कालिया की यह कहानी मानवीय संवेदना से ओत–प्रोत है। अमूर्त और आदर्शवादी विचारों पर केन्द्रित दफ्तर में किस प्रकार छल छद्म की धारणा व्याप्त है। इसको प्रेषित करने का श्रेय कथाकार को जाता है। जमींदारी प्रथा से निकल कर पूँजीवादी युग में केवल रूप बदला है। शोषण की नियति नहीं। अतः साठ के दशक में भी शोषण अपने बहरूपिये वेश में जनता पर शासन कर रहा था। गोपाल राय का कथन इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत है–

'दफ्तर' में दफ्तर की मनहूस, अफसरों की खुशामद, कमीनगी और टुच्चेपन से भरी, जानी–पहचानी स्थितियों का चित्रण है। 'काला रजिस्टर' भी एक अखबार या पत्रिका के दफ्तर के माहौल की जहाँ ऐसा लगता है जैसे हॉल में किसी का शव रखा है और तमाम लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे हुए हैं' – प्रधान सम्पादक की तानाशाही की कहानी है जिसमें मुख्य सम्पादक, उपसम्पादकों और बेहद उदास और डरे हुए चेहरे वाले कर्मचारियों के औपचारिक ठंडें और मानवीय संवेदना से रहित सम्बन्धों का चित्रण किया गया है।''[4]

'दफ्तर, कबिन, सम्पादक' तानाशाह का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ पर कार्यरत कर्मचारी नौकरों की तरह खटते हैं, परन्तु उन्हें न वेतन सही समय पर मिलता है और न ही उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता है। विद्रोही व्यवहार वाले को तुरन्त निकाल बाहर कर दिया जाता है।

''कहा जाता है कि यह कहानी रवीन्द्र कालिया के 'धर्मयुग' के अनुभवों पर आधारित है जबकि धर्मवीर भारती उसके सम्पादक थे। इस कहानी के कर्मचारी प्रधान सम्पादक की दहशत की छाया में काम करते हैं, और जो कर्मचारी अपने वजूद की स्वतन्त्रता का थोड़ा सा भी इजहार करता है. उसका दफ्तर में जीना और बने रहना मुहाल हो जाता है। 'एक उदास और डल जिन्दगी' यहाँ की पहचान है।''[5]

रवीन्द्र कालिया का विक्षोभ उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि ''मुझे कहानी के उस स्वीकृत रूप से घोर वितृष्णा है, जिस अर्थ में कि वह आज कहानी के नाम से जानी जाती है।'' इसका वक्तव्य अक्षरशः सत्य है और रवीन्द्र कालिया ने अपनी बात को सत्य करते हुए इस समाज को वैसी ही कहानियाँ दी है जो समाज का वास्तविक सत्य है।

जीवन का अनिश्चय, असन्तोष, असमंजस, अरोचकता, अविश्वास लेखक को निरन्तर उसी ओर ले जाती है जहाँ विवशता और एकाकीपन है। कथाकार इससे छुटकारा पाना चाहता है वह नहीं चाहता कि अन्य भी इससे उलझे रहे। अतः उन्होंने समाज को वही दिया जो उसका स्वरूप है। कड़वी सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता।

अश्क के अनुसार, ''यह चुलबुलापन मन को गहरे में नहीं छूता और कहीं–कहीं उसका अतिरेक हो गया है।' अश्क के साक्ष्य पर, रवीन्द्र कालिया के अनुसार, यह पुरुषों की न होकर स्त्रियों की कहानी है जिनका पक्ष भी पाठको तक पहुँचाना लेखक का उद्देश्य है। अश्क का मानना है कि यदि इस कहानी को असफल प्रेमियों अथवा असफल पुरुषों अथवा कमाकर लाने वाले या पति की कमाई पर अधिकार कर लेने वाली स्त्रियों की दृष्टि से देखा जाए तो यह एक नया आयाम दे जाती है। कहानी के अन्तिम दृश्य में शायद बताया गया है कि जैसे कमाऊ पुरुष अपनी पत्नियों को इस्तेमाल की चीज समझते रहे हैं, इसी तरह कमाऊ स्त्रियाँ भी पुरुषों का इस्तेमाल कर कर सकती है–या करेंगी और पुरुषों को उन्हें सहना पड़ेगा– इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक। अश्क की शिकायत है कि यह संकेत सूक्ष्मता से नहीं दिया गया है।''[6]

बेरोजगार पति के साथ जीवन का कड़वा अनुभव साझा करते कालिया की बेहतरीन कहानी 'चाल' है।

'आज बाज़ार है, दो रुपये दे दो!'

'बहू से लेना' प्रकाश ने कहा। उसे वाकई मालूम नहीं था कि घर में रूपये हैं या नहीं हैं। हैं, तो कहाँ हैं। किरण रुपये कुछ इस ढंग से निकालती है कि पास खड़ा आदमी भी नहीं जान पाता, अभी अभी उसके हाथ कहाँ गए थे।''[7]

किरण नौकरी पर जाती है प्रकाश बेकार आदमी की तरह घुमता–फिरता है। फिर भी किरण को घर का सारा काम देखना पड़ता है। पति की झिड़क का शिकार होना पड़ता है। शारीरिक–मानसिक दोनों रूपों में किरण के शोषण को 'चाल' कहानी में दर्शाया गया है।

समाज में शोषण के विविध रूप है तो उसके आगोश में आते अलग–अलग पात्र भी हैं। समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस महामारी से अछूता नही है तभी तो रवीन्द्र कालिया की ऐसी कोई कहानी नहीं जिसमें इस तथ्य को दर्शाया न गया हो। कथाकार झूठी कल्पनाओं से बाहर निकल कर समाज का वो सच सामने लाने का प्रयास किया जो समकालान कहानीकार कर रहे थे। मोहन राकेश, राजेन्द्र, कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, ममता कालिया, मन्नू भंडारी आदि। इन्होंने अपने सामाजिक विषयों के शाश्वत मूल्यों को कथा में गढ़ने का सार्थक और सफल प्रयास किया है। आधुनिक संबंध, दाम्पत्य जीवन, आजीविका के लिए संघर्ष, दफ्तर, सरकारी योजनाएँ, न्याय व्यवस्था इत्यादि पर अपनी निर्भीक टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. 17 रानडे रोड, रवीन्द्र कालिया, भारती ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2019, पृ0 261।
2. 17 रानडे रोड, रवीन्द्र कालिया, भारती ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2019, पृ0 261।
3. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पुर्नमुद्रण, 2014, पृ0 129।
4. हिन्दी कहानी का इतिहास–2, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 214, पृ0 425।
5. हिन्दी कहानी का इतिहास–2, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 214, पृ0 425।
6. अश्क साहित्य धारा (खण्ड–4 आलोचना), उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987।
7. पाँच बेहतरीन कहानियाँ, चाल, रवीन्द्र कालिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0 2013, पृ0 66।

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

श्री लाल शुक्ल....
आधुनिक विडंबनात्मक नारी व्यवहार

राकेश कुमार पाण्डेय
शोधछात्र
खरडीहा महाविद्यालय, गाजीपुर

प्राचीन समाज में नारी को अबला के नाम से संबोधित किया जाता था। वह सदैव अपने पति के अधीन रहा करती थी और उनके बीच स्थापित विवाह का बंधन अकाट्य था अटूट था। किंतु आज की नारी उन पुराने रिवाजों को बिल्कुल भी नहीं मानती। वह परंपरागत शादी के बंधन को आसानी से तोड़ सकती है। आधुनिक नारी किसी बंधन में नहीं रहना चाहती। इसीलिए वह कई पुरुषों के साथ संबंध स्थापित करने को भी गलत नहीं मानती। वह ऐसा पति जो उसे पसंद ना हो उसको छोड़ने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती है। शुक्ल जी ने ऐसी ही एक नारी पात्र डॉक्टर सीता दत्त का उल्लेख अपने उपन्यास में किया है। डॉक्टर सीता दत्त आधुनिक नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। उसने अपने पति को तलाक दे रखा है। डॉक्टर सीता दत्त एक सरकारी अस्पताल में डॉक्टर है। एक सरकारी डॉक्टर होने के नाते वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी थी। उसने अपने पति को छोड़ दिया था। इस संबंध में डॉक्टर सीता दत्त कहती है–'' मैं नई रामायण लिख रही हूं । सीता को राम ने बिना अपराध के छोड़ दिया था, मैं वैसी सीता नहीं। अपना अपमान करने वाले राम को मैं स्वयं छोड़ चुकी हूँ।''[1]

श्रीलाल शुक्ल ने त्रेता युग की सीता के आदर्शों से पूर्णतया या च्यतु हो चुकी सीता दत्त के रूप में आधुनिक काल की सीता का उल्लेख किया है और उस पर व्यंग करते हुए कहते हैं कि–''वह आज की सीता थी। अपने राम को घर से निकाल चुकी थी।''[2]

आधुनिक नारी की स्वच्छंता का एक उदाहरण सूनी घाटी के सूरज उपन्यास में भी मिलता है जहां युवती सत्या प्यार तो रामदास से करती थी मगर विवाह उसके दोस्त रामानुज से कर लेती है। उसके मन में प्यार का कोई मोल नहीं था। विवाह के उपरान्त रामानुज इस विषय में सत्या से पूछता है और कहता है–''लोग कहते थे कि रामदास तुमसे बहुत प्यार करता था। यहां तक सोचा जाता था कि तुम लोग विवाह कर लोगे। इस पर सत्या कहती है तुम गलत सोचते थे। रामदास में वह जड़ता नहीं जिससे वह अपने संसार को भुला दें, जिसके सहारे वह किसी को तुम्हारी तरह प्यार कर सके।''[3]

उपन्यास पहला पड़ाव में एक श्रम मंत्री जी की बकवास करने वाली पत्नी है। मंत्री जी अपने से ज्यादा इस पत्नी के कारण मशहूर थे। इस पर व्यंग कसते हुए श्रीलाल शुक्ल जी ने लिखा है–''उससे भी ज्यादा मशहूर वे एक ऐसी समाजसेवी महिला के पति होने के नाते थे जो सांवली–संलोनी, बकवास में प्रवीण और सबके बीच में खुश रहने वाली और सब को खुश रखने वाली थी।''[4]

श्री लाल शुक्ल की सबको खुश रखने वाली उक्ति किसी अन्य दिशा की ओर ही संकेत करती प्रतीत होती है। प्राचीन मूल्य और मान्यताओं के अनुसार लज्जा नर्यास्तु भूषणम कहा गया है। किन्तु आधुनिक काल की नारी लज्जा से कोसों दूर है। शरीर पर कम कपड़े रखना तो गौरव की बात हो गई है। वह शहरी चमक–दमक से इतनी प्रभावित है कि उन्हें अब कोई साधारण सज्जन व्यक्ति अच्छा नहीं लगता। वह किसी खूबसूरत ऐसे नौजवान को जिसके पास पैसे की अधिकता नहीं है, बिल्कुल भी महत्व नहीं देती है। वह अपने से उम्र में बड़े अधेड़ उम्र के डाक्टर इंजीनियर, प्रोफेसर आदि को इसलिए पंसद करती है क्योंकि उनके पास ऐशो–आराम के समस्त साधन मौजूद है। पैसा, मोटर–गाड़ियां तथा आधुनिक सुख–सुविधाओं की भरमार हैं इस भोगवादी प्रवृत्ति ने महिलाओं के मन मस्तिष्क को भी इतना प्रभावित किया है कि वे ऐसे अधेड़ लोगों की निजी संपत्ति हो जाती है। समाज की यह विडंबना समाज

में कुकृत्य को जन्म देती है श्रीलाल शुक्ला जी के उपन्यासों में ऐसे नारी पात्रों का चित्र देखा जा सकता है जो आर्थिक रूप से तो सबल है किन्तु चारित्रिक रूप से पूरी तरह से दुर्ल उन्हें आधुनिक सीता कहना ही ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

ऐसा नहीं है कि समाज में सिर्फ बुरे विचार रखने वाली नारियां ही हैं। समाज में कुछ अच्छे चरित्र की भी स्त्रियाँ विद्यमान हैं। वह अपने पति द्वारा किए गए किसी भी गलत कार्य का विरोध करती हैं। उन्हें समझाने का बहुत प्रयास करती हैं। पति के न मानने पर उनके बीच विवाद की स्थिति भी उत्पन्न होती है किन्तु अपने आदर्श से पीछे नहीं हटती। ऐसी महिलाएं अपराध में संलग्न पतियों का परित्याग करने के लिए भी तैयार हो जाती है। विश्रामपुर का संत इस तथ्य की पुष्टि करता है। विश्रामपुर के संत में निर्मल और सुशीला दोनों आधुनिक पति पत्नी हैं। निर्मल परदेश जाकर भूदान यज्ञ में शामिल होकर उसके नाम पर धन इकट्ठा करता है और अपनी जेब भरता है। सुशीला को निर्मल का इस तरह से सामाजिक सेवा के नाम पर इकट्ठा किये हुए धन का गबल करना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता और बार–बार इस मुद्दे को लेकर वह अपने पति का विरोध करती है। सुशीला नाजायज कमाई में विश्वास नहीं करती है। इसीलिए उसके और निर्मल के बीच में संबंध मधुर नहीं है। नाजायज कमाई के कारण जब निर्मल को जेल हो जाती है तो सुशीला इस बात से बिल्कुल भी आहत नहीं ह ोती क्योंकि वह जानती है कि गलत काम का परिणाम गलत ही होता है। वह सत्य कासमर्थन करती है। सुशीला को कोई संतान नहीं थी इसलिए भी सुशीला निर्मल से दूर ही रहती थी। अब वह निर्मल से पूरी तरह से दूर रहना चाहती है और कहती है–''पहले भी हमारे बीच में कुछ नहीं बचा था। अब भी कुछ नहीं। इसलिए मुझे तलाक की भी जरूरत नहीं पड़ी, पर अब शायद कुछ सोचना पड़ेगा। अपने नाम के साथ उनके नाम का बोझढोना अब अच्छा नहीं लगता।''[5]

शुक्ल जी ने वर्तमान समाज में नारियों के बदलते चरित्र व व्यवहार को बड़ी ही सहजता व सरलता से उद्घाटित किया है। वैदिक काल की मर्यादित नारियां थी जिनमें गार्गी मैत्री, सीता, सावित्री, अनुसूया आदि मर्यादा की प्रतीक थीं। किन्तु बाद में समाज की सोच में विकृति आने के बाद आज नारियां भी अपना गुण सील संकोच आदि छोड़कर स्वतंत्र विचारों में भ्रमण करते हुए अति आधुनिकतावादी होने की ओर अग्रसर है। पूर्व की नारियों में जो चरित्र का उत्कर्ष दिखाई देता था आज वह कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता है। आज के नारी का चारित्रिक पतन सामाजिक परिपेक्ष में दृष्टिगत हो ही जाता है।

प्रेम का पागलपन और अंतर्जातीय संबंध :

बदलते हुए सामाजिक परिवेश में युवा पीढ़ी के मन मस्तिष्क में भी परिवर्तनदेखा जा सकता है। युवा पीढ़ी के मानस पटल पर अपने प्रेम सम्बन्ध को लेकर एक अद्भुत संघर्ष की स्थिति देखी जा सकती है। प्रेम करने वाले जाति संप्रदाय और पारिवारिक बंधनों को कोई महत्व नहीं देते हैं और उससे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। वे जिससे प्रेम करते हैं उसको प्राप्त करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और इसी कारण उनके जीवन की सीमाएं टूट जाती हैं। इसी तरह का एक प्रसंग 'सीमाएं टूटती हैं' उपन्यास में चांद और विमल के बीच का है। इस उपन्यास में चांद अपने से दुगुनी उम्र वाले विमल अंकल से प्रेम करती है जिससे उसके परिवार वाले अत्यन्त परेशान हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में उसका एक साथी मुखर्जी है जो अभी अविवाहित है। मन ही मन वह भी चांद को चाहता है और उससे विवाह करना चाहता है। चांद का यह कृत्य उसे अच्छा नहीं लगता है। इसीलिए वह सोचता है कि चांद एक अनुपयुक्त व्यक्ति के प्रेम से पूरी तरह से पागल हो गई है और कहता है–''एक बूढ़े दुकानदार के प्रेम में वह इतनी बेवकूफ हो गई है कि वह समझती है, इतनी बड़ी उलझन इतनी आसानी स पार हो जाएगी।''[6]

प्रायः देखा जाता है कि परिवारी जन ऐसे संबंधों के लिए सहमत नहीं होते। इसीलिए चांद के परिवार के सदस्य भी चांद के इस फैसले से सहमत नहीं हैं किन्तु चाँद अपने इस फैसले पर अडिग है और विमल अंकल से विवाह करना चाहती है। उसकी भाभी नीला उसे बहुत समझाती है किन्तु वह

अपने प्रेम को अक्षुण्य मानते हुए भाभी से कहती है–''तुम उल्टी बात कर रही हो भाभी। मैं जरूरत से ज्यादा समझदार हूँ। मेरे साथ यही मुसीबत है।''[7]

ऐसे प्रेम कभी–कभी सफल भी हो जाते हैं किन्तु ज्यादातर उनके हिस्से में सिर्फ असफलता ही होती है। सूनी घाटी के सूरज में श्याम मोहन और सुदामा प्रेम सफल है। इन्होंने भी अंतर्जातीय विवाह का रखा है। प्रेम के रास्ते में उन्हें अनेक गंभीर समस्याओं से रूबरू होना पड़ता है। अपने प्रेम के बारे में श्याम मोहन का दोस्त रामदास कहता है।

''प्रेम की ज्वाला में जलकर आंसुओं की धार से कविताएं लिखनी पड़ती थी। विरह....आह कराते इस शब्द को भोगना पड़ा। सुदामा के प्यार के पीछे माता–पिता घर–द्वार छोड़कर किसी अपरिचित स्थान को भागना पड़ा।''[8]

राग दरबारी उपन्यास में बद्री पहलवान बेला नामक निम्न वर्ण की वेश्या लड़की सेप्यार करता है और उससे विवाह करना चाहता है। उसके पिता वैद्य जी एक ब्राह्मण परिवार से संबंध रखते हैं। दिखाने में तो बहुत आचार विचार वाले और आदर्शवादी प्रतीत होते हैं, किन्तु उनका भी चरित्र कुछ विचितत्र ही है। वैद्य जी के पिता अयोध्या प्रसाद भी कुछ इसी तरह की चाल चलन वाले थे। वह बद्री पहलवान के इस निर्णय का विरोध करते हैं और उसको बहुत समझाते हैं। किन्तु बद्री पहलवान अपने फैसले पर टिका रहता है क्योंकि वह जानता है कि इन निम्न वर्ग की लड़कियों को ब्राह्मण परिवार के लोग अपनी विलासिता के लिए बहुत प्रयोग करते हैं तो फिर विवाह करने में क्या हर्ज है? इसीलिए शायद वह इस परंपरा को तोड़ना चाहता है और पिता के विरोध के बावजूद वह बेला से विवाह करने की जिद करता है। बद्री के पिता वैद्य जी जब इस विषय में उससे बात करना चाहते हैं तो वह कहता है–''बस! बात बंद! और एक बात मैं कह लूँ, तब मेरी भी बात बंद। मैं बाबा अयोध्या प्रसाद की चाल नहीं सकता। जो कुछ करूंगा, कायदे से करूंगा। इधर–उधर की गिरि–पिचिर मुझे पसंद नहीं है।''[9]

यहां साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल वर्ण व्यवस्था की बुराइयों और समस्याओं का चित्रण करते हैं। बेला और बद्री का प्यार भी विफल हो जाता है। सूनी घाटी के सूरज में बेबी का भी प्यार ऐसा ही है। बेबी अपने से निम्न वर्ण में पैदा हुये और कम पढ़े लिखे ड्राइवर के साथ प्रेम करती है और उसी के साथ भाग जाती है। किन्तु बाद में वही ड्राइवर बेबी को छोड़कर चला जाता है। वह तो केवल अपनी विलासिता की पूर्ति के लिए बेबी से प्यार करता था। बेबी एक उच्च शिक्षित होने के बाद भी एक कम पढ़े–लिखे ड्राइवर के साथ भाग जाने में जरा भी संकोच नहीं करती है और इसी कारण उसके अमीर पिता को बहुत अधिक सामाजिक शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है। भारतीय समाज में जाति का बंधन बहुत गंभीर है। इसीलिए शायद उसको तोड़ पाना किसी भी व्यक्ति के लिए सहज नहीं है। राग विराग उपन्यास में श्रीलाल शुक्ला ने इस बात को स्पष्ट किया है। सुकन्या नामक कन्या अपने प्रेमी डाक्टर शंकर लाल से इस कारण शादी नहीं कर पाती है क्योंकि वह उच्च शिक्षित होने के बावजूद भी एक निम्न वर्ण के गरीब परिवार से सम्बन्ध रखता है। वह उच्च वेतन प्रापत करने वाला एक डाक्टर है किन्तु फिर भी उसका निम्न वर्ण में पैदा होना ही विवाह के लिए उसकी अयोग्यता है। समाज के इस यथार्थ को सूनी घाटी के सूरज में व्यक्त करते हुए श्री लाल शुक्ल श्याम मोहन का उल्लेख करते हैं जो अपने से उच्च वर्ग और आर्थिक रूप में अपने से नीचे स्थित क्लर्क की बेटी से अंतर्जातीय विवाह करता है। अपने मित्र रामदास को उसके इस कदम से समाज में उत्पन्न हुई समस्याओं के बारे में बताते हुए वह कहता है–''मैंने समाज से मुठभेड़ की। जात पात के मिथ्या आडम्बरों को नहीं माना। संपत्ति द्वारा खड़ी की गई वर्ग भेद की दीवारों को तोड़ दिया।''[10]

सामाजिक व्यवस्था में गरीब को प्रेम करने का भी अधिकार नहीं है। इस संदर्भ में एक गरीब के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उपन्यास श्री लाल शुक्ल जी ने सूनी घाटी के सूरज के नायक रामदास के माध्यम से कहलवाते हैं कि–''यह भी विचित्र बात है। प्रेम पर भी तुम भरपेट वालों की ही मोनोपोली रहेगी? मुझ जैसों को न प्रेम करने का अधिकार है, ना उसकी असफलता पर शोक करने का?''[11]

इस प्रकार के प्रेम से अवैध संतान उत्पन्न होती है और ऐसी संतानों को समाज में उनका उचित स्थान प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसे संबंधों की सामाजिक मान्यता न होने के कारण उनके जीवन में

अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। आदमी का जहर उपन्यास से श्री लाल शुक्ल ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है जहां रूबी आनंद से प्रेम करती है और उनका शारीरिक संबंध हो जाने के कारण उन्हें एक संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु आनन्द की मृत्यु के कारण वह संतान अवैध हो जाती है क्योंकि जो कल तक एक सहज संबंध था अब उसके अनैतिक के जाने की समस्या उत्पन्न हो गई थी। इस विषय में रूबी कहती है–''पर आनंद के न रहने से मेरी हैसियत एकदम से बदल गई थी। मेरी ओर से कल तक जो एक स्वाभाविक व्यवहार की बात थी वही अब अचानक अपराध बन गयी और मेरे लिए लाजिमी हो गया कि मैं झूठ का सहारा लूं।''[12]

संदर्भ :

1. श्रीलाल शुक्लः अज्ञातवास पृष्ठ – 88

2. श्रीलाल शुक्ल अज्ञातवास पृष्ठ– 90

3. श्री लाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ0–87

4. श्री लाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ0–119

5. श्रीलाल शुक्ल : विश्रामपुर का संत, पृ0–161

6. श्री लाल शुक्लः सीमाएं टूटती हैं, पृ0–81

7. श्री लाल शुक्ल : सीमाएं टूटती है, पृ0–80

8. श्रीलाल शुक्लः सूनी घाटी का सूरज, पृ0–81

9. श्री लाल शुक्लः राग दरबारी पृ0–294 (प्रथम संस्करण)

10. श्री लाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ0–84

11. श्री लाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज : पृ0–19

12. श्री लाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ0–62

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

कवि गोरख प्रसाद मस्ताना के गीतों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. ममता
नई दिल्ली

राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र में रहने वालों की राष्ट्र के प्रति , सम्मान, समर्पण और त्याग के भाव का वह नाम है, जो उसे राष्ट्र की गरिमा और मर्यादा की रक्षा के लिए सर्वदा प्रेरित करती रहती है।

राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, आदि शब्द उसी चेतना से अर्जित शब्द हैं जिन्हें हम अपने कर्म शब्द और भावाभिव्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। मेरा भारत महान , हमारा भारत देश, भारत माता की जय, वन्दे मातरम आदि पदबंध उसी राष्ट्रीय चेतना से उपजे शब्द हैं जो हमारे हृदय और मस्तिष्क को झंकृत किये रहते हैं, जिनपर हम गर्व करते हैं।

व्यक्ति जब कर्म से योद्धा, बुद्धि से चिन्तक, स्वभाव से संत, और आचरण से शालीन हो जाता है , तो वह प्रकारांतर से चिंतनशील और फिर राष्ट्रवादी हो जाता है | उसे राष्ट्र से ऊपर कुछ दिखाई नहीं देता तथा देश ही उसके लिए धर्म और कर्म हो जाता है।

उपरोक्त राष्ट्रीय भावों को हिंदी के प्रसिद्ध मैथिलीशरण गुप्त , रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और गोपालसिंह नेपाली जैसे रचनाकारों ने अपने सर्जन का विषय बनाया और भारतीय साहित्यिक भंडार में वृद्धि की है | साथ ही जन मन की सोई आत्मा को जगा कर उन्हें राष्ट्र के प्रति अपने कृतव्यों का अनुपालन करने का सन्देश भी दिया है।

इसी क्रम में हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि, गीतकार डॉ गोरखप्रसाद मस्ताना की रचनाओं में भी राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न भावों को महसूस किया जा सकता है। डॉ मस्ताना रचित सभी गीति काव्यों में राष्ट्र के प्रति चेतना के स्वर मुखरित होते प्रतीत होते हैं। कवि अपने पूर्वज कवियों की महान राष्ट्रवादी परम्परा को उनके प्रति समर्पण के भाव के साथ रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं। वह एक व्यापक दृष्टि के साथ राष्ट्र की महानता का वर्णन करने के साथ- साथ राष्ट्र में रहने वालों का राष्ट्र के प्रति त्याग समर्पण और उसके गुणगान के भावों को अपने शब्दों में व्यक्त करने लगते हैं| कला, कलम और कर्तव्य जब राष्ट्र प्रेम की चाशनी में सने होते हैं तो राष्ट्रीय चेतना के स्वर का मुखरित होना अवश्यंभावी है तथा इसी सन्दर्भ में डॉ मस्ताना मातृभूमि को समर्पित एक गीत लिख जाते हैं :

हे वसुंधरा ! तू माँ मेरी
जग तेरी महिमा कहे कहे
हैं बूंद बूंद शोणित अर्पित
ले ले तू पर आजाद रहे (1) (रेत में फुहार काव्य संग्रह, 'हे धरती' कविता)

भारत देश प्रारंभ से ही सर्वधर्म संद्भाव का देश रहा है। प्रत्येक जाति, धर्म या सम्प्रदाए के लोगों ने इसे समान रूप से सम्मान दिया है । सबके बीच का भाईचारा ही हमारे राष्ट्र की विशिष्टता रही है। यहाँ भारती की गोद में सबका सामान संवर्धन होता आया है , यह देश अपनी सहिष्णुता के लिए सर्वकालिक महान रहा है। इसी को दर्शाते हुए कवि गोरख प्रसाद मस्ताना लिखते हैं :

यही मंदिर मस्जिद का मेल
सभी धर्मों का हम सम्मान

कहीं पर रामायण के बोल
कहीं पर पंचों वक्त अजान (2) (रेत में फुहार काव्य संग्रह, 'गाँव' कविता)

राष्ट्रीय चेतना में जन-मन जहाँ अपने राष्ट्रीय- धरोहरों को अपना गर्व समझता है , वहीं उसने अपने वीरों को सर्वदा अपनी स्मृतियों में जगह दी है , जिन्होंने इस देश की मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आज हमारा राष्ट्र ध्वज तिरंगा जब नीलाम्बर में लहराता है तो हमारी छाती गर्व से चौड़ी होती है और नसों में नए जोश का संचार होने लगता है। राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भावना का दर्शन हमारे तन-मन में नवीन ऊर्जा भर देता है | कविवर मस्ताना इन सभी दृश्यों को अपनी एक काव्य रचना में प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

"लिख दे गंगा का पवन जल, जमुना जी का पानी लिख
लहर- लहर पर इसके अपनी साहस भरी कहानी लिख
ध्वजा तिरंगा रहे विहँसता, हँसता नील गगन में
नई शक्ति, नव प्राण अहर्निश, लहलाये जन मन में
मान शान हित वीर शिव जी की तलवार भवानी लिख' (3)

('गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'हिन्दुस्तानी' कविता)

राष्ट्रीय चेतना को अनवरत जाग्रत रखने में हमारे शहीदों का बलिदान सर्वोपरि है। वे देश के लिए अपना बलिदान देकर आने वाली पीढ़ी को राष्ट्रहेतु आत्मोत्सर्ग का पाठ पढ़ा जाते हैं। कवि 'बलिदान' शब्द को पवित्रता का वह वस्त्र पहना जाते हैं जिससे हर कोई इन वीरों के सम्मान में अपना शीश झुका देता है। कवि की तमन्ना है कि हमारी अंजनी का हर फूल भारत माता के चरणों और शहीदों की चिताओं के लिए होना चाहिए। मस्ताना जी के यह विचार उनके गीतों में स्पष्ट देखने को मिलते हैं वे लिखते हैं-

"चल करें फूलों की खेती सुगन्धित मन प्राण हो
जो सुमन सुरभित हो, भारती को समर्पित
जो भी जयकारा लगे हो, शहीदों हित उच्चरित
नयन में हो तिरंगा रुदन में हिंदुस्तान हो' (4)

(अक्षर अक्षर बोलेगा, काव्य संग्रह, 'खेती फूलों की' कविता)

भारतभूमि किसी तीर्थ स्थान से कम नहीं है इसके हर प्रदेश में जीवन का मधुर स्वर बसता है। इसकी माटी, यहाँ की हवाएं, नदियाँ सब हमारे राष्ट्र की वंदना में रत लगते हैं। कवि मस्ताना की दृष्टि जब यहाँ पहुंचती है तो एक गीत का जन्म होता है-

"वसुधा है अपनी धर्म धाम
है इसी धारा का हिन्द नाम
है सब भले ही भिन्न भिन्न
पर मुक्ति भाव सबके अभिन्न "(5) ('तथागत' काव्य संग्रह, 'चिंतन सर्ग' कविता)

वह राष्ट्र चेतना ही है जिसके बलबूते पर देश की सीमा की रक्षा हेतु हमारे वीर सैनिक जीरों डिग्री से नीचे के तापमान में भी अपने प्राणों की बाजी लगाये रहते हैं। कभी कड़ी धूप, भारी वर्षा, असहयनीय ठंड तो कभी दुश्मनों की गोलियों की बौछार सबके बीच में अपने प्राणों का मोह त्याग अडिग रहते हैं । देश रक्षा में तैनात इन वीरों की लाशें जब तिरंगे में लिपट कर उनके घर आती हैं तो आकाश उनको श्रद्धांजलि देता हुआ वीरों की जयजयकार से गूंज उठता है। कवि डॉ मस्ताना ऐसे वीर जवानों के बलिदानों को उनका जन्मोत्सव कहते हैं। कवि लिखते हैं –

"तिरंगे में लिपट कर शरीर
भारती का वीर
मुख पर असीम शांति
गर्व की चमक मुख पर
मात्र भू का अंक लौटा
अपने जन्मदिवस के दिन
करके अपना आत्मोत्सर्ग" (6) ('बिंदु से सिंधु तक' काव्य संग्रह, 'जन्मदिन' कविता)

स्वयं को मिटा कर राष्ट्र बचाने का भाव ही देश प्रेम है जिसे सच्चा राष्ट्रवाद भी कहा जा सकता है। कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने "पुष्प की अभिलाषा" कविता में एक पुष्प के माध्यम से त्याग , समर्पण और सैनिकों के प्रति कृतज्ञता के भाव को जिस मनोभाव के साथ प्रस्तुत किया है। कुछ ऐसा ही डॉ मस्ताना की रचनाओं में भी देखने को मिलता है वे लिखते हैं –

"अस्तित्व रहे भारत भू का अपना अस्तित्व मिटा देना
इस पावन धरती के चरणों में अपना सर्वस्व लुटा देना
इस जनम की बातें बचा करना
सौ जनम सफल हो जायेंगे" (7) ('गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'समर्पण' कविता)

राष्ट्र के प्रति सर्वस्व त्याग देना उस पुनर्जन्म के फेर से कहीं अधिक लाभकारी है जो सहस्त्र वर्षों के यश के समान है और यही हमारी राष्ट्रीय चेतना को एक नया स्वरुप देता है। राष्ट्रीयता राष्ट्र के भीतर विभिन्न विषयों की अलग -अलग चेतना होती है । यह मनुष्य की स्वाभिविक वृतियों में से एक है इस चेतना के जाग्रत होते ही व्यक्ति राष्ट्र के कल्याण और विकास के प्रति सचेत होने लगता है। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर के कविताओं में जिस तरह राष्ट्र चेतना के भाव उद्घृत किया हैं कुछ ऐसा ही भाव डॉ मस्ताना के गीति काव्य में भी उपस्थित नज़र आता हैं –

"जगत का गौरव हिंदुस्तान देश है पावन तीर्थ महान
शंखनाद, जयघोष मध्य मुस्काता है दिनमान
अतुल शक्ति का देश हमारा एक भाव एक भेष हमारा
हर बाला है लक्ष्मीबाई , मन में बिजली ले अंगड़ाई
बालक बालक राणा प्रताप, शिवाजी वीर महान" (8)

('गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'मेरा देश' कविता)

राष्ट्र की सीमा में रहने वाला व्यक्ति वहाँ का नागरिक होता है। उसके कुछ अधिकार हैं तो कुछ कर्तव्य भी। कोई भी रचनाकार जो स्वयं राष्ट्र के प्रति चेतनशील है उसकी आँखों में देश के विभिन्न चित्र विभिन्न रंगों में उभरते हैं। वह देश को अपनी सांसों और ह्रदय से अलग नहीं रख सकता। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए जीने -मरने का भाव ही किसी राष्ट्र प्रेमी की पहली शर्त होनी चाहिए। ऐसा होते ही वह राष्ट्र का आह्वान करने लगता है।

डॉ मस्ताना ने अपनी एक रचना में राष्ट्र का मानवीकरण कर दिया है । मानवीकरण काव्य का वह प्रांजल अलंकार है जिसमे अमूर्त को मूर्त , निर्जीव को सजीव करने की क्षमता परिलक्षित होती है। कविता की कमनीयता तो बढ़ जाती है। काव्यात्मक शक्ति को एक नया आयाम मिलता है।

"चले देश को एक निमंत्रण पत्र लिखें
वो आयेगा, सब आयेंगे, चर्चा ये सर्वत्र लिखें
देश मेरे ह्रदय में बस जा

मैं तुझमें रम जाऊँ
समय पड़े तो शीश झुकाकर
तेरे चरण चठाऊँ" (9) ('गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'निमंत्रण' कविता)

आधुनिक काल के साहित्यकारों ने राष्ट्र भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र प्रेम की अनेक रचनाओं का प्रणयन किया है। प्रसाद के गीतों में ,सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में ,श्याम नारायण पाण्डेय या गोपाल सिंह नेपाली की रचनाओं में देश भक्ति के भाव सहज ही दिखाई पड़ते हैं । इसी में 'वीरों का कैसा हो बसंत' या 'चालीस करोड़ो को हिमालय ने पुकारा ' शीर्षक कविताओं का अध्ययन हमे राष्ट्रीयता के भावो से परिपूर्ण कर देता है। डॉ मस्ताना उसी परम्परा का निर्वहन करते हैं और अपने गीति काव्य में राष्ट्र चेतना के समर्थन में लिखते हैं :

"अनगिन बलिदानों का ही फक है अपनी आजादी
हों स्वतंत्र हम इसलिए लाखों ने प्राण गवां दी
जननी जन्म धराहित अपना, सदा समर्पित प्राण रहे" (10)

('गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'समर्पण' कविता)

किसी भी रचनाकार की कवितायें , कथा - कहानियाँ और गीतों में यदि राष्ट्रीयता का भाव है तो इसका अर्थ है कि उसे अपनी रचनाधर्मिता का ध्यान है। एक कवि या गीतकार का कर्तव्य हो जाता है कि वह न केवल प्रेम या प्रकृति पर ही अपनी रचनात्मक दृष्टि डाले अपितु उसे अपनी रचनाओं में राष्ट्र के प्रति प्रेम और जिम्मेदारियों का एहसास कराने का दायित्व भी रखना चाहिए। डॉ गोरख प्रसाद मस्ताना ने अपने गीति काव्यों में राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय चेतना का उल्लेख करके यह साबित किया है कि वह स्वयं राष्ट्रीय चेतना से ओत -प्रोत कवि हैं और अपनी रचनाओ से चेतना जगाने का कार्य कर रहें हैं । वे लिखते हैं-

"सुनो शहीदों की पुकार उतर रही अम्बर से
दशों दिशाओं से सागर, नदियों से हिम गहव्वर से
देश निमित सर्वस्व लुटा, चल नव इतिहास बनाने को" (11)

('रेत में फुहार' काव्य संग्रह, 'पुन:चीन ललकार रहा' कविता)

उपरोक्त रचना के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डॉ मस्ताना राष्ट्रीय चेतना के एक सबल कवि व गीतकार हैं और उनकी कृतियाँ राष्ट्रीय भावो से परिपूर्ण हैं जिन्हें सुनकर हममें राष्ट्रीय चेतना का संचार होता है।

संदर्भ-

1) रेत में फुहार-'हे धरती', जे.बी.एस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 59,
2) रेत में फुहार-'गाँव', जे.बी.एस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 57
3) गीत मरते नहीं- 'हिंदुस्तानी', शारदा पुस्तक मंदिर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014'
4) अक्षर अक्षर बोलेगा'- 'खेती फूलों की'', नवजागरण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.40
5) तथागत-'चिंतन सर्ग', नवजागरण प्रकाशन , नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 40
6) बिदुं से सिंधु तक- 'जन्मदिन', जे.बी. एस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ.65
7) गीत मरते नहीं- 'समर्पण', शारदा पुस्तक मंदिर ,नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.56
8) 'गीत मरते नहीं- 'मेरा देश', शारदा पुस्तक मंदिर ,नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.86
9) 'गीत मरते नहीं'-, 'निमंत्रण', शारदा पुस्तक मंदिर ,नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 55
10) 'गीत मरते नहीं' काव्य संग्रह, 'समर्पण' कविता) शारदा पुस्तक मंदिर ,नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.सं 68
11) रेत में फुहार-'पुन:चीन ललकार रहा', जे.बी.एस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 34

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक विचार : एक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 देवेन्द्र यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग,
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज, उ0प्र0)

शोध छात्रा
वीनू श्रीवास्तव
शिक्षाशास्त्र
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज, उ0प्र0)

सारांश

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का कथन ''जीवन की सफलता अछूतों का स्तर मानवता के स्तर तक लाने में है'' बहुत ही मौलिक एवं प्रासंगिक है। बाबा साहब अम्बेडकर, भारत के महापुरुषों में अपना विशेष स्थान व समाज सुधारक थे। उन्होंने बड़ी विद्वता से भारत के संविधान का निर्माण किया जिसमें उन्हें अमूर्तपूर्व ख्याति व सम्मान मिला। उनका सम्पूर्ण जीवन अपने आप में एक प्रेरणास्त्रोत हैं दलितों व अछूतों के उत्थान के लिए किये गये उनके कार्य सम्पूर्ण जनमानस व समाज के लिए अनुकरणीय व आदर्श है जिसके लिए वे जीवन पर्यन्त सतत् प्रयत्नशील रहे। डॉ0 अम्बेडकर का संकल्प था– ''यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं उन शोषित लोगों की सेवा में अपना जीवन बलिदान करूँगा, जिनमें पैदा हुआ था। जिन लोगों के बीच रहकर, मैं बड़ा हुआ तथा जिनमें मैं रहा हूँ। उनसे मैं अपनी कर्त्तव्य पराणयता से एक इंच भी नहीं हटूँगा। और न मैं उस आलोचना की चिन्ता करूँगा जो मेरे प्रतिद्वन्दी लोग करते हैं। अतः डॉ0 अम्बेडकर का मूलभूत सिद्धान्त था– ''सादा जीवन उच्च विचार।''

मुख्य शब्द– डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण, सामाजिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक

प्रस्तावना–

20वीं शताब्दी के श्रेष्ठ चिन्तक, ओजस्वी लेखक तथा यशस्वी वक्ता एवं स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री डॉ0 भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माणकर्ता है। विधि विशेषज्ञ, अथक परिश्रमी एवं उत्कृष्ट कौशल के धनी व उदारवादी, परन्तु सुदृण व्यक्ति के रूप में डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ0 अम्बेडकर को भारतीय संविधान का जनक भी माना जाता हैं।

छुआ–छूत का प्रभाव जब सारे देश में फैला हुआ था, उसी दौरान 14 अप्रैल 1891 को बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर का जन्म हुआ था। बचपन से ही बाबा साहब ने छुआ–छूत की पीड़ा महसूस की थी। जाति के कारण उन्हें संस्कृत भाषा पढ़ने से वंचित रहना पड़ा था। कहते हैं, जहाँ चाह है वहाँ राह हैं। प्रगतिशील विचारक एवं पूर्णरूप से मानवतावादी बड़ौदा महाराज सपाजी गायकवाड़ ने भीमराव अम्बेडकर जी को उच्च शिक्षा हेतु तीन साल तक छात्रवृत्ति प्रदान की, किन्तु उनकी शर्त थी कि अमेरिका से वापस आने पर दस वर्ष तक बड़ौदा राज्य की सेवा करनी होगी। भीमराव ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पहले एम.ए. तथा बाद में पी0एच–डी0 की डिग्री प्राप्त की।

उनके शोध का विषय ''भारत का राष्ट्रीय लाभ'' था। इस शोध के कारण उनकी बहुत प्रशंसा हुईं उनकी छात्रवृत्ति एक वर्ष के लिए बढ़ा दी गई। चार वर्ष पूर्ण होने पर जब भारत वापस आये तो बड़ौदा में उन्हें उच्च पद दिया गया किन्तु एक सामाजिक विडम्बना की वजह से एवं आवासीय समस्या के कारण उन्हें नौकरी छोड़कर बम्बई जाना पड़ा। बम्बई में सीडेन हम कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर

नियुक्त हुए किन्तु कुछ संकीर्ण विचारधारा के कारण वहाँ भी परेशानियों का सामना करना पड़ा। इन सबके बावजूद आत्मबल के धनी भीमराव आगे बढ़ते रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। 1919 में वे पुनः लंदन चले गये। अपने अथक परिश्रम से एम.एस–सी., डी.एस. सी. तथा बैरिस्ट्री की डिग्री प्राप्त कर भारत लौटे।

1923 में बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की। अनेक कठिनाईयों के बावजूद अपने कार्य में निरन्तर आगे बढ़ते रहे।

एक मुकदमें में उन्होंने अपने ठोस तर्कों से अभियुक्त को फांसी की सजा से मुक्त करा दिया था। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने मिचली अदालत के फैसले को रद्द कर दिया। इसके पश्चात् बाबा साहब की प्रसिद्धी में चार चाँद लग गया।

डॉ0 अम्बेडकर की लोकतन्त्र में गहरी आस्था थी। वह इसे मानव की एक पद्धति (ॅंल वि स्पमि) मानते थे। उनकी दृष्टि में राज्य एक मानव निर्मित संस्था हैं। इसका सबसे बड़ा कार्य ''समाज की आन्तरिक अव्यवस्था और वाह्य अतिक्रमण से रक्षा करना हैं।'' परन्तु वे राज्य को निरपेक्ष्य शक्ति नहीं मानते थे। उनके अनुसार, ''किसी भी राज्य ने एक ऐसे अकेले समाज का रूप धारण नहीं किया जिसमें सब कुछ आ जाय या राज्य ही प्रत्येक विचार एवं क्रिया का स्रोत हो।''

अनेक कष्टों को सहन करते हुए, अपने कठिन संघर्ष और कठोर परिश्रम से उन्होंने प्रगति की ऊँचाइयों को स्पर्श किया था। अपने गुणों के कारण ही संविधान रचना में, संविधान सभा द्वारा गठित सभी समितियों में 29 अगस्त, 1947 को ''प्रारूप समिति'' जो कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समिति थी, उसके अध्यक्ष पद के लिए बाबा साहक को चुना गया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ0 अम्बेडकर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। संविधान सभा में सदस्यों द्वारा उठायी गयी आपत्तियों, शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का निराकरण उनके द्वारा बड़ी ही कुशलता से किया गया। उनके व्यक्तित्व और चिन्तन का संविधान के स्वरूप पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके प्रभाव के कारण ही संविधान में समाज के पद–दलित वर्गों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के उत्थान के लिए विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं और प्रावधानों का निरूपण किया, परिणामस्वरूप भारतीय संविधान सामाजिक न्याय का एक महान दस्ता बेड़ा बन गया। 16 दिसम्बर 1956 को दिल्ली में अलीपुर रोड स्थिति निवास में वे पराकायी हुए।

डॉ0 अम्बेडकर पर प्रभाव डालने वाले तत्त्व–

डॉ0 भीम राव अम्बेडकर का जीवन बड़ी कठिन परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। बाल्यावस्था से अपने माता–पिता के आचरण का प्रभाव पड़ा, वे महात्मा गाँधी, कबीर, गौतम बुद्ध एवं अपने गुरु महात्मा ज्योतिबा फुले के विचारों से ज्यादा प्रभावित हुए।

शैक्षिक विचारधारा के आधार स्त्रोत–

किसी व्यक्ति के विचारों को 6 पृष्ठभूमि– दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से परखा जा सकता ह। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों पर इन तत्त्वों का निम्न रूप से प्रभाव देख सकते हैं।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की दार्शनिक विचाराधारा–

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक अच्छे जीवन की आकांक्षा करते थे। उनके जीवन की संकल्पना यथार्थवादी चिन्तन को व्यक्त करती है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर गतिशील एवं कर्मठ मानवता के पुजारी थे। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर यथार्थवादी के रूप में भावी जीवन के लिए व्यक्ति को सक्रिय एवं कर्मठ बनाना चाहते थे। समाजवाद की स्थापना उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था।

डॉ0 भीम राव अम्बेडकर की मनोवैज्ञानिक मान्यता सम्बन्धी विचार–

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का काम था कि पहले बच्चों को समझा जाये और उनकी रूचि तथा मानसिक स्तर के अनुकूल ही शिक्षण विधि अपनायी जाये तथा विषयवस्तु पढ़ाई जाये। वे सदैव बालक को शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे और बच्चों को प्यार करते थे। वे समाज के सभी बच्चों को प्रसन्न

देखना चाहते थे। वे बच्चों को नैतिक शिक्षा देना चाहते और बाद में व्यवसायिक तथा उच्च तकनीकी शिक्षा देने के पक्ष में थे जिससे वे अपने पैरों पर खड़ा हो सके और अपनी जीविका को चला सके।

सामाजिक मान्यता सम्बन्धी विचार –

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की निष्ठा प्रजातंत्र में थी। वे नारी की प्रगति के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। वे शिक्षा को सार्वजनिक बनाने पर बल देते थे। समाजवाद की स्थापना ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था। वे समाज में व्याप्त अंधविश्वास, आडम्बरों एवं जाति–पाँति के पूर्ण विरोधी थे। वे समाज के सभी वर्गों को समान देखना चाहते थे।

धार्मिक मान्यता सम्बन्धी विचार –

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर धार्मिक दृष्टिकोण से धर्म को मानने वाले थे। उनकी शिक्षा का आधार विज्ञान तो नहीं था लेकिन वे धर्म की धर्मान्ता में विश्वास नहीं करते थे और इसलिए उन्होंने लिखा हैं ''बौद्ध धर्म में न तो ईश्वर है और न आत्मा, न पुनर्जन्म है न भाग्यवाद, न स्वर्ग न नरक। इसलिए अन्धविश्वास का इससे जन्म ही नहीं हो सकता हैं।'' वे खुले मस्तिष्क वाले महामानव थे उनके विचार में कोई धर्म न तो बुरा था और न अच्छा लेकिन वह धर्म का कलंक बताते थे जिससे मानव, मानव के प्रति घृणा हो चाहे कोई भी धर्म क्यों न हो? उनके यही विचार आज भी भारत में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

राजनैतिक मान्यता सम्बन्धी विचार –

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर प्रजातंत्र में समर्थक, अधिनायक के विरोधी, कट्टर समाजवादी तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव में विश्वास रखते थे। वे पक्के देश भक्त थे तथा देश को सबसे ऊपर मानते थे।

वैज्ञानिक विचारधारा–

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने देशवासियों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए इसके प्रयोग पर बल दिया।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर धर्म और विज्ञान में कोई अन्तर नहीं समझते थे। उन्हें अन्धविश्वास तथा चमत्कार में विश्वास नहीं था वे तर्क युक्त ज्ञान के पक्ष में थे।

शिक्षा का अर्थ सम्बन्धी विचार –

शिक्षा का अर्थ सम्बन्धी निष्कर्ष ने डॉ0 अम्बेडकर की शिक्षा की परिभाषा भी स्पष्ट थी जो शिक्षा योग्य न बनाये, समानता न सिखाये और न नैतिकता का बोधन कराये वह शिक्षा नहीं है। वह शिक्षा का ऐसा स्वरूप चाहते थे जो मानव मात्र का हित एवं संरक्षण करती हो। शिक्षा बोधोदय, शक्तिदायनी और समता स्नेह प्रकाशिनी होनी चाहिए। शिक्षा के लिए लगन तथा साधना की आवश्यकता बताते हुए अपने समाज को समता पेट की रोटी और ज्ञान तृप्ति दे, वही सही अर्थों में शिक्षा है। इन तत्त्वों से रहित शिक्षा अपाहिज शिक्षा है जो अपाहिजों को समाज पैदा करती है सही अर्थों में शिक्षा वह है जो समाज में जीवन्त के गुण पैदा करती हैं।

उद्देश्य सम्बन्धी विचार –

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर शिक्षा को उत्पादकता की सम्बद्धता करना तथा बच्चों में राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझदारी की भावना का विकास करना चाहते थे। उन्होंने बालक में प्रजातांत्रिक एवं समाजवादी दृष्टिकोण विकसित करने पर बल दिया। उन्होंने नई पीढ़ी में स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क की कल्पना की और नैतिक मूल्यों को बालक की मूलभूत आवश्यकता बताया। डॉ0 अम्बेडकर आने वाली पीढ़ी को कर्म का सन्देश दिया, क्योंकि डॉ0 अम्बेडकर का पूरा जीवन कर्म पर आधारित है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के शिक्षण सम्बन्धी विचार –

1. बालक में आत्म–सम्मान, स्वाभिमान के गुण विकसित करना हैं।
2. बालक में मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता का विकास करना।
3. बालक के सुदृढ़ चरित्र निर्माण का विकास करना।
4. व्यक्ति को सभी दासता से मुक्ति के सम्बन्ध में सचेत करना तथा अपनी शक्तियों के उपयोग करने की भावना पैदा करना।
5. बालक को अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त करने की शिक्षा देना।
6. शक्ति को संकुचित एवं संकीर्ण विचार त्यागने तथा प्रगतिशील तथा व्यावहारिक तत्त्वों को विकसित करना।
7. बालकों को देश की एकता व अखण्डता की शिक्षा देना।
8. बालकों को धार्मिक, समानता, बन्धुता आदि की शिक्षा देना।
9. निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देना।

शैक्षिक अभिकरणों की भूमिका–

डॉ0 अम्बेडकर ने दो प्रकार के शैक्षिक अभिकरण माने हैं एक अनौपचारिक, दूसरा औपचारिक शिक्षा। औपचारिक शिक्षा में वह विद्यालय को प्रमुख स्थान देते है तथा अनौपचारिक शिक्षा में उनका विचार परिवार से पढ़कर कोई शिक्ष केन्द्र नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर एक ओर शिक्षा का उत्तरदायित्व व्यक्तिगत संस्थाओं को देते है, वहीं दूसरी ओर राज्यों के कर्त्तव्यों की भी चर्चा करते है। शिक्षा की व्यवस्थित रूप देने के लिए तथा जन साधारण तक शिक्षा पहुँचाने के लिए डॉ0 अम्बेडकर राज्य की भूमिका को पूर्ण आवश्यकता मानते थे वे रेडियो आदि संचार के माध्यमों से शिक्षा देने की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे प्राथमिक स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा के पक्षपाती है और बाद में औपचारिक शिक्षा को आवश्यक मानते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर तथा नई शिक्षा नीति–

डॉ0 अम्बेडकर तथा नई शिक्षा नीति ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है कि इसमें सुझाये गये विचार किसी न किसी रूप में डॉ0 अम्बेडकर की शैक्षिक विचारधारा से प्रभावित है। नई शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा पर बल दिया गया है। वह अप्रत्यक्ष रूप से डॉ0 अम्बेडकर की विचारधारा का प्रमुख अंग है। नई शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र, तकनीकी, प्रौद्योगिकी शिक्षा, पिछड़े वर्ग की शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा पर बल आदि अनेक बाते हैं, जो डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों की छाप है। समाजवाद की स्थापना तथा बेरोजगारी को दूर करना यही उनके प्रजातांत्रिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे।

परिकल्पना सम्बन्धी विचार–

परिकल्पना सम्बन्धी विचार ने डॉ0 अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों के विवेचन से शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उनके चिन्तन में सभी तत्त्व एवं सिद्धान्त विद्यमान है जिनका प्रयोग करके हम अपनी भारतीय शिक्षा को आगे बढ़ा सकते हैं। शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों को मूर्तरूप देने का प्रयास किया गया है और पहले की अपेक्षा यह शिक्षा नीति कहीं अधिक ठोस आधार लिए हुए है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- **चौहान, राजेश कुमार (2022).** दलितों के उद्धार में अम्बेडकर के प्रयास, इन्टरनेशनल जर्नल और इनोवेटिव रिसर्च इन सांइस, इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी, वॉ0 11, इश्शू–3, पृ0 2701–2705
- **वर्मा, अरूण कुमार (2019).** डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के चिन्तन में सामाजिक न्याय, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नमेण्ट, 1(1), पृ0 18–20
- **कुमारी, अशोक (2015).** गौतम बुद्ध एवं डॉ0 अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 1(11), 821–831
- **यादव, आशा (2017).** डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की शिक्षा संबंधी विचार और उनकी प्रासंगिकताएँ, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडेमिक रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 2, इश्शू–5, पृ0 1085–1088
- **सिंह, आशुतोष (2018).** धर्म निरपेक्षता पर गाँधी और अम्बेडकर के विचार, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशनल रिसर्च, वॉ0 3, इश्शू–, पृ0 155–156
- **लहरे, राजकुमार (2017).** बोधिसत्व बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : एक प्रकाश–स्तम्भ, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 51–53
- **अंजना (2018).** अम्बेडकर का आर्थिक चिन्तन : सामाजिक न्याय के संदर्भ में, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशनल रिसर्च, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 188–190

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

A study of Merger and Acquisition in India

Sudhir Kumar Sah
(Research Scholar)
UGC-NET & JRF Qualified
University Deptt of commerce & Business Administration T.M.B.U. Bhagalpur

Introduction

Mergers and Acquisitions in India The Indian corporate sector has shown keen interest in this new business strategy and companies are aggressively building capacities Merger & Acquisition to cater to the growing domestic and global markets. However, till 1991, when India came-up with a new industrial policy which marked a big departure from earlier economic policies, the activity of M&A's was very much dormant in the Indian corporate sector. In the pre -liberalization period, due to the restrictive covenants of MRTP Act, Indian Companies Act, FERA Act 1999, and IDRA Act, the mergers and acquisitions were low in India. The economic regime was also against the monopoly of the private sector in a particular sector, product or service. With the liberalization of economic regime in 1991, resulting into relaxation of provisions of MRTP Act and FERA Act, large industrial houses and foreign companies started to adopt the route of mergers and acquisitions to expand and grow. Indian capital market has witnessed spectacular growth in merger and acquisition activities since 2000. India has become an enthusiastic participant in both domestic as well as cross border M&A's. As per the study conducted by international consultants Grant Thornton, the total number of mergers and acquisitions in India stood at 661 in 2007. There were 313 domestic deals with an announced value of USD 2.83 billion and 348 cross-border deals with an announced value of USD 48.34 billion. This was significantly higher than 480 deals in 2006 amounting to USD 20.30 billion. However, 2008 witnessed a decline in both the number and value of M&A deals in India. The total number of M&A deals in calendar year 2008 was 445, with a total announced value of USD 30.72 billion. Thus, the increasing trend in the value of M&A deals reversed in 2008. The total value of Indian M&A deals announced in 2009 fell to USD 21.20 billion. There was an increase in M&A activity during 2010, which saw nearly 400 deals worth USD 45 billion. However, during the calendar year 2011, M&A deals in India fell by more than 50 percent over the last year, as only 195 deals were made. Even the net deal value fell to USD 18 billion. The value of mergers and acquisitions in India during the year 2012 went up to USD 41 billion. M&A activities have taken place across all sectors and industries like financial, high technology, real estate, power, industrial and healthcare sectors.The below representation gives a clear picture of the number and value of mergers and acquisitions in India.

The term mergers and acquisitions (M&A) refers to the consolidation of companies or their major business assets through financial transactions between companies. A company may purchase and absorb another company outright, merge with it to create a new company, acquire some or all of its major assets, make a tender offer for its stock, or stage a hostile takeover. All are M&A activities.

Research questions and objectives

Throughout this research the author intends to show the clear intentions of why the presented companies have decided to use this particular restructuring technique as a growth strategy, with a particular focus around the different phases of the Merger & Acquisition and their effects on shareholder wealth creation. In this context the research will investigate why certain Merger & Acquisition transactions damage shareholder value rather than generate value and inverse. Also investigated will be how important the pre, post and announcement periods of the Merger & Acquisition are with regards to determining true sustainable shareholder value. The aim of this endeavor is to establish what Merger & Acquisition motivations show real increases in the creation of shareholder value. In an attempt to uncover this information the author proposes to present a set of answers to the following research questions and objectives:

1. What are the key motivations of companies to choose Merger & Acquisition as a form of corporate restructuring?

2. How can an incorrect market value be placed on returns to the acquired and acquiring companies surrounding M&A activities? (Eg, market anomaly effects such as merger momentum playing a part)

3. Do M&A's create true shareholder value? (Short and long-term)

4. Under what conditions is an M&A most likely to succeed or fail?

Research scope and limitations

The present study focuses on identifying the fundamental motivations that entice companies to pursue M&A's. By identifying these key motivations it is asserted that the correlation between certain drivers of M&A activity and true shareholder wealth created to these companies will be identified. This information will be found through the conduction of three in depth interviews based on three different case studies presenting non-material non-public information in conjunction with material public information to construct inferences of all the information in a mosaic theory format. Subsequently a critical evaluation of the results making inferences using the presented literature and the analysis outcomes of each three M&A will be presented. Through both research segments, the study aims to identify these key motivations of M&A and the factors that have a higher weighting on the creation of value to shareholders. A large component of the research was based on the interview process with three high level managers who participated in an M&A transaction. This potentially may not give sufficient data to acquire all the relevant information. Also once the candidates for the interviews were sourced it proved to be a challenge to arrange meetings for one hour plus with these people due to their busy schedules. Other limitations included the inability of some of the interviewees to disclose material private information throughout the course of the interview, which had to be factored into the results.

Review of related literature

The financial goal of modern corporate entities is the maximization of firm's value with the purpose to deliver superior returns to shareholders. Guided by this philosophy, managements of modern corporate entities aim at achieving higher rates of growth in their businesses. The

growth can be achieved internally through better management and further capital investment in the existing businesses. The other way to achieve growth is through business combinations commonly known as mergers and acquisitions. Mergers and acquisitions is one of the important strategies used by the corporate entities to attain synergies, tax savings, to consolidate (Neelam Rani, Surendra S. Yadav, P. K. Jain, 2012; Arora, 2003; Seth, Song and Pettit, 2000; Eun, Kolodny, and Scheraga, 1996).Various authors have put several theories to explain the motives behind M&A's. It includes efficiency theory-to achieve synergy, monopoly theory-creating barriers to entry, valuation theory-where bidder managers have unique information about the possible advantages they will derive by combining their business with the target business, empire building theory-where managers maximise their own utility instead of the shareholders, raider theory-where acquirers acquire a controlling stake in a target firm to transfer wealth from target to bidder firms, and bankruptcy motive-where firms choose merger or to be acquired in order to prevent themselves from going bankrupt (Maria Evelyn Jucunda, 2013; Juanjuan Wang, 2007; Michael Lubatkin, 1983). Besides, Friedrich Trautwein (1990) and Patrica M. Danzon, Andrew Epstein and Scan Nicholson (2004), have concluded that economies of scale, economies of scope, higher growth avenues, low concentrated businesses and higher cash flows are also drivers of M&A's. It thus becomes clear that M&A's are aimed to create and deliver superior value to shareowners. Therefore this corporate action raises few research questions for the academicians and practitioners to explore. The most fundamental questions include: Whether the financial goals with which mergers and acquisitions are aimed are achieved by and large? Why some mergers and acquisitions fail to achieve the intended goals? The other relevant research question would be to assess the impact of M&A's on employees. To address these and other research questions related to M&A's, many studies have been conducted worldwide including India. In order to know what has been found about the above stated research questions and to identify the research gaps in the existing literature for setting an agenda for future research, the review of the available studies on M&A's

Impact on Operating Performance

This part of the study focuses on the analysis of changes in operating performance post M&A. The work by Healy et al. (1992), serves as the primary standard of comparison for examining operating performance. The operating performance was measured as operating cash flow returns on tangible assets. Accounting performance measures represent actual economic benefits while as announcement returns depict investor expectation benefits, Healy et al. (1997). The other notable studies on operating performance have been done by Jeannette A. Switzer (1996), Ghosh (2001), who have used Healy's research design. Healy, Palepu, Ruback (1992), Ghosh (2001), defined operating cash flows as sales minus cost of goods sold, minus selling and administrative expenses, plus depreciation and goodwill Amortization expenses. Operating performance acts as a means to determine whether the benefits from mergers and acquisitions are actually realised through operating cash flows as opposed to share price appreciation, Andrade et al. (2001).

Impact on Financial Performance

Operating performance as explained Above, reflect the performance of the top-line i.e. sales growth and operating margin. Improvements or no improvements in operating performance

may lead to better or poor financial performance due to the changes in financial structure consequent upon a Merger & Acquisition's activity. Therefore, it becomes important to study the performance separately. Financial performance is measured in terms of profitability in relation to investments in assets. Review of Related Literature A Study of Mergers and Acquisitions in India Page | 26 Financial performance metrics provide a relative basis for comparing a company with itself over time or with other matching companies versus competitors. Assessing a company's financial performance helps in knowing whether a company has been able to yield desired return on its assets or not. Financial performance analysis must also include consideration of strategic and economic developments for the firm's long-run success. These metrics immediately provide actionable feedback to improve the operations of the firm. Management's intense interest in financial performance metrics has dramatically risen annually and long-term incentive compensation is tied to attaining acceptable levels of performance as measured by financial performance metrics. Number of studies have assessed the impact of Merger & Acquisition's on financial performance as well. The important studies include:

Research methodology

In the previous chapter, studies conducted on various aspects of M&A's has been reviewed. The review of the available literature on the subject of M&A's has enabled to list the objectives and the methodologies to achieve the same. Based on the available literature, the present study was mainly aimed to answer the most pertinent research question i.e. "What impact mergers and acquisitions had on the operating performance, financial performance and wealth of the shareowners of the selected merging and acquiring firms in India? To reach a logical conclusion about the above referred research question, the need is to decide about the methods to be employed to generate and analyse data. This chapter details the blueprint that was followed in this research to establish the impact of mergers and acquisitions on the performance of the sample firms that have undergone such events in India. It outlines the research design and methodology adopted in this study. The chapter highlights the data sources, the reference period chosen, the sample selection criteria, selection of variables, methods of measurement and the statistical procedures used to analyse the data aiming to test the hypotheses.

Research Design

Subsequent to establishing a paradigm, the development of an appropriate research design is pursued. According to Burns & Bush (2002), a research design, which is a function of the research objectives, is defined as a set of advance decisions that makes the master plan, specifying the methods and procedures for collecting and analysing the needed information. An appropriate research design is essential as it determines the type of data needed, data collection techniques, the sampling methodology, and the budget (Hair et. al., 2003). Primarily, it helps to align the planned methodology to the research problems (Churchill & Iacobucci, 2006).

In view of the great significance of an appropriate research design to achieve the objectives of the research, due attention has been given to the research design for the research problem

under study. An explanation of the different elements of the research design adopted for the study is given as under:

Sources of Data

The study is mainly based on the secondary data which was largely collected from the database of Centre for Monitoring Indian Economy (CMIE). The data about the number of M&A's happened during the reference period along with all the other details like year of M&A, merging/acquiring and merger/acquired firms, industry to which they belong etc. has been collected from the database of the centre. The financial statements of the selected merging and the acquiring firms were also collected from the database of the centre. Besides, various other data sources namely money control, finance and BSE & NSE publications databases were also used to collect the required data.

Bibliography

i. & Zhao, H. (2005). Long-run post-merger stock performance of UK acquiring firms: a stochastic dominance perspective. Applied Financial Economics, 15(10), 679-690. Agarwal, M.,

ii. & Bhattacharjea, A. (2006). Mergers in India. A Response to Regulatory Shocks. Emerging Markets Finance and Trade, 42(3), 46-65. Agrawal, M.,

iii. & Sensarma, R. (2007). Determinants of merger activity: evidence from India. International Journal of Financial Services Management, 2(4), 277-288. Ahmed, M.,

iv. & Ahmed, Z. (2014). Mergers and Acquisitions: Effect on Financial Performance of Manufacturing Companies of Pakistan. Middle-East Journal of Scientific Research, 21(4), 689-699. Akben-Selcuk, E.,

v. & Altiok-Yilmaz, A. (2011). The impact of mergers and acquisitions on acquirer performance: Evidence from Turkey. Business and Economics Journal, 22, 1-8. Al- Sharkas, A. A., Hassan, M. K.,

vi. & Lawrence, S. (2008). The impact of mergers and acquisitions on the efficiency of the US banking industry: further evidence. Journal of Business Finance & Accounting, 35(1- 2), 50-70. Altunbaş, Y.,

vii. & Marqués, D. (2008). Mergers and acquisitions and bank performance in Europe: The role of strategic similarities. Journal of Economics and Business, 60(3), 204-222. Anand, M.,

viii. & Jagandeep, S. (2008). Impact of merger announcements on shareholders' wealth: Evidence from Indian private sector banks. Vikalpa: Journal for Decision Makers, 33(1), 35-54. Andrade, G.,

ix. & Stafford, E. (2004). Investigating the economic role of mergers. Journal of Corporate Finance, 10(1), 1-36. Andrade, G., Mitchell, M. L.,

x. & Stafford, E. (2001). New evidence and perspectives on mergers.38 Bibliography A Study of Mergers and Acquisitions in India Page | 145 Andre, P., Kooli, M.,

xi. & L'her, J. F. (2004). The long-run performance of mergers and acquisitions: Evidence from the Canadian stock market. Financial Management, 33(4). Appelbaum, S. H.,

xii. & Gandell, J. (2003). A cross method analysis of the impact of culture and communications upon a health care merger: Prescriptions for human resources

management. Journal of Management Development, 22(5), 370-409. Arora, G. (2003). Mergers and Acquisitions in Indian Corporate Sector:

xiii. Motives & Financial Performance (Doctoral dissertation, Doctoral Dissertation, Department of Commerce, Delhi School of Economics, University of Delhi, New Delhi). Asquith, P., Bruner, R. F.,

xiv. & Mullins, D. W. (1983). The gains to bidding firms from merger. Journal of Financial Economics, 11(1), 121-139. Aybar, B.,

xv. & Ficici, A. (2009). Cross-border acquisitions and firm value: An analysis of emerging-market multinationals. Journal of International Business Studies, 40(8), 1317-1338. Ayorinde, A. O.,

xvi. & Abdul-Ramon, O. A. (2012). Effects of merger and acquisition on the performance of selected Commercial Banks in Nigeria. International Journal of Business and Social Research, 2(7), 148-157. Badreldin, A.,

xvii. & Kalhoefer, C. (2009). The effect of mergers and acquisitions on bank performance in Egypt. Journal of management Technology, 25, 1-15. Bajaj, H. (2009). Organizational culture in bank mergers

xviii. & acquisitions. Indian Journal of Industrial Relations, 229-242. Bedi, H. S. (2010, February). Merger

xix. & Acquisition in India: An Analytical Study. In National Conference on Business Innovation conducted by Apeejay Institute of Management, Jalandhar-144001, Punjab. Beena, P. L. (2004). Towards understanding the merger-wave in the Indian

xx. corporate sector: A comparative perspective. Trivandaram: Centre for Development Studies

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में नारी की स्थिति कौटिल्य के अर्थ शास्त्र के सापेक्ष में

डॉ0 शालिनी यादव
पूर्व शोध छात्रा
डॉ0रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

सारांश

मैनें इस शोध पत्र में प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नारी की स्थिति को विभिन्न कालों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों से शुरू करके स्मृति ग्रन्थों उपनिषद तथा माहाकाब्यों आदि ग्रन्थों में नारी की स्थिति का उल्लेख करके ही कौटिल्य का ग्रन्थ अर्थशास्त्र में वर्णित उनके मुख्य किरदार को दिखाने का प्रयास किया है। तथा हम इस विचारधारा को भी दिखाने की कोशिश की हूँ कि कैसे किस–किस काल में नारी की स्थिति की गिरावट समाज में दिखाई गयी है प्राचीन भारतीय समाज में किस–किस प्रकार से आचार्य व्यवहार नारी के साथ किया गया है। तथा नारी की क्या प्रतिक्रिया रही है। उसे भी लेख में व्यक्त करने की कोशिश की है।

प्रस्तावना–

महिला एवं पुरूष एक रथ के दो पहिये के समान है जिस प्रकार रथ को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों को मजबूत होना आवश्यक होता है। वर्तमान समय में विश्व एवं भारतीय परिवेश में महिलावाद तथा जेन्डर स्टडीज को लेकर काफी कार्य किया जा रहा हैं तथा महिलाओं को जागरूक करने के लिए तथा उनके अधिकारों को बताने के लिए पश्चिम का भी उदाहरण लिया जा रहा है किन्तु यह भी जानना आवश्यक हैं कि हम अपने प्राचीन ग्रन्थों अभिलेखों इत्यादि के द्वारा यह ज्ञात करें कि प्राचीन भारत में नारी की स्थिति क्या रही है। क्यूँकि यह वही धरा है जहॉ पर इला नामक स्त्री ने चन्द्रवंशी शासन व्यवस्था की नींव डाली थी प्राचीन भारतीय इतिहास में नारी की स्थिति हम राजनीतिक तथा समाजिक रूप से जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन ग्रन्थों की तरफ पलट कर देखे इसके लिए हमें भारतीय धार्मिक इतिहास के ग्रन्थ वेद उपनिषद अरण्यक स्मृति ग्रन्थ एवं कौटिल्य के प्रमुख ग्रन्थ अर्थशास्त्र को मुख्य रूप से देखा जा सकता है।

वैदिक साहित्य ने भारतीय नारी की स्थिति–

प्राचीन भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में हम सर्वप्रथम वेद को रख सकते है। हिन्दू धर्म का सबसे प्रमाणित ग्रन्थ इसे माना गया है। इसकी रचना 1500 से लेकर 1000 ई0 पूर्व तक मानी जा सकती है। ज्ञातव्य है कि ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद, अर्थववेद जैसे चार प्राचीनतम वेद है। इन वैदिक ग्रन्थों में उत्तर वैदिककाल से लेकर छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के उदय तक समाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक ज्ञान प्राप्त होता है। (जैन 1971) वैदिक ग्रन्थों के माध्यम से विवाह के प्रकार नियोग, सम्पत्ति का विभाजन स्त्री धन आदि पर प्रकाश डाला गया है।

वैदिक साहित्य में महिलाओं को घर की मुखिया के रूप में दिखाया गया है। उस काल में इनकी स्थिति अत्यन्त सम्मानीय थी उस समय नारी एक रत्न के समान मानी गयी थी जो घर की मुखिया थी (शर्मा 1971) उस समय यज्ञ का महत्व अत्यधिक था किसी भी अनुष्ठान को पुरूष अकेला सम्पन नही कर सकता था महिला का भागीदारी अति आवश्यक है माता–पिता में माता का स्थान पहले

था समाज में स्त्री शिक्षा पर व्यापक प्रचार–प्रसार किया गया सभी कार्यो के साथ वे अध्ययन का कार्य करती थी और आर्थिक रूप से भी घर का देख–भाल करती थी

आदि प्राचीन ग्रन्थों में महिलाएं–

वैदिक साहित्य के बाद हम ब्राह्मण ग्रन्थों को रख सकते है। इसमें एतरेय ब्राह्मण तैतरेय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण गोपथ ब्राह्मण संख्यान ब्राह्मण इत्यादि अत्यन्त महत्वपूर्व है। इस काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आने लगी यह गिरावट प्रारम्भिक उत्तर वैदिक काल से ही दिखायी पड़ने लगती है। इस समय तक समाज में बहु विवाह का भी प्रचलन दिखायी पड़ता है। तथा साथ ही साथ गणिकाओं की परम्परा भी शुरू हो गयी किन्तु उस समय तक गणिकाओं का स्थान सम्मान जनक था किन्तु इस काल तक आते–आते बालिका का जन्म अशुभ माना जाने लगा इसके बावजूद भी महिला पुरूष की सह धर्मणी बनी रही इस समय में भी पुरूषों के साथ स्त्रीयों को यज्ञ में भाग लेने का अधिकार था वेदों के अध्ययन का उसे स्वतंत्रता थी अश्वमेंध यज्ञ तथा राजसूय यज्ञ में महिला उपस्थिति अनिवार्य थी।

इसके उपरान्त सूत्र साहित्य की बात की जा सकती है जिसमें कल्पसूत्र, गृहसूत्र, धर्मसूत्र महत्वपूर्ण है इसी काल में यह माना गया है कि जब कन्या विवाह की आयु में निरन्तर कमी आयी। युवा अवस्था में उनका विवाह कर दिया जाता था (सिंघल 1991) धर्म सूत्रों में नारी को गृहस्थ धर्म में पति के अधीन दिखाया गया है। इस समय तक आते–आते नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय मानी गयी है। अब उसे पुरूष के चल सम्पत्ति के रूप में देखा जाने लगा उसे कभी भी बेचा या गिरवी रखा जा सकता है। (सिंघल 1991) अब नारी को दासी के रूप में देखा जाने लगा बाल विवाह के कारण कन्याओं की शिक्षा बन्द कर दी गयी स्त्री के विधवा होने के उपरान्त उसे नियोग प्रथा से पुत्र उत्पन्न करने का अधिकार था।

इसके बाद उपनिषद काल अतः इसे वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में नारी शब्द का प्रयोग नही किया गया है। यहां पर नारी के लिए एक सर्व शक्मिान परमात्मा की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है इसमें नारी तथा पुरूष को एक प्रकाश की दो पुन्ज के रूप में दिखाया गया है। इस काल में कन्याओं को उचित शिक्षा दी जाती थी विदुषी कन्याओं के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी गार्गी, मैत्रैयी जैसी विदुषी नारियों में समाज में नारी स्थान रोशन किया तथा माता हमेशा बन्दनीय थी (सिंघल 1991)

महाकाव्य काल में–

जिसकी रचना ई0 पूर्व चौथी शताब्दी के आस–पास मानी जाती है। रामायण में हम एक आदर्श महिला की चरित्र के रूप में उभरता हुआ पाते है। रामायण में आदर्श स्त्री के रूप में किया गया है। रामायण में महिलाओं की स्थिति व अधिकारों का बोध होतो है शासन के लिए इनको ध्यान में रखते हुए नियम बनाये गये थे। गृहस्थ आश्रम में इन्हे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। (शर्मा 1971) समाज में साधारण परिवार तथा राजघरानों में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। महाभारत काल में पति को पत्नी के प्रति झुकना भी और झुकाते हुए भी दिखाया गया है। कुन्ती तथा गान्धारी जैसी शसक्त महिलाओं का उदाहरण दिया जा सकता है। द्रोपदी का चित्रण सर्व विख्यात है।

याज्ञवल्क्य, व्यास तथा विष्णु स्मृतियों से यह प्रतीत होता है कि रजो धर्म के पूर्व ही कन्याओं का विवाह कर दिया जाता था। सोलह संस्कारों में विवाह सर्व प्रमुख था अगर कन्या को योग्य वर न मिले तो उसे स्वयं रीति विवाह कर सकती थी पिता के अतिरिक्त अन्य समन्धी भी कन्यादान कर सकते थे। सभी स्मृति ग्रन्थों में कन्या को विवाह के समय अनुपम अलंकरण तथा आभूषण देने का प्रचलन था ऐसा प्रतीत होता कि इस समय पति सेवा ही पत्नी का मुख्य धर्म था।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में महिलाओं की भूमिका–

हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों से भी हमें नारी की स्थिति का बोध होता है बौद्ध युग मे महिला स्थिति उत्तर वैदिक युगीन महिला के समान थी परिवार में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान था किन्तु उसे समाज में स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करने का अधिकार नहीं था वे परिवार में अतिथियों का सम्मान करती थी तथा उत्सवों के पुरूषों के समान भाग लेती थी पशुओं की देख–भाल भी वे करती थी परिवार में माता का स्थान महत्वपूर्ण था किन्तु बौद्ध ग्रन्थों में यह बताया गया है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र का होना आवश्यक नही था। संयुक्त निकाय एक स्थान पर कहा गया है कि पुत्र की तुलना में पुत्र ही श्रेष्ठ होती है। वही जैन ग्रन्थों में आगम ग्रन्थ आते है जिन से सामाजिक विषयों की जानकारी मिलती है। इसमें बतया गया है कि बड़ी आयु में विवाह शुभ माना जाता था वस्तुतः विधवा पुर्नविवाह कर सकती थी। किन्तु यह सम्मानीय नही था दहेज प्रथा चर्मोत्कर्ष पर थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में महिलाओं की स्थिति का वर्णन–

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र मुख्यतः प्राचीन प्रन्थों में महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें सासन व्यवस्था के साथ ही साथ समाज के समस्त क्रिया कलापों का वर्णन किया गया है। महिलाओं के विषय में भी इस पर चर्चा की गयी है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास का सर्व प्रमाणित पुस्तक ही माना जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विधवाओं के जीवन का सजीव चित्रण है। उन्होने अपनी पुस्तक में धर्म स्थानीय अधिकरण विवाह धर्म के बाद प्रथमतः धर्मकामा विधवाओं का वर्णन किया है। उन्होने लिखा है कि पति की मृत्यु के पश्चात् महिला यदि धार्मिक जीवन का व्रत धारण करना चाहती है तो उसे अपने दोनों प्रकार की निजी धन व प्रीति धन पर अपना अधिकार लेना चाहिए। किन विधवाओं के पास जीवन में संरक्षण की व्यवस्था न हो राज्य द्वारा उसका प्रबन्ध करना चाहिए। सामान्य स्त्रीयों के साथ–साथ गणिकाओं की भी चर्चा की गयी है ये मनोरंजन का साधन की गणिकाओं को अपनी सूचना गणिका अध्यक्ष को देना पड़ता था उनको सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता था अपनी मासिक आय का दो दिन की आय राजस्व के रूप में देनी पड़ती थी वृद्धि वैश्याओं के प्रति भी सहानुभुति दिखाते हुए कहा है। यदि वह वृद्ध हो जाये अपना कार्य न कर सके तो उसे राजकीय भोजनालय में स्थानान्तरण कर देना चाहिए।

कौटिल्य ने दासियों की भी व्यवस्था बतायी है। इस समय स्त्री दासों की स्थिति समाज में संस्थागत रूप ले चुकी थी जिस प्रकार से पुरूष दास बनाये जाते थे उसी ही प्रकार से महिला दासी बनायी जाती थी इनही दुरव्यवस्था पर लगाम लगाने के लिए तथा राज्य कार्य में उपयोगी बनाने के लिए अनेकों नियम बनाये गये है। तथा राजकीय संरक्षण के लिए विशेष अधिकार दिये गये है। इनही नियुक्ती तथा वेतन के लिए राज्य में विशेष नियम बनाया गया था। (कोटिल्य)

निष्कर्ष–

अन्ततः हम यह कह सकते है कि प्राचीन भारतीय समाज में जिस प्रकार से नारी को उच्च स्थान प्राप्त था उसी के अनुरूप विभिन्न कालों में क्रमशः पतन दिखायी देने लगता है। यथा उत्तर वैदिक समाज में महिलाओं को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था किसी महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए स्त्री की उपस्थिति आवश्यक थी उसे शिक्षा का अधिकार प्राप्त था नीति निर्माण से लेकर जीवन के प्रत्येक दिशा में उसकी सहमति आवश्यक थी वह सर्व स्वामिनी की माताओं को समाज सर्वोच्च स्थान दिया गया था किन्तु शैने–शैने महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी जिसका प्रमुख कार्य भौतिकवादी परिवर्तन तथा बालविवाह ने लिया समय–समय पर समाजिक कुरीतियों ने नारी की भोगितावादी समझा विवाहित स्त्रीओं को लेकर स्त्री दासों तक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है। किन्तु फिर भी हमें इनका आदर्श चरित्र चित्रण दिखायी पड़ता है। किन्तु दुख की बात यह है कि हमारे समाज में

दिन–प्रतिदिन महिलाओं पर अत्याचार बलात्कार की घटनाओं एवं घरेलू हिंसा भी देखने को मिलती है इस परिपेक्ष में प्राचीन काल में महिलाए सुरक्षित थी तथा उनको समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था।

सन्दर्भ सूची–

1. लता सिंघल (1991) भारतीय संस्कृति में नारी, दिल्ली : परिमल प्रकाशन।
2. पी0सी0 चन्दर (1970). Kautilya on love and morals. Kolkata : Ranveer Chander.
3. कैलाश चन्द्र जैन (1971) प्राचीन भारतीय समाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं, भोपाल : मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी।
4. महर्षि गौतम. (दि.न.) गौतम धर्म सूत्र
5. एल रंग राजन. (1987) कौटिल्य द. अर्थशास्त्र दिल्ली : पेंगुइन बुक्स।
6. कोटिल्य (दि.न.). अर्थशास्त्रं
7. सुबिरा जाइसवाल (मार्च–अप्रैल 2001) Female images in the Arthshashtra of Kautilya. Journal of Social scientist 58.
8. गजानन्द शर्मा (1971). प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी. इलाहाबाद : रचना प्रकाशन।

Parent child communication and parental expectations on Home Adjustment of children

Kumari Rekha

ABSTRACT

A sample of 200 school children was collected from various schools in the Vaishali district of Bihar. The students belong to the age group of 11-14 years . Home adjustment problem questionnaire developed by Singh has been used to measure home adjustment among children. the parents of the children were also involved in the study. Incidental cum purposive sampling techniques were used for the study.

Chi-square test was used for the analysis of data.

INTRODUCTION

An oral communication full of sympathy, love, and acceptance is a must if parents want to understand the inner minds of their children. But due to various reasons, many parents do not get time to communicate, their children also do not get the opportunity to say something to their parents who under occupational pressure do not find time to talk with their children. The personality of the parents also counts in determining the communication between parents and children. Sometimes the high expectation of the mother and father from their sons and daughters put the child into many difficulties at the home and outside the home. But generally high expecting parents take proper care of their children. They are more conscious of the achievement-related activities of children.

OBJECTIVE

1. To study the effect of parent-child communication on home adjustment among children.
2. To study the impact of parental expectations on home adjustment in their children.

HYPOTHESIS

1. High home adjustment and low home adjustment groups of children will differ significantly with respect to the parent's child communication.

2. High home adjustment and low home adjustment groups of children will differ significantly with respect to parental expectations.

METHODOLOGY

A sample of 200 school children was collected from various schools in the Vaishali districts of Bihar. The students belonged to the age group of 11-14 years. Home adjustment problems questionnaire developed by d=singh has been used to measure home adjustment among children. the parents of the children were also included in the study. incidental cum purposive sampling technique was used for the study . chi-square test was used for the analysis of the data.

TOOLS

Home adjustment problem questionnaire was developed by Dr. RK Singh Magadh university. Bodh Gaya and Reeta singh aurangabad (1994).

Child rearing interviews schedule developed by Dr. RK Singh M.U. Bodh Gaya and Reeta singh aurangabad.

FINDINGS

TABLE - 1

HOME ADJUSTMENT AND PARENTS-CHILD COMMUNICATION PARENTAL ORAL TALK WITH CHILDREN

GROUPS	N	FREQUENT ORAL TALK	FEW ORAL TALK
H HOME ADJUSTMENT	100	69	31
L HOME ADJUSTMENT	100	22	78
TOTAL	200	91	109

Table 1 shows the comparative study of high and low home adjustment groups of children in terms of parental-child communication. it is clear that children of two groups differ significantly with respect to parent-child communication. The obtained result x^2 = 44052 is significantly at .01 . It is clear that in those families where child parent has frequent talks, their children are better adjusted than where the oral talk between parents and children occurs only few times.

TABLE 2 PARENTAL EXPECTATION FROM THE CHILD STUDY

GROUPS	N	VERY GOOD	GOOD	NOT VERY GOOD
H HOME ADJUSTMENT	100	45	26	29
L HOME ADJUSTMENT	100	21	17	62
TOTAL	200	66	47	91

TABLE 2 shows the comparative study of high and low home adjustment groups of children on the basis of parent's expectations from their studies. It is clear that the two groups differ significantly with respect to parental expectations. The result obtained is x^2 = 22.56 is significant at .01 on df=2.

It is apparent that the children who report better in studies belong to those parents who put higher expectations from children are also higher on home adjustment than the children who are not reported doing on study . Hence the second hypothesis was accepted.

CONCLUSION

1. It was found that high home adjustment and low adjustment groups of children differed significantly on the basis of parent-child communication. The children belonging to the family where parental oral talk is more frequent showed high home

adjustment as it shows that parents have much time to devote to their children, which further shows the existence of love and acceptance between them.

2. It was found that high home adjustment and low adjustment groups of children differed significantly with respect to parental expectation . the families who have higher expectations from their children were found to be high on home adjustment because high expecting parents take better care of their children.

References :

Baumrind, D. (1991). Parcenting styles and adolescent's development in J. Brookes – Gunn, R. Lerner, A Peterson (Eds.), The Encyclopaedia of Adolescence, New Youk, Garland.

Colemn, C.J. (1974). Relational in adolescent, London : Routledge & Kegan Paul.

Fan, X. and Chen, M. (2001). Parental Involvement and students academic achievement: A meta-analysis. Educational Psychology Review, 13, 1-22.

Flouri, E. and Buchanan, A. (2004). Early father's and mother's involvement and child's later educational outcomes. British Journal of Educational Psychology, 74, 141-153.

Handal Pj. Le-Stiebel N, (1999). Perceived family environment and adjustment in American-born and immigrant Asian adolescent Psychology Report, 85 (3), 1244-1249.

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

शोध–निर्देशक
डॉ0 आलोक कुमार मिश्र
सहायक आचार्य
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0)
प्रयागराज (उ0प्र0)

शोधार्थी
मनोज कुमार यादव
(एम0एड0)
नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0)
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन'' है। प्रस्तुत अध्ययन विषय की समस्या की प्रकृति के अनुसार अनुसंधान के लिए **''सर्वेक्षण विधि''** का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में आजमगढ़ जनपद के माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग करते हुए 200 माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का चयन (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया है। अध्ययनकर्ता ने शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के कक्षा–10 की परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों का प्रतिशत तथा सामाजिक–आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अल्का सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय– सक्सेना सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए टी–अनुपात एवं प्रसरण विश्लेषण (एफ–अनुपात) का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि–

की–वर्ड– माध्यमिक, छात्र, छात्राएँ, शैक्षिक उपलब्धि, उच्च, मध्यम एवं निम्न, सामाजिक–आर्थिक स्तर, प्रभाव

प्रस्तावना–

शैक्षिक उपलब्धि का अभिप्राय छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, कौशल, अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति से है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के द्वारा छात्रगण अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास करते हैं। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया, यही उनकी सम्प्राप्ति का सूचक होता है।

आज विद्यार्थियों की शिक्षा को मापने के लिए उनकी शैक्षिक उपलब्धि को मापा जाता है। शैक्षिक उपलब्धि का अभिप्राय छात्रों की मात्रात्मक अभिव्यक्ति से हैं। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के द्वारा छात्रगण अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास करते हैं। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया, यही उनकी सम्प्राप्ति का सूचक होता है।

दूसरे शब्दों में शैक्षिक उपलब्धि विद्यालयों में अर्जित ज्ञान की परीक्षा है। इससे यह पता चलता है कि विद्यार्थी ने क्या और कितना सीखा है ओर किस दक्षता से कार्य सम्पन्न किया है। उपलब्धि के अंकन के द्वारा विद्यालय के अन्दर तथा बाहर प्राप्त ज्ञान को शिक्षण व अनुभव के अनुसार देखा जाता है।

ईवेल के अनुसार– *शैक्षिक उपलब्धि किसी निश्चित कार्य क्षेत्र में अर्जित ज्ञान की मात्रात्मक योग्यता है।'*

शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य इन शिक्षण उद्देश्यों के प्राप्ति से है। छात्रों ने शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया है, यही उनकी शैक्षिक शैक्षिक उपलब्धि को बताता है। शैक्षिक उपलब्धि, छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, कौशल, अनुप्रयोग आदि योग्यताओं की मात्रात्मक अभिव्यक्ति है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा छात्रगण अपनी विभिन्न बौद्धिक योग्यताओं का विकास करते हैं। छात्रों ने किस सीमा तक अपनी बौद्धिक योग्यताओं का विकास किया है, यही उनकी सम्प्राप्ति का सूचक होता है। विद्यालयी पाठ्यक्रम का कोई भी विषय क्यों न हो उससे सम्बन्धित शिक्षण–अधिगम सदैव ही उस विषय के लिए निर्धारित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयत्नरत रहता है। यह बात गणित के शिक्षण–अधिगम के लिए भी पूरी तरह लागू होती है। यहाँ भी गणित अध्यापक कक्षा विशेष के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हुए अच्छी से अच्छी विधियों एवम् तकनीकों को काम में लाता हुआ निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयत्नरत रहता है। अपने इन प्रयत्नों के दौरान उसे यह जानने की उत्सुकता रहती है कि उसके प्रयत्न किस दिशा में जा रहे हैं और उसके फलस्वरूप उसे निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में कितनी और किस रूप में सफलता मिल रही है, यह जानकारी उसे अपने प्रयत्नों को सही दिशा और दशा देने में बहुमूल्य सहयोग दे सकती है। इस प्रकार की जानकारी उसे तभी मिल सकती है। जबकि वह यह जाने कि उसके शिक्षण के फलस्वरूप विद्यार्थियों को क्या कुछ उपलब्ध हो रहा है तथा उसके व्यवहार में किस प्रकार के अपेक्षित परिवर्तन आ रहे हैं। इस कार्य में यहाँ उसकी सहायता वे सूचनाएँ तथा आँकड़े करते है जिनकी प्राप्ति उसे अपने विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि या व्यवहार परिवर्तन का परीक्षण करने, मापने तथा मूल्यांकन द्वारा होती है।

एक निश्चित कार्यक्षेत्र में बालक जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसके मापन की उपलब्धि परीक्षण कहते है।

शैक्षिक उपलब्धि परीक्षाओं के विषय में **प्रेसी, रांबिन्सन व हारम्स का** कहना है– *उपलब्धि परीक्षाओं का निर्माण मुख्य रूप से छात्रों के सीखने के स्वरूप तथा सीमा का माप करने के लिए किया जाता है।*

अतः शैक्षिक उपलब्धि बालक की वर्तमान योग्यता है या उसके विशिष्ट क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा है क्योंकि विद्यालय में अनेकों प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आतें है, जिनकी उपलब्धि अलग–अलग रहती है यह उनके सीखने तथा अनुभव प्राप्त करने की शक्ति पर निर्भर होती है।

गैरीसन के अनुसार, *उपलब्धि परीक्षा, बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में, उसके ज्ञान की सीमा का मापन करती हैं।*

माथुर के अनुसार, *उपलब्धि परीक्षण एक निश्चित कार्य क्षेत्र में जो ज्ञान अर्जित किया जाता हैं, उसकी माप करता हैं।*

उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षणों का शिक्षा प्रक्रिया में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इससे विद्यार्थियों के ज्ञान की जाँच उचित ढंग से की जा सकती है। उनकी सफलता के आधार पर श्रेणीकरण करके उन्हें आगे की कक्षा में भेजा जाता है। विद्यार्थियों की विषय सम्बन्धी कठिनाईयों और कमजोरियों का निदान किया जाता है तथा साथ ही परीक्षाफल के आधार पर शिक्षक अपनी अध्ययन विधि की सफलता का पता लगा सकता है और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करके उसे अधिक प्रभावकारी बना सकता है। परीक्षा के परिणाम से विद्यार्थी को अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है। इसी के आधार पर अध्यापक विद्यार्थी की क्षमता का पता लगाकर भविष्य के लिए निर्देशन दे सकता हैं। बालक की रूचि, योग्यता और क्षमता के आधार पर ही उन्हे शैक्षिक, व्यवसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन देना सरल हो जाता हैं। इतना ही नहीं प्रचलित परीक्षण प्रणाली के दोषों को दूर करने में सहायता मिलती है। परीक्षाफल से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पाठ्यक्रम में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

सामाजिक–आर्थिक स्तर से तात्पर्य प्रस्थिति से होता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की एक प्रस्थिति होती है। कुछ व्यक्ति समाज के उच्च पदों पर आसीन होते है जबकि कुछ व्यक्तियों को उनकी तुलना में निम्न प्रस्थिति प्राप्त होती है, एक ही व्यक्ति भिन्न–भिन्न क्षेत्रो में सामाजिक स्थिति ग्रहण कर सकता है।

इलियट और मैरिल के अनुसार– ''प्रस्थिति व्यक्ति का वह पद है। जिसें व्यक्ति किसी समूह के अपने लिंग, आयु, परिवार, वर्ग, व्यवसाय, विवाह अथवा प्रयत्नों आदि के कारण प्राप्त करता है।''

लिण्टन के अनुसार, ''सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को एक समय विशेष में जों स्थान प्राप्त होता है उसी के उस व्यक्ति की प्रस्थिति कहा जाता है।'' सामाजिक–आर्थिक स्तर विद्यार्थियों के अभिभावक या माता–पिता का समाज में स्थान तथा उनके आर्थिक सम्पत्ति तथा आय से है।

समस्या कथन–

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत शोध विषय की समस्या की प्रकृति के अनुसार अनुसंधान के लिए **''सर्वेक्षण विधि''** का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में आजमगढ़ जनपद के माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग करते हुए 200 माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का चयन (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन किया गया है। अध्ययनकर्ता ने शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के कक्षा–10 की परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांकों का प्रतिशत तथा सामाजिक–आर्थिक स्तर को मापने के लिए सुनील कुमार उपाध्याय एवं अल्का सक्सेना द्वारा निर्मित 'उपाध्याय– सक्सेना सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स स्केल' का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए टी–अनुपात एवं प्रसरण विश्लेषण (एफ–अनुपात) का प्रयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–

1. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–

H_{01} माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं0 1

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का एफ–अनुपात

स्रोत	df	SS	MS	F
समूहों के मध्य	2	421.36	210.68	1.94
समूहों के अन्दर	197	21349.99	108.38	
योग	199	21771.35	319.06	

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ–अनुपात का मान 1.94 हैं, जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना कि ''माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर है'', .05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

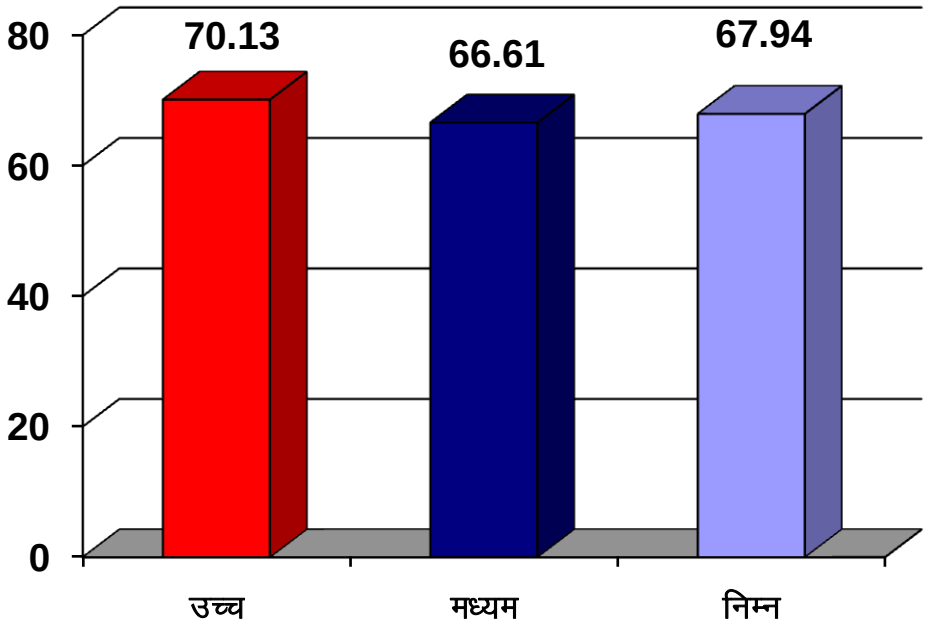

2. माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–

H_{02} माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं0 2

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का एफ–अनुपात

स्रोत	df	SS	MS	F
समूहों के मध्य	2	174.05	87.02	0.46
समूहों के अन्दर	98	18420.83	187.97	
योग	100	18594.87	274.99	

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ–अनुपात का मान 0.46 हैं, जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना कि ''माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर है'', .05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

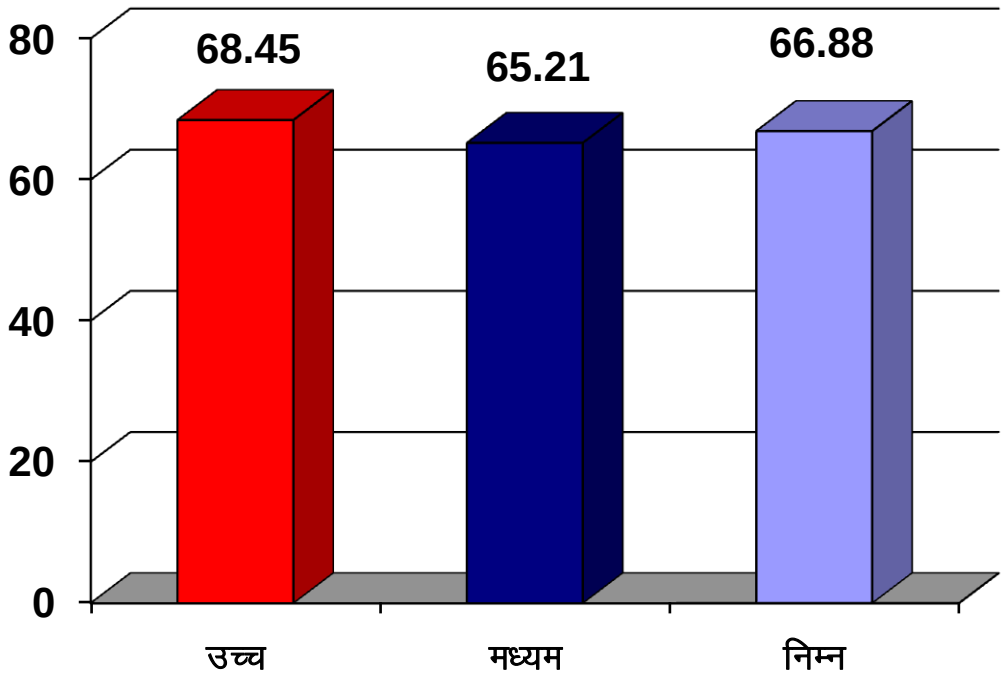

3. माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–

H_{03} माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी सं0 3

माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का एफ–अनुपात

स्रोत	df	SS	MS	F
समूहों के मध्य	2	277.24	138.62	1.87
समूहों के अन्दर	97	7198.92	74.22	
योग	99	7476.16	212.84	

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ–अनुपात का मान 1.87 हैं, जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना कि ''माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर है'', .05 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

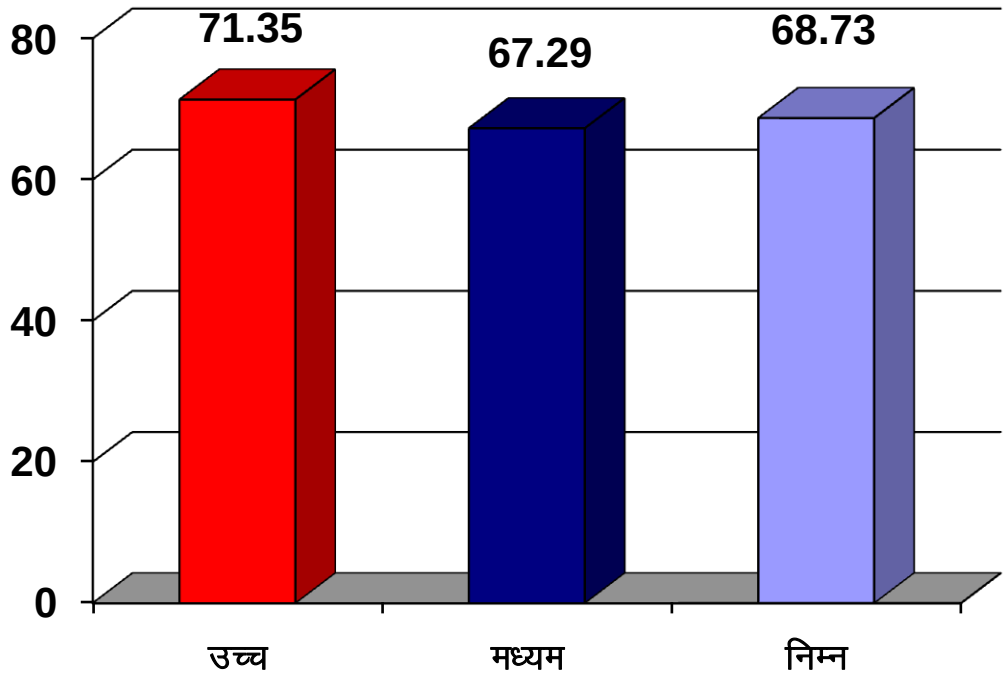

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुआ–

- माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

- माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

- माध्यमिक स्तर के उच्च, मध्यम एवं निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भिन्नता नहीं है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर न पाया जाना यह दर्शाता है शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यार्थियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का प्रभाव नहीं पड़ता है शैक्षिक उपलब्धि भी सामाजिक–आर्थिक स्तर से उच्च नहीं किया जा सकता है बल्कि शिक्षा में रुचि एवं लगन के साथ बढ़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ओगुनशोला, फेमी एवं अदेवाले (2012). द इफेक्ट ऑफ पैरेन्टल सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स ऑन एकेडमिक परफार्मेन्स ऑफ स्टूडेन्ट्स इन सेलेक्ट स्कूल्स इन इदु लगा ऑफ कवारा स्टेट नाइजीरिया, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च इन बिजनेश एण्ड सोशल साइंस,* वॉल्यूम–2, नं0 7, पृ0 230–239

- एडसुल, आर0के0 एण्ड कैम्बेल, बी0 (2008). एचिवमेण्ट मोटिवेशन एज ए फंक्शन ऑफ जेण्डर, इकोनॉमिक बैकग्राउण्ड एण्ड कास्ट डिफरेन्सेस इन कॉलेज स्टूडेन्ट्स, जर्नल ऑफ द इण्डियन एकेडेमी ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी, वॉल्यूम–34(2), पृ0 323–327

- काला, पी. चन्द्रा एवं शिरलिन, पी. (2017). ए स्टडी ऑन एचिवमेण्ट मोटिवेशन एण्ड सोशियो–इकोनॉमिक स्टेटस ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स इन तिरूनेवल्ली डिस्ट्रिक, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालय,* वॉल्यूम–5, इश्शू–3, पृ0 57–64

- गोनी एवं बेलो (2016). पैरेन्टल सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स, सेल्फ–कन्सेप्ट एण्ड जेण्डर डिफरेन्सेस ऑफ स्टूडेन्ट्स, ऐकेडमिक परफॉर्मेन्स इन ब्रोनो स्टेट कॉलेज ऑफ एजूकेशन : इम्पीलिकेशन्स फॉर काउन्सिलिंग, *जर्नल ऑफ एजूकेशन एण्ड प्रैक्टिस (ऑनलाइन),* वाल्यूम–7, नं0 14।

- गुप्ता, किरन (2020) ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके सांवेगिक परिपक्वता, शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं बुद्धि के सन्दर्भ में, शोध–प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0), प्रयागराज।

- गुप्ता, पी0के0 एवं एबिनिया, लामरे (2010). ए स्ट्डी ऑफ एकेडेमिक एचिवमेण्ट इन रिलेशन टू सम साइको–सोशल वैरियेबल्स ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन ईस्ट खासी हिल्स मेघालय, डिपार्टमेण्ट ऑफ एजूकेशन, स्कूल ऑफ एजूकेशन, नार्थ–ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग।

- गुप्ता, प्राची (2018). अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की शिक्षा में सामाजिक बाधाओं का तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजुकेशनल रिसर्च,* वॉल्यूम–3, इश्शू–2, पृ0 367–368

- चन्द्रा, रीतू एवं अजीमुद्दीन, शैख (2013). इन्फुएन्स ऑफ सोशियो– इकोनॉमिक स्टेटस ऑफ एकेडमिक एचिवमेण्ट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स ऑफ लखनऊ सिटी, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इंजीनियरिंग रिसर्च,* वॉल्यूम–4, इश्शू–12, पृ0 1952–1960

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

अवधी के पुरातन और आधुनिक संदर्भ

डॉ0 रेखा मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

मु0द0स्ना0महा0, प्रतापगढ़

अवधी भाषा के प्राचीनतम प्रयोग हिन्दी साहित्य में कब से हो रहा है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि अमीर खुसरों ने अपने ग्रन्थ ''नूह सिपर'' में सिंधी लाहौरी कश्मीरी, बंगाली, गौड़ी, गुजराती, तिलंगी, मावरी (कोंकणी) , ध्रुव समुन्दरी, अवधी, देहलवी का उल्लेख किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों की देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश में पूरबी बोली (अवधी) का प्रयोग रेखांकित किया है। सिद्ध कण्हपा की रचनाओं में पूरबी बोली का जो पुट मिलता है, उसमें कहीं कहीं अवधी भाषा का आभास मिलता है–

गंगा जँउना माझे रे बहइ नाई।

चीज थिर कर करि गहु रे नाई।

अन्न उपाये पार न जाई।।

यहॉ जउॅना (जमुना) माझे ;मध्येद्ध, बहइ, नाई,करि, गहु, उपाये, जाई इत्यादि शब्दावलियों और चौपाई छन्द के प्रयोग से अवधी/पूरवी बोली पूर्वी हिन्दी का स्पष्ट आभास मिल रहा है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में ''सिद्ध कण्हपा की रचनाओं को यदि हम ध्यानपूर्वक देखे तो एक बात झलकती है वह यह कि उनके उपदेश की भाषा तो पुरानी टकसाली हिन्दी (काव्यभाषा) या पूरबी बोली है। यही भेद हम आगे चलकर कबीर की साखी, रमैनी; गीत) की भाषा में पाते हैं। साखी की भाषा तो खड़ी बोली राजस्थानी, मिश्रित सामान्य भाषा 'सधुक्कड़ी' है, पर रमैनी के पदों की भाषा में काव्य की ब्रजभाषा और कहीं–कहीं पूरबी बोली भी है।''[1]

सिद्ध साहित्य का केन्द्र पूर्वी भारत रहा है। इस क्षेत्र में भाषा का विकास अर्द्धमागधी और मागधी प्राकृतों से हुआ है। अर्द्धमागधी प्राकृत शौरसेनी एवं मागधी प्राकृत की मध्यवर्ती है। अतः इसमें दोनों प्राकृतों के भाषा–लक्षण विद्यमान है। कबीर (भाखा हमरी पूरबी) की भाषा में इसीलिए दोनों प्राकृतों से अद्भुत ब्रज और अवधी का प्रभाव तथा शौरसेनी से उत्पन्न अथवा विकसित खड़ी बोली का प्रभाव विद्यमान है। विद्यापति ने भी अपनी काव्यभाषा में पूरबी अपभ्रंश का प्रयोग किया है। जैन ग्रंथों में अर्द्धमागधी का प्रयोग प्रमुखता से हुआ है। जैन साहित्य का केन्द्र मगध रहा है। भगवान महावीर स्वामी ने अपना उपदेश अर्द्धमागधी में दिया है। जैन साहित्य का प्रश्रय पाकर अपभ्रंश की उततरकालीन अवस्था से कई लोकभाषाओं का विकास हुआ जो कालान्तर में साहित्यक भाषा बन गई। अवधी की उत्पत्ति इन्हीं अपभ्रंशों के समन्वित प्रभाव से हुई है। बघेली और छत्तीसगढ़ी इसकी उपभाषाएं हैं। छत्तीसगढ़ और बघेल खण्ड की भाषा अवधी का ही विकास है। अयोध्या और नेपाल से लेकर छत्तीसगढ़ तक तथा कानपुर के पूर्व तथा बनारस के पश्चिम का क्षेत्र अवधी का क्षेत्र है। इसी क्षेत्र में हिन्दी तथा अवधी के प्रमुख कवियों का जन्म हुआ है।

''संस्कृत कबिरा कूप जल, भाषा बहता नीर–कबीर/आदि अंत जस कथ्था अहै, लिखि भाषा चौपाई कहै– जायसी/भाषा भनति मोर मति थोरी तुलसीदास का उद्घोष करने वाले कबीर जायसी, तुलसी ही अवधी का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि हैं। इन्हीं कवियों के कारण ही अवधी लोकसभा का अतिक्रमण करके साहित्यिक भाषा में पर्यवसित हो जाती है। जायसी और तुलसी दोनों कवियो ंने दोहा

एवं चौपाई छन्दों का प्रयोग प्रमुखता से किया है। चौपाई और दोहा को एक साथ रखकर कड़वक बनाने की जो परंपरा सिद्धों ने अपनी हिन्दी रचनाओं में आरंभ की उसी को जायसी और तुलसी ने अपनी प्रमुख काव्यशैली बनाई। पहले कहा जा चुका है कि सिद्धों, नाथों, तथा जैनों की अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी से विभिन्न लोकभाषाओं का उदय हुआ जो कालान्तर में काव्यभाषा बन गयी। अवधी और ब्रज का विकास उत्तरकालीन अपभ्रंश की अगली कड़ी है। आचार्य शुक्ल ने अवधी का उद्‌गम नागर अपभ्रंश से माना है– ''अपभ्रंश या प्राकृत काल की काव्यभाषा के उदाहरणों में आजकल की भिन्न–भिन्न बोलियों के मुख्य–मुख्य रूपों के बीज या अंकुर दिखा दिए गये हैं। इनमें से ब्रज और अवधी के भेदों पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि हिन्दी काव्य में इन्हीं दोनों का व्यवहार है'' सिद्धों तथा जैनों के काव्य से चौपाई छन्द तथा अपभ्रंश काव्य से दोहा छन्द लेकर अवधी भाषा का काव्य शिल्प बना और अनेक महाकाव्यों की रचना से अवधी भाषा का रूप निरंतर निखरता गया तथा गोस्वामी तुलसीदास ने अवधी को उस ऊँचाई पर प्रतिष्ठित कर दिया जहॉ पहुँचना बाद के कवियों के लिए संभव नहीं हो सका। तुलसीदास ने जायसी की ठेठ अवधी को परनिष्ठित अवधी में परिणत कर दिया। ध्वनि, रीति, अलंकार, वक्रोक्ति से युक्त तुलसी की अवधी सदा के लिए परम सम्मान की अधिकारी हो गयी।

'राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा वीचि विलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारू चौपाई।
जुगुति मंजू मनि सीप सुहाई।।
छंद सोरठा सुंदर दोहा।
सोई बहुरंग कमल कुल सोहा।।
धुनि अवरेब कवित गुन जाती।
मीन मनोहर ते बहुभांती।।''

इस प्रकार तुलसीदास ने अवधी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान कर चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया और अवधी के एक युग का अन्त हो गया।

पहले कहा जा चुका है कि प्राकृत की चौपाई तथा अपभ्रंश के दोहे से मिलकर अवधी की 'कड़वक' काव्यशैली का विकास हुआ है। हेमचन्द्र के सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन तथा जैन आचार्य मेरूतुंग (1304ई0) के 'प्रबंध चिन्तामणि' में उद्धरित दोहों में अवधी की झलक दिखाई देती है। विभक्ति और परसर्ग एक भाषा को दूसरी भाषा से अलग करते हैं। शब्दरूप तथा धातुरूप में परिवर्तन नयी भाषा के उद्‌भव का कारण है। जैसे भल्ला–भला– भल/मारिया– मार्‌या–मारा/महारा–म्हारा–हमारा–हमार/मई–मइ; स्त्रीलिंग उत्तम पुरुष एक वचन/;अवधी में/थोड़ई–थोरई/नीसरहि–निसरना/आदि शब्दों का प्रयोग अपभ्रंश में हुआ जो कालान्तर में ध्वनि परिवर्तन कर अवधी में प्रयुक्त होने लगे।

इसी तरह विद्यापति ने देशभाषा में जिस भाषा का प्रयोग किया है, इसमें अवधी भाषा की प्रवृत्तियॉ बहुत आसानी से देखी जा सकती हैं–

'कतहुँ तुरूक बरकर। बार जाये तो बेगार धर।।
धरि आनय वामन बरूआ। माथा चढ़ावई गाय का चुरूआ।।
हिंदू बोले दूरहिं निकारि। छोटउ तुरूका भभकी मार।।

यहॉ बरकर–बरियार, बेगार,धर, धरि–धर आनय, चढ़ावई, दूरहि–दूरै दूर, निकारि–निकार, मार आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है जो किंचित ध्वनि परिवर्तन के साथ अवधी में प्रयुक्त होते हैं।

रोड़ा कवि कृत 'राउलवेल' दामोदर शर्मा कृत ''उक्ति व्यक्ति प्रकरण'' में अवधी का बीज विद्यमान है। राउलबेल से हिन्दी में नख–शिख की शृंगार परम्परा आरंभ होती है। यह गद्य–पद्य मिश्रित

चम्पूकाव्य की प्राचीनतम कृति है। इसमें हिन्दी क सात बोलियों के शब्द हैं, राजस्थानी प्रधान है। उक्तिव्यक्ति प्रकरण हिन्दी का और भाषा की दृष्टि से अवधी का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें गद्य और पद्य दोनों है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–''उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण'' हिन्दी का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें बनारस और आस–पास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और उस युग के काव्यरूपों के सम्बन्ध में भी थोड़ी–बहुत जानकारी प्राप्त होती है।''[2] आदिकालीन साहित्य में अवधी के जो बीज विद्यमान थे, मध्यकाल में वही पल्लवित, पुष्पित होकर अवधी के विशाल वृक्ष में परिणत हो गये।

मुल्ला दाऊद विरचित 'चन्दायन' (1379) से अवधी का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित इतिहास मिलने लगता है। मुल्ला दाऊद डलमऊ, रायबरेली के निवासी थे, जाहिर है कि भाषा अवधी ही होगी। यह कडवकब(रचना है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

चाँदहि लोरक निरखन हारा।
देखि विमोहि गयी बेकरारा।।
नैन झरहिं मुख गा कुंवलाई।
अन्न न रूच, नहिं पानि सुहाई।।
सुरूज सनेह चाँद कुंभलानी।
जाइ विरस्पत छिरका पानी।।

मुल्ला दाऊद के चन्दायन को आधार बनाकर बाद में लगभग सभी सूफी काव्यों की रचना हुई। जायसी का 'पद्मावत' भी इस से बहुत प्रभावित है। ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा (1501), कुतुबन कृत 'मृगावती' (1503), गणपति कृत 'काम कन्दला' (1527), आदि जायसी के पूर्व की रचनाएँ हैं। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की प्रौढ़तम रचना पद्मावत है जिसका रचनाकार (1540) है। जायसी के अनुसार इसका रचनाकार नौ सौ सत्ताईस हिजरी संवत है–

नौ सौ सत्ताइस हिजरी है–
सन नौ सौ सत्ताइस अहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

रूपक तत्व और समासोक्ति काव्य होने के कारण यह इस परम्परा का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। रत्नसेन, नागमती, पद्मावती, हीरामन, अलाउद्दीन, राघवचेतन आदि पात्र विभिन्न मनोवृत्तियों के प्रतीक हैं–

तन चितउर मनराजा कीन्हा।
हिय सिंघल, बुधि पद्मिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमनी यह दुनिया धंधा।
बांचा सोई न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू।
माया अलादीन सुल्तानू।।

नागमती का विरह वर्णन तथा पद्मावती के अनंत सौन्दर्य का वर्णन जो परोक्ष सत्ता का आभास देता है, इसे विशिष्ट प्रबंधकाव्य सिद्ध करता है। इस महाकाव्य की भाषा ठेठ अवधी है। आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल ने जायसी और तुलसी की भाषा तुलना करके यह बताया है कि जहॉ जायसी की भाषा ठेठ अवधी है वहीं तुलसीदास की अवधी संस्कृतनिष्ठ परिमार्जित अवधी है। जायसी के बाद सूफी प्रेमकाव्य परम्परा में अनेक काव्य लिखे गये जिनमें भाषा की दृष्टि से नूर मुहम्मद उल्लेखनीय है। नूर मुहम्मद ने 'अनुराग बांसुरी' एवं 'इंद्रावत' नामक कावें की रचनायें अवधी में की है। ये जौनपुर के निवासी थे। हिन्दी में रचना करने के कारण इन्हें अपने समुदाय में विरोध का सामना करना पड़ा था जिसके कारण इन्हें हिन्दी (अवधी) में रचना करने के लिए सफाई देनी पड़ी–

हिन्दू मग पर पाँव न रखेउँ।
का जौ बहुतै हिन्दी भाखेउँ।।
कामयाब का कौन कहावा।
फिर हिन्दी भाखै पर आवा।।
छांड़ि फारसी कंद नवातै।
अरुझाना हिंदी रस बातैं।।

अनुराग बांसुरी (1764) की रचना के समय से मुसलमान कवि अवधी से किनारा करने लगे थे। और 'युसूफ जुलेखा' (1970) की रचना करने वाले शेख निसार के बाद यह परम्परा समाप्त प्रायः हो गयी और अवधी का साहित्य भी सिमटने लगा।

अवधी भाषा में रचित सूफी काव्यों के संबंध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन काव्यों की भाषा तो अवधी है लेकिन लिपि फारसी (नस्तालीक) है। नूर मोहम्मद का उपरोक्त कथन इस कारण का किंचित निदर्शन करता है तथा दूसरा कारण यह है कि मुसलमानों के शासनकाल में नागरीलिपि का प्रश्रय नहीं मिला और राज्याश्रय की भाषा फारसी थी।

सूफी प्रेमकाव्यों के समानान्तर सगुणभक्ति की रामभक्ति शाखा में अवधी को विशेष महत्व मिला। रामानंद द्वारा रचित 'हनुमान आरती' की भाषा अवधी है।

आरती कीजै हनुमान लला की।
दुष्ट दलन लघुनाथ कला की।।
लंक विधंस कियो रघुराई।
रामानंद आरती गाई।।
सुर नर मुनि सब करहिं आरती।
जै जै जै हनुमान लाला की।।

रामानंद की ही शिष्य परम्परा में पड़ने वाले गोस्वामी तुलसीदास की भाषा (अवधी) का उल्लेख हो चुका है। तुलसीदास के अवधी की विशेषता यह है कि जहॉ 'रामचरित मानस' में इन्होंने संस्कृतनिष्ठ कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया है, वहीं 'जानकी मंगल' 'पार्वती मंगल' व 'रामलला नहछू में इेठ अवधी का प्रयोग तुलसीदास जी ने किया गया है। इस तरह कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने भाव एवं भाषा के अनेक स्तरों से अवधी को समृद्ध किया है। जानकी मंगल की अवधी देखिए –

जन जानि करब सनेह बलि,
कहि दीन बचन सुनावहीं।
अति प्रेम बारहिं बार रानी,
बालिकन्हि उर गावहीं।।

जानकी मंगल

कवित रीति नहिं जानउँ कवि न कहावउँ।

संकर चरित सुसारित मनहिं अन्हवावउँ।

ववाद–विदूसित बानिहिं।

पावन करौं सो गाइ भवेस भवानिहि।।

पार्वती मंगल

गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो।

राम लला सकुचाहि देखि महतारी हो।।

–– राम लला नहछू

तुलसीदास के अनन्तर नाभादास दी जे 'अष्टयाम', प्राणचंद चौहान ने 'रामायण नाटक, में अवधी का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में किया है। रहीम का अवधी–बरवै प्रसिद्ध ही है।

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु जी, प्रताप नारायण मिश्र, सुधाकर द्विवेदी, श्रीधर पाठक, बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन ने खड़ी बोली के साथ–साथ अवधी में काव्य रचनाएं की हैं। भारतेन्दु ने अंग्रेजी शासन का समर्थन करने वाले जयचंदों को आड़े हाथों लिया है–

काहे तू चौका लगाये जय चंदवा।

अपने स्वारथ लुभाये, काहे चोटी कटवा बुलाये जयचंदवा।

प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने अवधी का प्रयोग यत्र–तत्र किया है। भारतेन्दु युग के उपरान्त द्विवेदी युग में पढ़ीस, द्वारकाप्रसाद मिश्र, वंशीधर शुक्ल, गुरुभक्त प्रसाद सिंह 'मृगेश' रमई काका काल के प्रमुख अवधी कवि हैं। पढ़ीस की 'चकल्लस' वंशीधर शुक्ल की ऋषि विलाप, बेटी वचन, मेला घुमनी अब ग्राम सुधार करो पुतवा, विश्वनाथ पाठक की सर्वमंगला त्रिलोचन की 'अमोला–अवधी की प्रसिद्ध रचनाएं हैं। आद्या प्रसाद मिश्र 'उन्मत्त' की 'पाती' विशेष महत्व की अवधी रचना है जो वीररस से ओतप्रोत है। त्रिलोचन शास्त्री की रचना 'अमोला' के विषय में शमशेर बहादुर सिंह कहते है–'त्रिलोचन का जो काव्य अवधी में बरवै छन्द में आया है उसकी तुलना केवल क्लासिक रचनाओं से की जा सकती है और वह आधुनिक भी है, उसकी भावनाएं आधुनिक हैं उसमें पुराणपंथीपन नहीं है।''[3]

भारतीय स्वतंत्रता के बाद अवधी काव्य कुछ सिमटता गया है। अवधी इस दौरान व्यापक साहित्य भाषा नहीं बन पाती और आंचलिक भाषा के रूप में लगातार सृजन का माध्यम बनी रही। हिन्दी की मुख्य धारा में आने वाले विभिन्न वादों से यह अछूती रही है। स्वतंत्रता आंदोलन एवं नवजागरण की अनुगूँज इसमें यदाकदा अवश्य सुनाई देती है किन्तु भक्तिकाल की तरह व्यापक जनभाषा का समर्थन इसे नहीं मिला। वस्तुतः जायसी और तुलसीदास की रचनात्मकता के कारण अवधी को जो सम्मान मिला वह कालान्तर में अवधी के लिए संभव नहीं हो पाया।

सन्दर्भ :

1– हिन्दी साहित्य का इतिहास–पृ0 12, प्रकाशन संस्करण, 2020 लोकभारती, प्रयागराज।

2– आचार्य हजारी प्रसाद शुक्ल हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ0–8 प्रकाशन संस्करण, 2020

3– आधुनिक अवधी काव्य–संपादक–डॉ0 महावीर प्रसाद उपाध्याय व डॉ0 रामसनेही लाल।

4– डॉ0 अरुण कुमार मिश्र बीसवीं सदी के कहानीकार राका प्रकाशन, प्रयागराज संस्करण, 2021

5– बाबू राम सक्सेना–अवधी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी का जीवन वैविध्य

जयप्रकाश
शोधार्थी, हिंदी विभाग, ओ.प्र.जो.सिं. विश्वविद्यालय चूरु, राजस्थान
पर्यवेक्षक- डॉ.नवनीता भाटिया
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, ओ.प्र.जो.सिं. विश्वविद्यालय चूरु, राजस्थान

डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के पहलुओं को शीर्षकों के सींखचों में खींचना संभव नहीं है । वे तो बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी एवं अंतरिक्ष तक अपनी पहुंच बनाने वाले, तारों से अपनी मित्रता स्थापित करने वाले, क्रांति धर्मी रचनाकार हैं। डॉक्टर बेदी का जीवन विविधता पूर्ण रहा है । कथनी करनी में समानता रखने वाले डॉक्टर बेदी अपनी रचना धर्मिता के स्तर पर कभी कोमल भावों के द्वारा संवेदनशील रचनाकार के रूप में दिखाई देते हैं तो कहीं वे पुरानी व्यवस्था के परिवर्तन के लिए कठोर हथियार(लोहे) को संभाले हुए क्रांतिकारी नजर आते हैं।

डॉक्टर बेदी के स्वभाव को समझना अत्यंत दुष्कर है इसका कारण यह नहीं कि वह एक रहस्यमय एवं उलझे हुए व्यक्तित्व के धनी हैं बल्कि इसलिए कि ज्ञान के शिखर पर पहुंचा हुआ एक व्यक्तित्व इतना सहज एवं आत्मीय कैसे हो सकता है, इसका अनुमान लगाना आश्चर्यजनक लगता है। अपने मृदुल एवं विनम्रतापूर्ण व्यवहार के कारण वे अजातशत्रु बने हुए हैं। उन जैसे व्यक्तित्व को न तो अपने पद का गर्व है और ना ही उन्हें अपनी योग्यता एवं विद्वत्ता पर दंभ। वे केवल अपने आप को एक विद्यार्थी के रूप में ही देखते हैं। समस्त हिंदी साहित्यिक जगत एवं उनके संसर्ग में आने वाले उनके मित्रगण उन्हें भली-भांति जानते हैं कि वे हमेशा से ही सबके लिए प्राण-पण से सहायतार्थ उपस्थित रहते हैं। अक्सर हम देखते हैं कि जैसे ही लोग ऊंचाइयाँ छूने लगते हैं, एक बनावटी स्वभाव एवं व्यवहार उन्हें घेर लेता है "प्रभुता पाइ कौन मद नाहीं" लेकिन बेदी जी के विषय में यह पंक्ति निरर्थक जान पड़ती है। सारस्वत प्रतिभा के धनी , सात्विक प्रकृति संपन्न डॉक्टर बेदी का स्वभाव आबालवृद्ध मित्रवत् एवं सम्मान पूर्ण रहता है। वे हँस कर बातें करते हैं, उनकी बाँहें हमेशा ही अपनत्व से दूसरों के लिए खुली रहती हैं। वे कभी भी किसी का दिल नहीं दुखाते बल्कि अपनी कोमल एवं अपनत्वसिक्त भाषा से दिलों को शीघ्र ही जोड़ लेते हैं।

मिलनसार, सेवापरायणता, अतिथिसेवी, मानवीयता, संवेदनापूर्णता, भावुकता, भोलापन, नैतिकता जैसे गुण बेदी जी के पर्याय हैं। वे किसी को भी परेशानी में देखकर अत्यंत द्रवित हो उठते हैं एवं सहायतार्थ हमेशा सन्नद्ध रहते हैं। वे कभी अपने काम का ढ़िढोरा नहीं पीटते बल्कि अपने व्यवहार द्वारा ही वह दूसरों के दिलों पर राज करते हैं । डॉक्टर बेदी की आँखें जमाने की पीड़ा को देखकर कराह उठती हैं एवं दु:खी मनुष्यता से उनकी आंखें तरल हो उठती हैं। डॉक्टर शहरयार कहते हैं कि- "बेदी जब कविता लिखता है तो उसे विरानी, दहशत, वहशत, भिगोचा और साजिशें घेर लेती हैं लेकिन वह इस युद्ध तंत्र में अकेला नहीं। निहत्था आदमी बेबसी में चुप कर जाता है। वह चुप नहीं होता। निहत्था आदमी बेबसी में सिर्फ गालियां दे सकता है, वह

गालियाँ भी नहीं देता। वह क्षमा याचना भी नहीं करता। फिर वह करता क्या है ?वह कविता लिखता है और यही इस कविता की सार्थकता है।" उपर्युक्त पंक्तियां डॉक्टर बेदी के स्वभाव की शत-प्रतिशत वाचक हैं।

डॉक्टर बेदी बचपन से ही अध्ययन में रुचि रखने वाले इंसान हैं। ज्ञान के अथाह सागर में आज भी वे मोती खोजने वाले गोताखोर हैं। आज भी वे अपने आप को एक जिज्ञासु विद्यार्थी ही मानते हैं। वह कहते हैं मन करता है- खूब-खूब पढ़ता रहूं। अनुशासनबद्धता उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता है। वे मौज-मस्ती या केवल टाइमपास के लिए न कभी पढ़ते हैं और नहीं कभी लिखते हैं। उनका मानना है कि साहित्य एक गंभीर विषय है। इस पर सोच समझकर ही आगे बढ़ना चाहिए। सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व को वे सर्वोपरि मानते हैं। उनका जीवन खुली किताब के समान है। उनके व्यवहार को आसानी से पढ़ा जा सकता है। डॉक्टर बेदी अक्सर कहा करते हैं कि - आदमी अलग अलग नहीं होता, यह नहीं कि बाहर अच्छा है तो घर में नहीं और अगर बाहर कोई छल कपट करता है तो वह घर में नहीं करेगा। देर सवेर ऐसा उससे खुद ब खुद हो जाएगा। वे जब किसी के साथ मित्रता का निर्वाह करते हैं तो उसमें जी जान लगा देते हैं। उन्हें कभी भी अपने पद का मद नहीं हुआ। उनकी मित्रता का दायरा काफी विस्तृत है जिनमें बहुत सारे विद्यार्थी, उनके मित्रगण, लड़कियां, लेखक, गुरुजन आदि सभी शामिल हैं। उनके व्यक्तित्व में वह चुंबकीय प्रभाव है कि एक बार कोई उनसे साक्षात्कार करता है तो वे उसे लंबे समय तक मित्रता के बंधन में बाँध लेते हैं। मित्रों की मंडली अक्सर उनके घर पर विराजमान रहती है। बेदी जी सादे लिबास में कुर्ता पाजामा पहने सोफ़े पर बैठे होते हैं और अपने मित्रों, विद्यार्थियों, साहित्यकारों के साथ वे लंबी लंबी चर्चा- परिचर्चा करते हुए देखे जा सकते हैं। इनके व्यक्तित्व में सादगी एवं सहजता इतनी है कि बड़ी से बड़ी चुनौती के लिए भी कभी इन्हें असहज होते नहीं देखा गया। मानो क्रोध तो इन्हें आता ही नहीं ।बेदी जी समय के पाबंद हैं। समय की महत्ता यह अच्छी प्रकार समझते हैं। इनके सभी कार्य समय से पूर्व ही संपन्न हो जाते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ कि समयाभाव के कारण कोई कार्य बिगड़ गया हो। कभी-कभी तो यह किसी समारोह में समय से पूर्व पहुंच कर दूसरों की परेशानियों का सबब बन जाते हैं। इनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता जब यह पाते हैं कि अमुक आदमी का काम मेरे कारण बन गया है अर्थात् परदु:खकातरता इनके व्यक्तित्व गुण है।

बेदी गुरु मत परंपरा की विचारधारा पर चलने वाले आस्तिक व्यक्ति हैं। जब कभी ये किसी काम पर निकलते हैं, पहले गुरु जी के यहां माथा टेकना नहीं भूलते, अरदास करते हैं और अक्सर दोहराते हैं कि मुझसे किसी का नुकसान ना हो। सुबह घर में गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ करना इनकी नियमित दिनचर्या में शामिल है। बेदी जी कवि होने से पूर्व एक अच्छे श्रोता हैं । यह अक्सर आगंतुक की बात को अच्छी प्रकार से सुनते हैं उसका विश्लेषण करते हैं, विवेचन करते हैं, तब जाकर निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। यह दूसरों की प्रशंसा करने से कभी नहीं चूकते। दूसरों को प्रेरित करना बेदी जी का शगल रहा है। व्यक्ति के आत्मविश्वास को डगमगाए बिना उसे सही दिशा में अभिमुख करना बेदी जी का मुख्य ध्येय रहा है। कविवर बेदी काव्य के गौरव को बखूबी समझते हैं। यह कविता को बहुत ऊँची एवं पवित्र चीज मांगते हैं। वे कहते हैं कि कविता किसी ऐरे- गैरे को नहीं सुनाई जाती। इसके लिए कविता को समझने वाला सुपात्र होना चाहिए।

डॉक्टर बेदी शुद्ध शाकाहारी हैं, जहां तक अंडे से भी परहेज करते हैं। उनका एक ही शौक है वह है साहित्य साधना में डूबना। इन्हें कभी भी अपने कमरे में अख़बार पढ़ते हुए, किताबों में खोए हुए, फोन पर लंबी - लंबी चर्चा - परिचर्चा करते हुए देखा जा सकता है।

वे एक जिम्मेदार प्रोफेसर, एक जिम्मेदार गाइड, एक जिम्मेदार कवि, एक जिम्मेदार आलोचक रहे हैं और इन सबसे ऊपर वे एक जिम्मेदार राष्ट्रभक्त इंसान हैं। वे एक अपार ऊर्जा संपन्न साहित्यकार हैं जो

आगंतुकों से हमेशा ही गर्मजोशी से मिलते हैं एवं आने वाले को यह मलाल नहीं होता कि उसे बेदी से मिलकर कुछ हासिल नहीं हुआ। वे अप्रतिम प्रेरणा पुंज हैं । पंजाब का हिंदी साहित्यकार चाहे कहीं भी हो पंजाब से बाहर बसे पंजाब के हिंदी रचनाकारों की उन्हें सदा ही फिक्र बनी रहती है। वह यारों के यार हैं वह हमेशा इस बात की चिंता करते हैं कि अमुक साहित्यकार पर कोई शोध कार्य क्यों नहीं हुआ और वह अपने बहुत सारे शोधार्थियों को इस ओर प्रेरित कर हिंदी साहित्य को योगदान देने वाले पंजाबी साहित्यकारों पर शोध कार्य के लिए उन्हें प्रेरित करते रहे हैं । वे तो एक ऐसे पारस हैं जिनके स्पर्श मात्र से ही कितने साहित्यकारों के सपने कुंदन बन निखर जाते हैं। कितने ही शोधार्थी उनकी प्रेरणा मात्र से अपने सपनों को साकार कर लेते हैं। डॉ हरमहेंद्र सिंह बेदी हिंदी एवं हिंदी साहित्य के उद्धार के लिए अनथक सतत प्रयासरत रहते हैं । इसके लिए वे देश- विदेश की यात्रा करना सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। यात्रा को वे जरूरत से ज्यादा जिम्मेदारी समझते हैं। वे देशभर में सेमिनारों, कवि सम्मेलनों, गोष्ठियों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। इन्हें केवल पंजाब के हिंदी साहित्यकारों की ही नहीं बल्कि भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में बसे हुए हिंदी साहित्यकारों की चिंता बनी रहती है। वे यथासंभव उन तक पहुंच कर उन्हें साहित्यिक मदद के साथ-साथ उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे हैं। पंजाब के समकालीन हिंदी साहित्यकारों में डॉ हरमहेंद्र सिंह बेदी हिंदी सेवी एवं साहित्य प्रेमी के रूप में जाने जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

1. कविवर हरमहेंद्र सिंह बेदी- संपादक डॉ. रामसजन पांडेय, निर्मल पब्लिकेशन दिल्ली।
2. पारसमणि- त्रिवेणी साहित्य अकादमी जालंधर, संपादक डॉ. गीता डोगरा।
3. प्रोफ़ेसर हरमहेंद्र सिंह बेदी अभिनंदन ग्रंथ- संपादक डॉ. महेश दिवाकर, अखिल भारतीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश भारत।
4. कवि हरमहेन्द्र सिंह बेदी रचनावली- संपादक डॉ. रामसजन पांडेय निर्मल पब्लिकेशन दिल्ली।

EFFECT OF COVID-19 PANDEMIC ON THE INFLOW OF FDI INTO INDIAN ECONOMY

Author Name: - Shambhu Sharan
Affiliation: - Research Scholar,
Univ. Deptt. of Economics,
T.M. Bhagalpur University, Bhagalpur

Abstract:

Covid-19 has battered the global economy causing the worst recession since The Great Depression of the1930s. By the end of 2020, the worlds GDP maybe about 7.5% lower than it would have been without the pandemic. Globally more than 15% of the young people who were in work before the Covid-19 have lost their jobs. Widespread lockdowns have caused changes that were already affecting the world economy in technology, finance and trade. With great deal of uncertainty in the transactional space, investors are now more cautious before making any making any significant transactions. Global FDI flows fell by more than 49% in the first half of 2020 and even under the most optimistic scenario after the economic support policy measures by the governments, the numbers don't seem to be getting better. The developing countries are hit even worse because the sectors attracting the largest shares of FDI such as primary and manufacturing sectors are hit the worst. FDI being a critical driver of the economic growth could play an important role in supporting the economies during and after the crisis.

Keywords: FDI, Pandemic., Economic, Lockdowns, Covid-19, Economy

1. Introduction

Corona virus disease (COVID-19) was first reported in Wuhan, People's Republic of China in December 2019 and spread worldwide. In an attempt to control the spread of the virus, many countries introduced social distancing and lockdown orders and imposed entry bans on foreigners, severely curtailing economic activity. According to the International Monetary Fund (2021), the global economy in 2020 contracted 3.2% and global trade by 8.3%. The pandemic caused a more dramatic fall in foreign direct investment (FDI) in 2020. According to United Nations Conference on Trade and Development (2021), global FDI flows dropped by 35% to $1 trillion in 2020, from $1.5 trillion in 2019.

Thus, in 2020, global FDI decreased more considerably than global gross domestic product or trade. The severity of COVID-19 in the home country can also have a negative impact by reducing investment capital. Investors may face increased business constraints at home, need to minimize theloss of home business and thus may not afford to invest abroad. This reduces the number of investors.

On the other hand, the damage caused by COVID-19 in the home country may induce outward FDI. One channel of this positive effect is the increase in export-platform FDI to less damaged countries. Firms may switch their export base from home to abroad to continue production activities. The other channel is the rise in transport costs. The mobility restriction induced by the COVID-19 pandemic reduces the handling capacity of freight due to the

shortage of truck drivers and port laborers, there by increasing both domestic and international transport costs. Thus, firms may switch from exporting from home to producing abroad and selling domestically in the host country. So-called horizontal FDImay increase due to the increase in transport costs.

The second dimension is manufacturing versus services. To contain the spread of COVID-19, many countries imposed various restrictions on business operations. In general, the work-from-home model is more difficult in manufacturing than in services. Investors cannot initiate a new business abroad if work-from-home is an infeasible option for their business operations, e.g., production operation in factories. A similar effect may exist in some service sectors (e.g., transportation and warehousing, construction, retail trade, and accommodation and food services).

2. Review of literature

The review of literature guides the researchers for getting a better understanding of the methodology used, limitations of various available estimation procedures and data bases, and lucid interpretation and reconciliation of the conflicting results. There are many type of research on the impact of remittances. Since the paper focuses on GDP, FDI, Unemployment, Digital banking service, this section will review the appropriate and related studies to get a better idea of the selected topic.

Comes et al. (2018) explained the connection between remittances, foreign direct investment, and economic growth, using panel data from seven countries from Central and Eastern Europe covering the period 2010–2016. The empirical result show the positive effect of remittances and foreign direct investments on economic growth for all selected states.

Meyer and Shera (2017) studied the various impacts that remittances have on the economic growth of six high remittances receiving countries, Albania, Bosnia Herzegovina, Bulgaria, Romania, Macedonia and Moldova using panel data set over the period 1999–2013. Regression results show a positive and significant contribution of remittances in the economic growth of the selected six countries.

Azam (2015) examined the role of remittances in fostering economic growth in Bangladesh, India, Pakistan and Sri Lanka and found the positive impact of remittances on economic growth in all countries. Besides these studies, Barajas et al. [2009] concluded that workers' remittances do not have any impact on economic growth in developing countries by employing the panel dataset of 84 countries over the period from 1970 to 2004.

Rao and Hassan (2011) conducted a study on 40 high remittance recipient countries using a System GMM panel data analysis. The exact outcome communicates the direct growth effects of remittances and the growth effects of the channels through which remittances may affect growth by treating as conditioning variables. The study finds that remittances indirectly facilitate economic growth by increasing the ratio of Broad Money (M2) to GDP.

Conversely, Chami et al.(2005) included 113 countries in their research and concluded that remittances have a negative impact on GDP growth using panel data of 29 years over the period 1970–1998. They found a negative correlation between the remittance's growth and economic growth. They identified the role of remittances as an altruistic which is not profit driven.

3. Objectives of study

- To study the impact of COVID-19 on FDI inflow

- To understand the concept of COVID-19

4. Data Analysis

For the first quarter of the FY-20, FDI equity inflows dropped by 62% and as they form a major portion of the Net FDI, Net FDI fell by 59%. Equity inflows dropped in the first quarter and saw a steep rise of 16% in the second quarter bringing in $20 Bn of equity FDI which was mostly fueled by tech investments by Google, Facebook, Amazon and such. Reinvested earnings saw little to no change from March to September, whereas other capital flows gradually declined from March to September with an exception for June.

Table 4.1 Impact of FDI Inflow

Year	2015	2016	2017	2018	2019	2020
FDI Inflow	55559	60220	60974	62001	74390	67542

Source: RBI 2020, WORLD BANK 2020

Figure 4.2 FDI Inflows vs. Outflows (in US $ million)

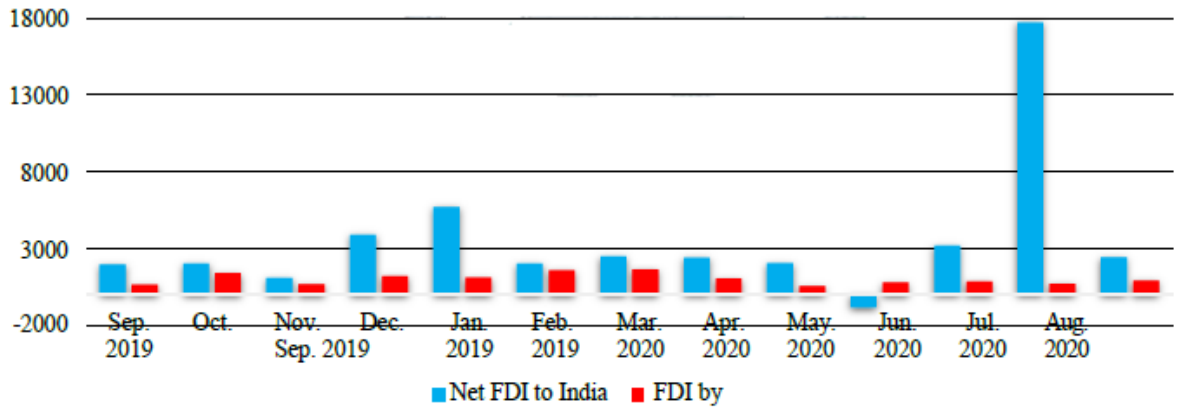

Source: RBI 2020, WORLD BANK 2020

Figure 4.2 % change of Inflows during Covid-19

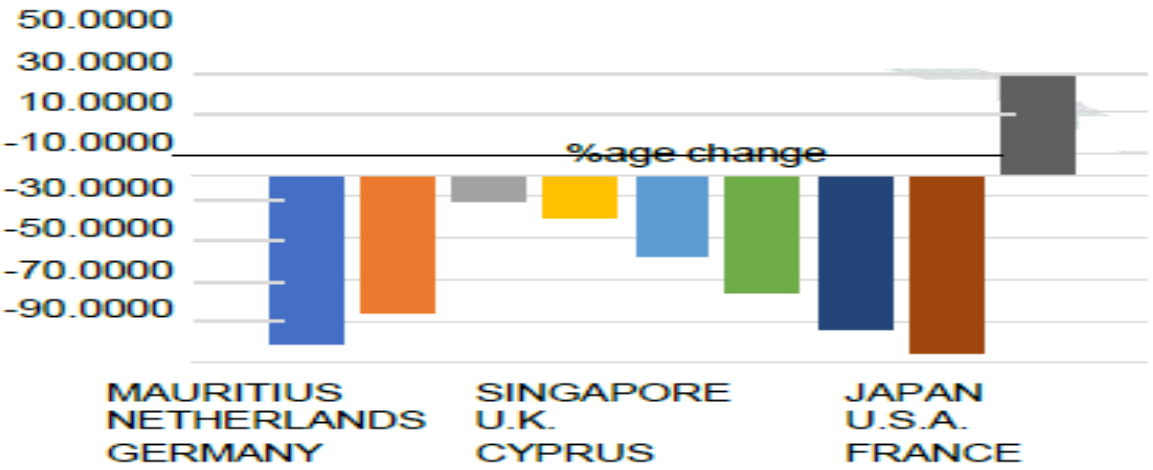

Source: RBI 2020, WORLD BANK 2020

Figure 4.3Contribution by country

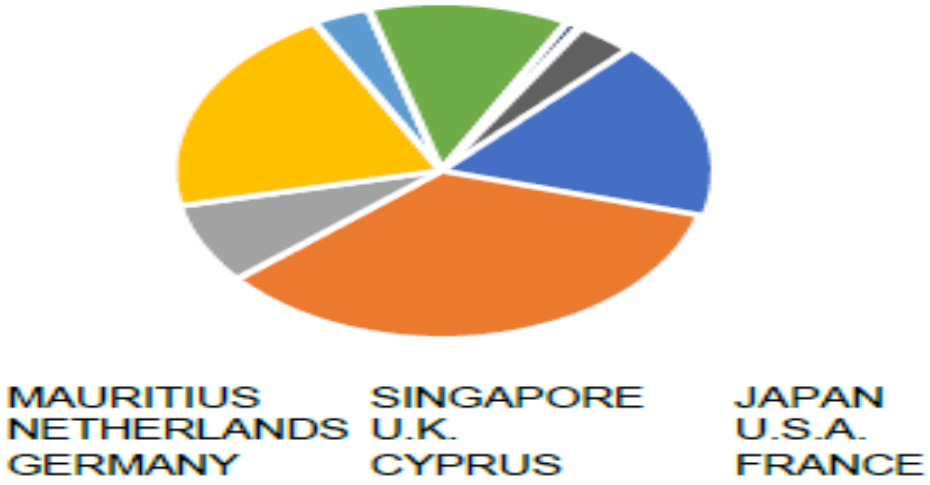

Source: RBI 2020, WORLD BANK 2020

For the first quarter of FY-20 most countries saw a major decline in their contributions towards equity inflows with Mauritius and Singapore falling by 80.7% and 65.8%, with only one exception France, which saw a growth in its contribution by 48.7%. Singapore emerged as the largest contributor of FDI bringing in $1.82 Billion followed by the Netherlands, Mauritius, the US, and Japan.

Figure 4.4 FDI Equity inflows by State 2020-21 (April – June)

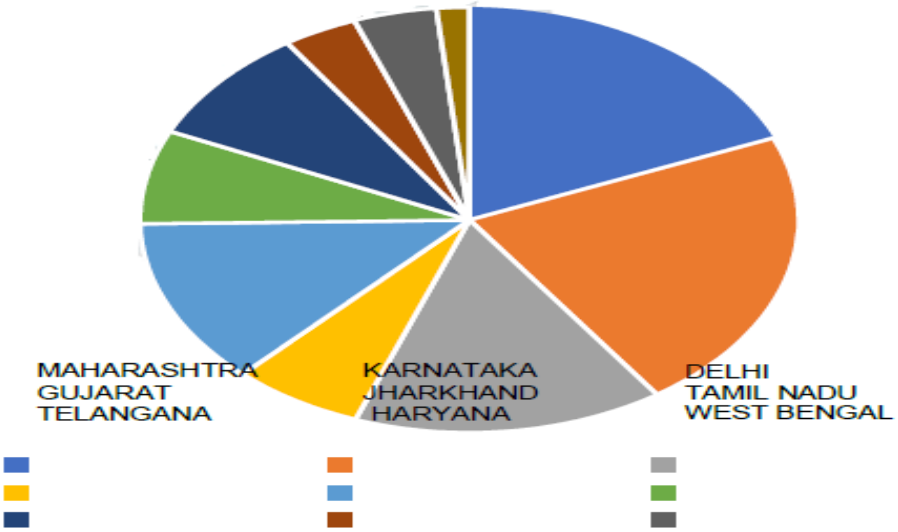

Source: RBI 2020, WORLD BANK 2020

During the first quarter of FY-20, thestates which attracted the most FDI include Karnataka, followed by Maharashtra, Delhi, Jharkhand, and Gujarat. The states which saw the largest decline in FDI inflows include Delhi, Karnataka, Tamil Nadu, Gujarat and Andhra Pradesh.

Table 4.2 Regression Analysis

SUMMARY OUTPUT								
Regression Statistics								
Multiple R	0.9909476							
R Square	0.9819771							
Adjusted R Square	0.8668609							
Standard Error	575.94169							
Observations	12							
ANOVA								
	df	*SS*	*MS*	*F*	*Significance F*			
Regression	3	162658208.5	54219403	163.4548	1.62355E-07			
Residual	9	2985379.461	331708.8					
Total	12	165643588						
	Coefficients	*Standard Error*	*t Stat*	*P-value*	*Lower 95%*	*Upper 95%*	*Lower 95.0%*	*Upper 95.0%*
Equity	1.8147622	0.241502822	7.514456	3.64E-05	1.268444898	2.3610796	1.268444898	2.36107957
Reinvested earnings	-1.8149319	0.565259573	-3.21079	0.010645	-3.09363794	-0.536226	-3.09363794	-0.53622596
Other capital	-1.0896933	0.564072058	-1.93183	0.085421	-2.36571293	0.1863264	-2.36571293	0.18632636

Regression is a statistical method used to determine the dependence of a dependent variable on a group of independent variables. For our analysis we'll choose the variables as follows:

Y = dependent variable = Net FDI

X = independent variable = Equity, Reinvested Earnings and Other Capital After

running regression, we get the following results:

Figure 4.5 Line of Best Fit

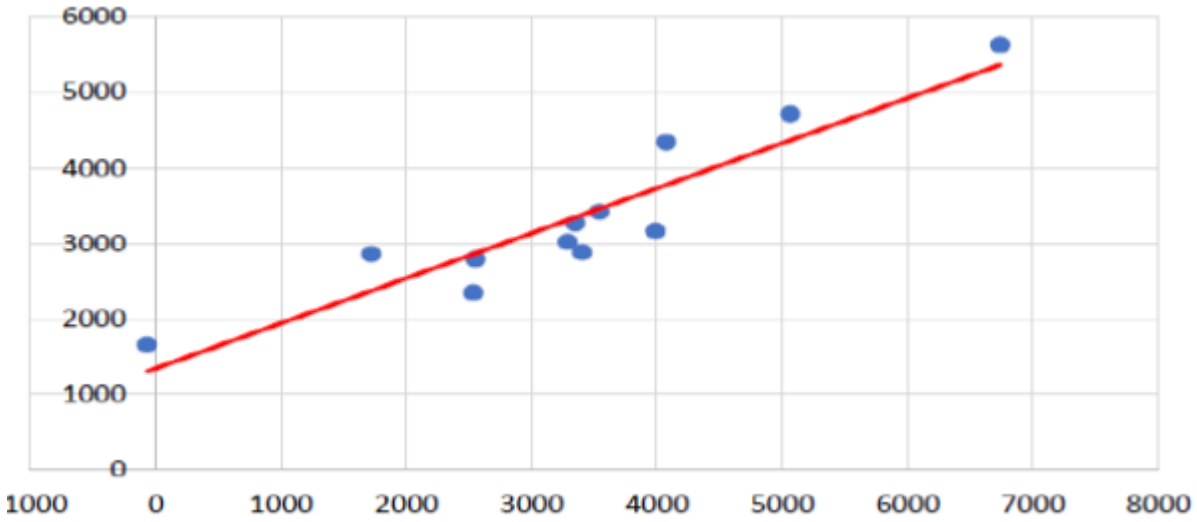

5. Findings

R-Squared value is 0.9819 or 98.19%, which is a very good fit. This means that 98.19% of the of the variation in Net FDI can be explained by the chosen independent variables which are Equity,

Reinvested Earnings and Other Capital.

F and P-values: Significance F is very small which means our result is statistically significant because the value is less than 0.05. P-value for Equity is very small which means Equity is a good fit (almost 100%) for Net FDI. For Reinvested Earnings, the P-value is 0.010645, which means we can say with 99% confidence that Reinvested Earnings is a good fit. For Other Capital P-value is 0.08542 which means this isn't significant as it is greater than 0.05

Coefficients: Regression line is: Y = 1.8147*(Earnings) – 1.81*(Reinvested Earnings). From this equation we can say that for 1 unit increase in Equity, Net FDI increases by 1.814 units and for each unit increase in Reinvested Earnings Net FDI decreases by 1.8 units. From this equation we can also estimate any variable if we know the other two variables.

Line of best fit: This line of best fit expresses the relationship between the actual values and the

estimated values. As the line obtained in our case is linear, we can say that the dependent variable varies linearly with the independent variable.

6. Conclusion

The Covid-19 pandemic brought turmoil on the whole world and India was no exception. The first quarter of FY-20 saw a contraction in GDP by 22.6%. This decline had adverse effects on all economic areas including FDI which saw a contraction of 59% in the first quarter FY-20. But due to government's favorable business environment and revision of FDI policies, FDI inflows saw a 16% surge in the coming months driven mostly by technical and telecommunication investments. Also, India's self-reliance scheme (Atmanirbhar Bharat) has attracted investments from players such as Foxconn to setup manufacturing plants in the

country. China's feud with the US has also proved to beneficial for India as many big manufacturing companies have shifted their production and operations to India which will boost India's growth and image as a global player.

In the coming years, India is going to be one of the most attractive emerging markets for global investments. Annual FDI inflow in the country is expected to rise to $75 Billion over the next five years according to a report by the UBS. Also India's goal of becoming a $5 Trillion economy by 2025 will surely boost the investments incoming years. This is going to be a major sustainability reason for India by welcoming more FDIs.

References

Books

1. Agarwal, B. (2014). Foreign institutional investors and the Indian IPO market—An investigation from 2009 to 2011. Asia-Pacific Journal of Management Research and Innovation, 10(3), 203-210.
2. Alfaro, L. (2003). Foreign direct investment and growth: Does the sector matter. Harvard Business School, 2003, 1-31
3. Gordon, J., and Gupta, P. (2005). Understanding India's services revolution. India's and China's Recent Experience with Reform and Growth (pp. 229-263). Palgrave Macmillan, London.
4. Pal. J. (2011). International Business (Fifth Edition). New Delhi: PHI Learning Private Limited.

Journals

1. Das, C. B., & Sutradhar, S.R. (2020). *The impact of COVID-19 Pandemic on the Inflow of Remittances: Perspective of Bangladesh.* MPRA Paper. https:||mpra.ub.uni-muenchen.de\101083.
2. C. A., Bunduchi, E., Vasile, V., & Stefan, D. (2018). The impact of foreign direct investments and remittances on economic growth: A case study in Central and Eastern Europe. *Sustainability,10* (1), 1–16.
3. Meyer, D., & Shera, A. (2017). The impact of remittances on economic growth: An econometricmodel. *Economia, 18* (2), 147–155.
4. Azam, M. (2015). The role of migrant workers remittances in fostering economic growth: The four Asian developing countries' experiences. *International Journal of Social Economics, 42* (8), 690–705.
5. Barajas, A., Gapen, M. T., Chami, R., Montiel, P., & Fullenkamp, C. (2009). *Do workers' remittances promote economic growth?* (No. 2009-2153). International Monetary Fund.
6. Rao B. B. & Hassan G. M. (2011), "A panel data analysis of the growth effects of remittances", Economic Modeling, 28(1-2), 701-709.

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य की पृष्ठभूमि तथा प्रतिपाद्य

नूतन सिंह

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
नागरिक पी0जी0 कॉलेज, जंघई, जौनपुर

साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब उसकी रचनाधर्मिता में दिखायी देता है। रचनाकार जो कुछ भी देखता है, महसूस करता है, रचना की पृष्ठभूमि उसी से निर्मित होती है और वाणी उसे शब्दों द्वारा साहित्य में बदल देती है। कथाकार दूधनाथ सिंह जी की रचना प्रक्रिया भी उनके अनुभवों का सकारात्मक रूप ही प्रदर्शित करती है। इनकी रचना धर्मिता, चिन्तन की मौलिकता, दर्शन की गम्भीरता, भारतीय सभ्यता और संस्कृति गुरु–गम्भीर ज्ञान से इनकी आसक्ति और मोह भावना से इनका लेखकीय व्यक्तित्व पूरी तरह से ओतप्रोत रहा है। अपने भावों तथा विचारों को रूप देने के लिए मानव वंश में प्रथम तो मूक संकेतों से काम लिया होगा। किन्तु जब वह पर्याप्त नहीं पड़े एवं सत्य–स्थापना में समर्थ नहीं हुए, तब भाषा का आविष्कार कर लिया, प्रेमचन्द ने भाषा एवं कथा का जन्म साथ ही माना है वे कहते हैं–

''कहानी का जन्म तो तभी हो गया था जब मानव ने बोलना सीखा।''[1] इसी बात को डॉ0 देवराज बड़े अलंकारिक शैली में व्यक्त करते है– ''जिस तरह हवा में छोटे–छोटे कीटाणु सदा तैरा करते हैं उसी तरह कथा के संकेत कहाँ नहीं है ? सारा विश्व ही वृहद कथा है जिसका दामन जरा सा निचुड़ा नहीं कि फरिश्ते उसमें बजू कर धन्य–धन्य करने लगते है।''[2]

साहित्य दर्पणकार ने भी गद्य काव्य के अवान्तर भेदों में कथा और आख्यायिका इन दो साहित्य रूपों की व्याख्या की है। उनके अनुसार कथा में सरस वस्तु, गद्य में कही जायेगी। उसमें कहीं आर्या छन्द भी होंगे और कहीं–कहीं वक्त और उपवक्त छन्द भी। किन्तु दण्डी इस प्रकार के भेद को नहीं मानते। उनके अनुसार यह भेद व्यर्थ का है, क्योंकि कहानी नायक कहे या कोई दूसरा कहे, इसमें क्या बन या बिगड़ जायेगा। फिर वक्त या उपवक्त छन्द हो या न हो, किसी में उच्छवास नाम देकर अध्याय–भेद किये गये हों और किसी में लंभ नाम देकर, तो इन बातों से कहानी का क्या बनता बिगड़ता है। यह तो नितान्त परी बात है। इसलिए वस्तुतः कथा व आख्यायिका यह नाम ही भर है दोनों एक ही जाति की चीजें है।[3] परन्तु कथा और आख्यायिका नाम से प्रचलित ग्रन्थों के विश्लेषण के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि कथा की कहानी कल्पित हुआ करती है और आख्यायिका की ऐतिहासिक कादम्बरी कथा है और हर्ष चरित्र आख्यान। ध्वन्यालंकार आचार्य आनन्दवधर्न ने कथा के सम्बन्ध में कहा है कि उसमें गद्य की संगठित रचना की बहुलता होने पर भी बन्ध–वृत्ति, रसगत औचित्य के अनुसार ही संगठन का निर्माण होना चाहिए।[4] प्राचीन समय से चली आ रही कथा परम्परा का अपना विशिष्ट कलेवर रहा है।

संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद माना जाता है। उसमें भी कथा बीज रूप में विद्यमान हैं किन्तु कथा के वर्तमान स्वरूप की सम्भावना उस युग में करना हास्यास्पद ही है। आधुनिक समय में जब साहित्य व चिन्तन के प्रतिपाद्य विषय युग के तेवर के साथ बदल रहे हैं, कथा का स्वरूप भी निश्चित ही बदला है। सम्प्रति कथा को अंग्रेजी फिक्शन के हिन्दी पर्याय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। हिन्दी में कथा के रूप में उसके जिस स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है, वह निःसंदेह पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है। इसलिए आधुनिक कथा साहित्य को सामान्यतया एक ऐसे साहित्य रूप के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है जिसमें कहानी और उपन्यास दोनों समाहित हों।

सामान्यतः उपन्यास और कहानी दोनों सजातीय माने जाते हैं। यहाँ तक कि प्रारम्भ में छोटे उपन्यास को ही कहानी कहते थे, किन्तु मुद्रण कला के आविष्कार के साथ सामयिक पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार का जो दौर प्रारम्भ हुआ, उसने छोटी कहानियों का बहुत प्रचार किया और कालान्तर में उसने स्वतंत्र विधा के रूप में स्वयं को साहित्य में प्रतिष्ठित कर लिया। कोई उपन्यास या छोटी कहानी सफल है या नहीं इस बात की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहने वाले ने कहानी ठीक–ठीक सुनाई है या नहीं, अनावश्यक बातों को तूल तो नहीं दिया है। जहाँ–जहाँ कहानी अधिक मर्मस्पर्शी हो सकती थी, वहाँ–वहाँ उसने उसे उचित रीति से सम्हाला है या नहीं, छोटी–छोटी बातों में ही उलझकर तो नहीं रह गया। लोक–कल्याण भावना और लोक–रंजक तत्व का जितना सुन्दर समन्वय इस विधा में होता दिखायी देता है उतना साहित्य की किसी अन्य विधा में नहीं मिलता। ऐसे सशक्त माध्यम के रूप में कहानी मानव–प्रकृति में नहित प्रेरणाओं के अर्न्तविरोध की अभिव्यक्ति कर सकी है तो इसे इसकी सार्थक उपलब्धि माना जाना चाहिए।

आधुनिक कहानी के सूत्रधार प्रेमचन्द की दृष्टि में कहानी का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अंश दिखाना है। वर्तमान आख्यायिका मनोविज्ञान विश्लेषण और जीवन यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है इसमें कल्पना की भाषा कम अनुभूति की मात्रा अधिक रहती है। इतना ही नहीं है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।[5] क्रमशः वे अपना मत स्पष्ट करते हुए पुनः कहते हैं– ''कहानी ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति–भाँति के फूल और बेलबूटे सजे हुए हों। बल्कि वह एक गमलाहै जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।''

उपन्यास या कहानी दोनों कथात्मक गद्य साहित्य के रूप हैं। दोनों में तत्वगत एकता के दर्शन होते हैं। दोनों ही विधायें अपने कलात्मक रूप से मानव–जीवन पर प्रकाश डालती हैं। कुछ विद्वान उपन्यास और कहानी में आकारगत भेद ही मानते है, मूल आत्मा में दोनों समान होने के कारण कहानी छोटी, उपन्यास बड़ी कहानी के रूप में निरूपित किया गया है। दोनों की कथावस्तु श्रोताओं और पाठकों में कौतूहल जगाकर उनको अपनी ओर आकर्षित करती है। दोनों में तत्वगत एकता होने पर भी उनके आकार और व्याख्या में पर्याप्त अन्तर है।

उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक, संवाद लम्बे तथा वातावरण का फलक विशद होता है। उपन्यास में अधिकारिक कथा के साथ कई गौण कथाएं होती हैं जबकि कहानी में एक कथा ही होती है। उपन्यास में मानव जीवन के व्यापक अंगों पर प्रकाश डाला जाता है और कहानी में किसी एक अंग की झांकी मिलती है। कहानी लेखक को अर्जुन की भाँति केवल पक्षी के सिर आँख पर टिकानी होती है अन्यथा निशानाचूक जाने की अधिक सम्भावना रहती है।

कहानी का प्रेरक कोई एक ही मार्मिक विचार होता है। जैसे– यदि बन्द दरवाजे के भीतर से एक छोटे छिद्र के सहारे बाहर के किसी उपवन में झाँका जाये तो गुलाबों का एक राजा अपनी हरी–हरी डाली पर मस्ती से झूमता दिखाई पड़ेगा वह अपनी कोमल रमणीयता में अपूर्ण खिला मिलेगा इसके उपरान्त यदि दरवाजा पूरा खोल दिया जाये तो विशाल उपवन का मनोरम दृश्य सामने खुल पड़ेगा, इस उदाहरण में छिद्र के माध्यम से दिखाई पड़ने वाला गुलाब कहानी के रूप में कहा जायेगा और उपवन की दिव्य सामूहिकता उपन्यास की प्रतिनिधि मानी जायेगी दोनों ही अपने दो रूपों में सर्वथापूर्ण है। उपन्यास और कहानी में तकनीक (शिल्प) का अन्तर उन्हें पृथक रूप प्रदान करता है। कहानी में चरित्र के विकास के लिए अधिक अवकाश नहीं होता। वहाँ गढ़े–गढ़ाएं पात्रों की झलक दिखाई पड़ती है। कहानी में पात्रगत परिवर्तन भी किसी एक घटना के द्वारा ही आता है। उसमें उपन्यास की भाँति सुनार को सौ चोटों की जरूरत नहीं वरन् लोहार की एक गहरी चोट ही काम कर जाती है। कहानी की शैली में संक्षिप्तता के कारण व्यंजना प्रधान रहती है। इसमें गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति रहती है, जबकि उपन्यास में इसका अभाव रहता है। डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त उपन्यास और कहानी में भेद सीापित करते हुए कहते है कि–

''उपन्यास की गति शिथिल होती है, बैलगाड़ी में बैठे हुए राहगीर की भाँति वह अपने दाए–बाए झाँकता हुआ धीरे–धीरे आगे बढ़ता है जबकि कहानीकार वायुयान की चाल से अपने लक्ष्य की ओर सीधा दौड़ता है। उसके दायें–बायें क्या हो रहा है ? इसको देखने का अवकाश उसे नहीं रहता।''[6]

अपनी व्यापकता में उपन्यास न जाने कितनी समस्याओं का समाधान करने का लक्ष्य छिपाए रखता है। उसे किसी एक प्रतिपाद्य के प्रति मोह नहीं होता उसमें देश काल की सारी समस्याएं समाहित रहती हैं। इसी से एक सफल उपन्यासकार दावा कर सकता है कि यदि कालान्तर में उस समय का इतिहास खो भी जाए और मेरे उपन्यास बने रहें तो उनमें उस काल का इतिहास सरलता से पाया जा सकता है, पर कहानीकार में यह महत्वाकांक्षा स्वप्न में भी नहीं आ सकती और यही विषय का एकत्व उपन्यास में सम्भव नहीं है। कथा साहित्य एक साधारण अनुभूति है जो विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण करती है। चाहे जैसी भी जीवन की गतिविधि हो सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक दृष्टिकोण अवश्य प्रभावित होता है।

समाज की जीवन धारा को प्रवाहित करने वाली समस्त प्रवृत्तियों, रूढ़ियों, विचारधाराओं के फलस्वरूप कथा साहित्य में पात्रों की रचना, घटनाओं का संयोजन एवं समस्याओं का विश्लेषण होता है। विभिन्न स्तरों से लेखक अपनी शक्ति एवं क्षमता के आधार पर उन्हें सजाता संवारता है।

दूधनाथ सिंह एक उच्चकोटि के कहानीकार, उपन्यासकार और कवि ही नहीं, एक वरिष्ठ और सफल प्राध्यापक भी रहे हैं। इनके अब तक कुल पाँच कहानी संग्रह तो बहुत चर्चित हुए ही हैं, साथ ही दो उपन्यास 'निष्कासन' और 'आखिरी कलाम' भी विशेष लोकप्रिय हुए हैं। इसके अतिरिक्त पौराणिक कथा पर आधारित इनका नाटक 'यमगाथा' भी प्रसिद्ध रहा है। कवि–रूप में इनहोंने आधुनिक भाव–बोध और सामाजिक सरोकारों से सम्पन्न कविताओं का सृजन किया है। इनका सर्वप्रथम कविता संग्रह 'एक और भी आदमी है' के नाम से प्रकाशित होकर समीक्षकों द्वारा सराहा गया था। विशेष रूप से इनकी एक लम्बी कविता 'सुरंग से लौटते हुए' वर्तमान युग, समाज और व्यवस्था की विसंगतियों का यथार्थपरक निरूपण करने वाली मानी गयी है। विभिन्न वाह्य एवं आनतरिक अनुभूतियों, मान्यताओं तथा संवेदनाओं के मिश्रण से निर्मित मनुष्य का व्यक्तित्व विश्लेषण के लिए एक गहन समस्या बन जाता है।

जड़ वस्तुओं का विश्लेषण जहाँ विज्ञान का एक सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है, वहीं मानव के व्यक्तित्व का विश्लेषण अथवा उसकी विशेषताओं का आकलन एक जटिल प्रश्न के रूप में उभर कर आता है। सामान्य व्यक्ति के व्यक्तितव को उसकी चरित्रगत विशेषताओं के साथ एक साहित्यकार के साहित्य में अभिव्यक्त करने के प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में हम जब साहित्यकार के व्यक्तित्व को विश्लेषित करने का निश्चय अथवा प्रयास करते हैं तो स्थिति बहुत गम्भीर हो जाती है, क्योंकि उसके व्यक्तित्व में न जाने कितने पात्रों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व जुड़ा होता है।

ऐसे में यद्यपि हम उसे शब्दों में बाँधने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन वह पूर्णतः नहीं, अपितु अंशतः ही ठीक हो सकता है। उसका अपना व्यक्तित्व उसकी रचनाओं के माध्यम से देखा जा सकता है जो भाषा और शैली के माध्यम से अभिव्यक्त होता है अथवा उसके पात्रों के माध्यम से, विभिन्न स्थितियों तथा स्थितियों के अनुरूप व्यवहार के माध्यम से स्पष्ट होता रहता है। विवेच्य कथाकार श्री दूधनाथ सिंह का व्यक्तित्व भी इसी मत की पुष्टि करता है।

दूधनाथ सिंह आत्मविज्ञापन और प्रचार से पर्याप्त दूर रहे हैं। वे एक प्रबुद्ध प्राध्यापक, समीक्षक, कवि, कहानीकार और सबसे बढ़कर एक निराले व्यक्तित्व के स्वामी रहे हैं। इनकी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में आज के आदमी की बेबसी, अनुभव की कड़कड़ाहट, जीवन के अलगाव, आदमी द्वारा आदमियत को चुनौती, मनुष्य के सौभाग्य–दुर्भाग्य, पुरुषों की अर्थलोलुपता, राजनीतिक भ्रष्टाचार और आर्थिक शोषण आदि जीवन के कटु–मधुर, विविध अनुभवों का बखूबी निरूपण हुआ है। डॉ0 रामअवध द्विवेदी के शब्दों में–

''कथा सरिता तो धारा के समान है और उन परिस्थितियों की जिनके बीच में से होकर धारा अग्रसर होती है, हम सरिता के किनारों से तुलनाकर सकते हैं।''[7] कथा साहित्य के ये दो ऐसे महत्वपूर्ण तत्व हैं जो एक दूसरे से ऐसे गुंथे हुए हैं कि उन्हें अलग देख पाना अत्यन्त कठिन है। वस्तुतः वे

अभिन्न है। वस्तु और चरित्र निर्माण परस्पर पूरक कार्य है। चरित्रों के बिना न तो कथा साहित्य में कथा का निर्माण सम्भव है, न ही कल्पना हेतु धरातल मिलनाा, न कथा वस्तु का गठन सम्भव है और न तो कथा साहित्य का उद्देश्य सिद्ध हो सकता है।

एक मजबूत कथासूत्र की व्यवस्थित कथानक से मुख्य कथा प्रासंगिक कथाओं अंर्तकथाओं, घटनाओं को परस्पर साम्बन्धता के साथ पिरोते हुए सुन्दर सशक्त कथा साहित्य रूपी माला का रूप दिया जाता है और यह सम्भव होता है कथाकार की बुद्धि चातुर्य से गठित की गयी वस्तु योजना से।

आलोच्य कथाकार दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य में भी यह समस्त विशेषताएं सन्निहित हैं। उन्होंने भी अपने कथा साहित्य के द्वारा सामाजिक सत्य को उजागर करने का प्रयास किया है। कहानी ही कथा साहित्य के अंग हैं। कहानी एक संवेदना घटना एवं विकास में सहायक चरित्रगत विशेषता को लेकर चलती है। उपन्यास हो या कहानी कथानक दोनों का कल्पित होता है परन्तु उपन्यास के कथानक में जो प्रासंगिक कथाओं का गुफ्फन होता है वह कहानी में नहीं। कहानी सीधा और सादा सत्य प्रकट करने का साधन है। कहानी का काम जीवन की झलक दिखाना और छोटे–छोटे चित्र खींचना है जो देखने में सुन्दर और विचार करने पर उपयोगी सिद्ध हो।

कहानी लेखक के सम्पूर्ण विचार का विशाल कैनवास को देने में समर्थ नहीं होती। कहानी का कथानक, सरल, कार्य प्रवाह अविरल तथा संगत होता है। कथा, पात्रों मनोविज्ञान के अनुसार तीव्र गति से चलती है। उपन्यास जहाँ महासागर है वहाँ कहानी एक तीव्रगति से चलने वाली पहाड़ी नदी है। कहानी और उपन्यास दोनों ही विधा हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधा है। इन दोनों विधाओं में समकालीनता को गहरे अर्थ में रेखांकित करने का प्रयास हो रहा है। जीवन की जटिलताओं को उनकी समग्रता में आँकने की कोशिश हो रही है।

भगवतीचरण वर्मा कथा साहित्य की मूल चेतना में व्याप्त मध्यवर्गीय परिवेश के संदर्भ में लिखते हैं– ''जिसे मध्यमवर्ग कहते हैं, उसमें यह जीवित रहने का संघर्ष भयानक है। इस मध्यमवर्ग के पास विशिष्टता का ढोंग है, सम्पन्नता का दिखावा है। इसके पास सामाजिकता है, नैतिकता है अपने द्वारा बनाये गये सामाजिक और नैतिक मान्यताओं को वह अपने सिर पर लादे हुए हैं। इस मध्यमवर्ग के पैर लड़खड़ा रहे हैं लेकिन अपने सिर का बोझ उतार फेंकने का साहस नहीं है।''[8]

रचनाकार दूधनाथ सिंह के कहानी और उपन्यास का प्रमुख पात्र मध्यवर्गीय मनुष्य ही है, जो अपने परिवेश से सम्पृक्त और सामाजिक जड़ों द्वारा अपने अस्तित्व की खुराक पा रहा है, वह प्रवृत्ति मूलक या अहंमूलक व्यक्ति नहीं है। जीवन के घात–प्रतिघातों को सहता–हारता, क्षुद्रता और मनुष्यता को सहेजता–नकारता, अपनी निर्णय शक्ति को बचाता–लुटाता इसी दुनिया और इसी के अस्तित्व में विश्वास करता, सुख–दुःख उठाता, जाने अनजाने नये तिथियों को उद्घाटित करता और नये सम्बन्धों को जन्म देता जीवन यापन कर रहा है। दूधनाथ सिंह जी ने भी जीवन की इसी समग्रता को यथासम्भव अपनी कहानियों के माध्यम से रूपायित करने का प्रयास किया है। वे स्वयं सहभागी है– इस संपूर्ण वाङ्मय का इसीलिए वे किसी बात का दावा नहीं करते, केवल चिन्तन की स्वतंत्रता लेकर अपने परिवेश से आये हुए मनुष्य और उसके मानवीय संकट तथा यथार्थ को यथासम्भव प्रामाणिकता से प्रस्तुत करने और एक निरन्तर नयी होती स्थितियों को आत्मसात करने का विनम्र प्रयास करते हैं।

कथा साहित्य के कथाकार अपने जिस विषय, विचार, भाव अथवा कल्पना इत्यादि का प्रयोग करता है, वह प्रायः उसके अध्ययन अनुभव एवं चिन्तन पर ही आधारित होती है। एक साहित्यकार द्वारा साहित्य–रचना के माध्यम से अपने व्यक्तित्व, चिन्तन, समय तथा समाज को संसार के सामने रखना ही मुख्य अभिप्रेत हुआ करता है और जो इसमें चूक जाय उसे किसी भी स्थिति में एक सफल साहित्यकार नहीं माना जा सकता है।

साहित्यकार साहित्य और समाज के मध्यवर्ती सम्बन्ध की एक मजबूत कड़ी है। जब समाज में अन्याय और अत्याचार के बादल छा जाते हैं, तब साहित्यकार क्रान्ति का विगुल बजाता है और जब अशान्ति का साम्राज्य होता है तब वह अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता जनार्दन का पथ–प्रदर्शक होता है, वह समाज को एक नई दिशा और प्रगति की सम्भावनाएं प्रदान करता है, इसलिए वह अपने

जीवन और कृतित्व में निरन्तर प्रगतिशील रहता है। दूधनाथ सिंह के साहित्य पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो सम्भवतः उन्हें एक प्रगतिशील लेखक ही पाया जायगा। उनके साहित्य की प्रत्येक विधा नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता आदि सभी में यह व्याप्त प्रगतिशीलता देखी जा सकती है।[9]

मनुष्य अपने जीवन में अपनी माता, पत्नी, पुत्र इत्यादि से किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित हुआ करता है। इसके बाद अपने प्रत्येक सम्बन्धी के प्रति अपने अपेक्षित कर्तव्य का पालन करना भी अपना धर्म समझा करता है। अतः कोई भी समाज अपने इस कर्तव्य की अवहेलना करके अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है। अतः समाज में हमें स्त्री को भी पुरुष के बराबर का सम्मान देना चाहिए, यही आज के समय की ज्वलन्त माँग है।

आज केवल भारत ही नहीं अपितु विश्व या कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ की युवा पीढ़ी यौन के गहन अन्धकार में डूब रही है। युवा पीढ़ी ही नहीं समाज का प्रत्येक वर्ग इससे प्रभावित है। स्त्री और पुरुषों के इस समाज में फैले यौन का एक प्रमुख कारण जीवन के संत्रास भी हैं और कहीं–कहीं मजबूरी भी। इस मजबूरी के अनेक कारण हो सकते है। स्वयं दूधनाथ सिंह भी अपनी कथाओं तथा कहानियों में समाज में फैले इस कुम्भीपाक नरक को हटाना चाहते हैं।

दूधनाथ सिंह अपनी कहानियों में उन समस्याओं का चित्रण करते हैं, जो एक नारी को वेश्या बना देती है, नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण भी उनकी कहानियों में मिलता है। दूधनाथ सिंह जहाँ एक पतिव्रता नारी का सम्मान करते है, वहीं दूसरी ओर पथभ्रष्ट नारी की अवहेलना करने से भी नहीं चूकते है। कहानी 'सब ठीक हो जायगा' में कथानायक अपने पड़ोसी मिससेज मिश्रा के घर उनके पति की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए जाते हैं, तो गली से गुजरते हुए एक व्यक्ति से जब वे मिसेज मिश्रा का पता पूछते है, तो वह कहता है–

''ओह! वह मेरे नजदीक आ गया और घूर–घूर कर देखने लगा। हाँ हाँ इसी कोठरी में मिसेज मिश्रा रहती है। मिसेज मिश्रा नहीं बुलबुल कहो यार– बुलबुल। मैंने जूते उठाये और जाने को तैयार हो गया। इस पर उसने कहा ''ए मैन! तुम्हें इंतजार करना पड़ेगा। उसने मेरे बन्धे पर अपनी बाँहों से भरी बाँह टिा दी, आई थिन्क यू अन्डर स्टैण्ड चैप..... ऑफ्टर आल दिस गुरुचरण सिंह, वेट टू हण्डर्ड फिफ्टी पाउण्डज इज कमिंग आउट आफ द डेन।''[10] इसी कहानी में कथानायक मि0 माधुर एक अन्य पात्र मिसेज मिश्रा जिस पर वेश्यावृत्ति का आरोप लगाया जाता है, के बारे में सोचता हुआ कहता है– ''चलते हुए मुझे याद आया कि उस गुरुचरण सिंह के निकल जाने के बाद कमरे में बालटियाँ खड़खड़ाने की आवाज आयेगी।

फिर सारा कमरा धोया जायेगा, फिर स्नान। फिर अगरबत्तियाँ जलायी जायेगी और फिर एक झीनी सी विरस, काँपती हुई आवाज आयेगी–

''ओम जय जगदीश हरे..... प्रभु''

उसके बाद चार–पाँच आलू काटकर वह तेल–मिर्च में छौंक लगायेगी। थोड़ा सा आटा निकाल कर गूंथेगी और धीरे–धी उँघती हुई रोंटिया बनायेगी।''[11] इस प्रकार यह स्पष्ट से कहा जा सकता है कि दूधनाथ सिंह ने कथा साहित्य का विश्लेषण अपनी रचनाओं में बड़ी निपुणता से किया है।

वर्तमान साहित्य में समाज के विविध पहलुओं, समस्याओं, परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण हो रहा है। साथ ही दलित वर्ग की कठिनाई, नारी की व्यथा–कथा, शिक्षित समाज की व्यस्तता, वैचारिक मतभेदों का चित्रण, स्त्री पुरुष के बढ़ रहे अनैतिक सम्बन्ध, कामकाजी नारी की स्थिति, विज्ञापन में बिक रही नारी, वैज्ञानिक समय में समाज में व्याप्त मानसिकता, मनोरोग ग्रस्त लोगों का चित्रण, मानवों में बढ़ती अनैतिकता, संवेदनहीनता, बलात्कारों का बढ़ता दौर आदि विषयों को केन्द्र में रखकर साहित्य का निर्माण हो रहा है। आज का कथाकार जिस असलियत को वह जानता भोगता है, वही सब तो उसके साहित्य में है, जिस यातना में वह जीता है, वही तो जहरीली लहर की तरह उसके चेहरे की हर रेखा में बोलने लगता है, जो दुनिया उसके भीतर बुलबुला रही है, वही तो सारे रेशमी गिलाफ फाड़कर बाहर झाँकने लगती है।

आज का साहित्य व्यक्ति और परिवेश का वह संबंध क्षण है, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में युग की एक–एक नब्ज छूता है, उसे नाम देने, समझने की कोशिश करता है। दूधनाथ सिंह का भी कुछ ऐसा ही है। वे भी अपनी भोगी हुई यथार्थता का चित्रण अपने साहित्य में करते हैं। उनकी रचनाओं का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी लेखनी से समाज तथा व्यक्ति का कोई भी पक्ष अछूता नहीं है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में समाज के सभी पक्षों को जाँचकर उस पर अपनी कलम चलायी है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ0 33
2. डॉ0 देवराज उपाध्याय, उपन्यास इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास, पृ0
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, पृ0 164–165
4. डॉ0 सागर त्रिपाठी, पृ0 774
5. डॉ0 राजेन्द्र शुक्ल, कथायन, पृ0 9
6. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ0 450
7. डॉ0 राम अवध द्विवेदी, आलोचना, उपन्यास, विशेषांक, पृ0 33
8. भगवती चरण वर्मा, थके पाँव, पृ0 120
9. हरिन्द्र कुमार, दूधनाथ सिंह का साहित्य, नई दिल्ली, 2007, पृ0 215

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

बच्चन सिंह की समग्र आलोचना दृष्टि

निशा सिंह
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान
सुल्तानपुर

बच्चन सिंह की समग्र आलोचनात्मक दृष्टि पर प्रकाश डालने के लिए हमें सर्वप्रथम उनके आलोचनादर्श को समझना होगा। इसके अंतर्गत आलोचना क्या है? तथा आलोचना का कर्तव्य क्या है? हमें इन तथ्यों को ठीक–ठीक समझना पड़ेगा। तभी जाकर हम उनके आलोचक व्यक्तित्व का संपूर्ण विश्लेषण कर पाने में समर्थ होंगे।

साहित्य और विचारधारा में अटूट संबंध होता है। साहित्य को विचारधारा का प्रकटन माना जाता है और यह बात तो पूरी तरह से सत्य है कि किसी भी साहित्य को विचारधारा के प्रभाव से पृथक नहीं किया जा सकता। साहित्य से विचारधारा को निष्कासित कर देने पर साहित्य एक सूखी हुई लकड़ी के समान हो जाता है, जिसमें अस्तित्व तो है पर सार्थकता नहीं। यद्यपि आर्थिक आधारों के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य की अधिरचना में भी परिवर्तन होता रहता है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि आर्थिक आधारों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की पहचान ही समाप्त हो जाती है। इसे 'साहित्य की शाश्वतता' कहा जा सकता है या फिर 'रचनात्मक तंत्र का अपना आंतरिक नियम'। इस बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– ''साहित्य को विचारधारा (अधिरचना) से एकदम पृथक नहीं किया जा सकता। आर्थिक आधार के बदलने से अधिरचना भी कमोवेश बदलती ही है। लेकिन साहित्य ऐसा नहीं बदलता की पहचान के परे हो जाए जबकि कानून, राजनीति, राज्य के साथ ऐसा होता है। इसे चाहे आप 'साहित्य की शाश्वतता' कह ले या रचनात्मक तंत्र का अपना आंतरिक नियम।''[1]

इस क्रम में डॉ0 बच्चन सिंह आगे भी साहित्य और विचारधारा के जटिल संबंधों का विवेचन करते हैं और उनके इसी विश्लेषण में साहित्य के 'रूपतत्व' का महत्व स्पष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं– ''इसमें संदेह नहीं कि विचारधारा और साहित्य का जटिल संबंध है तथा साहित्य और आधार का जटिलतर। संबंधों का उद्घाटन समाजशास्त्रीय हो सकता है किंतु उसे साहित्य समीक्षा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इस विश्लेषण से साहित्य का रूप जो साहित्य को साहित्य बनाता है अविश्लेषित रह जाता है, किंतु केवल रूप का विवेचन समीक्षा को वस्तुहीन रूपवाद तक घसीट ले जाता है। कला को ऐकान्तिक महत्व देने का अर्थ है सौंदर्यशास्त्रीय क्रीडा को महत्व देना।''[2]

किसी भी आलोचना के लिए इस रूप तत्व का अत्यधिक महत्व होता है। रूप तत्व की विवेचना के क्रम में डॉ0 सिंह सामाजिक अर्थवत्ता को भी उतना ही महत्व प्रदान करते हैं, किंतु उसके लिए रूप तत्व की विशिष्टता अथवा विलक्षणता का अध्ययन आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार वस्तु काव्य में प्रत्यक्षतः उपस्थित न होते हुए वक्रतः उपस्थित होती है। अपनी इस बात को प्रमाणित करते हुए वह लिखते हैं– ''आलोचना में रूपतत्व का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि आलोचना का महल इसी नींव पर टिका हुआ है। रूप वैलक्षण की पकड़ वस्तु या सामाजिक अर्थवत्ता की पकड़ है। वस्तु वही नहीं है जो काव्य में प्रत्यक्षतः उपस्थित होती है– इससे ज्यादा वह वक्रतः उपस्थित होती है यानी विंबो, प्रतीकों, प्रविधियों, शैलियों आदि में। रूप में उपस्थितियों के साथ–साथ अनुपस्थितियाँ या रिक्तायें भी होती हैं। रूपात्मक संघटना में बीच–बीच में दरारें होती हैं, मौन होते हैं, अवकाश (स्पेस) होते हैं। भावों और विचारों के अनेक तत्व इनमें छिपे रहते हैं। आलोचक का कर्तव्य है कि इन रिक्तताओं को भरे। रूप की इन विशेषताओं पर मार्क्सवादी समीक्षा का ध्यान गया है और वह धीरे–धीरे पूर्णता की ओर अग्रसर हो रही है।''[3]

इन सारी चर्चाओं के मध्य एक अहम प्रश्न स्वयमेव खड़ा हो जाता है कि साहित्य में सबसे पहले वस्तु है? अथवा रूप। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– ''वस्तुतः दोनों में कोई न पहले है न बाद में। दोनों एक साथ हैं। 'गिरा अरथ जल बीच सम कहियत भिन्न न भिन्न।' 'वागार्थौ संपृक्तौ'। वस्तु आदि से अंत तक रूप है और रूप आदि से अंत तक वस्तु। वस्तु (वसतोति) के रूप में आद्यंत विराजमान रहती है। यदि वस्तु रूप के पहले कोई चीज है तो वह विषय है। रचनात्मक प्रक्रिया में विषय वस्तु ही वस्तु बनता है। पर प्रक्रिया के दौरान वस्तु रूप को और रूप वस्तु को प्रभावित करते चलते हैं।''[4]

डॉ0 बच्चन सिंह मानते हैं कि वस्तु को रूप से बिल्कुल भी पृथक करना असंभव है। जो लोग वस्तु को रुप से पृथक करके कृतिका अर्थापन करते हैं वह वास्तविक रूप से कृति को ही नष्ट कर देते हैं। ऐसा करना बिल्कुल भी उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करने से समीक्षा अपने मार्ग से पूरी तरह से हट जाएगी और साहित्य का गलत अर्थापन सामने आएगा। इस तथ्य को उद्धृत करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– ''वस्तु को रुप से निचोड़ कर अलग नहीं किया जा सकता है। जो इसे नींबू की तरह निचोड़ कर कृति का स्थापन या पैराफ्रेज करते हैं वे अर्थापन के नाम पर कृति को ही नष्ट कर देते हैं। अर्थापन के लिए यह सुविधाजनक हो सकता है, लेकिन सही समीक्षा के लिए आपत्तिजनक होगा। जेम्सोन ने 'मार्क्सिजम एंड फार्म' में स्पष्ट लिखा है कि बालजक के यथार्थ को समझने के लिए उसके रूप को समझना ही होगा। रूप निर्बंध अर्थापन कृति के पाठ (टेक्स्ट) से कम कहेगा अथवा उससे अधिक कहेगा।''[5]

डॉ0 बच्चन सिंह यह मानते हैं कि समय के साथ साथ साहित्य के रूप में भी परिवर्तन हो जाता है, जो यह संकेत करता है कि रूप के साथ विषय वस्तु भी परिवर्तित हो जाती है। विषय वस्तु के समान रहने पर भी विविध काल खंडों में उसके स्वरूप में परिवर्तन इसलिए आ जाता है क्योंकि समय के साथ–साथ लेखक का दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो जाता है। इसी परिवर्तित दृष्टिकोण को सामने रखते हुए वह विषय वस्तु का वर्णन करने का प्रयास करता है। इसलिए यह संभावना बढ़ जाती है कि साहित्य का जो स्वरूप आज की परिस्थिति में हमारे सामने उपस्थित है, वह अन्य कालखंड में उस काल की विशिष्टता को भी अपने में समाहित करते हुए आगे बढ़ेगी और उसके रूप वस्तु में परिवर्तन होता चलेगा। इस तथ्य की पुष्टि के लिए वह तुलसीदास, वाल्मीकि जैसे युग प्रवर्तक साहित्यकारों का उदाहरण लेते हैं जिसमें वह स्पष्ट करते हैं कि इनकी विषय वस्तु समान होने पर भी विविध कालखंड के प्रभाव के कारण साहित्य के रूप में भी परिवर्तन हो जाता है। इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– ''साहित्य के इतिहास में रूपों का निरंतर परिवर्तन होता रहता है। रूप परिवर्तन इस तथ्य का संकेत है कि वस्तु भी परिवर्तित हो गयी। लेकिन रूपात्मक परिवर्तन क्यों होता है? ऐतिहासिक विकास की एक मंजिल पर एक रुप होता है और दूसरी मंजिल पर दूसरा। विषय वस्तु एक ही रहने पर भी वस्तु–रूप में परिवर्तन हो जाता है। वाल्मीकि और तुलसीदास का विषय एक ही है पर दोनों के काव्यवस्तु और रूप में परिवर्तन आ गया है। मैथिलीशरण के साकेत का विषय वाल्मीकि और तुलसी के विषय से भिन्न नहीं, लेकिन साकेत की वस्तु भी भिन्न है रूप भी। इतिहास की बदलती हुई मंजिल पर लेखक के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है। उसकी विश्व–दृष्टि बदल जाती है। अतः लाजमी है कि उसके वस्तु–रूप में भी अपेक्षित परिवर्तन हो। कुछ दिन पहले मार्क्सवादी आलोचना में रूप की खिलाफत की जाती थी लेकिन अब यह कहा जाने लगा है कि प्रतिक्रियावादी लोग पुराने रूपों में परिवर्तन नहीं चाहते। पर नए युग में नए परिवर्तन के लिए हर तरह के पुराने रूपों को तोड़ना पड़ता है। साहित्य इसका अपवाद नहीं है। छंद–बंद में हिंदी समाज यथा–स्थिति में आ गया था। स्वच्छंदतावादी युग में छंद के बंधन को तोड़ कर समाज की जड़ता को भी तोड़ा गयाँ हर जागरूक कलाकार रूप अन्वेषण करता है– चाहे निराला हो या ब्रेंश्ट।''[6]

इसीलिए तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य तथा उसके इतिहास में परंपरा और परिवर्तन दो चीजों को नितांत आवश्यक मानते हैं। वह परिवर्तन के साथ साथ परंपरा का निरूपण ही इतिहास के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार साहित्य इतिहास तथा परंपरा में बहुत घनिष्ठ संबंध है क्योंकि कोई भी समकालीन परिवर्तन साहित्य को भी परिवर्तित कर देता है, और इसीलिए हिंदी साहित्य के

इतिहास की विशेषता को स्पष्ट करते हुए अपनी रचना 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका में वे लिखते हैं– ''हिंदी साहित्य के इतिहास की एक विशेषता यह भी रही है कि एक विशिष्ट काल में काव्य सरिता जिस रूप में वेग से प्रवाहित हुई वह यद्यपि आगे चलकर मंद गति से बहने लगी। पर 900 वर्षों के हिंदी साहित्य के इतिहास में हम उसे कभी सर्वथा सूखी हुई नहीं पाते।''[7]

साहित्य में परिवर्तन का एक और कारण तत्कालीन सामाजिक राजनीति में परिवर्तन भी माना जाता है। डॉ0 समीक्षा ठाकुर भी इतिहास के काल प्रवाह में परंपरा के अनुसार ही साहित्य के अग्रगामी होने पर प्रकाश डालती हैं और इसके लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल को आधार मानती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल व्यवस्था के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य में भी परिवर्तन को स्वीकार करते हैं और उसका प्रमुख कारण राजनीति को ही मानते हैं। आचार्य शुक्ल के इस मंतव्य को स्पष्ट करते हुए डॉ0 समीक्षा ठाकुर अपनी पुस्तक 'आचार्य रामचंद्र के इतिहास की रचना प्रक्रिया' के पृष्ठ–154 पर लिखती हैं– ''उनके इतिहास में भी अधिकांश साहित्यिक परिवर्तन राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार निरूपित किए गए हैं। यदि वीरगाथा काल का आधार हिंदू राजाओं की आपसी लड़ाई तथा मुस्लिम आक्रमणकारियों के खिलाफ पृथ्वीराज चौहान, हमीर आदि हिंदू वीरों का प्रतिरोधात्मक युद्ध है तो आधुनिक काल का आरंभ भी देश में अंग्रेजी राज्य के पूर्ण रूप से स्थापित होने के साथ ही होता है।''[8]

डॉ0 बच्चन सिंह के विचार में भी यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि किसी भी साहित्य के रूपात्मक संघटना के बीच में दरारे होती हैं, मौन होते हैं तथा अवकाश (स्पेस) होते हैं। इन तथ्यों के आलोक में यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या किसी आलोचना की श्रेष्ठता अथवा उसके वस्तु तत्व की विलक्षणता का आकलन किया जा सकता है? और क्या इसके लिए ऐसा कोई प्रतिमान निर्धारित किया जा सकता है जिसके आधार पर हम रचनाओं की रूपात्मक संघटना और उनके बीच में पाई जाने वाली दरारों तथा अवकाशों का विश्लेषण कर सकें? इस प्रश्न के उत्तर में डॉ0 सिंह का उत्तर सिर्फ 'नहीं' में आता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'आलोचक और आलोचना' के पृष्ठ 203 पर लिखते हैं– ''पूरब और पश्चिम में समय–समय पर आलोचना के मान निर्धारित किए गए, पर उनमें से कोई भी मान ऐसा नहीं है जिसे सार्वभौम और शाश्वत मान की संज्ञा दी जाए। भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक सिद्धांतों और काव्य संप्रदायों का आविर्भाव इस बात का सबूत है कि किसी एक मान को निर्दोष मानकर ग्राह्य (ग्रहण) नहीं किया जा सकता। जब कभी इन्हें किसी कृति पर हू–ब–हू लागू किया गया है तब आलोचना का सारा उपक्रम उपहासास्पद हो गया है।''[9]

डॉ0 बच्चन सिंह रचना को एक संश्लिष्ट रचनात्मक इकाई के रूप में ग्रहण करते हैं और इस बात का खंडन करते हैं कि ऐसी रचना को किसी विशिष्ट प्रतिमान के आधार पर मूल्यांकित किया जा सकता है। इस प्रकार किसी श्रेष्ठ रचना के मूल्यांकन के लिए किसी विशिष्ट प्रतिमान के निर्माण को पूरी तरह से खारिज करते हुए 'आलोचक और आलोचना' नामक पुस्तक के पृष्ठ 204 पर वह लिखते हैं– ''रचना एक संश्लिष्ट रचनात्मक इकाई है। इसलिए उसे किसी एक विशेष प्रतिमान के आधार पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। संस्कृत काव्यशास्त्र का विकास ध्वनि सिद्धांत तक आकर रुक गया। यदि हम ध्वनि को प्रतिमान मानकर व्यंजना व्यापार की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं तो 'निराला' का अभिधा प्रधान काव्य उसकी श्रेष्ठता के आगे प्रश्नचिन्ह लगा देता है। आज के संदर्भ में 'कुंतक की आलोचनात्मक दृष्टि' और शब्दावली बहुत काम की है, पर वक्रोक्ति के भेदों को ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया जा सकता है। योरप में भी अरस्तु और होरेस के क्लासिकल नियमों के विरोध में स्वच्छन्दतावादी मतों की प्रतिष्ठा हुई। आर ए रिचड्र्स, एलियट आदि ने स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के विरोध में पुनः नियमानुवर्तन पर जोर दियाँ पर नए आलोचकों ने, साहित्य के संदर्भ में उन्हें अस्वीकृत कर के नए सिद्धांतों की स्थापना की। पर इन से भी कोई ऐसा प्रतिमान स्थापित नहीं हो पाया जो महान कृति को अच्छी से और अच्छी कृति को कम अच्छी कृति से अलग कर सकें।''[10]

डॉ0 बच्चन सिंह आधुनिक पद्धतियों के साथ–साथ पुरानी पद्धतियों का भी महत्व खारिज नहीं करते बल्कि प्रासंगिकता के आधार पर ही उनके अध्ययन पर जोर देते हैं, और यह मानते हैं कि किसी रचना के भाषिक विश्लेषण में ऐसी पद्धतियाँ जहाँ तक हमारी सहायता कर सकती हैं, वही तक उन्हें ग्रहण किया जा सकता है। इसके आगे उनको ग्रहण करने पर साहित्य में खतरा उत्पन्न होने की

आशंका हो जाती है। नई समीक्षा पद्धतियों में उन्होंने रूसी रूपवाद, नई आलोचना, संरचनावाद तथा डीकंस्ट्रक्शन की भी चर्चा की है। अपनी पुस्तक 'साहित्य का समाजशास्त्र और रूपवाद' के पृष्ठ–86 पर इसकी चर्चा करते हुए वे लिखते हैं– ''अपनी खामियों के बावजूद रूसी रूपवादद और नई समीक्षा हमें किन्हीं अर्थों में प्रशिक्षित करती है किंतु 'संरचनावाद' तो एक चक्रव्यूह है। इसमें फँसकर समीक्षा तो मरती ही है अपने साथ साहित्यिक कृति को भी ले डूबती है।''[11]

डॉ0 बच्चन सिंह नई पद्धतियों में से एक– 'डीकंस्ट्रक्शन' को एक घने जंगल के रूप में निरूपित करते हैं, जिसमें चलने वाला स्वयं अपने रास्ते का निर्माण करता है। अर्थात कोई भी समर्थ समीक्षक पूरी तरह से बने बनाए सांचों के आधार पर किसी रचना को मूल्यांकित नहीं कर सकता। उसे उसमें अपनी मौलिकता तथा प्रतिभा के अनुसार ही नई रचना प्रस्तुत करना पड़ता है, और इस कार्य में सिर्फ उसकी अंतर्दृष्टि और प्रतिभा ही उपयोगी होती है। इस बात को पुष्ट करते हुए 'डीकंस्ट्रक्शन' के विषय में डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– ''उनका सिद्धांत उस घने जंगल की तरह है जिसमें कोई रास्ता नहीं है। रास्ता चलने वाला स्वयं अपना रास्ता बनाएगा। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम वह कहीं भी जा सकता है। डीकंस्ट्रक्शन जंगल के भीतर से जंगल के पार उस विचार भूमि तक पहुंचना है जो अनुपस्थित है। तात्पर्य यह है कि समर्थ समीक्षक बने बनाए साक्ष्यों के आधार पर रचना का मूल्यांकन नहीं करता, इनसे वह सहायता ले सकता है। जिस प्रकार एक श्रेष्ठ रचनाकार परंपरा का अतिक्रमण करके अपनी मौलिक प्रतिभा से नई रचना प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार समर्थ समीक्षक परंपरागत प्रतिमानों का अतिक्रमण करके जटिल भाषिक संरचना का विश्लेषण करता है, प्रत्येक श्रेष्ठ कृति उसके लिए एक चुनौती होती है। उसकी विशिष्ट रूप रचना के विश्लेषण में समीक्षक की अपनी अंतर्दृष्टि और प्रतिभा ही काम आती है। परंपरागत प्रतिमान समीक्षक की दृष्टि को समृद्ध करने में सहायक हो सकते हैं। इसके आगे भूमिका समाप्त हो जाती है।''[13]

डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार आलोचना की सार्थकता के लिए सबसे महत्वपूर्ण बिंदु उसकी मानवीय स्थिति से संबंध है, और उसी के संदर्भ में भाषिक संरचना का विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भाषिक विश्लेषण को सिर्फ भाषिक तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि उसे मानवीय स्थिति के संदर्भ में व्याख्यापित किया जाना चाहिए। वह रचनात्मक जटिलता का संबंध काव्य में निहित जीवन दृष्टि से करते हैं और इस तथ्य पर जोर देते हैं कि किसी भी आलोचक का पहला कर्तव्य यह है कि वह रचनात्मक जटिलताओं को काव्यवद्ध जीवन दृष्टि से जोड़कर चले। जब तक कोई रचना जीवन दृष्टि से नहीं जुड़ेगी तब तक वह मानवीय स्थिति के अनुकूल नहीं कही जाएगी। जीवन दृष्टि हमेशा जीवन के अनुभवों से उद्भूत होती हैं। जीवनानुभव के बारे में अपनी पुस्तक 'आलोचक और आलोचना' के पृष्ठ 80 पर वे लिखते हैं– ''जीवनानुभव' एक समग्र जीवन दृष्टि है, जिसके आयाम हैं, जिसकी अनेक पर्त है काव्यगत संश्लिष्टता में अर्थ की अनेक परते संश्लिष्ट अनुभवों के कारण आती हैं। काव्यगत संश्लिष्टता का आधार अर्थ की अनेक परते हैं और इन परतों का आधार है संश्लिष्ट जीवन–अनुभव। इसलिए आलोचना का दायित्व है कि वह भाषिक संरचना के विश्लेषण द्वारा अर्थ की परतों का उद्घाटन करें और संश्लेषित जीवन अनुभव तक पहुँचे।''[14]

उपरोक्त विवेचन से डॉ0 बच्चन सिंह की समग्र आलोचना दृष्टि का एक विस्तृत फलक हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, जिसमें वह विचारधारा के साथ साथ उसमें समाहित जीवन यथार्थ की भी चर्चा करते हैं, और भाषिक संरचना को मात्र यॉंत्रिक विश्लेषण की विषय वस्तु नहीं बनाते, बल्कि आलोचना को जीवन अनुभव से जोड़कर समस्त जीवन के साथ ही उसे संबंधित कर देते हैं, जो उन्हें एक उच्चकोटि का समीक्षक सिद्ध करती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अति आवश्यक है कि डॉ0 बच्चन सिंह बहुआयामी आलोचना प्रवृत्ति के मूर्तिमान हस्ताक्षर हैं, क्योंकि उन्होंने साहित्य के लगभग समस्त आयामों पर अपना दृष्टिपात किया है तथा उसमें सन्निहित सिद्धांतों तथा प्रक्रियाओं का गूढ विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यद्यपि जिस स्तर का समीक्षात्मक दृष्टिकोण उनके द्वारा अपनाया गया है, उसकी समीक्षा करना तो कदाचित किसी भी शोधार्थी के लिए संभव नहीं हो सकता, किंतु फिर भी अपनी बुद्धि तथा विवेक के आधार पर ही वह बच्चन सिंह की इस समीक्षा दृष्टि का मूल्यांकन करने का प्रयास कर सकता है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ0 बच्चन सिंह, साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ–11, संस्करण–2022 (लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज)
2. वही, पृष्ठ–11
3. वही, पृष्ठ–12
4. वही, पृष्ठ–12
5. वही, पृष्ठ–12
6. वही, पृष्ठ–11–12
7. डॉ0 राजेश कुमार मिश्रा, हिंदी आलोचना प्रारंभ से निखार तक, संस्करण–2012, पृष्ठ–84 (राका प्रकाशन, इलाहाबाद)
8. वही, पृष्ठ–84
9. डॉ0 रामचंद्र तिवारी, हिंदी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार, पृष्ठ–148, संस्करण–2022 (लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज)
10. वही, पृष्ठ–148
11. वही, पृष्ठ–148
12. डॉ0 रामचंद्र तिवारी, हिंदी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार, पृष्ठ–148, संस्करण–2022 (लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज)
13. वही, पृष्ठ–149
14. वही, पृष्ठ–148

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का तुलनात्मक मूल्यांकन

डॉ0 तनु श्री
एम. ए., पी – एच. डी. (हिंदी)
गूलर रोड, अलीगढ़

प्रस्तुत शोध-पत्र में इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में प्रकाशित मन्नू भंडारी की आत्मकथा- 'एक कहानी यह भी', मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा - 'गुड़िया भीतर गुड़िया' और प्रभा खेतान की आत्मकथा - 'अन्या से अनन्या' का तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है I मन्नू भंडारी की आत्मकथा –'एक कहानी यह भी'और प्रभा खेतान की आत्मकथा -'अन्या से अनन्या'दोनों एक ही वर्ष प्रकाश में आयीं और मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग -'गुड़िया भीतर गुड़िया' एक बर्ष बाद सन् २००८ में प्रकाश में आया है I यह बात अलग है कि मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का पहला भाग - 'कस्तूरी कुण्डल बसै' सन् २००२ में प्रकाशित हो चुका थाI चूँकि इस आत्मकथा के पहले भाग में मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी केंद्र में रही, इसलिए इसमें मैत्रेयी पुष्पा का कम और उनकी माँ का इतिवृत्त अधिक हैI इसलिए हमने प्रथम खंड वाली आत्मकथा कृति को दृष्टिपथ में न रखकर यह निष्कर्ष निकाला कि दो वर्ष के भीतर इन तीनों लेखिकाओं की आत्मकथाएँ हिंदी - जगत के समक्ष प्रकाशित हुईंI

यों तो यह संयोग ही है कि इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में तीन - तीन दिग्गज लेखिकाओं की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं, किन्तु फिर भी चौकाने वाली परिस्तिथियाँ होने के बावजूद यह विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन तीनों लेखिकाओं की आत्मकथाओं के सम्बन्ध में गहराई से विचार किया जाये कि इन आत्मकथाओं का स्तर क्या है? और किस लेखिका की आत्मकथा उच्चतर बन पड़ी है और इस निष्कर्ष के पीछे हमारे क्या तर्क हैं?

यों तो तीन स्त्री लेखिकाओं की आत्मकथाओं के प्रकाशित होने के पीछे संयोग तत्त्व ही कार्य कर रहा है I किन्तु फिर भी इनमें से मन्नू भंडारी इस अर्थ में वरिष्ठ हैं कि वह प्रभा खेतान की गुरु रही हैं और मैत्रेयी पुष्पा उनसे अपेक्षतः कनिष्ठ हैं I (मन्नू भंडारी : ३ अप्रैल, १९३१, प्रभा खेतान : १ नवम्बर १९४२, मैत्रेयी पुष्पा : ३० नवम्बर १९४४ जन्म - तिथियों के आधार पर)

यद्यपि आयु को आधार बनाकर किसी वरिष्ठ या कनिष्ठ रचनाकार की तुलना का कोई औचित्य नहीं है , तथापि आयु में बड़ा होने के कारण मन्नू भंडारी वैचारिक स्तर पर भी प्रौढ़ हैं और इसलिए उन्होंने आगा - पीछा सोचकर (काफी परिपक्व स्तिथि में अपने को रखकर) अपने जीवनानुभवों को आलोच्य कृति में स्थान दिया है I यही कारण है कि मन्नू भंडारी अपनी आत्मकथा का लेखन करते समय इस तथ्य के अनुभव की घोषणा करती हैं कि ईमानदार अभिव्यक्ति का सफल निर्वाह करना बहुत कठिन कार्य है I वह यह भी अनुभव करती हैं कि "एक कहानी यह भी "में वह अपनी बात पूरी तरह खोलकर नहीं कह पायीं हैं I यथा –

"हमारे यहाँ बहुत ईमानदारी से लेखकों के व्यक्तिगत जीवन का लेखा - जोखा प्रस्तुत करने का प्रचलन नहीं है और न ही लेखक खुद ही बहुत ईमानदारी से वह सब लिख पाते हैं I (लेखकों की इतनी आत्मकथाएँ आने के बावजूद मैं यह लिख रही हूँ मैं खुद ही अपनी इस कहानी में कहाँ खोलकर सारी बातें कह पाई ?) लेखक जिंदा

है तो यह संकोच कि वह क्या सोचेगा इस लिखे पर कहीं मित्रता ही समाप्त न हो जाए I जब अधिकतर लेखक अपनी रचनाओं की जरा - सी प्रतिकूल समीक्षाएँ तक बर्दाश्त नहीं कर पाते तो व्यक्तिगत जीवन के दबे - ढके, धुंधुले पक्षों का अनावरण बर्दाश्त कर सकेंगे भला ? और शायद इसलिए हमारे यहाँ यह सिलसिला सही ढंग से शुरू हो ही नहीं पाताI"[१]

इसका एक प्रमाण यह भी है कि मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में फूँक फूँककर कदम रखते हुए राजेंद्र यादव के साथ संबंधों में बड़ी सावधानी बरती है I कारण स्पष्ट है कि राजेंद्र यादव अपनी आत्मकथा – ' मुड़ मुड़के देखता हूं 'में जितनी कारीगरी के साथ अपनी सफाई पेश करते हैं उतनी चतुराई मन्नू भंडारी ने भी बरती है और यही परिपक्वता का परिचायक है और उनकी परिपक्व लेखनी का प्रमाण भी है I

इन तीनों लेखिकाओं की आत्मकथाओं को सरसरे तौर पर अनुशीलन करने पर यह सामान्य रूप से पाठकीय प्रतिक्रिया हो सकती है कि इनमें प्रभा खेतान अधिक साफगोई के साथ अपने सम्बन्धों और जीवनानुभवों को वाणी देती हैं I कारण स्पष्ट है कि प्रभा खेतान चाहे डॉ0 सर्राफ का प्रसंग हो अथवा बड़े भाई का अथवा मासिक धर्म के आरम्भ होने का प्रकरण हो, वह निःसंकोच और बेधड़क होकर अपनी बात कहती चली जातीं हैं, जबकि मन्नू भंडारी हिचकते हुए, ऐसे प्रसंगों को बचाते हुए अपनी आत्मकथा लिखती हैं और मैत्रेयी पुष्पा तो बड़ी कलाकारी के साथ आरे की धार पर चलती हैं कि जरा भी निगाह चूके, तो उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इस बात के आधार पर अभय कुमार दुबे ने उन्हें "फितनागर" भी कह डाला है : -

"मैत्रेयी पुष्पा का साक्षात्कार अंतरंगता की कुछ ऐसी बृहत्तर संरचनाओं से होता है, जो मन्नूजी या प्रभाजी की जिंदगी के प्रेम - त्रिकोंणो से भिन्न है I वे प्रेम - त्रिकोण यातनादायक हैं, पर मैत्रेयी पुष्पा की अनूठी अंतरंगताएं उन्हें सताने के बावजूद एक के बाद एक सशक्तीकरण के विभिन्न मुकामों की तरफ ले जाती हैं I XXX यह आत्मकथा अंतरंगताओं की फितनागरी और रेडिकल आधुनिकता से संपन्न एक स्त्री के वैयक्तीयन की दास्तान बन जाती हैI"[२]

इसी निष्कर्ष से मिलता - जुलता निष्कर्ष राजेंद्र यादव ने भी निकाला है I प्रभा खेतान की मृत्यु के बाद "अरे , ये लाइन क्यों कट गई ?" शीर्षक से राजेंद्र यादव ने "हंस" पत्रिका में प्रभा खेतान का स्मरण किया है, उसी समय उन्होंने इन तीनों ही नारी आत्मकथा लेखिकाओं के विषय में तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए मैत्रेयी पुष्पा के विषय में यह टिप्पणी की है कि उनकी आत्मकथा में नारी - पुरुष के सम्बन्धों को कुशलता के साथ निभाया गया है : -

"इधर हिंदी में तीन आत्मकथाओं को लेकर काफी हंगामा है I एक तो 'अन्या से अनन्या ' है ही, दूसरी है मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' तीसरी है मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' तीनों को एकसूत्र में समझाना चाहें तो कहेंगे, 'अन्या से अनन्या'में नायिका की सारी तकलीफ है कि वह प्रेमिका है, पत्नी नहीं बन पाईI मन्नू पत्नी है, प्रेमिका नहीं बन सकीI गुड़िया में कौशल यह है कि मैत्रेयी स्वतंत्र दोस्त भी है, पत्नी भीI मैत्रेयी मानती है कि जिसे हम हिकारत से तिरिया चरित्र कहते हैं वह वस्तुतः पुरुषों की खूंखार दुनिया में अपने को बचाए रखने की कला या स्त्रीवाद रणनीति है, पुरुष सत्ता के व्यापक जाल के भीतर की क्रूर दुनिया में हर औरत इस रणनीति के सहारे ही अपने को बचाती है I "[३]

इस प्रसंग में अभय कुमार दुबे के आलोच्य आलेख - "अंतरंगताओं की फितनागरी"का उल्लेख करने के लिए बार - बार विवश होना पड़ रहा है I समीक्षक अभय कुमार दुबे ने गहराई में जाकर इन तीनों लेखिकाओं की परिस्तिथियों, चारित्रिक विशेषताओं और नारीवादी अवधारणाओं को लेकर गहन जाँच - पड़ताल की है I इन

तीनों आत्मकथा लेखिकाओं की साहित्यिक उपलब्धियों की परस्पर तुलना करते हुए मैत्रेयी पुष्पा को अभय कुमार दुबे "एक प्रथक दिशा की पथिक" के रूप में निरूपित करते हैं : -

"अपनी विवाहित जिंदगी के एक बड़े हिस्से में मैत्रेयी पुष्पा लेखकीय जीवन की केवल कल्पना ही कर पाती हैंI xxx यह एक ऐसा सन्दर्भ है जो मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा को मन्नू भंडारी और प्रभा खेतान की आत्मकथाओं से एक बार फिर अलग कर देता है I इन दोनों के लिए साहित्य की दुनिया किसी युद्ध के मैदान की तरह नहीं उभरती I साहित्य से उन्हें सिर्फ सकारात्मक उपलब्धियाँ ही होती हैं , पर मैत्रेयी के लिए साहित्य के संसार में जगह-जगह विस्फोटक सुरंगें लगी हुई हैं I उनकी साहित्यिक गतिविधियाँ उनसे पल - पल विद्रोह और अतिक्रमण मांगती हैं I मैत्रेयी पुष्पा नाम की औरत के कारण मिसेज शर्मा नाम की गृहणी का वजूद खत्म हो सकता है, इस लिहाज से मैत्रेयी साहित्यकार बनकर कही बड़ा जोखिम उठाती है I xxx उनके साहित्यकार बनने की प्रक्रिया साहित्य और रचनाशीलता के माध्यम से सशक्तीकरण के एक भिन्न कोण का सुराग देती हैI"[४]

जहाँ तक इन तीनों आत्मकथा लेखिकाओं के वैयक्तिक जीवन का सवाल है, विद्रोह की भावना के सन्दर्भ में जब परस्पर तुलना की जाती है, तब कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि इन आत्मकथाओं की लेखिकाओं में प्रभा खेतान अपने बगावती तेवर में अधिक तीव्रता दिखाती हैं, जबकि मन्नू भंडारी फूँक - फूँककर कदम रखती हैं और मैत्रेयी पुष्पा तो संकोचशील प्रवृत्ति की नारी लेखिका हैं कि उनके जीवन में विद्रोह के स्वर मुखर नहीं हो पाये हैं I इस सम्बन्ध में पुनः अभय कुमार दुबे की टिप्पणी पर दृष्टिपात करना नितान्त संगत प्रतीत होता है : -

"मैत्रेयी पुष्पा एक नेक पत्नी बनने के संकल्प के साथ दिल्ली में अवतरित हुई थीं I मैं इसे उस "नेक लड़कीवाद" के नाम से परिभाषित नहीं करूँगा, जो मैंने प्रभा खेतान और मन्नू भंडारी के संदर्भ मे किया था I इन दोनों स्त्रियों की शख्सियत परंपरा की देन न पहले थी, न आज है I ये असाधारण स्त्रियां हैं, जिनका गैर - मामूलीपन नेक लड़कीवादी के आग्रहों के कारण जिंदगी के एक पहलू में अपनी धार खो बैठा I प्रभाजी के पास बगावत की किताब भी थी और बगावत करने का दम भी, पर उन्होंने अपने अ - नायक के अवसान की प्रतीक्षा की I मन्नू जी के पास बगावत की किताब नहीं थी, पर बगावत का साहस था, जिसे वे साल - दर - साल लगातार स्थगित करती रहीं, जब तक उन्होंने राजेन्द्र यादव को "परित्यक्त" की हैसियत में पहुँचाने का कड़ा फैसला नहीं कर लिया I एक तरह से दोनों ने सारी जिंदगी प्रतीक्षा की I मैत्रेयी पुष्पा के पास न बगावत की किताब थी, न ही बगावत के कोई साधन I इसलिए उनकी बगावत किताबी किस्म की नहीं हो सकती थी I वह धीमी आँच पर खदबदाती जिंदगी की तरह पकती रहीं I हर कोई नई अंतरंगता ने उन्हें नये मुकाम की तरफ बढ़ाया I इस धीमी गति के कारण उन्हें भी प्रौढ़ावस्था तक प्रतीक्षा करनी पड़ी I"[५]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा - "गुड़िया भीतर गुड़िया" के सम्बन्ध में अभय कुमार दुबे इतनी गहराई तक जाते हैं कि उसकी अनेक विशेषताओं का न केवल उल्लेख करते हैं, बल्कि उन विशेषताओं के कारण आलोच्य आत्मकथात्मक कृति को हिंदी के "नारीवाद का तीसरा अध्याय" बनाने की उद्घोषणा भी करते हैं I यह मन्तव्य उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा के भगिनिवाद जैसी विशिष्टता के सम्बन्ध में व्यक्त किया है I श्री अभय कुमार दुबे के ही शब्दों में : -

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में रक्त संबंधों और कानून द्वारा थमाए गए रिश्तों के संसार से भगिनियों के संसार यानी सिस्टरहुड की नारीवादी दुनिया की तरफ गमन का सुराग मिलता है I भगिनिवाद का मतलब है घर - परिवार के बाहर मिलने वाली स्त्रियों का जगत, जिसके साथ विचार और संघर्ष के धरातल पर आत्मीय जुड़ाव

हो I नारीवादी इस तरह की बातें बहुत करते हैं, पर दरअसल भगिनिवाद की अभी उन्हें तलाश ही है I विपथगामी अंतरंगताओं की बगावती संभावनाओं के अलावा "गुड़िया भीतर गुड़िया" की यह एक और विशिष्टता है, जो उसे हिंदी के नारीवाद का तीसरा अध्याय बनाने की योग्यता से संपन्न करती है I खास बात यह है कि नारीवाद की यह अत्यंत अपेक्षित संरचना अर्थात् भगिनिवादी मित्रता प्रभा खेतान और मन्नू भंडारी के यहाँ उपलब्ध नहीं हैI"[६]

यहाँ यह कहना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि आत्मकथा लेखिकाओं की यह वृहत्त्रयी में शेष दो आत्मकथा लेखिकाओं - मन्नू भंडारी और प्रभा खेतान में इस प्रकार की भगिनिवाद की कोई चर्चा नहीं है और इस अर्थ में मैत्रेयी पुष्पा से यह दोनों भिन्न प्रकृति की आत्मकथा - लेखिकाएँ सिद्ध होती हैं I

इन तीनों आत्मकथाओं की लेखिकाओं में एक प्रकार की समानता भी परिलक्षित होती है कि इन तीनों के नायक अर्थात् मैत्रेयी पुष्पा के पति डॉ0 रमेश शर्मा, मन्नू भंडारी के पति राजेन्द्र यादव और प्रभा खेतान द्वारा अपनाये गये डॉ0 सर्राफ में यह समानता विश्लेषित की गयी है कि तीनों ही अनुकूल नायक नहीं हैं ; क्योंकि मैत्रेयी पुष्पा के पति डॉ0 रमेश शर्मा अपनी पत्नी को साहित्यकारों और सम्पादकों से मिलने में परहेज करते हैं और आशंका करते हैं कि यह साहित्यकार नाम के जीव उनकी पत्नी को भ्रष्ट कर देंगे I जबकि मन्नू भंडारी के पति राजेन्द्र यादव अपने वैचारिक दृष्टिकोण के कारण शुरू से ही मन्नू भंडारी की दृष्टि में वैवाहिक संबंधो का निर्वाह करने वाले एक पत्नीव्रत नायक नहीं हैं I कारण, राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि साहित्यकारों की महिला मित्र तो होती हैं और इसमें कोई अनैतिकता का प्रश्न नहीं उठता I प्रभा खेतान के पति के रूप में वरण किये गये डॉ0 सर्राफ के साथ भी प्रभा खेतान के सम्बन्ध कई कारणों से अच्छे नहीं रहे और प्रभा खेतान की दृष्टि में डॉ0 सर्राफ भली - भाँति प्रेम - संबंधो का निर्वाह नहीं कर पाते I डॉ0 अभय कुमार दुबे इसे अ - नायक की संज्ञा प्रदान करते हैं कि तीनों ही आत्मकथा लेखिकाओं के नायक अ - नायक की कोटि में आते हैं और इस अर्थ में वृहत्त्रयी की (ये तीनों लेखिकाओं की) आत्मकथा में यह विलक्षण साम्य दृष्टिगोचर होता है I डॉ0 अभय कुमार दुबे के शब्दों में :-

"जो व्यक्ति उनकी अंतरंगताओं को लेकर सारी जिंदगी उन पर तीर चलाता रहा, उसके आचरण में पत्नी के बौद्धिक - साहित्यकार संसार के प्रति हमदर्दी के भी कुछ पहलू हैं I प्रभा खेतान के डॉ0 सर्राफ या मन्नू भंडारी के राजेन्द्र यादव भी अ - नायक किस्म के चरित्र हैं, पर डॉ0 रमेश शर्मा कुछ बेहतर और पेचीदा अ - नायक के रूप में उभरते हैं I ऐसा शायद इसलिए भी है कि मैत्रेयी ने उनकी आवाज़ पाठकों तक पहुँचाने में किसी किस्म की कोताही नहीं बरती हैI"[७]

वृहत्त्रयी की प्रत्येक सदस्य के प्रेम - सम्बन्धों को लेकर भी तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है कि प्रभा खेतान के जीवन में किसी प्रकार का कोई आदर्श या नैतिकता का विचार नहीं है और वह डॉ0 सर्राफ के साथ सम्बन्धों में किसी प्रकार का आदर्श और सह - जीवन व्यतीत करने का विचार तक नहीं करतीं I मन्नू भंडारी की स्तिथि इससे भिन्न है I मन्नू जी आदर्श पत्नी बन कर पतिदेव के सभी अपराधों और कुकृत्यों को न तो पर्दों से ढँकना चाहती हैं और न उनके साथ समझौता कर पाती हैं I स्वाभाविक है कि वह यह अपेक्षा करती हैं कि उनके पतिदेव उन्हीं के समान एक पत्नीव्रत के आदर्श का पालन करें I परिणामतः मन्नू भंडारी के दांपत्य - जीवन को असफल कहा जा सकता है और दांपत्य - सम्बन्धों को लेकर उनमें निरंतर तनाव की स्तिथि भी देखी जा सकती है, जिसके कारण वह अस्वस्थ तक रहने लगीं I हाँ, प्रभा खेतान और मन्नू भंडारी में एक बात का साम्य और प्रतीत होता है कि दोनों ही अपने नायकों के व्यव्हार से घुटती रहती हैं और अंततः उनसे मुक्ति पा लेती हैं I

मैत्रेयी पुष्पा इन दोनों बातों के खिलाफ आदर्श सहजीवन की खोज करती देखी जा सकती हैं और अपनी ओर से यह भरसक प्रयत्न भी करती हैं कि वह पत्नी, गृहणी और माँ की भूमिकाएँ निभाती जायें I श्री अभय कुमार दुबे मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" के सन्दर्भ में इस तथ्य के सम्बन्ध में मैत्रेयी पुष्पा की विवशता का उल्लेख करते हैं : -

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में मैत्रेयी पुष्पा आदर्श सहजीवन की खोज कर रही हैं लेकिन उनकी जमीन मन्नू भंडारी और प्रभा खेतान से अलग है I वे परंपरा के हाथों से गढ़े गए निजी सम्बन्धों के दायरे में कल भी रहती थीं और आज भी रहती हैं I उनके संघर्ष उन दीवारों के भीतर हो रहे हैं, जहाँ उन्हें पत्नी, गृहणी,और माँ की भूमिकाएँ निभानी हैंI"[८]

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रकाशित हुईं तीन महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं को इस दृष्टि से भी देखा - परखा जाना चाहिए कि उनकी आत्मकथाओं में नारीवाद का क्या स्वरूप है? और नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में उनकी आत्मकथाओं का क्या मूल्य है? इस प्रश्नों के उत्तर अभय कुमार दुबे के शब्दों में देकर प्रस्तुत प्रसंग का समापन किया जाता है: -

"प्रभा खेतान ने बिना विवाह किए एक जोखिम - भरे रोमानी प्रेम के जरिए आदर्श सह - जीवन की खोज की I वे उद्योग जगत् में अपने दम पर कामयाबी हासिल करके अपना सशक्तीकरण करते हुए दिखीं I साहित्यिक रचनाशीलता उनके लिए आत्माभिव्यक्ति का साधन बनी I मन्नू भंडारी ने अति - आधुनिक किस्म का प्रेम - विवाह करके (जिसे मैं रोमानी नहीं बल्कि परस्पर समता और लोकतंत्र की बेहतर संभावनाओं से ओत - प्रोत संगमी प्रेम की संज्ञा देता हूँ) सह - जीवन उपलब्ध करने का प्रयास किया I उनके जीवन पर निगाह डालने से लगता है कि उन्होंने साहित्य और रचनाशीलता को ही सशक्तीकरण का स्रोत बनाया I नारीवाद की दृष्टि से मैं इन दोनों को अपने युग की नायिकाओं का दर्जा देता हूँ (इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रभाजी नारीवाद की पैरोकार हैं और मन्नूजी उसकी घोषित विरोधी) I लेकिन, क्या विडंबना है इन नायिकाओं की ! आज उनके पास कीर्ति है, मान्यता है, अस्मिता है, पर, ऐसा प्रयोगधर्मी और अन्यथा सफल जीवन बिताने के बाद भी सह - जीवन का सुख नहीं है I"[९]

संदर्भ ग्रन्थ –

१. मन्नू भंडारी - ' एक कहानी यह भी ', - पृष्ठ १८४
२. संपादक दया दीक्षित - 'मैत्रेयी पुष्पा: तथ्य और सत्य', 'अंतरंगताओं की फितनागरी ' शीर्षक आलेख से उद्धृत, पृ0 २१९ - २०
३. 'हंस' पत्रिका (नवम्बर, ०९), 'अरे, यह लाइन क्यों कट गई' शीर्षक आलेख से उद्धृत, पृ0 १५
४. संपादक दया दीक्षित - 'मैत्रेयी पुष्पा: तथ्य और सत्य' , 'अंतरंगताओं की फितनागरी ' शीर्षक आलेख से उद्धृत , पृ0 २२० - २१
५. वही - पृ0 २२८
६. वही - पृ0 २२४
७. वही - पृ0 २२६ - २७
८. वही - पृ0 २१९
९. वही - पृ0 २२०

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक विचारों की उपादेयता

डॉ0 स्वाती जायसवाल
व्याख्याता (शिक्षाशास्त्र)
सोहागी कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
खटिया, सोहागी, रीवां (म0प्र0)

सारांश

वर्तमान शिक्षा के उद्देश्य, मूल्य एवं आदर्श व्यक्ति की भौतिकतावादी विचारों के पोषक है। वर्तमान शिक्षा ने महान उद्देश्यों एवं मूल्यों को खो दिया है जिससे मानव की पूर्ण विकास की सम्भावनाएं समाप्त हो चली है। आधुनिक काल का मानव, शिक्षा के इन उद्देश्यों एवं मूल्यों के चलते एक यंत्र में परिवर्तित होता जा रहा है। यदि हमें मानवीय गरिमा, मानवीय सम्बन्धों, समाजोत्थान, विश्व–शांति आदि को पुनर्स्थापित करना है तो हमें इनकी ओर लौटना होगा। आचार्य विनोबा की शिक्षा में निहित उद्देश्यों, मूल्यों एवं आदर्शों की सहायता से हम आध्यात्मिकता का शिक्षा में पुनर्स्थापन कर सकते है। वर्तमान मानवीय समाज में उच्चतर मानवीय मूल्यों एवं संबंधों की पुनर्स्थापना के लिए विनोबा भावे जी का पाठ्यक्रम भी वर्तमान को नवीन साधन प्रदान कर सकता है। आचार्य जी द्वारा वर्णित प्रतिभासिक, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक स्तरों पर भिन्न–भिन्न पाठ्यक्रमों का स्वरूप वर्तमान विश्व के लिए अत्यधिक प्रासंगिक होगा। आज के शिक्षक–छात्र संबंधों में गिरावट का एकमात्र समाधान विनोबा के शिक्षा दर्शन के पास है जिसमें कि गुरू की महत्ता एवं छात्रों के गुरू के प्रति उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का बहुत ही विशद् एवं सुंदर वर्णन है। विनोबा भावे के अनुसार सभी छात्र आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समान होते है एवं शिक्षक ब्रह्मज्ञान रखने वाला वह व्यक्ति होता है जो अपने शिष्यों से पुत्रवत् स्नेह रखते हुए उनके सर्वांगीण विकास के लिए पथ प्रदर्शित करता है।

मुख्य शब्द– वर्तमान समय, शैक्षिक परिदृश्य, आचार्य विनोवा भावे, शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, छात्र, शिक्षक, उपादेयता

प्रस्तावना–

प्राचीन युग से ही शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानार्जन के उद्देश्य को महत्व प्रदान किया गया है। इस उद्देश्य का तात्पर्य है कि ज्ञान प्राप्त करता। क्योंकि कहा गया है कि **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** अर्थात ज्ञान से बढ़कर और पवित्र वस्तु इस संसार में कोई नही है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान की आवश्यकता है बिना ज्ञान के व्यक्ति अपने जीवन में कभी भी आगे बढ़ नही सकता है। ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति में व्यक्तित्व का विकास होता है और व्यक्ति प्रगति की ओर अग्रसर होता है ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करता है। व्यक्ति को सुख आनन्द की प्राप्ति ज्ञान के द्वारा ही होती है। और व्यक्ति के विचारो और भावनाओं पर नियंत्रण ज्ञान के द्वारा ही होती है। इसीलिए ज्ञान की पवित्रता तो आज भी प्रसिद्ध है। ज्ञान के द्वारा हम व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को सुलझा सकते है। यह ज्ञान शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त होती है। शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इसी तरह ज्ञान का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ एवं अनुभव प्राप्त करता रहता है। शिक्षा मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके द्वारा मनुष्य अपना आर्थिक विकास करता है एवं जीवन में पूर्णता को प्राप्त करता है शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशु के समान रहता है। जिस प्रकार से शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्व है उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का शिक्षा को ज्ञान से कभी भी अलग नही किया जा सकता है। दोनो एक दूसरे के पूरक है शिक्षा की प्रक्रिया अनौपचारिक एवं आनुषंगिक रूप से सदा सर्वत्र चलती रहती है। किन्तु

इसकी सुनियोजित और औपचारिक प्रक्रिया का विशाल संचालन का दायित्व समाज एवं राज्य पर होता है। शिक्षा का यह विशाल भवन जिस नींव पर टिका होता है। उससे दार्शनिक आधार प्रमुख है। शिक्षा का दार्शनिक आधार यदि सुदृढ़ न हो तो इस विशाल भवन की मजबूती खतरे में पड़ जायेगी।

विन्या, विनोबा, नरहरि भावे, विनायक और वाद में बाबा के नाम से विख्यात आचार्य विनोबा भावे का जन्म महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में गागोदे नामक छोटे से गाँव में हुआ था विनोबा जी के माता जी का नाम रूक्मिणी बाई था और पिता जी का नाम नरहरि भावे था। विनोबा के अलावा रूक्मिणी बाई के दो बेटे थे वाल्कोबा और शिवाजी विनायक से छोटे वाल्कोबा, शिवाजी सबसे छोटे थे। दादा शंभू राव भावे बहुत ही सदाचारी ब्राह्मण भगवान शंकर के अनन्य भक्त थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र नरहरि पंत की पत्नी रूक्मणी बाई भावे से विनायक का जन्म हुआ था। दादा शंभुराव के आदर्श आध्यात्मिक चरित्र का प्रभाव तथा माता रूक्मणी की धर्म परायणता की छाप बालक विन्या (विनोबा) पर बहुत पड़ी विनोबा को अध्यात्म के संस्कार देने, उनके भक्ति–वेदान की ओर ले जाने में, बचपन में उनके मन में सन्यास और वैराग्य की प्रेरणा जगाने में उनकी माँ रूकमणी बाई का बड़ा योगदान था बालक विनायक को माता पिता दोनो के संस्कार मिले। विनोबा जी ने आश्रम की जीवन पद्धति को अपने जीवन में उतारा था। गाँधी के सत्य अहिंसा तथा सत्याग्रह रूपी शस्त्र से लैस होकर राजनीतिक आन्दोलनों का नेतृत्व किया तथा सजा काटी। सन् 1940 में प्रथम सत्याग्रही के रूप में विनोवा जी का नाम घोषित हुआ।

7 जून 1966 को बिहार पूर्णिमा जिले में रानी पतरा आश्रम में विनोवा जी ने सूक्ष्म कर्म–योग की घोषणा की। 50 साल पहले इसी दिन वे गाँधी जी के पास गये थे तब से अब तक 50 वर्ष ''गाँधी जी की आज्ञा'' के अनुकूल उनके जीवनदर्शन पर अमल करते हुए कार्य क्षेत्र में बीते थे। सारे कर्म गाँधी जी को समर्पित कर मुक्त होने का निर्णय कर लिया। वे पवनार के ब्रह्म विद्या मन्दिर में रहने लगे। उसे स्त्री जागरण का केन्द्र बनाना चाहते थे। सन् 1974 में अखिल भारतीय स्त्रीशक्ति सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के खास निमंत्रण पर व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा कि दुनियाँ को विनाश से स्त्रियाँ ही बचा सकती हैं। 25 दिसम्बर 1974 को बड़े दिन गीता जयंती के पावन पर्व पर विनोबा जी ने मौन व्रत शुरू किया। एक वर्ष बाद विनोबा जी का मौन व्रत टूटा और गोवध के लिए अनशन किया। उनकी तबियत बिगड़ने लगी। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने संविधान में संशोधन कर 'पशु संवर्धन' को केन्द्रीय सूची में शामिल करने का आश्वासन दिया, तब उनका अनशन समाप्त हुआ। सर्वोदय कार्यकर्ता गोवध बन्दी, मद्यनिषेध, शराबबन्दी आदि को लेकर देश भर में अभियान चलाते रहे। जब तक साँस चलती रही भारत और भारतवासियों के विषय में सोचते रहे विनोबा भावे अपने जीवन में अहिंसा और त्याग को बहुत ज्यादा महत्व देते थे गांधी जी को अपना मार्गदर्शक समझने वाले विनोबा भावे ने समाज में जन जागृति लाने के लिए कई महत्वपूर्ण और सफल प्रयास किये उनके सम्मान में उनके निधन के पश्चात् हजारीबाग विश्वविद्यालय का नाम विनोबा भावे विश्वविद्यालय रखा गया। विनोबा भावे पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें वर्ष 1958 ई0 में अंतर्राष्ट्रीय रेमन मैग्सेसे सम्मान प्राप्त हुआ था उन्हें यह सम्मान सामुदायिक नेतृत्व के क्षेत्र में प्राप्त हुआ था। मरणोपरांत वर्ष 1983 ई0 में विनोबा भावे को भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न से नवाजा गया था। नवम्बर 1982 ई0 में विनोबा भावे अत्यधिक बीमार पड़ गए उन्होंने अपने जीवन को समाप्त करने का निश्चय किया वह न तो कुछ खाते थे और न ही दवाई लेते थे जिसके परिणामस्वरूप 15 नवम्बर सन् 1982 ई0 को उनका निधन हो गया।

आचार्य विनोबा भावे के शैक्षिक विचार निम्नलिखित हैं–

शिक्षा का अर्थ–

आचार्य विनोबा भावे शिक्षा को एक आंतरिक प्रक्रिया मानते है। उनकी नजर में सर्वोत्तम शिक्षा वह है जो मनुष्य के शारीरिक जीवन मानसिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक गुणों का विकास कर दे। विनोबा जी के अनुसार विद्यालय का वातावरण सर्वोदयी हो अर्थात वह वातावरण जिससे बालक में आत्मनिर्भरता कर्तव्यनिष्ठता, विनम्रता, सामाजिकता तथा आध्यात्मिकता की भावना का विकास हो सके

क्योंकि कोई भी मनुष्य हो इन गुणों की अनुपस्थिति में वह एक पूर्ण शिक्षित मनुष्य नही कहलायेगा और शिक्षा का उद्देश्य सही रूप में पूर्ण नहीं हो पायेगा।

शिक्षा के उद्देश्य –

विनोबा भावे जी भारत में एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे कि जिस समाज में सामाजिक रूप से और आर्थिक रूप से समानता हो इस सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे प्रत्येक व्यक्ति के वैयक्तिक सामाजिक आर्थिक स्वावलम्बन और आध्यात्मिक विकास को शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करते है। समाज अपने श्रम से कुटीर उद्योगो की सहायता से विकसित हो विनोबा जी कहते थे कि आर्थिक विकास सामाजिक विकास से सम्बन्धित है, इसलिए यदि समाज को मजबूत बनाना है तो सभी लोगो को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी बनाना होगा इसके लिए रास्ता बहुत कठिन नही है। हमे अपने पुरातन व्यवसायों लघु कुटीर उद्योगो तथा कृषि को पुर्नजीवित करने की आवश्यकता है।

पाठ्यक्रम –

आचार्य विनोबा भावे का पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कहना था कि पाठ्यक्रम को समय तथा आवश्यकता के अनुकूल होना चाहिए विनोबा जी ने बालक के स्वास्थ्य और रोजगार के लिए स्वास्थ्य शिक्षा यथा–योग, व्यायाम तथा शिल्प कार्य को बालक के पाठ्यक्रम में स्थान दिया विनोबा जी के अनुसार बालकों एंव बालिकाओं को ऐसी रोजगार परक शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जिससे कि वे आगे भी अपनी जीविका चला सकें। उन्होंने स्कूल वातावरण में बालक एवं बालिकाओं को एक ऐसा पाठ्यक्रम देने को कहा जिससे कृषि, लघु व कुटीर उद्योग, सिलाई, कढ़ाई, पालन–पोषण आदि बातों का ज्ञान प्रदान किया जाय।

शिक्षण विधि –

विनोबा जी का विचार भी शिक्षण विधि के सम्बन्ध में व्यावहारिक है। वह भी पुस्तक के द्वारा ज्ञान को स्थायी नही मानते है जब तक को स्थायी नही मानते है जब तक की वह क्रियात्मक रूप से न हो क्योंकि पुस्तक के ज्ञान में और कुछ करके ज्ञान प्राप्त करने में काफी अंतर होता है इसलिए उनके अनुसार शिक्षण विधि बच्चों तक ही सीमित रहे जबकि प्रौढ़ों के लिए वह श्रुत विधि का उपाय बताते है क्योंकि सुनने से शिक्षण का ज्ञान स्थायी रहता है विनोबा जी भ्रमण के द्वारा अर्जित ज्ञान को भी स्थायी मानते है और भ्रमण द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को सर्वोत्तम साधन और भ्रमण द्वारा ज्ञान देने की विधि का समर्थन करते है।

विद्यालय सम्बन्धी विचार –

आचार्य विनोबा भावे जी ने एक अलग विद्यालय की रूपरेखा बनायी जो कि परम्परागत विद्यालयों से काफी भिन्न है विनोबा जी चाहते थे कि सभी विद्यालय स्वयं आत्मनर्भिर बने वे किसी दूसरे पर निर्भर न रहे। उन्होंने ग्रामीण अंचलो में स्थापित विद्यालयों को इस प्रकार निर्माण किया जिससे वे विद्यालय समाज की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करें। विनोबा जी विद्यालय को पूर्णकालिक विद्यालय नही बल्कि कुछ समय के लिए चलाना चाहते थे जिससे समाज की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे।

उपादेयता –

आचार्य विनोबा भावे के शैक्षिक विचार वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में बहुत ही प्रासंगिक है एवं वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में बहुत ही उपयोगी है। आचार्य विनोबा भावे के द्वारा बताये गये शिक्षण विधि आज भी शिक्षा व्यवस्था में अत्यन्त ही प्रासंगिक है। विनोबा भावे के द्वारा बतायी गयी शिक्षण विधि जैसे श्रुत विधि, क्रियात्मक विधि तथा भ्रमण द्वारा ज्ञान अर्थात पर्यटन को विशेष महत्व दिया जा रहा है। वर्तमान समय में स्कूलों और विद्यालयों में इसका पालन हो रहा है एवं अनुशासनहीनता पर विराम लग गया है। विनोबा जी ने स्त्रियों को भी पुरूषों के बराबर शिक्षित करने की बात कही है।

आचार्य विनोबा भावे के शैक्षिक विचार आज के इस मशीनी युग में अत्याधिक प्रासंगिक हो गए हैं। आज व्यक्ति को एक मशीन समझा जा रहा है जिसके कारण व्यक्ति की मानवीय संवेदनाये धीरे–धीरे कम हो रही हैं। ऐसे समय में शिक्षा व्यवस्था में इन महान शिक्षाशास्त्री के विचारों का समावेश करके व्यक्ति को समाज का एक योग्य एवं उपयोगी सदस्य बनाया जा सकता है।

विनोबा जी के शिक्षा के उद्देश्य वर्तमान समय में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिसकी सहायता से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। इनके द्वारा सुझाए गए पाठ्यक्रम के आधार पर आज पाठ्यक्रम निर्धारित किया जा रहा हैं जिसमें बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम को विशेष महत्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्रियाशीलता तथा नम्यता का भी समावेश किया जा रहा है।

विनोबा जी ने विश्वविद्यालय के तीन कार्य निर्धारित किए है– शिक्षण, शोध तथा प्रसार। इन्हीं के विचारों का अनुसरण करते हुए वर्तमान विश्वविद्यालयों का यही प्रमुख आधारभूत कार्य है। आज का शिक्षक विनोबा जी द्वारा बताए गए शिक्षक की ही भाँति हैं, जिससे शिक्षक को मित्र, पथ–प्रदर्शक तथा सहायक के रूप में देखा जा रहा है। आज शिक्षार्थी को केन्द्र बिन्दु मानकर पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियो का प्रतिपादन किया रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय एवं विश्वविद्यालय इत्यादि सम्बन्धी विचार विनोबा जी के ही विचारों से प्रेरित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- गांधी, मोहनदास करमचन्द्र (2007). विनोबा के विचार, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन।
- राय, पारसनाथ (2008). अनुसन्धान–परिचय, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
- लाल, रमन बिहारी (1980–81). शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
- विनोबा (मार्च, 1999). लोकनीति, वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट।
- विनोबा (मई, 1997). ग्राम पंचायत, वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट।
- विनोबा (अप्रैल, 1999). स्त्री–शक्ति, वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट।
- सिंह, ओ0पी0 (2004). शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, 11, यूनिवर्सिटी रोड।

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

श्रीलाल शुक्ल : उपन्यासों का व्यंग्यात्मक स्वरूप : व्यंग्यात्मक उपन्यास

काजल कुमारी
शोध छात्रा
भूपेन्द्र नारायण मण्डल वि.वि.मधेपुरा

शब्द ही साहित्य के आधार होते हैं, और इन शब्दों में अनंत शक्ति विद्यमान होती है। यह शब्द शक्ति समस्त मनोभावों को प्रकट करती है। शब्द जितने प्रभावशाली होंगे उनके द्वारा भाव और संवेदनाओं का प्रगटन भी उतना ही प्रभावशाली होगा। मुख्य रूप से शब्दों में तीन प्रकार की शक्तियां विद्यमान होती हैं। पहली अभिधा शक्ति, दूसरी लक्षणा शक्ति तथा तीसरी व्यंजना शक्ति शब्द अपने अर्थ के अनुसार ही समस्त घटनाक्रम का वर्णन करते है। इसलिए साहित्य दर्पण कार विश्वनाथ अर्थ को तीन प्रकार का मानते हैं। पहला–वाच्यार्थ, दूसरा –लक्ष्यार्थ और तीसरा–व्यंग्यार्थ। वाच्यार्थ की उत्पत्ति अभिधा शक्ति के द्वारा लक्ष्यार्थ की उत्पति लक्षणा शक्ति के द्वारा तथा व्यंग्यार्थ की उत्पत्ति व्यंजना शक्ति के द्वारा होती है। यद्यपि शब्द में कितनी शक्तियां हैं? इस प्रकरण को लेकर विद्वानों में एकरूपता नहीं है। कई कई विद्वान तो शब्द को अनंत शक्तियों का भंडार मानते हैं। तो कुछ सीमित शक्तियों की बात करते हैं। इस संबंध में प्रोफेसर संगम लाल पांडे का कथन समीचीन जान पड़ता है । प्रोफेसर पांडे के अनुसार–''शब्द की कितनी शक्तियां हैं इस पर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। साहित्यिक लोग अभिधा लक्षणा और व्यंजना तीन शक्तियां मानते हैं। नैयायिक दो शक्तियां संकेत और लक्षण मानते हैं संकेत का नाम ही अभिधा है। मीमांसक लोग व्यंजना को नहीं मानते किंतु वे तात्पर्य को वृत्ति मानते हैं। व्याकरण दर्शन में दो शक्तियां अभिधा और व्यंजना को ही माना गया है। तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र में व्यंजना वृति का उपयोग नहीं होता है। वहां केवल अभिधा और लक्षणा वृत्तियों का ही प्रयोग होता है।''[1]

प्रोफ़ेसर पांडे शब्द की तीनों वृत्तियो का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं–''अभिधा से जो अर्थ निकलता है उसे वाच्य कहते हैं, लक्षणों से जो अर्थ निकलता है उसे लक्ष्य कहते हैं और व्यंजना से जो अर्थ निकलता है उसे व्यंग्य कहते हैं।''[2]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यंजना शक्ति के द्वारा उत्पन्न अर्थ को हम व्यंग्य कहते हैं। ऐसा उपन्यास जो व्यंग्य को आधार बनाकर लिखा जाता है व्यंगात्मक उपन्यास कहलाता है। ऐसे उपन्यासों में समय व समाज की विद्रूपताओं को परत दर परत खोलकर रख दिया जाता है। व्यंग्य साहित्यकार व्यंग्य के माध्यम से जीवन में व्याप्त विसंगतियों तथा अव्यवस्थाओं को उजागर करता है तथा परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के सुधार हेतु एक उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग करता है। व्यंग्य का सर्व प्रमुख लक्ष्य समाज को सही दिशा की ओर अग्रसर करना होता है।

व्यंग्य शब्द का प्रादुर्भाव संस्कृत भाषा से हुआ है। व्यंग्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। वि+अंग= व्यंग्य । इस अर्थ के अनुसार इसका तात्पर्य विकृत, विरूप अथवा विकलांग होता है। अर्थात ऐसी भाषा अथवा शब्द शैली जो पूरी तरह से विकृत रूप में सामने आकर अपने निहितार्थ को स्पष्ट करते हैं, व्यंग्य कहे जाते हैं। इस प्रकार विकृति या विरूपण व्यंग्य के कारक तत्व के रूप में माने जाते हैं। संस्कृत के विशाल शब्दकोश 'शब्द कल्पद्रुम' में व्यंग्य कीपरिभाषा इस प्रकार की गई है। विकृतानि अंगानि यस्मात।''[3]

अर्थात जिसका अंग विकृत हो व्यंग्य कहलाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं जो विकलांगता को उजागर कर वही व्यंग्य है। इस अर्थ में व्यंग्यात्मक उपन्यास वह उपन्यास है जो पूरी तरह से विकृ त स्वरूप में सामने आकर समाज की विद्रूपताओं को उजागर करती है।

हिंदी साहित्य कोश में भी व्यंग्य की कुछ इसी प्रकार की परिभाषा दी गई है, जो पूरी तरह से संस्कृत में दी गई परिभाषा से साम्य में रखती है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'अञ्ज' धातु में 'वि' उपसर्ग तथा 'ण्यन' प्रत्यय जोड़ने व्यंग्य शब्द का निर्माण होता है। हिंदी साहित्य कोश में व्यंग्य शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा गया है–''व्यंजना शक्ति 'अंजन' शब्द में 'वि' उपसर्ग लगाने से 'व्यंजन' शब्द निर्मित होता है। अतः व्यंजन का अर्थ हुआ 'विशेष प्रकार का अंजन' आंखों में लगा हुआ अंजन जिस प्रकार दृष्टि दोष को दूर कर उसे निर्मल बना देता है उसी प्रकार व्यंजना शक्ति शब्द के मुख्य अर्थ तथा लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूलमें छिपे हुए अकथित अर्थको द्योतित कराती है।''[4]

व्यावहारिक हिंदी कोश में भी व्यंग्य को परिभाषित किया गया है। इसमें व्यंग्य को एक 'ताना', 'बोली' अथवा 'कहने के ढंग के रूप में प्रख्यापित किया गया है, जिसमें बात तो सीधे तौर पर की जाती है किंतु ध्यान से देखने पर उसका अर्थ पूरी तरह से परिवर्तित और आक्षेपात्मक होता है। इसमें आलोचना या निंदा की ध्वनि गुंजित होती है। इसके अनुसार–''व्यंग्य–पु0'ताना', 'बोली' कहने का वह ढंग जिसमें ऊपर से सीधी या प्रशंसात्मक बात कही जाती है परंतु ध्यान से देखने पर उसमें आक्षेप, आलोचना या निंदा की ध्वनि निकलती है, शब्द का वह गूढ़ अर्थ जो मुख्यार्थ का वाचक न होने पर भी उस से ध्वनित हो, वह रचना जो जीवन की विडंबनाओं को उभारकर तथ्यों के प्रति जागरूक करने के लिए और मन पर चोट करने के लिए लिखी गई हो।''[5]

विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव ने व्यंग्य को व्यंजना शक्ति द्वारा प्रकट होने वाले शब्द के गूढ़ अर्थ के रूप में संज्ञापित किया है। वह इसे 'ताना' मारने के अर्थ में ग्रहण करते हैं। अपनी पुस्तक हिंदी राष्ट्रभाषा कोश में विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव लिखते हैं–''व्यंग्य–संज्ञा (पु०) ताना। बोली व्यंजना द्वारा प्रकट होने वाला शब्द का गूढ अर्थ ।''[6]

रामचंद्र वर्मा भी व्यंग्य को व्यंजना वृति के द्वारा ही प्रकट मानते हैं। उन्होंने भी व्यंग्य को ताना, बोली अथवा चुटकी के रूप में स्वीकार किया है। अपनी पुस्तक संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर में रामचंद्र वर्मा व्यंग्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–''व्यंग्य–संज्ञा पु० (सं०)– 1. शब्द का वह गूढ़ अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। 2. ताना,बोली, चुटकी।''[7]

व्यंग्य को अंग्रेजी में सटायर (satire) कहा जाता है। अंग्रेजी साहित्य में इसे आईरोनी (irony) भी कहा जाता है। किंतु अधिकांश विद्वान सटायर को ही अधिक उपयुक्त मानते हैं। सटायर शब्द का प्रयोग निकृष्ट तथा बेढंगी उपहास परक रचना के अर्थ में किया जाता है। इस प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यास जीवन की अस्त–व्यस्त परिस्थिति को रेखांकित करता है और समाज में व्याप्त जड़ता की जड़ों को खोदने का प्रयास करता है। हिंदी व संस्कृत वाड्.मय में इसे वक्रोक्ति भी कहा जाता है। भोजदेव के अनुसार समस्त वाड्.मय को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहला रसोक्ति दूसरा स्वभावोक्ति तथा तीसरा वक्रोक्ति रसोक्ति मे सौंदर्यपरक दृष्टिकोण समाहित होता है, तो स्वभावोक्ति के अंतर्गत रूप और उसके गुण को बहुत ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। वक्रोक्ति इन दोनों विभागों से सर्वथा भिन्न है। वक्रोक्ति का अर्थ वक्र उक्ति अर्थात टेढ़ी बात होती है। साहित्यकार टेढ़ी बातों के माध्यम से विसंगतियों पर प्रहार करता है। इस प्रकार संपूर्ण वक्रोक्ति में व्यंग्यात्मकता को व्यक्त करने वाला दृष्टिकोण समाहित होता है। साधारण सी दिखने वाली बातें अपने में गूढ़ अर्थ समाहित किए होती हैं और मूल अर्थ से पूरी तरह भिन्न अर्थ को प्रस्तुत करती हैं।

काव्यशास्त्र में व्यंग्यात्मक विधा का उल्लेख अलग से प्राप्त नहीं होता है, बल्कि यह हास्य तथा व्यंग्य के रूप में दृष्टिगोचर होती है। व्यंग्य का कोई भी स्वरूप स्पष्ट न हो पाने के कारण साहित्यकारों में इसके स्वरूप और उसकी परिभाषाओं को लेकर गहरा मतभेद है। सभी ने अपने अपने ढंग से इस की परिभाषाएं की है। यद्यपि मूल रूप से भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों में काफी समानता दृष्टिगोचर होती है किंतु सभी ने अपने अपने ढंग से व्यंग्य के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

हिंदी साहित्य के विद्वान व्यंग्य साहित्य को साहित्य धरातल का एक महत्वपूर्ण सृजन मानते हैं जो अत्यंत व्यापक फलक पर समकालीन जीवन तथा सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओ पर बहुत ही तेजाबी कलम से प्रहार करता है और मानव जीवन में व्याप्त जड़ता की जड़ों को उखाड़ फेंकता है।

व्यंग्य के द्वारा मानव जीवन के सुंदरतम का नहीं बल्कि सत्यम और शिवम पक्ष का भी दिग्दर्शन होता है। यद्यपि व्यंग्य को लेकर भारतीय विद्वानों में एकमत नहीं है फिर भी वह व्यंग के स्वरूप को स्पष्ट करने में पूरी तरह से सक्षम है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं को यहां उद्धृत किया जाना अधिक समीचीन होगा।

- डॉ रामकुमार वर्मा के अनुसार–''आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।''[8]

- प्रोफेसर कांति कुमार जैन के अनुसार :–''व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी तात्कालिकता और संदर्भ से उसका लगाव है, जो आलोचक शाश्वत साहित्य की बात करते हैं उनकी दृष्टि से व्यंग्य पत्रकारिता के दर्जे की वस्तु मान लिया गया है। उन्हें लगता है कि साहित्यकार व्यंग्य का उपयोग चटखारे बाजी के लिए भले ही कर ले, कभी गंभीर लक्ष्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है।''[9]

- डॉ वीरेंद्र मेहंदीरत्ता के अनुसार :–''शास्त्रीय दृष्टि से व्यंग्य मानव तथा जगत की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है।''[10]

- डॉ. शेरजंग गर्ग के अनुसार –कथनी और करनी के अंतरों की समीक्षा, निंदा भाव को टेढी भंगिमा देकर अथवा कभी–कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में–''व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओ प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगंभीर होते हुए भी गंभीर हो सकती है। निर्दयी लगते हुए दयालु हो सकती है। अतिश्योक्ति एवं अति रंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है।''[11]

- हरिशंकर परसाई के अनुसार :–''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है। जीवन की आलोचना करता है। विसंगतियों मिथ्याचारों और पाखंगे पर्दाफाश करता है।''[12]

  हरिशंकर परसाई आगे भी लिखते हैं–''सच्चा व्यग्य जीवन की समीक्षा करता है। मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपने से साक्षात्कार कराता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है।''[13]

- डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–''व्यंग्य वह है जहां कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहास्यापद बना देना हो जाता है।''[14]

- अमृत राय नागर जी के अनुसार :–''व्यंग्य पाठक को क्षोभ या क्रोध जगा कर प्रकारान्तर से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है।''[15]

- बालेन्दु शेखर तिवारी के अनुसार–''जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही गहरी निष्ठा होती है जितनी औरों की होती है बल्कि ज्यादा ही ।''[16]

- डॉक्टर प्रभाकर माचवे के अनुसार :–''व्यंग्य को एक आवश्यक अस्त्र मानते हैं जो समाज में यंत्र तंत्र व्याप्त गंदगी को हटाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है ।''[17]

- डॉक्टर कन्हैयालाल नंदन के अनुसार–''व्यंग्य को आक्रोश के तीव्र वेग को संयमित कर रचनात्मक भूमिका के रूप में सामने रखने वाला मानते हैं।''[18]

- रवींद्रनाथ त्यागी के अनुसार–''व्यंग्य मानवीय अस्तित्व के आधारभूत समाज से सीधे टकराता है और अमानवीय और विसंगत स्थितियों का जायजा ले देकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता वरन उसके कारणों

और निहित शक्तियों को भी उभारता है। इसलिए व्यंग्य अधिपक्षधर और प्रतिबद्ध किस्म का लेखन है।''[19]

- श्रीलाल शुक्ल के अनुसार :–''व्यंग्य दरअसल रचनाकार की संवेदनशीलता और उसके तीक्ष्ण कलात्मक रूपांतरण का निकष होता है। व्यंग्यकार की जिम्मेदारी मानवीय यथार्थ के पुनः सर्जन तक ही खत्म नहीं होती बल्कि इससे बहुत आगे उस यथार्थ की मामूली लगने वाली सतहों को वह इतने रचनात्मक ताप और तेजी के साथ पेश करता है कि वह मामूली सतह ही गंभीर मानवीय प्रश्न बन जाती हैं।''[20]

अनेक पाश्चात्य विद्वानों द्वारा व्यंग्य की भिन्न–भिन्न परिभाषा की गई है। उन्होंने व्यंग के विविध पक्षों का ध्यान रखते हुए अपनी परिभाषाओं को गढ़ा है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है।

मेरीडेथ के अनुसार–''व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है। उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।''[21]

जेम्स सदरलैंड के अनुसार–''व्यंग्यकार का कार्य न्यायाधीश की भांति न्याय पालन कराने का तथा स्वस्थ समाज की मर्यादाओं की रक्षा करना है। उसका कार्य स्त्री पुरुषों को नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं अन्य कसौटी पर खरे उतरने के लिए सचेत करने का है।''[22]

ए निकाल के शब्दों में–''व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो जाता है कि वह किंचित भी हास्यजनक न हो। व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है। इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेश मात्र भाव भी नहीं होता। व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी–कभी वह पूरी निर्दयता से प्रहार करता है। व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। वह युग की समूची परिस्थितियों पर प्रहार करता है। वह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियां किसी को भी क्षमाकिए बगैर उड़ाता है।''[23]

हारेन्स के अनुसार–''व्यंग्यकार हंसते–हंसते सत्य का कथन करते हैं। ऐसा करके वे सामाजिक और नैतिक समस्याओं की विवेचना गंभीरतापूर्वक किंतु सरल ढंग से करते हैं। इस प्रकार वे व्यंग्योक्ति द्वारा व्यंग्य के उद्देश्य पर आ जाते हैं।''[24]

एल जे पॉट्स के अनुसार–''जिनके द्वारा लक्ष्य के विकृत रूप का सीधे–सीधे उपहास उड़ाया जाता है।''[25]

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार–''व्यंग्य वह पद्यमय अथवा गद्यमय रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी–कभी कुछ अरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है। इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है और इस प्रकार वह एक व्यक्तिगत आक्षेप लेख जैसा होता ।''[26]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार–''व्यंग्य की साहित्यिक तथा ग्राह्य परिभाषा हास्यास्पद अथवा निंदक तथ्यों की मनोरंजक अथवा घृणोत्पादक अभिव्यक्ति के रूप में दी जा सकती है, बशर्ते उस अभिव्यक्ति में हास्य तत्व साहित्यिक रूप में स्पष्टतः परिलक्षित हो। हास्य के अभाव में व्यंग काली का रूप धारण कर लेता है तथा साहित्यिकता के बिना वह विदूषकी ठिठोली मात्र बनकर रह जाता है।''[27]

उपरोक्त भारतीय तथा पाश्चात्य लेखकों और समीक्षकों के विचारों को दृष्टिगत करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यंग्य का जन्म समाज में व्याप्त विकृतियों के परिष्कार के लिए हुआ है। ऐसी विकृतियां जो मानव मन को हमेशा कचोटती रहती हैं और उन विकृतियों तथा अव्यवस्थाओं का विरोध करना मानव मात्र का उद्देश्य बन जाता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह व्यंग्य का सृजन करता है। किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि व्यंग्य की उत्पत्ति केवल विरोध के लिए होती है। व्यंग्य का प्रमुख लक्ष्य समाज में व्याप्त परिस्थितियों को उजागर करना भी होता है। इस प्रकार व्यंग्य केवल निषेधात्मक अर्थ में ही नहीं, बल्कि सकारात्मक भाव में भी ग्रहण किया जाता है। इसी भाव के कारण व्यंग्य में सामाजिक परिष्कार की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में देखा जाए तो व्यंग्य वही

कहा जा सकता है जो समाज की कमजोरियों तथा दुर्बलताओं को उजागर करें और उसके समाधान की दिशा में कुछ न कुछ गंभीर कदम उठाएं। इस अर्थ में व्यंग्य प्रहारात्मक होते हुए भी सुधारात्मक होता है। अतिशयोक्ति एवं अति रंजना के बाद भी यह पूर्णतः सत्य को उजागर करता है। यह आक्रमणकारी होते हुए भी समाधानकारी है।

प्रत्येक समाज में समस्याएं तथा विद्रूपताये पाई जाती है। उन समस्याओं का समाधान करना साहित्यकार का प्रथम दायित्व है। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से ही उन समस्याओं की खोज करता है और उनके समाधान के लिए दिन–रात चिंतन करता है। उसका यही चिंतन उपन्यास के रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित होता है। प्रत्येक कालखंड में लिखा गया साहित्य उस कालखंड की विशेषता का द्योतक होता है। उपन्यास विकास के कालखंड में समाज की जो स्थिति व परिस्थिति होती है वह पूरी तरह से उस उपन्यास में देखी जा सकती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उपन्यास न केवल मनोरंजन की विषय वस्तु है, अपितु यह समाज के लिए एक सुधारात्मक अस्त्र के रूप में अपने दायित्व का निर्वहन भी करता है। यह उन सभी विषयों को उजागर करता है जिनका सरोकार मानव जीवन से होता है। एक तरफ यह समाज में फैले भ्रष्टाचार तथा अनाचार पर प्रहार करता है तो दूसरी तरफ यह युग धर्म के अनुसार आचरण व नीतिगत नियमो तथा सिद्धांतों का प्रतिपादन भी करता है और मानव मात्र को उन नियमों और मर्यादाओं को पालन करने का संदेश देता है। वास्तविक रुप से यदि देखा जाए तो व्यंग्य की उत्पत्ति ही किसी विडंबना पूर्ण स्थित के चित्रण के लिए की जाती है। इस इस विषय में चार्वाक का एक कथन समीचीन जान पड़ता है जिसमें उन्होंने कहा है–''मरा हुआ मनुष्य क्या खाएगा अगर एक का खाया अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता है तो परदेश जाने वालों का श्राद्ध भी किया जाना चाहिए।''[28]

व्यंग्यकार जिस किसी भी घटना अथवा वस्तु से संतुष्ट नहीं होता वह उस पर व्यंग्य कसता है और इस व्यंग्य की परिधि में समाज का कोई भी अंग या कोई भी मनुष्य आ सकता है। व्यंग्यकार के व्यंग्य का संबंध मनुष्य के पद अथवा उसके कार्य से संबंधित हो सकता है। जब भी किसी मनुष्य अथवा व्यक्ति की कार्य की अव्यवस्था तथा उसकी बुराई पर व्यंग्यकार द्वारा प्रहार किया जाता है तो उस व्यंग्यकार के प्रति संबंधित व्यक्ति के मन में क्रोध उत्पत्ति हो जाती है। किंतु इन सारी बातों से बेफिक्र होकर व्यंग्यकार अपने व्यंग का बाण चलाता रहता है। इस अर्थ में वह समाज की बुराइयों को पूरी तरह से समाप्त करने का प्रयासकरता है।

संदर्भ :

1. *प्रोफेसर संगम लाल पांडेय : भारतीय तर्कशास्त्र का आधुनिक परिचय–पृष्ठ 25*
2. *प्रोफेसर संगम लाल पांडेय : भारतीय तर्कशास्त्र का आधुनिक परिचय–पृष्ठ 25*
3. *शब्द कल्पद्रुम चतुर्थ भाग–पृष्ठ 530*
4. *हिंदी साहित्य कोश भाग 1 धीरेंद्र वर्मा–पृष्ठ 804*
5. *व्यावहारिक हिंदी कोश संपादक भोलानाथ तिवारी–पृष्ठ 300*
6. *हिंदी राष्ट्रभाषा कोश : विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' –पृष्ठ 1346*
7. *रामचंद्र वर्मा : संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर–पृष्ठ 911*
8. *शेरजंग गर्ग : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य–पृष्ठ 24*
9. *डॉ मदालसा व्यास : हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई–पृष्ठ 3*
10. *डॉ मेहंदीरता : व्यंग्य का स्वरूप : प्रतिशोध पत्रिका चंडीगढ,–पृष्ठ 32*
11. *शेरजंग गर्ग : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य–पृष्ठ 27–29*
12. *हरिशंकर परसाई : सदाचार की ताबीज : कैफियत पत्रिका–पृष्ठ 10*

13. कमला प्रसाद व अन्य : परसाई रचनावली–खंड 7–पृष्ठ 249 राजकमल प्रकाशन

14. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर–पृष्ठ 164

15. अमृत राय नागर : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं– भूमिका,–पृष्ठ 5

16. बालेंद्र शेखर तिवारी : हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य–पृष्ठ 56

17. हरिशंकर परसाई : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं–पृष्ठ 13

18. परसाई रचनावली : खंड 6–पृष्ठ 249

19. श्रीलाल शुक्ल : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं (प्रथम संस्करण) कवर पेज

20. श्रीलाल शुक्ल : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं (प्रथम संस्करण) कवर पेज

21. मेरीडेथ, लंदन 1943 : आइडिया ऑफ कॉमेडी–पृष्ठ 82

22. प्रोफेसर जेम्स सदरलैंड : इंग्लिश सटायर–पृष्ठ 199

23. ए. निकाल : एन इंट्रोडक्शन टू ड्रैमेटिक थ्योरी–पृष्ठ 212

24. गिलबर्ट हाइट :एनाटॉमी आफ सैटायर–पृष्ठ 234

25. एल जे पॉट्स : कॉमेडी ; –पृष्ठ 153

26. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी : खंड 9–पृष्ठ 119

27. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिक : खंड– 20,–पृष्ठ 15

28. *डॉ अर्चना दुबे : व्यंग्य के विविध आयाम–पृष्ठ 13*

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

भोजपुरी प्रबन्धकाव्यों में दलित चेतना का स्वर

सन्तोष पटेल

सहायक रजिस्ट्रर, दिल्ली शिक्षक विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

साहित्य में काव्य के तीन मुख्य भेद प्रचलित हैं - महाकाव्य, खण्ड-काव्य और मुक्तक काव्य। महाकाव्य और खण्ड काव्य में कथा का होना अनिवार्य है; इसलिए इन दोनों को प्रबंध काव्य कहा जाता है।

भोजपुरी प्रबंध काव्य के दोनों रुपों में घटना और चरित्र का महत्व होता है। घटनाओं और चरित्रों के संबंध में भावों की योजना प्रबंध काव्य में अनिवार्य है। महाकाव्य में मुख्य चरित्र के जीवन को समग्रता में धारण करने के कारण विविधता और विस्तार होता है।

खण्ड काव्य में मुख्य चरित्र की किसी एक प्रमुख विशेषता का चित्रण होने के कारण अधिक विविधता और विस्तार नहीं होता।

भोजपुरी मुक्तक काव्य में कथा-सूत्र आवश्यक नहीं है इसलिए उसमें घटना और चरित्र के अनिवार्य प्रसंग में भाव-योजना नहीं होती। वह किसी भाव-विशेष को आधार बना कर की गई स्वतंत्र रचना है। काव्य-शास्त्र में महाकाव्य और खण्ड-काव्य के लक्षण गिना दिए गए हैं।

महाकाव्य सर्गों में बँधा होता है । सर्ग आठ से अधिक होते हैं । वे न बहुत छोटे न बहुत बड़े होते हैं । हर सर्ग में एक ही छंद होता है। किंतु सर्ग का अंतिम पद्य भिन्न छंद का होता है । सर्ग के अंत में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। देवता या उच्च कुल का क्षत्रिय इसका नायक होता है । श्रृंगार, वीर और शांत रस में से कोई एक रस अंगी होता है और अन्य रस गौण होते हैं । नाटक की सभी संधियाँ रहती हैं । कथा ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध होती है ।

धर्म, अर्थ, काम मोक्ष में से कोई एक उसका फल होता है । खलों और सज्जनों का गुण-वर्णन भी होता है। इसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, दिन, मृगया,पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, स्वर्ग, नरक, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विचाह आदि का सांगोपांग वर्णन होता है । खण्ड काव्य के विषय में कहा गया है कि वह एक देशानुसारी होता है। यहाँ देश का अर्थ भाग या अंश है। खण्डकाव्य में भी सर्ग होते हैं । हर सर्ग में छंद का बंधन इसमें भी होता है । लेकिन छंद परिवर्तन जरूरी नहीं है। प्रकृति वर्णन आदि हो सकता है लेकिन वह भी आवश्यक नहीं है ।

महा-काव्य और खण्ड-काव्य के जो लक्षण बताए गए हैं, उनमें एक शर्त का पालन जरुरी है और वह शर्त है उक्त सभी तत्वों का अविच्छिन्न या सुसंगत संबंध में होना। इसी का नाम प्रबंध है। धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य कोश भाग-1 में (पारिभाषिक शब्दावली) में महाकाव्य के प्रसंग में लिखा गया है कि 'महाकाव्य' की परिभाषा निश्चित करने वाले प्राचीनतम भारतीय आलंकारिक भामह हैं (5 वीं सदी) उनके अनुसार 'लम्बे कथानकवाला, महान चरित्रों पर आश्रित, नाटकीय पंचसंधियों से युक्त उत्कृष्ट और अलंकृत

शैली में लिखित तथा जीवन के विभिन्न रूपों और कार्यों का वर्णन करनेवाला सर्गबद्ध सुखांत काव्य ही महाकाव्य है ।'[1]

भोजपुरी भाषा में प्रबंध-काव्य लेखन का आरम्भ:

भोजपुरी साहित्य में प्रबंध काव्य की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है सबसे पहला प्रबंध काव्य सन 1954 ई में 'बलिदानी बलिया' प्रकाशित हुआ था जिसके रचयिता प्रसिद्ध नारायण सिंह थे । इस प्रबंधकाव्य का ही संशोधित और परिवर्तित रूप 'भोजपुरी वीर काव्य' सन 1955 ई में प्रकाशित हुआ।

सन 1955 ई में ही वीर कुंवर सिंह कमला प्रसाद मिश्र का प्रबंध काव्य प्रकाशित है वही 1957 ईस्वी में हरेंद्र देवनारायण रचित 'कुंवर सिंह' महाकाव्य, रामबचन लाल श्रीवास्तव रचित 'कुणाल' प्रकाशित है। भोजपुरी प्रबंध काव्य को उसके विषय वस्तु के अनुसार विभाजित करें तो निम्नलिखित विभाजन संभव है-

(क) पहला स्वतंत्रता लड़ाई के वीरों की गाथा आधारित यानिपहली धारा- आज़ादी के लड़ाई के वीर नायकों को केंद्रित करते हुए अनेकानेक प्रबन्धकाव्य प्रकाशित हुई। उसका प्रमुख कारण था भारत की आज़ादी का मिलना। आज़ादी के भाव ने पूरे भारतीय जन मानस में देश प्रेम भरा ही साथ ही लोगों के मन में वीर महापुरूषों व सपूतों के प्रति अगाध प्रेम और सम्मान भी जागृत किया जिसकी परिणति प्रबंध काव्यों का विषय है।स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में उत्साह वर्धन वातावरण का अभ्युदय हुआ। भोजपुरी भाषी क्षेत्र इससे अछूता नहीं था ।

सन 1954 से 1962 तक भोजपुरी प्रबंध काव्य में स्वतंत्रता संग्राम के जननायक घटना परिवेश को स्वरूप देने के लिए अनेकानेक प्रबंध काव्य लिखे गए।

(ख) पौराणिक कथा आधारित प्रबंध काव्यदूसरी धारा- भोजपुरी प्रबन्धकाव्य हिंदी का अनुसरण करते करते पौराणिक काल में पहुँच गई। आज़ादी के बाद लोगों में धर्म के प्रति गहरी आस्था जगी और तत्कालीन साहित्यकारो का एक बड़ा तबका जो मूलतः सवर्ण हैं, वे भोजपुरी साहित्य में रामायण महाभारत के परिवेश, चरित्र, घटना, आ रचयिता को विषय बना के प्रबंध काव्य रचा जाने लगा। सन 1962 से 1967 तक भोजपुरी प्रबंध काव्य पौराणिक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हुआ, उदाहरण स्वरूप साहित्य 'रामायण किष्किंधा सुंदर कांड' दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह नाथ ने 1964 में लिखा फिर 'अयोध्या एवं अरण्यकांड' दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह नाथ द्वारा 1967 में आया।

'कौशिकायन' अविनाश चंद्र विद्यार्थी ने 1973 में लिखा और कुंज बिहारी लाल का 'सीता के लाल' 1974 में प्रकाशित हुआ। महाभारत और रामायण के पात्रों, चरित्रों, घटना- परिवेश तथा उसके नायकों को भी विषय बनाकर प्रबंध काव्य की रचना भोजपुरी में हुई है और बहुत तेजी से 1975 के बाद 'सुदामा चरित' 1965 धाम बनवासी किशन लाल श्रीवास्तव 1982 में तथा 'निरधन के घनश्याम' रामबचन शास्त्र द्वारा 1982 में लिखा गया।

(ग) सामाजिक चेतना पर आधारित प्रबंध काव्य जिसकी चिंतन धारा जो युग चेतना के साथ अपने को जोड़ना चाह रहा था वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। मधुकर सिंह की कृति ' रूक जा बदरा' जो तत्कालिक सामाजिक बेचैनी को तिरोहित करता है। यह कृति 1965 में सामने आई थी। इस बीच 'सूरज के लाल' पारसनाथ प्रसाद भ्रमर की कृति 1998 में प्रकाशित हुई जो सामाजिक चिंतन को नया आयाम दिया।

और 2005 में डॉ सूबेदार सिंह 'अवनिज' की कृति 'आस किरिन' सामाजिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में स्थापित बहुजन नायक पेरियार को भोजपुरी क्षेत्र में स्थापित करने के लिए अवनिज जी ने रचना की।

भोजपुरी प्रबन्धकाव्य में भगवान बुद्ध:

भगवान बुद्ध के जीवन पर बेहतर प्रबंध काव्य दंडी स्वामी विमलानंद सरस्वती ने 1983 में रचा जिसमें बुद्ध के संपूर्ण चरित्र दर्शन व सामाजिक संदर्भ की काव्यगत चर्चा समग्रता से की गई है।

विदित है कि बुद्ध चरित को महाकव्य में ढालने वाले पहले कवि अश्वघोष हैं जिनकी कृति है संस्कृत में है – बुद्धचरितम।

भोजपुरी साहित्य में महात्मा बुद्ध के जीवन पर महत्वपूर्ण काम हुए हैं। भोजपुरी बुद्ध पर आधारित दो महाकाव्यों की रचना हुई है । पहला महाकाव्य दंडी स्वामी विमलानंद 'सरस्वती' द्वारा लिखा गया -'बउधायन'. 'बउधायन' को भोजपुरी के ऐतिहासिक चरित काव्य होने का गौरव शिखर प्राप्त है। 'बउधायन' बौद्ध धर्म का विदेश तक प्रचार-प्रसार तक का फैलाव है। 'बउधायन' का प्रकाशन बिहार भोजपुरी अकादमी,पटना से सन 1983 में हुआ।

भोजपुरी भाषा और साहित्य के अध्येता डॉ उदय नारायण तिवारी के शब्दों में - 'बउधायन' भोजपुरी की कालजयी रचना है और भोजपुरी की शक्ति और संप्रभुता का प्रत्यक्ष प्रमाण है । यह शास्त्रीय दृष्टि से भी महाकाव्य के लक्षणों के अनुकूल है । यह महाकाव्य 31 सर्ग में रचा गया है जिसमें चालीस हज़ार पंक्तियाँ हैं और यह बौद्ध धर्म का विश्वकोश अश्वघोष के बाद संसार के किसी दूसरी भाषा यथा चीनी, जापानी, वर्मी, थाई और सिंघली में बुद्ध के जीवन चरित और बौद्ध दर्शन पर कोई महाकाव्य नहीं लिखी गई। बउधायन के 28 सर्ग में बुद्ध के जन्म, महाभिनिष्क्रमण, बोधि प्राप्ति और निर्वाण का मार्मिक चित्रण किया शेष तीन सर्ग में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के इतिहास है।" [2]

डॉ उदय नारायण तिवारी इस महाकाव्य के बारे में आगे लिखते हैं - "बउधायन महाकाव्य में काव्य तत्व के साथ-साथ बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध कालीन इतिहास के भी दर्शन होते हैं, जैसे आदि कवि वाल्मीकि ने संस्कृत में रामायण की तथा होमर ने ग्रीक में इलियट की रचना की थी उसी प्रकार स्वामी जी ने भोजपुरी में इस महाकाव्य की रचना की है।"[3]

बउधायन के सर्ग 1 में सिद्धार्थ के जन्म की चर्चा है –

"चक्का उगल चमचमात अब
नया जोति मुस्काइल
जहां छतीसो राग रागिनी
आज अनेक सजाइल"[4]

भगवान बुद्ध के जीवन पर आधारित दूसरा भोजपुरी महाकाव्य है 'बुद्धायन' । बुद्धायन में भगवान बुद्ध के जन्म से लेकर निर्वाण तक के चर्चा है और अंत में 'धम्मपद' के लोक कल्याणकारी सन्देश तक पहुँचा हुआ है। बुद्धायन की रचना श्री अर्जुन सिंह 'अशांत' जी ने की है। इसका प्रकाशन महाकवि अशांत स्मृति समिति, अम्बिका स्थान,दिघवारा, सारन से 2005 में द्वारा किया गया है।

बुद्धायन के ज्ञान पर्व से दोहा –

"तृष्णा दृढ बंधन जगत दुःख कारण संसार
जे हि प्रभाववश जीव जग जन्म हि बारम्बार
सम्यक ज्ञान भंग संग मन प्राणा
निश्चय प्राप्त होत इंसाना" [5]

इस प्रकार भोजपुरी के दो प्रमुख प्रबन्धकाव्यों में यथा बउधायन और बुद्धायन में भगवान बुद्ध की जीवन गाथा, मानवतावादी विचार का वर्णन मिलता है। यह उल्लेखित करना आवश्यक है कि डॉ विमल कीर्ति का मत है कि 'महामानव ज्योतिबाफुले और बाबासाहेब डॉ आंबेडकर जिन्होंने आधुनिक भारत में सामाजिक क्रांति की वे भगवान बुद्ध के ' धम्म, दर्शन और विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। महामानव ज्योतिबा फुले के साहित्य में बुद्ध धम्म की प्रशंसा की गई है...। [6]

भोजपुरी प्रबंध काव्य में दलित चेतना के स्वर

भोजपुरी दलित साहित्य में काव्य परंपरा को ढूंढना बहुत दुरूह कार्य नहीं है परंतु भोजपुरी साहित्य के इतिहासकारों ने साहित्य में 'शिष्ट' और 'अभिजात्य' जैसे शब्दों को साहित्य में प्राथमिकता दी उसके मुख्यत: दो कारण थे-

पहला-भोजपुरी साहित्य का लिखित इतिहास सवर्णों के कलम से दर्ज हुआ जिन्होंने भोजपुरी समाज में व्याप्त तमाम समाजिक बुराइयों एवं जाति आधारित भेदभाव व सामाजिक व्यवस्था के परिणामों का छुपाने का यथासंभव प्रयत्न किया।

दूसरा कारण बहुजन समाज जो मूलतः श्रम आधारित कार्यों यथा खेती-बारी कृषि एवं खदानों में मजदूरी करने में लगा था और शिक्षा से कोसों दूर था। सामाजिक व्यवस्था में भी उसे हाशिए पर रखा गया था । उन्हें ऐसे हालात में रखा गया था जिसमें वे या तो मजदूरी करें, खेती करें या फिर किसी सामंती या किसी भूपति के दरवाजे पर हलवाहा, चरवाहा, बंधुआ मजदूर या गाड़ीवान का काम करें।

भोजपुरी साहित्य की जड़े लोक से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रारंभिक दौर से भोजपुरी में लोक साहित्य का ही निर्माण हुआ जो भोजपुरी के संस्कार गीत, जातीय गीत और श्रम गीतों में दर्ज था। उसी तरह भोजपुरी में 'कथा-कहनी' भी इसे उल्लेखित किया गया है परंतु दीगर बात है कि भोजपुरी भाषा के प्रांतीय सम्मेलन जो कि सन 1947 में पहली बार हुआ था उसमें भोजपुरी में बिखरे साहित्य के संकलन का निर्णय लिया गया और तदनुसार भोजपुरी साहित्य निर्माण कार्य पर काम शुरू हुआ जिन्होंने इस कहावत पर काम किया जो अच्छी चीजें उसको रख लिया और जो उनके कसौटी पर खरा नहीं उतरा उसे दरकिनार कर दिया।

सन 1948 ई भवन 'भोजपुरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आचार्य महेंद्र शास्त्री के संपादकत्व में आरंभ हुआ उसके बाद 2010 तक अनेकानेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुई परंतु वहां दलित चेतना के साहित्य को पूरी तरह साहित्य से दूर ही रखा गया। इसी तरह भोजपुरी साहित्य का अद्यतन इतिहास अर्जुन तिवारी ने 2012 में लिखा जिसमें लगभग भोजपुरी भाषा -साहित्य में प्रकाशित इतिहास में उल्लेखित काल खंडों का जिक्र किया है जिसके अनुसार भोजपुरी साहित्य में दलित चेतना का साहित्य सिरे से गायब है जबकि सच्चाई यह है कि भोजपुरी में ऐसे भी साहित्यकार भी थे जिन्होनें जातीय बन्धनों को तोड़ते हुए सामाजिक समानता और समता

स्थापित करने में योगदान दिया है जैसे- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में 'हीरा डोम' की कविया – अछूत की शिकायत छापी, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने वंचित, किसान और स्त्रियों की आवाज़ अपने नाटकों में दर्ज किया। वही दंडी स्वामी विमलानंद सरस्वती, अर्जुन सिंह अशांत, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकसाहित्य में समाज के हर वर्ग के आवाज़ को समाहित किया ।

देश में 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ धीरे-धीरे ही संविधान का महत्व दस्तक देने लगा । भगवान बुद्ध, कबीर, रविदास, महात्मा फुले, बाबासाहेब आंबेडकर और पेरियार जैसे महापुरूषों और बहुजन नायकों की शिक्षा बहुसंख्यक वर्ग में प्रवेश करने लगा।

ऐसे में भोजपुरी सामाजिक परिवर्तन और चेतना से कैसे दूर रह सकता था ?

कहना न होगा कि भोजपुरी समाज में सबसे अधिक जाति आधारित भेदभाव, छुआछूत मौजूद है और 1990 के बाद जब भारत में वैश्वीकरण का दौर आया तो मंडल आयोग के रास्ते जाते जागरण बहुजन वर्ग के ओबीसी समाज में होने लगा परंतु क्रांति के साथ साथ ही प्रति क्रांति चलती है और मंडल के रूप में कमंडल भी साथ ही आया।

बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद भारत में धार्मिक एकता को खंडित करने का सफल दिखता है उसका प्रमुख कारण देश भी 'पोस्ट थ्रू' यानि 'सत्यातीत युग' से अलग नहीं है। वंचित समाज सत्ता के बनाए झूठ में उलझता गया और अपने बहुजन नायकों की हिदायतों व सलाह से विमुख होता रहा और आखिरकार वह धार्मिक सत्ता की गुलामी में उलझ कर रह गया।

इन सब के बीच में भोजपुरी प्रबन्धकाव्यों की चर्चा आवश्यक है। सबसे पहले धनुषधारी कुशवाहा लिखित 'अजगुत कबीर साहेब' (1996 में प्रकाशित) खण्ड काव्य की चर्चा करेंगे।

'अजगुत कबीर साहेब' पूर्वी चंपारण के लोककवि श्री धनुषधारी कुशवाहा का भोजपुरी प्रबंध काव्य है जो मध्यकालीन ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रबल समर्थक संत कबीर के जीवन व क्रांतिकारी विचारों को प्रबंधात्मक काव्य के रूप में लोकभाषा भोजपुरी के माध्यम से लिखा गया है।

इस खण्डकाव्य की भूमिका में आलोचक डॉ अरुण कुमार लिखते है - "अजगुत कबीर साहेब' की रचना खंड काव्य के रूप में आई है तथा कुल 14 सर्गों में कबीर के संपूर्ण जीवन वृत्त को बांधने की कोशिश की गई है। कथ्य के धरातल पर जहां एक ओर यह मध्यकालीन परिवेश की विडंबना से ग्रस्त समाज एवं उस समाज के तिलस्मी अंधेरों से लड़ते महात्मा कबीर की कोशिशों को रेखांकित करती है वहीं शिल्प पक्ष की दृष्टि से भी एक नए प्रतिमान को गढ़ती दिखाई देती है।"[7]

प्रथम सर्ग में धनुषधारी कुशवाहा ने कबीर के जन्म के समय समाज में व्याप्त जातिवाद के प्रभाव को उल्लेखित करते हैं-

धह-धह धनकत रहे सब कर भवनवा
जात-पात घुमत रहे सबका अंगनवा
बाभन लोजी फूँकि के अगिया धरावे
दोसर केहू चूँ चा बोलियों ना पावे। [8]

इस खण्डकाव्य आलोचक प्रो रामाश्रय प्रसाद सिंह लिखते कि अपना लोकतंत्र के यदि हमनी का सही लोकतंत्र बनावे के चाहतानी त कबीर साहेब जी के जीवन दर्शन के अपनावे के परी। भोजपुरी भाषी लोजी का चाहीं जे 'अजगुत कबीर साहेब' के अपना जीवन के अभिन्न अंग बनावे के दिशा में चल पड़े लोग। धनुषधारी जी अपना खण्डकाव्य में कबीर साहेब जी के प्रेम सन्देश के सुंदर रूप में प्रस्तुत कइले बाडन ।(अपने लोकतंत्र के यदि हम सही लोकतंत्र बनना चाहते हैं तो के कबीर साहेब जी के जीवन दर्शन को अपनाना पड़ेगा। भोजपुरी भाषी लोगों को चाहिए कि वे 'अजगुत कबीर साहेब' को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाने की दिशा में चल पड़े। धनुषधारी जी अपने खण्डकाव्य में कबीर साहेब जी के प्रेम सन्देश को सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है ।[9]

" छुआछूत कबिरा के पंजरा ना अइले
जात पांत तेरह कोस हटि हटि गइले
घुमि-घुमि कबिरा बाँटस पिरितिया
बड़ा लोग बन गइले इनकर सँघतिया
बनले संघतिया ई भरथ सगीर के
हियरा का भीतर से कइसे भुलाईं हम
नीमा के लाल जनवादी कबीर के।" [10] सर्ग- पृष्ठ- (अजगुत कबीर साहेब से उधृत)

डॉ रविन्द्र कुमार रवि 'अजगुत कबीर साहेब'पर अपनी टिप्पणी देते हैं कि साँच कहीं त ई कहे में कवनो दरम-मरम नइखे कि कबीर साहेब के समाज सुधारक के रूप में बखान गांव गवई का ठेठ भोजपुरी में क के आम लोग के वास्ते एगो बडका काम कइले ह। [11]

(सच में कहूँ तो यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि धनुषधारी कुशवाहा ने कबीर साहेब के समाज सुधारक के रूप में बखान भोजपुरी भाषा में कर के आम लोग के वास्ते एक बड़ा काम किया है ।)

दूसरा भोजपुरी प्रबंध काव्य हीरा ठाकुर रचित 'बिरसा मुंडा' बाल महाकाव्य है जिसका प्रकाशन वर्ष 2005 में शिवगंज, आरा से हुआ था । इसकी भूमिका- "बिरसा मुंडा के तत्व" में ओम प्रकाश सिन्हा लिखते हैं-

"भोजपुरी भाषा एवं साहित्य के महान लोक एवं जनवादी कवि श्री हीरा ठाकुर प्रगतिवादी विचार के पोषक हैं।

'बिरसा मुंडा' खंडकाव्य के प्रत्येक अंग में वन्य जीवन समूह के यथार्थ एवं सामाजिक चित्र का सजीव रूप बिरसा मुंडा की जीवन गाथा के साथ उपस्थित है। बिरसा मुंडा का जन्म जनजातियों व आदिवासियों के लिए वरदान है। बिरसा मुंडा तीर कमान से राजनीतिक एवं सामाजिक सत्ता तथा व्यवस्था के दुश्मनों से साहस के साथ लड़ते हैं । .... वे हिन्दू धर्म की बुराईयों को दूर करने का सदैव प्रयास करते हैं । वे मानवता के पुजारी हैं । वे बिरसा मुंडा का राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन विशेषत: अंग्रेजों व सामन्तियों के विरोध में संघर्ष दिखाया गया है। "[12]

इस खण्डकाव्य से कुछ उदाहरण देखें-
शुष्क पवन में बिगुल बजवलें।
अंग्रेजन के दांत हिलवलें।।
दहशत में बा जेकर जीवन।
बिरसा होइहें ओकर पेवन।। [13]

यह उल्लेखित करना आवश्यक है कि 1895 में बिरसा ने अंग्रेजों की लागू की गयी ज़मींदारी प्रथा और राजस्व-व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई के साथ-साथ जंगल-ज़मीन की लड़ाई छेड़ी थी। जिसको 'उलगुलान' के नाम से जाना जाता है। बिरसा ने सूदखोर महाजनों के ख़िलाफ़ भी जंग का ऐलान किया। ये महाजन, जिन्हें वे दिकू कहते थे, क़र्ज़ के बदले उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेते थे। यह मात्र विद्रोह नहीं था। यह आदिवासी अस्मिता, स्वायतत्ता और संस्कृति को बचाने के लिए संग्राम था।

भोजपुरी में मुंडा जनजाति समुदाय को नायक बना कर महाकाव्य की रचना भोजपुरी साहित्य में चेतना के प्रवाह का सूचक है कि रचनाकार अपने नायकों को अपने काव्य का उपजीव्य बना रहा है।

भोजपुरी में महाभारत जैसे महाकाव्य के अनेक नायक और नायिकाओं पर खण्डकाव्य लिखा है। उसमें से भी ऐसे नायक जिनको सवर्ण रचनाकारों ने अपने खण्ड काव्यों का विषय नहीं बनाया परन्तु उसे भोजपुरी साहित्य में कलमबद्ध किया गया है।

भोजपुरी खण्डकाव्य 'सीता के लाल' प्रकाशन 1974 में हुआ और इस लोकप्रिय महाकाव्य का चौथा संस्करण 2015 में त्रिवेणी प्रकाशन, सुभाषनगर, डालमियानगर, रोहतास, बिहार से हुआ है।

इस खंडकाव्य पर प्रो गोवर्धन सिंह का अभिमत है- ' मानवीय धरातल पर राम के व्यक्तित्व के मूल्यांकन का यह शायद पहला ही प्रयास है। लव-कुश द्वारा प्रस्तुत प्रश्नोत्तर बड़ा ही मर्मस्पर्शी, भाव प्रधान तथा तथ्यपूर्ण है।' (पृष्ठ 19, भूमिका, एस एन कॉलेज, करगहर, रोहतास)

अयोध्या के राजा रामचन्द्र का अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा छुटा गया। घोड़ा के साथ साठ हजार सिपाही चलते हैं पर जंगल में उस घोड़े को लव कुश पकड़ लेते हैं। भीषण युद्ध होता है।

इसमें लव कुश का एक संवाद है जब वे लक्ष्मण को ललकारते हुए कहते हैं-

तूं की लछुमन हव
राम के बड़ा बहादुर भाई?
हइसन -हइसन मरद
देखवलन लंका में बीरताई?(पृष्ठ 60)
मेहरारू के नाक काटि के,
तूं का दो इतरा ल?
तूं ही मरदे, एह धरती
पर बड़के बीर बुझा ल।। (पृष्ठ 61)

बाद में जंगल में राम आते हैं कि कैसे भी अश्वमेघ के घोड़ा को लव कुश मुक्त करें। लकवे कुश और राम में संवाद हो रहा है। राम बालक समझ बहुत भोले भाव से समझाते हैं परन्तु दोनों बालकों के मन राम के प्रति क्षोभ है।

लव कुश व राम के बीच के संवाद का उदाहरण देखें-

एहिजा तोहर ना चली चाल
कतनो करब ना गली दाल
किष्किंधा के छोड़ ख्याल
सगरे नइखन लंगूर भाल।

सभ केहू चपलूसे नइखे
सभे केहू खर भूंसे नइखे
जइसन तूं दुनिया समुझे ल
ओइसन दुनियां सउसे नइखे।
मरदाना से न परल काम
दुनिया समुझल भगवान राम
उ अवधपुरी के टीम टाम
सुनि के झुकल दुनिया तमाम।
जयकार कराव बनरन से
स्तुति कायर अमरन से
पूजा करवाव खोजि खोजि
भकुआ भोंदू भकचोंहरन से।
(पृष्ठ 124, सीता के लाल से उधृत)

इसी तरह पारस नाथ भ्रमर का प्रबंध काव्य है - 'सूरुज के लाल'। सन 1998 में प्रकाशितयह खंडकाव्य विशुद्ध भोजपुरी में महाभारत के महत्वपूर्ण पात्र 'कर्ण पर लिखा गया। हिंदी में दिनकर ने 'रश्मिरथी'लिखी लेकिन इस खंडकाव्य का चिंतन, घात, प्रतिघात दूसरा है।

इस खंडकाव्य के बारे में सूबेदार सिंह अवनिज लिखते हैं-

' जैसे सूरज का ताप और तेज बादल कभी नहीं ढक सकते उसी तरह समाज का करवट ना कभी थमा है ना कभी थमेगा। समय अपने बदलाव के संग चारो ओर के बदलाव ले कर आता है और आ रहा है।'

(सूरुज के लाल : एक नज़र,सूबेदार सिंह अवनिज)

आठ सर्गों में बंटा यह खंडकाव्य दलित चेतना से परिपूर्ण है। कर्ण के माध्यम से कवि ने हरेक सर्ग(जिसको किरिन कहा गया है) में जातिभेद से उपजे श्रेष्ठतावाद का पुरजोर प्रतिरोध किया है। बदलते समाज की तस्वीर 'पहिली किरिन' में देखा जा सकता है-

" ना रुतबा तनिको बड़के अब का लरिका खुबही सहकावल।
जाति मलाह उतान चले जस ठाकुर बाँभन के जनमावल।" (पृष्ठ 6)
"ठाकुर बाभन छोडी सभे अपना अंखिया पुतरी अस जाने।
ना तनिको भरि आन बुझे अपना अपना लरिका अस माने।
बा अतना सभका मन में कसहूँ अब कर्ण बली बनि जावे
ना कवनो बाद मात करे बढ़ि नाम गरीबन के चमकावे। (पृष्ठ 7)

कर्ण को तथाकथित बड़ी जातियों ने उपेक्षित किया । अपने को मनुस्मृति के अनुसार श्रेष्ठ मानने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय कर्ण को बराबर का दर्जा नहीं देते थे परन्तु दूसरी तरफ दलित समाज उन्हें अपना वीर योद्धा मानता है। वैसे ही जैसे बाबा साहेब बहुजन समाज के चिंतन के केन्द्र में आये और धीरे धीरे समस्त मानवतावादियों के विचार के केंद्र में आये, कुछ श्रेष्ठावाद से ग्रसित जातियां उनके प्रति घृणा भाव रखती है। इस पर पारसनाथ लिखते हैं-

" ना घर में भलही खरची तबहूँ बड़ ठाकुर जाति कहावे।
कीचर फेंकति बे अँखिया तबहूँ उनका पर रोब जमावे
जानत ना पढ़ही लिखही सब पंडित बाभन जाति कहाये
लोग समाज के बा भकचोंहर जन्म अधार पर माथ झुकावे।(पृष्ठ 8)

दूसरी किरिन में पारसनाथ ने समाज में समता का पाठ पढाते हुए लिखा है-

'ऊंचहि नीच के भेद न मानत उ जग में बढ़ जेठ गियानी।
जे पहिले गुन दोस बिचारत ना पछपात करे कुल जानी।
देस समाज सुधरात जे नर जीवन के कविता पहचानी।
बा जवना हियरा तप तवज दया बस पूजन जोग परानी।(दूसरी किरीन पृष्ठ 14)

डॉ सूबेदार सिंह अवनिज कवि भम्रर की इस कृति को सामाजिक चेतना का बिगुल कहते हैं।सच में सम्पूर्ण खण्डकाव्य में कर्ण बाकी उपेक्षा को कवि ने बहुजन समाज की उपेक्षा माना है।

भोजपुरी प्रबंध काव्य में पेरियार : आस किरीन

पेरियार ई वी रामास्वामी अपने समय के सबसे बुद्धिवादी एवं विवेकशील चिंतक थे। उनके प्रेरणादायी विचारों ने विशेषकर तमिलनाडु में वहां के कोटि-कोटि द्रविड़ों को जागरूक बनाकर परंपरावादी एवं रूढ़ीवादी बेड़ियों से मुक्त करवाकर उन्हें मानसिक स्वतंत्रता प्रदान की थी।

पेरियार बुद्धिवादी आंदोलन के जन्मदाता थे उनके विवेकपूर्ण विचारों का जहां एक और हार्दिक स्वागत हुआ है वही उन विचारों का धर्मांध लोगों द्वारा भी भारी विरोध हुआ है और वह प्रलाप करने लग गए हैं । मानव जाति के संपूर्ण इतिहास पर दृष्टि पाठ किया जाए तो पता चलता है कि भगवान बुद्ध संसार के अब तक के सबसे महान बुद्धि वादी हुए हैं उन्हीं के समय से चली आ रही बुद्धि वादी परंपरा के उत्तराधिकारी के रूप में बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने भी परोक्ष रूप से उसी परंपरा को अंगीकार करते हुए अंधविश्वास एवं कपोल कल्पित पौराणिक कथाओं पर सुधार करके उनकी बुनियादी तमिलनाडु में वहां के मूल निवासियों के साथ जाति के रूप में सत्तारूढ़ होने का श्रेय परिवार के बुद्धि वादी आंदोलन को ही जाता है ऐसे में डॉ सूबेदार सिंह अवनीज द्वारा लिखित भोजपुरी महाकाव्य 'आस किरिन' को पढ़ना आवश्यक हो जाता है ।

यह महाकाव्य नौ सर्गों में बांटा गया है जिसका हिंदी अनुवाद भी साथ में प्रस्तुत है – 1. टूसीआइल आस (अंकुरित आशा) 2. पसरल उजियार (प्रकाश का विस्तार) 3. छींटाआइल उजास (फैला निराशा) 4. खिलल सम्हार (संभालने वाले का उदय) 5.मचल हंडहोर (मचा हाहाकार) 6. भइल हंडफोड़ (रुढ़िवादी विचारों पर कुठाराघात) 7. उठल भुंडडोल (विचारों के बवंडर उठा) 8. उभरल दन्तखटान (सामाजिक दुश्मनों के दांत खट्टे होने लगे) और 9 जुड़ाइल लहरि (सामाजिक क्रांति के लहर पुरे देश में जुड़ गई)

'आस किरिन'के आमुख में अवनिज लिखते हैं- किस सामाजिक और आप भेदभाव के चंग भीतरे हृदय में उड़ेला वोट पर मिठास के छांव का रहेला एक रागा धन दौलत का करी पद पर रुके का मर्यादा बा जेके जाति के घमंड बा उकब आदमी हुई छोट खनके धनवान पूछ कब बना ले बा कब्जा लेबा आजादी के पहले तक कबहु ना लोकल आजादी के 50 वर्ष गईलू पर भीतरिया उद्वेग न लेबा ऊपर ऊपर समान भाव कहीं लव कत होखे त सवार थे बस चाहे वह वोट लेने के बाद चाहे कोनो पद्धति आवे के चरखा लागल बा भारी लाभ के कोनो जुगाड़ बांधा हृदय में जर्नी आग के धधक बल्ले बल्ले आंखें यह जनि में लूट में हत्या में शील हरण में अपहरण में मारकाट में कब पूजा के ऊपर बचत बा समता बराबरी वोट जरूर बाबी में बसल होके तब ना शुद्ध शुद्ध कला से

कैसे छूटे हिकमत से सर्ग पहला में दूसरा इलाज तुसी आई आर हां आज आज के मतलब भाई आसरा एंटीसिपेशन सर गेट में कवि स्पष्ट रूप से कहता है-

मनु जब मानुख जनमल बा, जाति-पाँति कहवां से आइल
तरू बिरवन में, पशु-पंछिन में, बाटे बरल जाति बटुराइल।
छोट-बड़ के मकड़जाल ई स्वारथ्य में बाटे सउनाइल
नकुल नाक से, कर्ण कान से बालि बाल से कइसे आइल। (पृष्ठ 6)
जनम से ऊंच धर लेला, सहकि निचला करम साधे
मनुजता ताख पर धइके सनज स्वारथ भरम साधे।
पसीना में नहाला जे, सम्हरे करम- नई कांधे।
मुखन में पान चाभे जे, चलेला बधनखा बांधे। (पृष्ठ - 7)

1. (काव्यालंकार : 1: 19: 21)
   हिंदी साहित्य कोश भाग -1, (परिभाषिक शब्दावली), ज्ञानमंडल, वाराणसी, पृष्ठ -625)
2. डॉ उदय नारायण तिवारी- 'सरस्वती के वरदपुत्र स्वामी विमलानंद सरस्वती का कविव्यक्तित्व के महिमा : बउधायन', बिहार भोजपुरी अकादमी, 1983
3. बउधायन, दंडीस्वामी विमलानंद सरस्वती,सर्ग 1 बिहार भोजपुरी अकादमी, 1983, पृष्ट संख्या- 10
4. वही
5. बुद्धायन, श्री अर्जुन सिंह 'अशांत' ज्ञान पर्व-1, सारण, 2005
6. दलित साहित्य की प्रेरणा, 'दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव' नवभारत प्रकाशन, दिल्ली 94, 2018,पृष्ठ 14)
7. भूमिका, अजगुत कबीर साहेब, धनुषधारी कुशवाहा, 1996
8. प्रथम सर्ग, धनुषधारी कुशवाहा लिखित 'अजगुत कबीर साहेब' (1996)
9. वही
10. वही
11. वही
12. भूमिका, बिरसा मुंडा, हीरा ठाकुर आरा, 2005

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

ममता कालिया के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

सीमा चन्द्रा
शोध छात्रा
राणा प्रताप पी0 जी0 कॉलेज, सुल्तानपुर

मानव का समस्त जीवन क्रम समाज पर ही आधारित होता है। वह समाज में जीता है और समाज ही उसके समस्त क्रियाकलापों का केंद्र होता है। उसके जीवन के सरोकार अंततोगत्वा सामाजिक सरोकार बन जाते हैं और उसके इर्द गिर्द का समाज ही उसके जीवन तथा साहित्य में परिलक्षित होने लगता है। कोई भी साहित्यकार वस्तुतः साहित्य में समाज की अवस्थितियों का ही अवलोकन करता है और उस अवलोकन को व्यापक सामाजिक हित के परिप्रेक्ष्य में प्रख्यापित करता है। अतः साहित्य को समाज से संबंधित एक परिघटना ही माना जा सकता है। चर्चा के इस पड़ाव पर हम ममता कालिया के साहित्य में परिलक्षित सामाजिक सरोकारों का एक विहंगम अवलोकन करने का प्रयास करेंगे।

ममता कालिया के साहित्य में अनेक ज्वलंत सामाजिक समस्याएं विद्यमान है। वास्तव में ममता कालिया ऐसे साहित्यकारों की श्रेणी में आती है जो समाज की तह में जाकर उसकी पड़ताल करती है और उसमें से कुछ सामग्री अपने साहित्य के लिए ढूंढ ही लाती है। ममता कालिया के उपन्यासों में ऐसी सामाजिक परिस्थितियों का चित्रांकन है जो हमें सहज ही आधुनिक समाज में दृष्टिगोचर हो जाती हैं। इस अर्थ में ममता कालिया के साहित्य पूरी तरह से नवीन एवं आधुनिक ताने बाने से युक्त लगते हैं।

प्राचीन मान्यता के अनुसार विवाह महज शारीरिक संबंध की प्रक्रिया नहीं बल्कि आत्मिक बंधन माना जाता है, जिसमें बँध कर दो अलग अलग प्राणी एकाकार हो जाते हैं, और यही सांसारिक सृष्टि के संवर्धन का मूल बिंदु है। विवाह एक पवित्र कर्म प्रख्यापित किया गया है और जीवन के संचयन के लिए अति आवश्यक है। विवाह केवल कामवासना की प्रतिपूर्ति का साधन नहीं बल्कि यह जीवन के अमरत्व प्राप्त करने की परिघटना है। विवाह संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो मानव मात्र को उसके कर्तव्यों के बोध के साथ–साथ उसे जीवन की शाश्वतता से परिचित कराता है। भारतीय समाज में कन्याओं के लिए योग्य वर चुनने का दायित्व माता–पिता पर होता था। कन्या के सगे संबंधी सोच समझकर सगोत्र विवाह करते थे। यह विवाह दो परिवारों का परस्पर आत्मीय संबंध बन कर सामने आता था। परंतु वर्तमान में स्थिति बड़ी भयंकर है, जहां विवाह के संबंध में युवक युवती अपने परिवार को पूरी तरह से किनारे रखते हैं और स्वयं आगे बढ़कर फैसले लेते हैं। उनका यह प्रेम केवल उनकी काम पिपासा का ही प्रतिफल माना जा सकता है। वह न तो किसी मुद्दे पर विचार करते हैं न ही लौकिक तथा सामाजिक रीति से उपयुक्त मान्यताओं का ही परिपालन करते हैं। किसी भी समय कहीं भी किसी से भी प्रेम कर बैठते हैं। इसीलिए समाज में प्रेम विवाहों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इस घटना से बेखबर कि यह प्रेम विवाह उपयुक्त अथवा उचित है या नहीं, यह सफल भी हो सकता है और असफल भी। आधुनिक प्रेम विवाह महज दो व्यक्तियों के संबंध का मामला बन कर रह गया है। यह एक आत्मिक बंधन न होकर व्यक्तिगत कॉन्ट्रैक्ट है। आधुनिक प्रेम संबंधों में जाति धर्म का कोई भेद नहीं है यह केवल शारीरिक आकर्षण तथा जोश में आकर माता–पिता तथा सामाजिक संबंधों का विरोध करते हुए जल्दबाजी में किया गया निर्णय होता है। डॉ ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में इस तरह की कई बानगियाँ पेश की है जहां प्रेम विवाह स्पष्ट दिखाई देता है।

उनके कई उपन्यास नरक दर नरक प्रेम कहानी एक पत्नी के नोट्स आदि इस तरह के प्रेम विवाहों को तस्दीक करते हैं।

नरक दर नरक उपन्यास में भी इसी प्रकार के दो प्रेमी जोड़ों का उल्लेख है। उपन्यास की शुरुआत ही प्रेम कहानी से होती है जिसमें उषा और जगन आपस में प्रेम करते हैं। उन दोनों का मिलन एक लिफ्ट में चुंबन के साथ शुरू हो जाता है। उपन्यास का नायक जोगिंदर उर्फ जगन एक कॉलेज में लेक्चरर के पद पर आसीन हैं। मानसिक रूप से पूरी तरह से परिपक्व होते हुए ये दोनों इस बात से बेखबर होते हुए कि लोग क्या कहेंगे ? लिफ्ट के अंदर अपना प्रेम प्रसंग प्रारंभ कर देते हैं। उषा का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था और जगन इसकी तरफ खिचता चला जाता है। उनके बीच आत्मीय संबंध कितना प्रगाढ़ होता गया कि वह प्रेम के साथ साथ विवाह बंधन में भी बन जाते हैं। उषा पारिवारिक सुख को महत्व देने वाली महिला थी जबकि जगन इसे पतनोन्मुखी संस्था के रूप में स्वीकार करता था। जगन और उषा के प्रेम के बारे में लेखिका लिखती है– "वे जीवन में काफी चौकाने रहे थे। फिर भी पता नहीं कैसे बड़ी जल्दी प्रेम उन दोनों के बीच घुसपैठ कर गया। तब रात का वक़्त था और दोनों अपने अपने अकेलेपन से पैदा हुई जरूरतों के मारे हुए थे। बाद में कई बार उन्होंने इस बात का मजाक उड़ाया, कई बार इसकी व्याख्या की, अफसोस भी किया कि किसी और नाम से यह क्यों नहीं हुआ– उन जैसे तरोताजा दिमाग वाले लोगों को इतनी घिसी हुई संज्ञा प्रेम कैसे ले बैठी –पर कोई फायदा नहीं हुआ। प्रेम अपनी जगह डटा रहा। जगन बोला उसने नहीं सोचा था उस जैसा आदमी इस आसानी से पकड़ा जाएगा। उषा ने भी शरमाते हुए कहा, उसने नहीं सोचा था कि पहली बार ही वह हमेशा के लिए बँध जाएगी। फिर इस विषय पर वे दोनों चुप हो गए। ज्यादा बोलना दोनों के लिए खतरे पैदा कर सकता था। इसीलिए शायद प्रेम में मौन रहा जाता है।"[1]

उषा और जगन अपने इस प्रेम विवाह को परवान चढ़ाने के लिए अपने मां–बाप तथा परिवार वालों की किसी भी बात को महत्व नहीं देते हैं और उनके विरोध के बावजूद वह दोनों प्रेम विवाह कर लेते हैं।

प्रेम कहानी उपन्यास में प्रेम के दो कोण दिखाई देते हैं। पहला कोण जया और डॉ गिनेश से संबंधित है तो दूसर यशा नाम की लड़की से संबंधित है। जया और गिनेश अपने परिवार वालों के विरोध के बावजूद स्वतंत्र विचारों वाले हैं। उन्होंने परंपरागत रूढ़िवादी विचारों को दरकिनार करते हुए आपस में प्रेम विवाह कर लिया। जया अपने पिता की इकलौती संतान थी। उसके माता–पिता उसका विवाह अपनी पसंद के किसी लड़के से करना चाहते थे, किंतु वह लड़का जया को पसंद नहीं था। इसलिए जया ने अपने मनपसंद के लड़के गिनेश से विवाह किया। गिनेश के साथ प्रेम परिणय करने में उसे अपने परिवार का प्रखर विरोध झेलना पड़ा। गिनेश के बारे में खुद उपन्यास की नायिका कहती है– "मैंने सिर उठाकर उस लंबे चौड़े लड़के को देखा, जिसका नाम मुझे पता था और जिसकी आवाज और छुअन ने मेरा सर्वांग कँपकँपा डाला था। वह इतना सुंदर, इतना पुरुषमय, इतना बलिष्ठ लग रहा था मानो किसी मैगजीन से कटी हुई तस्वीर यकायक चलती हुई, बोलती हुई सामने आ जाए। सिमटने और निपटने के दोहरे एहसास पर किसी तरह काबू पा में मुस्कुराई।"[2]

जया जब भी गिनेश के बारे में अपने माता–पिता से बात करना चाहती तो उसे डांट कर हटा देते। किंतु जया भी कुछ कम विद्रोही स्वभाव की नहीं थी। उसने परिवार की सभी बातों को खारिज करते ही अपने स्वयं के फैसले लेकर डॉ गिनेश से प्रेम विवाह कर लिया था। उपन्यास के दूसरे प्रेम पड़ाव पर यशा तथा मोहम्मद के बीच उपजा प्रेम प्रसंग अवस्थित है। यशा को मोहम्मद नाम के लड़के से प्रेम हो जाता है। मोहम्मद उसे अपनी फोटो भेजता है जिसमें उसके परिवार के अन्य सदस्य भी होते हैं। इस दृश्य को देखकर यशा बौखला जाती है और जया से कहती है– "जब से फोटो मिली है न, मैं सोई नहीं हूं। जाने कितने घंटे टकटकी लगाकर बैठी रही हूं। अब इसके सिवा मुझे कुछ दिख ही नहीं रहा। मुझे लग रहा है मेरे जिस्म के हर मोड़ पर इसकी आंखें चिपक गई है, मुझ से जुड़ गई हैं। मुझे लग रहा है यह लड़का मुझे आंखों ही आंखों में प्रेग्नेंट कर देगा।"[3]

किंतु यशा अपने माता–पिता के बंधनों में इस प्रकार उलझ कर सहमी और शांत स्वभाव की हो जाती है कि वह प्रेम विवाह का निर्णय नहीं लेने पाती है। वह प्रेम विवाह तो करना चाहती है लेकिन परिवार का विरोध न कर पाने के कारण वह इसमें सफल नहीं हो पाती है।

एक पत्नी के नोट्स उपन्यास में भी संदीप तथा कविता आपस में प्रेम विवाह ही करते हैं। इस उपन्यास की कहानी का प्रारंभ ही प्रेम विवाह की व्याख्यापना के साथ होता है। लेखिका लिखती है– "जिन लोगों के जीवन में प्रेम और विवाह अकस्मात, अनायास आते हैं उन्हें उस के निर्वाह में उतनी ही सायास मेहनत करनी पड़ती है, जितनी उन लोगों को जिनके विवाह अखबारों के इश्तहार तय करते हैं अथवा रिश्तेदार। यह बात जितनी कविता के लिए सच थी उतनी ही संदीप के लिए भी लेकिन संदीप किसी बात को इतनी सहजता से स्वीकार कर ले यह कैसे हो सकता था।"[4]

बेघर उपन्यास में भी उपन्यास की नायिका संजीवनी और नायक परमजीत एक प्रेम विवाह ही करते हैं। वह आपस में भी एक प्रेमी युगल की तरह मिलते जुलते हैं। परमजीत उससे शारीरिक संबंध बनाने का बार–बार प्रयास करता है किंतु संजीवनी उसे ऐसा करने से मना कर देती है,जिस पर वह गुस्सा हो जाता है और उससे कभी भी न बोलने की धमकी भी देता है। इस कारण संजीवनी नर्वस हो जाती है। किंतु इसका यह विवाह भी असफल हो जाता है, क्योंकि परमजीत ने उसे धोखा देकर रमा से विवाह कर लिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ममता जी के उपन्यासों में प्रेम विवाह के ऐसे कई उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं जिसमें परिवार के सदस्यों की परवाह किए बिना प्रेमी युगल आपस में प्रेम विवाह कर लेते हैं।

प्रेम विवाह दो युगलों के बीच मनः स्थिति का एकाकार है। परिवार तथा समाज के विरोधों के बावजूद आपस में किए जाने वाले प्रेम विवाह सफल तथा असफल दोनों हो सकते हैं। जो प्रेम, विवाह रूप में परिणत न हो सके उसे हम असफल प्रेम विवाह कहते हैं। जब पति और पत्नी के मध्य समझौते के बदले असहिष्णुता की भावना उत्पन्न हो जाती है तथा दोनों के मध्य अहं का टकराव उत्पन्न हो जाता है तो वहां प्रेम विवाह असफल माना जाता है, जिसमें बचती है तो महज एक दूसरे को झेलने की विवशता तथा एक दूसरे के प्रति उपेक्षा की भावना। विवाह से पहले जो प्रेमी युगल एक दूसरे पर मर मिटने की कसम खाया करते थे,शादी के बाद उनके चिंतन में अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई देने लगता है। कभी उनकी जिंदगी प्यार के रंगों में रंगी रहती थी किंतु जैसे ही वह विवाह का स्वरूप लेती है उनके गुण तथा स्वभाव में परिवर्तन आने लगता है। सच तो यह है कि किसी भी पुरुष में स्त्री के प्रति आकर्षण तभी तक रह पाता है जब तक कि वह उसे प्राप्त नहीं कर लेता। प्रेम को प्राप्त कर लेने के बाद धीरे–धीरे उसके प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है और प्रेम ज्वार की तरह उतर जाता है। आज समाज में इस प्रकार के अनेकों प्रेम विवाहों के उदाहरण मौजूद हैं जो असफल कहे जा सकते हैं। ममता जी ने समाज की इसी स्थिति का अवलोकन किया और उसे अपने उपन्यासों में स्थान प्रदान किया।

प्रेम कहानी उपन्यास में जया तथा दिनेश के बीच प्रेम विवाह होता है किंतु बाद में अपने कार्य की व्यस्तता के कारण दिनेश उसे समय नहीं दे पाता परिणाम स्वरूप दोनों के बीच आए दिन विवाद हुआ करता है अब दिनेश प्रेम और प्रेमी दोनों शब्दों को कोई महत्व नहीं देता उसके लिए यह दोनों शब्द अब कैसे पीते पुराने लगने लगते हैं वह जया को केवल एक ग्रहणी मानकर उससे जरूरत भर ही संबंध रखता है किंतु जब कभी जया उसे अपने प्रेम के बारे में याद दिलाती तो उसे कोई महत्व नहीं देता जया कहती है–

"प्रेम भी कर लिया, शादी भी कर ली, पर एक भी बार न ताजमहल गए, न कश्मीर। न कोई फोटो खिंचवाई, न जेवर बनवाए। इसका मतलब चालू अर्थों में या तो हम औसत नहीं है, या हम प्रेमी नहीं हैं, या हम दोनों नहीं हैं।"[5]

जया की बातों को गिनेश कोई महत्व प्रदान नहीं करता। वह जया को महज एक आवश्यक साधन के रूप में देखता है और उसकी तुलना सुबह के अखबार से करने लगता है। वह जया से कहता है– "प्रेम और प्रेमी इतने पिटे हुए शब्द हैं की इनका कोई अर्थ नहीं बचा है। हम एक दूसरे के लिए जरूरी हैं, क्या यह काफी नहीं है? तुम मेरी जिंदगी में वैसे ही जरूरी हो जैसे सुबह का अखबार।"[6]

पति पत्नी के बीच संबंध विश्वास की बुनियाद पर टिके रहते हैं। किंतु यह देखा जाता है कि विवाह के बाद पति अपनी पत्नी पर संदेह जाहिर करता है और पत्नी अपने पति के एक एक क्षण का हिसाब रखना चाहती है। 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में संदीप और कविता के माध्यम से इस तरह की परिस्थिति का वर्णन किया गया है। पहले तो संदीप कविता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हर संभव प्रयास करता था। कविता का भोलापन और उसका सौंदर्य उसे मोहित करता था, साथ ही कविता की सहायता तथा सादगी उसे प्रेरित भी करती थी। कविता के चेहरे की तेजस्विता देखकर वह अचंभित रह जाता था। एक दिन वह कविता को लिफ्ट भी देता है और रास्ते में उसे शेरो शायरी सुनाकर प्रभावित करने का प्रयास करता है। संदीप द्वारा कविता के सामने प्रेम का प्रस्ताव रखे जाने के बाद एन केन प्रकारेण वह उसे स्वीकार करती है और दोनों विवाह के बंधन में बंध जाते हैं। विवाह के बाद संदीप अपने पद और प्रभुत्व का प्रयोग करके कविता को व्याख्याता की नौकरी भी दिला देता है। लेकिन उसके साथ ही उसके जीवन के प्रति उसमें गहरा अविश्वास भी उत्पन्न होने लगता है। एक दिन अचानक कविता के लिए एक अनजान फोन कॉल आने पर वह कविता से पूछता है तो कविता उसके बारे में कुछ भी नहीं बताती यह देखकर व कविता को धड़कते भी कहता है– "बताती क्यों नहीं,कौन था फोन पर ? जरूर तुम्हारा कोई दोस्त होगा। मेरी आवाज सुनते ही उसने फोन पटक दिया।"[7]

उसकी इस बात पर दुखी होते हुए कविता कहती है–"तुम मुझसे ऐसा बर्ताव नहीं कर सकते। लानत है तुम पर। सब जानते हैं शहर में टेलीफोनों की क्या हालत है। काबा मिलाओ तो काशी मिल जाता है।"[8]

संदीप और कविता के संबंधों पर टिप्पणी करते हुए लेखिका लिखती है–"कविता के लिए यह तय करना बेहद मुश्किल था कि अकेले में पाई गई यंत्रणा झेलना उसके लिए ज्यादा नागवार था या लोगों के सामने उड़ाया जाने वाला उपहास। कविता अपने व्यक्तित्व, परिधान और स्टेटस के प्रति कुछ चौकन्नी और तुनक मिजाज शुरू से ही थी। अब संदीप की आलोचना ने उसे और भी सचेत बना दिया। अगर एक औसत औरत से वह अपने को विशिष्ट समझती थी, तो यह एक सच्चाई थी और इसमें किसी को ऐतराज भी नहीं था। लेकिन संदीप को बखिए उधेड़ने में प्रसन्नता होती।"[9]

उसकी इस बात पर दुखी होते हुए कविता कहती है–

इस प्रकार दोनों का प्रेम विवाह असफल हो जाता है।

जब दो प्रेमी युगल अपनी जाति तथा धर्म को महत्व न देते हुए उसके विरुद्ध जाकर आपस में विवाह करते हैं तो इसे अंतरजातीय विवाह कहा जाता है। यह विवाह स्त्री एवं पुरुष की स्वाधीनता तथा स्वच्छन्दता से उत्पन्न होने वाला विवाह है। यद्यपि आज के समाज में ऐसे विवाहों को मान्यता तो प्राप्त हो रही है किंतु फिर भी नैतिकता की दृष्टि से उन्हें कोई सम्मान का भाव प्राप्त नहीं हो पाता। कुछ साहित्यकार भी ऐसे रहे हैं जिन्होंने ऐसे प्रेम विवाहों को अपना समर्थन प्रदान किया था। मुंशी प्रेमचंद ऐसे ही साहित्यकार थे। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में इस प्रकार के अनेकों उद्धरण प्राप्त हो जाते हैं। अंतरजातीय विवाह के मूल में सबसे प्रमुख कारण नगरीकरण तथा औद्योगिकीकरण को माना जा सकता है। भौतिकता की आड़ में नवयुवक तथा युवतियों केवल चमक धमक को महत्व देती हैं, न कि अपने वंश तथा जाति को। इस कारण उनमें अंतर्जातीय विवाह की प्रवृति तेजी से बढ़ती जा रही है। अंतर्जातीय विवाह की बात तो छोड़िए, आजकल तो अंतरराष्ट्रीय विवाह भी होने लगे हैं, जिसमें विभिन्न देशों से संबंध रखने वाले लड़के तथा लड़कियां आपस में विवाह कर लेते हैं। ऐसी परिस्थितियों के लिए सिर्फ लड़के और लड़कियां जिम्मेदार होती हैं। वह ऐसे कार्यों के लिए अपने माता–पिता की राय भी जानना उचित नहीं समझते। वह न तो अपने कुल की मान्यता को महत्व देते हैं न सामाजिक परंपराएं उनके लिए महत्वपूर्ण होती हैं। उनके लिए महत्व रखता है तो सिर्फ लड़का और लड़की के बीच की सहमति। आधुनिक दौर वैश्वीकरण का दौर है। ऐसी स्थिति में विवाह भी अंतरराष्ट्रीय होता जा रहा है। डॉ ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में इसी तरह के अंतरजातीय तथा अंतरराष्ट्रीय विवाह के कई प्रसंगों को उपस्थित किया है।

'दौड़' उपन्यास में पवन पांडे एक भारतीय लड़का है जो स्टेला नाम की विदेशी लड़की से प्रेम करने लगता है। लेखिका लिखती है– "स्टेला की उम्र मुश्किल से चौबीस साल थी और उसने अपने माता–पिता के साथ आधी दुनिया घूम रखी थी। उसकी मां सिंधी और पिता इसाई थे। मां से उसे गोरी रंगत मिली थी और पिता से तराश दार नाक नक्श। जींस और टॉप में वह लड़का ज्यादा और लड़की कम नजर आती।"[10]

पवन के माता–पिता जब उससे उसकी शादी की बात करते हैं तो वह उनके बातों को घुमा देता और कहता है– "मां शादी ऐसे थोड़े ही होगी। पहले तुम मेरे साथ सारा गुजरात घूमो। अरे वहां मेरे जैसे लड़कों की बड़ी पूछ है। वहां के गुज्जू लड़के बड़े पिचके दुचके से होते हैं। मेरा तो पापा जैसा कद देख कर ही लट्टू हो जाते हैं सब।"[11]

स्टेला शिकागो की रहने वाली थी। पवन और स्टेला के बीच प्रेम प्रसंग की सूचना स्टेला अपने माता–पिता को ईमेल से भेजती है। उसके माता–पिता तो खुश होकर उसे शुभकामनाएं भेज देते हैं, किंतु पवन का परिवार इस बात से हतप्रभ रह जाता है,क्योंकि उन्होंने न तो लड़की देखी थी और न ही उसका घर बार। इसलिए उनके मन में आशंका उत्पन्न हो जाती है। लेखिका लिखती है– "पांडे परिवार पवन की खबर पर हत बुद्धि रह गया। न उन्होंने लड़की देखी थी न उसका घर बार। आकस्मिकता के प्रति उनके मन में सबसे पहले शंका पैदा हुयी। राकेश ने पत्नी से कहा, 'पुन्नू के दिमाग में हर बात फितूर की तरह उठती है। ऐसा करो तुम एक हफ्ते की छुट्टी लेकर राजकोट हो आओ। लड़की भी देख लेना और पुन्नू को भी टटोल लेना। शादी कोई चार दिनों का खेल नहीं, हमेशा का रिश्ता है। इंटर से लेकर अब तक दर्जनों दोस्त रही हैं पुन्नू की। ऐसा चटपट फैसला तो उसने कभी नहीं किया।"[12]

पवन की मां बिना बताए उसके पास अहमदाबाद चली जाती है और उसके इस विवाह का विरोध करती है। किंतु राकेश ने उसे मना कर दिया था राकेश और रेखा ने भी अंतरजातीय विवाह किया था। कुछ इसी प्रकार का प्रकरण प्रेम कहानी उपन्यास में प्रस्तुत किया जाता है जहां गिनेश तथा जया आपस में प्रेम विवाह करते हैं। गिनेश मॉरीशस का रहने वाला है जबकि जया भारतीय है। जया के परिवार वाले इस विवाह से सहमत नहीं थे। प्रेम कहानी के दूसरे कोण पर यशा नाम की लड़की शिकागो के रहने वाले मोहम्मद नामक मुसलमान युवक से मोहब्बत करने लगती है। मोहम्मद और उसके बीच प्रेम पत्र के द्वारा उसके घर वालों को इसकी जानकारी मिलती है माता–पिता इस प्रेम संबंध के पक्ष में नहीं थे। वे उसका विवाह किसी सजातीय युवक से करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यशा का विवाह एक सजातीय नवयुवक से कर दिया। अपनी सहेली जया को बताते हुए यशा कहती है– "मैंने बड़ी गलती की जया, जो तेरे नक्शे कदम पर नहीं चली। माँ ने भूख हड़ताल कर दी। लिप्पी सा मुंह निकालकर दादी आगे आ गई। बाबू जी ने जल्दी–जल्दी रिश्ता तय कर चटपट ब्याह कर दिया कि कहीं मैं मुसलमान न हो जाऊं। बनिया जाति का पतन न हो जाए।"[13]

'नरक दर नरक' उपन्यास में भी जगन तथा उषा के बीच भी अंतर्जातीय प्रेम विवाह होता है। जगन चंडीगढ़ का रहने वाला था और उषा मथुरा की। वह आर्य समाज से जुड़ी हुई थी। उनके बीच भी जाति और परंपरा का पालन करना अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनके विवाह में भी कई प्रकार की समस्याएं सामने आती है। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि आखिर विवाह में वे किस पद्धति का अनुसरण करें। इस संबंध में लेखिका लिखती हैं– "अपनी अपनी जरूरतों के आगे उन्होंने घुटने टिका दिए। घुटने उन्होंने माउंट मेरी चर्च में टिकाये थे, लेकिन फादर डिसूजा के यह कहने पर कि बिना धर्म परिवर्तन के ईसाई पद्धति से विवाह नहीं कर सकते, वे पुरोहित प्रपंच में पड़ ही गए। पूरा महीना वे एक दूसरे को आश्वस्त करते रहे कि शादी चाहे वह आर्य समाजी रीत से करें चाहे सनातन, वह कोई आडंबर स्वीकार नहीं करेंगे,बस रस्म भर जिससे उनका साथ रहना संदेहास्पद न लगे।"[14]

उपरोक्त सभी घटनाओं के माध्यम से डॉ ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में अंतरजातीय तथा अंतरराष्ट्रीय विवाह को चित्रित किया है और समाज की आधुनिक मानसिकता का प्रख्यापन किया है।

जब विवाह संस्था में विचारों अथवा किसी अन्य कारण से सामंजस्य नहीं होता तब हम इसको

अनमेल विवाह की श्रेणी में रखते हैं। ऐसे मामलों में कभी–कभी शिक्षा का अंतर तो कभी–कभी शारीरिक सौष्ठव का अंतर विद्यमान होता है। शहरी क्षेत्र में रहने वाले लोग शहरी लड़कियों को ही पसंद करते हैं और जब कभी उनका विवाह किसी देहाती अथवा गवाँर लड़की से हो जाता है तो उनके बीच अनबन हो जाती है। आपसी मतभेद के कारण ही उन दोनों का जीवन दुखमय बन जाता है। कभी–कभी तो उम्र का इतना अधिक अंतर होता है की पति पत्नी में तालमेल ही नहीं बन पाता। जब पति पत्नी दोनों बौद्धिक रूप से प्रबल होते हैं तो आए दिन विचारों में मतभेद और टकराहत की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस तरह की बानगी 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में देखा जा सकता है जहां संदीप एक आईएएस अधिकारी है तथा उसकी प्रेमिका पत्नी कविता एक व्याख्याता है। दोनों बौद्धिक रूप से बहुत ही सशक्त हैं, इसलिए उनके बीच सामान्य चीजों को लेकर भी मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संदीप और कविता का प्रेम विवाह है। आत्मनिर्भर होने के कारण दोनों के अहं में टकराव पैदा हो जाता है। अंततोगत्वा उनके इसी अहं के टकराव के कारण उनके जीवन में दरार उत्पन्न हो जाती है। अतः इसे भी एक बेमेल विवाह के रूप में समझा जा सकता है। संदीप की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है– "संदीप की हस्ती में संतुलन एक सहज प्रक्रिया नहीं बल्कि सायास उपक्रम के रूप में ही आता था। जाने बचपन की वह कौन सी ललक थी जिसके तहत वह हर समय हर किसी का ध्यान अपने ऊपर केंद्रित चाहता था। अगर ऐसा न होता तो हम अपने को बुझा हुआ, बीमार और हताश महसूस करता। फिर कविता तो उसकी पत्नी थी। उसके दिल दिमाग और देह के सभी शेड्स वह पहचानता था। जल्द ही उसे लगा, उसने कविता को नौकरी दिला कर भारी भूल की है। अब कविता को उसकी जरूरत नहीं है। एक फ्लैश की तरह यह विचार उसके दिमाग में एक दिन कौंधा और फिर एक बखराहट की तरह उसके रोजमर्रा के कार्य कलाप में समा गया।"[15]

इस प्रकार उनके बीच धीरे–धीरे तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। उस तनाव के संबंध में लेखिका कहती है– "ऐसे तनाव ज्यादा नागवार इसलिए थे, क्योंकि इनकी जड़ में कोई सच्चाई नहीं थी। कविता को लगता एक गांठ की तरह संदीप के स्वभाव में एक जगह है जहां जाकर सहजता, स्नेह और सद्भाव जाम हो जाता है। वे दोनों संवेदनशील थे। अभी भी पति–पत्नी कम और प्रेमी ज्यादा थे। लेकिन सबसे अधिक संताप भी वही झेलते।"[16]

लड़कियां उपन्यास की नायिका लल्ली मेल न होने के कारण ही विवाह के लिए राजी नहीं होती। उसके लिए अनेकों रिश्ते आते हैं लेकिन वह विवाह का फैसला नहीं कर पाती। उसकी मनः स्थिति के बारे में लेखिका लिखती है– "ऐसा भी नहीं है कि जिंदगी में मौके नहीं आए। मैं ही फैसला न कर पाई। न जाने वक़्त ने कब कैसे मेरे व्यक्तित्व में एक संकटकालीन स्विच लगा डाला था, जहां जरा भी मोह फसने लगता खतरे की घंटी बज उठती। दिमाग में भक भक एक लाल रोशनी जलती और मैं ठंडी पड़ जाती। शायद अख़बारों ने मेरी मानसिकता को चौपट कर डाला था। कोई दिन ऐसा न था जब विवाहित नवयुवतियों के मार डाले जाने के सचित्र समाचार न छपती हो। बहू प्रताड़ना राष्ट्रीय आंदोलन का रूप लेता जा रहा था। अच्छे पढ़े–लिखे बेरोजगार लड़के एक अदद स्कूटर, फ्रिज या टीवी के लिए अपनी पत्नी को जला मारने में कतई संकोच न करते। इस सब का नतीजा ही था कि शादी की तरफ से मैं बिल्कुल विमुख हो गई थी।"[17]

कभी–कभी अविश्वास इतना गहरा जाता है कि अपने सगे संबंधियों द्वारा सुझाए गए रिश्ते भी ठीक नहीं लगते। तभी तो लल्ली की बहन जब अपने देवर का प्रस्ताव उसके लिए लाती थी तो वह उसका भी आकलन अपने अनुसार करने लगती। उसे उस पर भी विश्वास नहीं होता था, क्योंकि यही बहन पहले अपने देवर की बहुत शिकायतें लल्ली से किया करती थी। लल्ली कहती है– "एक बार तो बहन ही रिश्ता लाई थी अपने देवर का। उसका कहना था,देखे भाले घर में शादी करना ज्यादा अच्छा होगा। महज दस साल के वैवाहिक काल में मेरी बहन की आंखों के नीचे बड़े गहरे काले गड्ढे, सिर के एक तिहाई सफेद बाल, हाथ पैरों की उभरी नशे, उस घर की कोई खुशनुमा तस्वीर पेश नहीं कर पाई और मैंने 'न' कर दी। इसी देवर की लाख शिकायतें मेरी बहन मुझसे किया करती थी।

पड़ोस के जवान लड़कों से लेकर जीजाजी के दोस्तों तक के दायरे से कई बार प्रस्ताव आए। निकट के परिवार ने अपने भाई से मुझे परिचित कराया। वह स्थानीय बैंक में एजेंट था और उसकी

पहली पत्नी एक सड़क दुर्घटना का शिकार हो गई थी। वह मेरे साथ अपने और जीवन को फिर से मधुर बनाना चाहता था।"[18]

'नरक दर नरक' उपन्यास में भी कुछ इसी प्रकार की स्थित दिखाई देती है जहां जगन और उषा तथा विनय और सीता गुप्ता जैसे पात्र दंपतियों के विचारों में काफी असमानता विद्यमान होती है, और इसी कारण उनके जीवन में अत्यंत विषम स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं।

बेघर उपन्यास में परमजीत एक पढ़ा–लिखा नौजवान है, लेकिन उसकी पत्नी पूरी तरह से गवांरू। रमा अत्यंत ही फूहर तथा कंजूस है। वह अंधविश्वासी भी है। वह किसी से भी अच्छा व्यवहार नहीं रखती। इस कारण से दोनों में अनबन बनी रहती है। यह अनबन इस कदर तक बढ़ जाती है कि एक दिन अत्यधिक तनाव के कारण परमजीत को दिल का दौरा पड़ जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। उपरोक्त सभी उदाहरणों में हम देखते हैं की विचारों के मेल न खाने के कारण विवाहित दंपतियों में मतभेद उभरकर सामने आता है और उनके जीवन से सुख शांति समाप्त हो जाती है।

आधुनिक भारतीय समाज में दहेज एक विभीषिका के रूप में सामने आ रहा है,जिसके कारण न केवल नारी जीवन प्रताड़ित होता है अपितु संपूर्ण परिवार उसकी विभीषिका में जल उठता है। आधुनिक भारतीय समाज में देवी का स्वरूप मानी जाने वाली कन्या के विवाह में भेंट के नाम पर केवल प्रताड़ना आती है। आए दिन कन्याओं को दहेज के लिए प्रताड़ित किए जाने तथा जला देने की घटनाएं सामने आती है। यद्यपि कानूनी रूप से दहेज एक सामाजिक व दंडनीय अपराध है, किंतु फिर भी कहीं न कहीं इसे संरक्षण प्राप्त आवश्य है। कन्या के जन्म लेते ही माता–पिता को उसके विवाह की चिंता सताने लगती है और बेटी उसे बोझ दिखाई देने लगती है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भी किसी न किसी रूप में दहेज का आख्यान प्राप्त हो जाता है। किंतु यह दहेज का स्वरूप न होकर कन्या को दिया जाने वाला उपहार था जिसमें वर पक्ष कोई शर्त नहीं रख सकता था। किंतु आधुनिक समाज में वह परिपाटी विकृत होते हुए लोभ में परिवर्तित हो गयी है। अब लोग धन के लोभ के कारण मनमाने दहेज की मांग करने लगते हैं। जिससे गरीब माता–पिता के सामने एक संकट खड़ा हो जाता है। लोग दहेज के रूप में मोटी रकम के साथ–साथ भारी–भरकम सामानों की भी मांग करते हैं। उच्च शिक्षित महिलाएं भी इस दहेज का शिकार बन कर अपना जीवन समाप्त कर लेती हैं। ममता कालिया ने इसी विभीषिका को अपने उपन्यास 'बेघर' में भी दर्शाया है। उपन्यास के नायक परमजीत के विवाह के लिए एक से एक बढ़कर रिश्ता आता है किंतु उसकी माँ बिना दहेज के विवाह नहीं मानती। उसके विवाह के लिए लड़की वालों से चार हजार नगद रुपए, 15 तोले सोना और अन्य सामानों की मांग करती है और कहती है– "वे चार हजार नगद देंगे और 15 तोले सोना। उसकी मां पहाड़गंज जाकर लड़की देख आई है। उसे लड़की पसंद है। वह कह आई है कि वे लोग दो सौ आदमियों की बारात लाएंगे और दावत में देसी घी ही लगाना पड़ेगा, दो सूट लड़के के और एक सूट बाप का तो जरूर ही होगा। वह लोग सारी शर्तें मान गए हैं। आखिर उन्हें बेटी व्याहनी है।"[19]

दहेज के लिए रखे गए सामानों को देखकर परमजीत का पिता गदगद हो जाता है और वह पहले ही जाकर लड़की के घर के सामानों का मुआयना कर आता है ममता कालिया लिखती हैं– "लड़की के घर जाकर परमजीत के बाप ने सबसे पहले थूक लगा लगा कर दो बार चार हजार के नोट गिन लिए जो उसे नकद मिले थे। उसकी मां ने लड़की के जेवरों को आंखों ही आंखों में तोल लिया कि वह पंद्रह तोले से ज्यादा के ही हैं,कम नहीं। लड़की वालों ने एक कमरे में दिखाने के लिए वे सब चीजें सजाई थी जो उन्होंने दी थी। सिलाई मशीन, रेडियो, पंखा, लेमन सेट, हारमोनियम से लेकर नाडा गेरनी तक। सामान में लड़की के लिए कई भड़कीली साड़ियां और चमकदार सलवार सूट थे जिन्हें देखकर परमजीत को लगा कि जाते ही उसे रमा के लिए कुछ कपड़े खरीदने पड़ेंगे। परमजीत के बाप ने जल्दी से सजी हुई चीजों की फेहरिस्त बना ली जिससे कोई चीज अगर छूट जाए तो वापस मंगाई जा सके। पर वास्तव में सबसे ज्यादा महत्व था परमजीत की मां का जिसके दुपट्टे में रुपयों का एक ढेर जमा हो गया था और जिसकी पूंछ कदम कदम पर हुई।"[20]

लड़की के विदा हो जाने के बाद घरवालों की बड़ी दयनीय स्थिति बन जाती है। उनके ऊपर खर्चों का अंबार चढ़ जाता है और वे व्याकुल हो जाते हैं। जो कुछ बचा रहता है उसी को अपना मान कर अपने मन को तसल्ली दे लेते हैं। रमा की विदाई के बाद भी कुछ ऐसा ही हुआ। रमा के घर वालों की व्याकुलता का वर्णन करते हुए ममता कालिया लिखती हैं– "रमा के घर वालों ने चैन की सांस ली। उसकी मां थोड़ी देर सुबकने के बाद लौटाने वाले बर्तन गिनने लगी। उसकी बड़ी बहन कृष्णा ने दरिया उठा उठा कर झाड़ी और फिर धोबी के लिए मैले कपड़े समेटने लगी। अब रिश्तेदार फालतू सामान की तरह नजर आ रहे थे। थोड़ी ही देर बाद शामियाना उतारने वाला आ गया था और उसी के साथ हिसाब की अगली किस्त शुरू हो गई। दोनों बड़े भाइयों के मुंह सूजे हुए थे क्योंकि उनके अंदाज से ज्यादा खर्च हो गया था। पर बाप का कहना था, 'ले गई जो लेना था, अब जो है घर का है।"[21]

दहेज चाहने वालों का अपना एक अलग अंकगणित चलता रहता है। ऐसे लोग दूसरों से दहेज लेने की लालसा तो रखते हैं, लेकिन जब कभी अपनी बेटी के विवाह में उन्हें दहेज देना पड़ता है तो उन्हें बहुत समस्या आती है। समाज में ऐसे लोग भी विद्यमान हैं जो अपने लड़के की शादी में दहेज ले कर उसे अपने बिटिया की शादी के लिए सहेज कर रख देते हैं और उसी से उसका विवाह कर लेते हैं। परमजीत की माता और पिता का भी ऐसा ही कुछ हाल था। वे परमजीत के विवाह में जिन सामानों को दहेज के रूप में प्राप्त करते हैं,बाद में उसी सामान से अपनी बेटी बिम्मा का भी विवाह करते है।

"परमजीत की मां को फुर्सत नहीं थी।वह दहेज में आए सामान से एक और दहेज तैयार करने में लगी थी। उसने सिलाई मशीन,पंखा,रेडियो और टी सेट एकदम अलग रख दिए थे और बर्तनों की बाल्टी भी। उसे सिर्फ यह अफसोस था कि वह लोग कपड़े रखने की अलमारी देने में कंजूसी कर गए पर उसने बिम्मा की फेहरिस्त में से भी इसे काट दिया था।"[22]

शादी के कुछ ही दिनों बाद अपेक्षा से कुछ कम दहेज लाने वाली लड़कियों के साथ बुरा बर्ताव प्रारंभ हो जाता है। उनके प्रत्येक कार्य पर बारीकी से छानबीन होने लगती है। परमजीत की मां भी अपनी बहू के सभी क्रियाकलापों पर नजर रखती थी। धीरे–धीरे उसको परमजीत की पत्नी से घरेलू शिकायतें होनी प्रारंभ हो जाती हैं– "परमजीत की मां को रमा से घरेलू शिकायतें होनी शुरू हो गई थी और रमा की आंखों का झुकाव भी अब धीरे–धीरे उठने लगा था। इसलिए जब परमजीत ने जाने का प्रस्ताव रखा तो घर में खास प्रतिक्रिया नहीं हुई, बस मां ने जल्दी–जल्दी रास्ते के लिए सेरों मट्ठियाँ बना डाली।"[23]

इसी दहेज की विभीषिका के कारण ही परिवारों में लड़की के जन्म लेते ही मातम छा जाता है। किसी तरह पढ़ा–लिखा देने के बाद भी परिवारीजनों को उसके विवाह की चिंता सताए रखती है। लड़कियों का उनकी मनपसंद के लड़के से विवाह नहीं हो पाता। 'प्रेम कहानी' उपन्यास में इस तरह की बानगी देखी जा सकती है, जहां उपन्यास की नायिका यशा पढ़ी–लिखी होने के बाद भी ऐसी परिस्थितियों में उलझ जाती है। यशा की चार बहने हैं जिनका उसके पिता ने एक–एक करके विवाह कर दिया था,किंतु जब कभी उनकी किसी बेटी का विवाह संपन्न हो जाता तो राहत की सांस लेते। यह सब देख कर यशा अत्यंत चिंतित होती और अपने लिए खुद लड़कों की तलाश में लग जाती है। यशा की यह बात उसकी सहेली जया को बिल्कुल भी पसंद नहीं है और उसके टोकने पर वह कहती है– "तू अपने घर की इकलौती औलाद है जया,तुझे क्या पता चार लड़कियों के बाप को अपनी बेटियां ब्याहने की कैसी उतावली रहती है। वह रिश्ता ढूंढते समय यह नहीं देखते कि रिश्ता लड़की के लायक है या नहीं। वह तो गिनती पूरी करते हैं। मेरी दोनों दीदियों के एक–एक कर व्याह हुए तो पिताजी ने हर बार हाथ झाड़कर कहा,यह भी गई,अब बचीं तीन। यह भी पार लगी अब बचींकृ– दो', उनके लिए हमें कुएं में धकेलना या ब्याह में धकेलना एक बराबर है। बस दो पैर,दो हाथ का जीव होना चाहिए,इतना भर देखते हैं वह।''[24]

माता पिता अपनी बेटी के विवाह के लिए अपने जीवन भर की कमाई लगा देते हैं और जीवन भर उसी के लिए पूंजी जमा करने में लगे रहते हैं। किसी भी सरकारी नौकरी प्राप्त लड़के की तलाश में इधर–उधर भटकते हैं। यहां तक की छोटी से छोटी सरकारी नौकरी पाने वाले लड़के की कीमत में

बेतहाशा वृद्धि हो जाती है आईएएस की बात तो दूर। इस तरह की परिस्थिति का चित्रण 'एक पत्नी के नोट्स' नामक उपन्यास में हुआ है, जहां संदीप आईएएस बनता है और उसके लिए अनेकों संपन्न परिवारों की लड़कियों के रिश्ते आते हैं। सभी की सोच यही है कि उनकी बेटी अधिकारी दामाद पाकर जीवन भर खुश रहेगी। लेखिका लिखती है– "घर पर संदीप के लिए एक से एक समृद्ध परिवारों की लड़कियों के रिश्ते आ रहे थे। सभी लड़कियां घोषित रूप से सुंदर सुशील सुशिक्षित और गृह कार्य में दक्ष थीं। सभी के पिता संपन्न थे और आईएएस दामाद खरीदने की हैसियत रखते थे।"[25]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दहेज रूपी दानव दिनोंदिन सुरसा के मुंह जैसा फैलता चला जा रहा है और अनेकों नव युवतियां उसका ग्रास बन रही हैं। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए विविध अधिनियम लाए गए किंतु फिर भी वे पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि परिस्थित को बदलने के लिए लोगों की मानसिक स्थिति का बदलना आवश्यक है। मानसिक स्थिति को बदलने का कोई पैमाना निर्धारित नहीं किया जा सका है। डॉ ममता कालिया के उपन्यास निश्चित ही समाज की ऐसी परिस्थिति को तस्दीक करते हैं।

रोजमर्रा के जीवन में महिला को विभिन्न समस्याओं के साथ–साथ एक ऐसी महत्वपूर्ण समस्या से दो–चार होना पड़ता है जिसमें उसके साथ दुष्कर्म की संभावना प्रबल रूप से विद्यमान रहती है। प्रगतिशील समाज में नारी की प्रगति के द्वार खुलने के साथ साथ ही उसके लिए खतरे के द्वार भी खुल चुके हैं। उसके कार्यक्षेत्र में वृद्धि होने के कारण वह पुरुष प्रधान समाज में पूरी तरह असुरक्षित हो जाती है। नारी के प्रति गलत दृष्टिकोण तो पूर्व काल से ही विद्यमान रहा है। महाभारत में द्रोपदी चीर हरण जैसा आख्यान प्राप्त होता है। आज भी स्त्री के साथ बलात्कार,यौन शोषण तथा सामूहिक दुष्कर्म की घटनाएं प्रायः दिखाई देती हैं। घर, कार्यस्थल या कोई भी जगह, नारी सुरक्षित नहीं है। वह आज भी पुरुष की वासनाओं का शिकार बन रही है। यौन शोषण एक सामाजिक अभिशाप के रूप में संपूर्ण समाज में फैला हुआ है। समाचार पत्रों में रोजमर्रा के समाचारों में किसी न किसी पृष्ठ पर इस तरह की घटनाएं देखी जा सकती हैं। इस विभीषिका में न केवल महिलाएं जल रही हैं बल्कि नन्ही मुन्नी बच्चियां भी इसका शिकार होती है। पुलिस भी उनके साथ उपयुक्त व्यवहार नहीं करती। अपराधी की गिरफ्तारी में मनमाना विलंब होता है। 'प्रेम कहानी' उपन्यास में इस तरह की एक बानगी देखी जा सकती है, जिसमें उपन्यास की नायिका जया अपनी आंटी के घर रहती है। वहीं अंकल रात में उसके साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास करता है। जया उस समय गहरी निद्रा में सो रही थी तभी उसे अपने शरीर पर कुछ स्पर्श महसूस होने लगता है जिससे वह नींद से जग जाती है– "बड़ी गहरी नींद रही होगी इसीलिए बड़े झटके से टूटी। दरअसल हुआ यह था कि नींद में यकायक लगा जैसे कोई सारे बदन की माप ले रहा हो। आभास नींद के समुंदर में डूबा उतराया फिर ऊपर आ गया लगा मैं दर्जी की दुकान में हूं। लेकिन यह कूल्हे और जांघ के दरम्यान कैसी माप? अचकचाकर बैठी हो गई। देखा पाए ताने अंकल सिटपिटाये खड़े हुए थे। अंधेरे में भी उनकी आतंकित, खिसिआई आकृति मुझे दिख रही थी। मैंने मुंह पलटकर आंटी की ओर देखा। शायद मैं जोर से पुकारना चाहती थी, पर आवाज को न जाने क्या हो गया था। उसमें से जान ही निकल गई थी। तभी मुझे अपने पैरों पर स्पर्श का स्पष्ट आभास हुआ। अंकल मेरे पैरों पर सिर टिकाए हुए थे। पता नहीं कैसे खामोशी ही खामोशी में छड़ के अणु में यह इतनी बड़ी दुर्घटना हो गई। अंकल फौरन बिस्तर में छुप गए और उन्होंने दीवार की तरफ मुंह कर लिया। मैं सुबह तक जागी रही। मुझे लगता रहा अभी मुझे उल्टी आएगी या बुखार चढ़ेगा या मेरे शरीर का कोई हिस्सा काला पड़ जाएगा या मेरे मुंह में बदबू होगी। मेरा कोई अनिष्ट होने ही वाला है। नफरत से बदन कांप रहा था।"[26]

इसी प्रकार की एक बानगी 'बेघर' उपन्यास की नायिका संजीवनी के साथ भी देखा जा सकता है। संजीवनी एक उच्च शिक्षित महिला थी। वह बैंक ऑफ बड़ौदा में नौकरी करती थी। उसके परिवार वालों की धारणा उसे सिर्फ कमाऊ मशीन समझने लगती है,और इसीलिए उसका विवाह भी जल्दी नहीं करना चाहते। उसकी मां बीमार रहती थी और उसका सारा जिम्मा संजीवनी पर ही रहता है। अचानक उसके जीवन में परमजीत नाम का लड़का आता है, जिससे उसका प्रेम तथा शारीरिक संबंध भी स्थापित हो जाता है। लेकिन परमजीत उससे संतुष्ट नहीं होता बल्कि उसे संदेह की दृष्टि से देखता है।

परमजीत विवाह से पहले ही संजीवनी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर लेता है किंतु उसे जो कुछ भी आभास हुआ वह उसे असंतुष्ट कर देने के लिए पर्याप्त था। उसे संजीवनी द्वारा किसी और मर्द के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का आभास हो जाता है। इस प्रकार परमजीत खिन्न होकर अपने गांव जाकर एक ऐसी लड़की रमा से शादी कर लेता है जो बहुत गँवार टाइप की महिला है। परमजीत से पहले विपिन नाम के लड़के ने भी उसके साथ जबरदस्ती शारीरिक संबंध स्थापित किया था और उसके बाद मोरिशश चला गया। इससे संजीवनी की जिंदगी अपराध बोध से ग्रसित हो चुकी थी। संजीवनी इन बातों से अत्यंत दुखी होती है। उसकी स्थिति के बारे में लेखिका लिखती है– "उसे किचकिचाहट होती रही। उसका मन हुआ शरीर पर पड़ा कंबल दांतों से काट चिंदी चिंदी कर दें और सड़क पर ट्याऊँ ट्याऊँ करते पिल्ले की गर्दन दबा डालें। ऐसी ही हालत में उसे नफरत भरी याद आई विपिन की जो लगातार उसका अंजानापन कैश करता गया था। उसका बदन अन्याय की आग से जल उठा जो अनुभव उसने इंजॉय भी नहीं किया उसके लिए वह जिम्मेदार और दोषी ठहराई जा रही थी। विपिन जिसे इतनी भी तमीज नहीं थी कि वह वस्तुतः एक भोली लड़की थी, अब मारीशस जाकर बैठ गया था, बिना यह सोचे कि उसने संजीवनी की दुनिया खत्म कर डाली है और आज से वह खुद अपनी आंखों में भी अपराधी हो गई है।"[27]

ऐसे मामलों में प्रायः लड़के लड़कियों पर जबरदस्ती हावी हो जाते हैं और उन्हें अपने बाहु पाश में भर कर उनके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। लड़की न चाहते हुए भी उनकी शिकार बन जाती हैं और बाद में वे उसे छोड़ने में भी जरा भी संकोच नहीं करते। विपिन ने भी कुछ ऐसा ही काम किया था। इसलिए संजीवनी उससे बेहद नफरत करती थी। संजीवनी के साथ हुई घटना का विवरण देते हुए डॉक्टर कालिया लिखती हैं– "उस दिन विपिन जबरदस्ती उस पर हावी हो गया था। उसे बेहतरह तकलीफ हुई थी जैसे बिना एनेस्थीसिया दिए उसका ऑपरेशन किया जा रहा हो। 'जंगली कहीं के' कह कर जिन निगाहों से उसने विपिन को देखा, विपिन अपने आप अलग हो गया था। 'असल में तुम एक ठंडी लड़की हो' उसने कहा था। वही दिन था जब से उसे विपिन से अरुचि हो गई थी। कई बार उसे वह दुर्घटना याद आती और वह पीली पड़ जाती। उसके बदन में झुर्झुरी दौड़ जाती पर उसने नहीं सोचा था कि इसका असर आने वाले दिनों पर इतना घातक होगा।"[28]

संजीवनी इस घटना से अत्यंत व्यथित होती है और परमजीत को सब कुछ बता डालने का मन बनाती है। संभवत उसे विश्वास था कि परमजीत उसकी बात को समझ जाएगा और उसके साथ विवाह कर लेगा। ममता कालिया लिखती हैं– "उसने तय किया वह यह सब परमजीत से कल कहेगी। उसे समझना ही होगा कि संजीवनी के लिए यह पहला ही अनुभव था। वह बता देगी कि उसके ऊपर आकस्मिक आक्रमण हुआ था। वह विपिन के साथ एकांत कमरे तक में नहीं थी। उसने रेस्तरां के केबिन में ही उसे जबरन दबोच लिया था और खड़े–खड़े ही दुर्व्यवहार किया था। वह लड़खड़ाकर कुर्सी पर गिर गई थी। आंखों ही आंखों में उसने विपिन को अनगिनत गालियां सुना दी थी। विपिन ने जिस भर्त्सना और क्रोध से उसे देखा था, उसे आश्चर्य हुआ था कि इतने असुंदर और अभद्र लड़के के साथ वह कैसे घनिष्ठ रह सकी।"[29]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरुष वर्ग की स्त्रियों के प्रति दूषित मानसिकता ने स्त्रियों के जीवन को कलंकित तथा संकटमय बना डाला है। महिला कहीं भी किसी के भी पास सुरक्षित नहीं है। यद्यपि समाज में सभी पुरुष एक जैसे नहीं हैं, किंतु फिर भी अधिकांशतः स्त्री को केवल कामवासना के दृष्टिकोण से ही निहारते हैं और उन्हें अपना शिकार भी बनाते हैं। ममता कालिया के उपन्यासों में इस परिस्थिति का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. *डॉ ममता कालियाः नरक दर नरक; पृष्ठ –7, संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
2. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी ; पृष्ठ –138 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*

3. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी ; पृष्ठ –129 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
4. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– एक पत्नी के नोट्स ; पृष्ठ –7 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
5. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी ; पृष्ठ –165 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
6. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी ; पृष्ठ –138 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
7. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– एक पत्नी के नोट्स ; पृष्ठ –39 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
8. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– एक पत्नी के नोट्स ; पृष्ठ –40 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
9. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– एक पत्नी के नोट्स ; पृष्ठ –41 , पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
10. *डॉ ममता कालियाः दौड़; पृष्ठ– 42, संस्करण– 2014,(वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
11. *डॉ ममता कालियाः दौड़; पृष्ठ– 50, संस्करण– 2014,(वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
12. *डॉ ममता कालियाः दौड़; पृष्ठ– 54, संस्करण– 2014,(वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
13. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी ; पृष्ठ– 171 पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली)*
14. *डॉ ममता कालियाः नरक दर नरक ; पृष्ठ– 7, पेपर बैक संस्करण– 2022,(किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली)*
15. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास – एक पत्नी के नोट्स; पृष्ठ –24, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
16. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास – एक पत्नी के नोट्स; पृष्ठ –26, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
17. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास – लड़कियां ; पृष्ठ –91, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
18. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास – लड़कियां ; पृष्ठ –91, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
19. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ– 106 पांचवां संस्करण –2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
20. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ– 110 पांचवां संस्करण –2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
21. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ– 110 पांचवां संस्करण –2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
22. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ– 113 पांचवां संस्करण –2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
23. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ– 113 पांचवां संस्करण –2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
24. *ममता कालियाः प्रेम कहानी –तीन लघु उपन्यास; पृष्ठ– 117, पेपरबैक संस्करण –2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
25. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास – एक पत्नी के नोट्स ; पृष्ठ –12, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
26. *डॉ ममता कालियाः प्रेम कहानी– तीन लघु उपन्यास ; पृष्ठ– 121 पेपरबैक संस्करण –2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
27. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ–71, पांचवा संस्करण– 2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
28. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ –71, पांचवा संस्करण– 2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*
29. *डॉ ममता कालियाः बेघर ; पृष्ठ–72, पांचवा संस्करण– 2018 (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली)*

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

19वीं शताब्दी में भारत में धर्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. शलभ चिकारा
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज, अलीपुर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सामाजिक पुर्नजागरण आधुनिक भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसने भारतीयों को आत्मनिरीक्षण करने के लिये विवश किया। इस समय हिन्दू धर्म एवं समाज निष्क्रिय एवं शक्तिहीन अवस्था में था। हिन्दू समाज का निचला तबका सामाजिक सम्मान एवं आर्थिक सुविधाऐं पाने के लिये ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगा था। अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज अन्धविश्वास के जाल में जकड़ा हुआ था। जाति प्रथा ने समाज के निम्न वर्ग के प्रति उच्च वर्गों का अनुचित व्यवहार एवं छुआछूत की गम्भीर समस्या खड़ी कर दी थी। समाज उच्च एवं निम्न वर्गों में विभक्त हो गया था। भारत की बहुसंख्यक जनता तथा उच्च वर्गों के बीच एक दरार पैदा हो गई थी। जाति प्रथा के अलावा सती प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा इत्यादि बुराइयाँ भी समाज में विद्यमान थीं। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह इत्यादि के लिये आवाजें उठने लगी थीं। अतः इस समय हिन्दू धर्म एवं समाज की रक्षा के लिये सुधार की अति आवश्यकता थी।[1]

भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व की स्थापना के साथ ही यहाँ पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई थी, जिसने भारतीय समाज एवं संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। युरोपियन व्यापारियों के साथ ईसाई पादरी एवं धर्म प्रचारक भारत आऐ। इनके प्रयत्नों से देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। परिणामस्वरूप पाश्चात्य विचार और ज्ञान भारतीयों तक पहुँचने लगा। यद्यपि आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति भारत के सामाजिक और धार्मिक मामलों में अहस्तक्षेप की ही थी तथा परम्परागत भारतीय संस्कृति के प्रति एक सम्मान का भाव भी था। संस्कृत एवं फारसी भाषाओं के अध्ययन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ सीखने का प्रयास करना तथा शासन संबंधी विषयों में उस ज्ञान का उपयोग करना था। इस हेतु एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कॉलेज इत्यादि संस्थाओं की स्थापना की गई।

इसके बाद उन्नीसवीं सदी के शुरूआत से अंग्रेजों ने भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। इस परिवर्तन के पीछे ब्रिटिश वैचारिक प्रभाव था। उपयोगितावाद, इंजीलवाद, मुक्त व्यापार की सोच सुधारवाद की धर्म से मुक्ति को, अंधविश्वासों, मूर्तिपूजा, पुरोहितों की निरंकुशता का खण्डन कर रही थी। यद्यपि अभी तक कम्पनी को सरकार खुलकर इन विषयों पर आगे नहीं बढ़ रही थी, वह भारतीय प्रतिक्रिया के डर से शंकाग्रस्त थी और वह यह चाह रही थी भारतीय समाज से ही सुधारों का समर्थन करने वाला एक वर्ग निकलकर आये। ऐसा वर्ग जो सामाजिक–धार्मिक सुधारों का व्यापक स्तर पर समर्थन और सहयोग करे। इस वर्ग के निर्माण हेतु काम आयी अंग्रेजी भाषा। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का अठारहवीं सदी के आरम्भ में प्रसार किया गया। इस हेतु अनेक स्कूल–कॉलेजों की स्थापना की गयी, स्थापना में सहयोग किया गया, आर्थिक सहायता दी गई। यद्यपि इस अंग्रेजी भाषा के प्रसार के पीछे कुछ छिपे हुऐ या अदृश्य उद्देश्य भी थे। इसके माध्यम से वह भारत में ईसाइयत और उसके नैतिक जीवन मूल्यों का भारत में प्रसार करना चाहते थे। ऐसा होने पर यहाँ की जनता हिन्दू धर्म से मुक्त होकर शासक वर्ग की सहधर्मी हो जाती और अपने सहधर्मियों के विरूद्ध विद्रोह का इतना बड़ा खतरा भी न रहता।[2] इस उद्देश्य पूर्ति हेतु अनेक ईसाई मिशनरीज भारत में आई और शिक्षार प्रसार का चोला ओढ़कर अपने अंतिम लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ते रहे। ईसाई मिशनरीज

भारत में प्रिंटिंग प्रेस चलाते, जिससे बाइबिल का भारतीय भाषाओं में अनुवाद सम्भव हुआ, तथा लड़के–लड़कियों के लिये स्कूल एवं कॉलेज चलाते। 1813 ई. के बाद तो ईसाई मिशनरियों को भारत में मनमानी की पूरी छूट दे दी गई।

इस समय आडम्बरों, पाखण्डों और अन्धविश्वासों में लिपटा भारतीय समाज पूरी तरह से निष्क्रिय और विवेकशून्य हो चुका था तथा अपने प्राचीन गौरव और ज्ञान–विज्ञान परम्परा से दूर होता जा रहा था। ईसाई मिशनरियों तथा कुछ अन्य प्रगतिशील यूरोपवासियों, जो कि प्राचीन भारतीय गौरव ज्ञान–विज्ञान तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों से प्रभावित थे, भारत के सभी भागों में अंग्रेजी माध्यम में स्कूल खोलने प्रारम्भ कर दिये। शिक्षा के इस रूप और माध्यम को बल तब और मिला, जब राजा राममोहन राय ने इसे अपना समर्थन दिया। राजा राममोहन राय का मानना था कि भारत का आधुनिकीकरण अंग्रेजी शिक्षा के कारण और पाश्चात्य विज्ञान के ज्ञान के प्रसार के कारण ही सम्भव होगा।[3] अंत में इस विचार के निर्णायक घटनाक्रम की परिणति तब हुई, जब उपयोगितावादी सुधारक विलियम बैटिक 1828 ई. में गवर्नर जनरल बना और 1834 ई. में उसकी काउंसिल में टॉमस वैबिंग्टज मैकाले को विधि सदस्य बनाया गया। बाद में उसे जन शिक्षा समिति का अध्यक्ष बना दिया गया। फरवरी 1835 ई. में उसने भारतीय शिक्षा पर अपना विख्यात कार्य विवरण जारी किया, जो भारत में अंग्रेजी शिक्षा के आरम्भ का खाका बन गया।[4] उसने भारतवासियों के लिये यूरोपीय साहित्य और ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का समर्थन किया, जो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाय। उसका तर्क था कि ''ऐसी शिक्षा हमारे और हमारे द्वारा शासित करोड़ों व्यक्तियेां के बीच में ऐसे व्यक्तियों का एक वर्ग पैदा करेगी, जो रंग और रक्त में तो भारतीय होंगे, परंतु रूचियों और विचरों में, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेज होंगे।''[5]

परंतु मैकाले की यह भविष्यवाणी अफ्रीका जैसे अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों की भाँति भारत एक प्राचीन वैभवशाली सभ्यता का गवाह रहा है। हमारे ज्ञान–विज्ञान और उपलब्धियों ने विश्व का मार्ग प्रशस्त किया है। अतः अंग्रेजी माध्यम को शिक्षा द्वारा शासक और शासित के बीच ऐजेन्ट बनाने की कल्पना विफल रही और इसी अंग्रेजी माध्यम के द्वारा पश्चिम के ज्ञान के सम्पर्क में आये लोगों का एक ऐसा वर्ग उठा, जो अपने प्राचीन वैभव पर गर्व भी करता था[6], परंतु वर्तमान में समाज और धर्म में आ चुके पाखण्ड, आडम्बर और बुराइयों से दुखी भी था। अतः ये वर्ग धर्म को छोड़ने पर नहीं बल्कि धर्म और समाज में सुधार करके उसे पुनः वैभव की स्थिति में लाना चाहता था। ऐसे अनेक धर्म एवं समाज सुधारक थे, जैसे– राजा राम मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, द्वारिका नाथ टैगोर, देवेन्द्र नाथ टैगोर, के. श्रीधरालु नायडु, आत्माराम पाण्डुरंग, गोपाल हरि देशमुख, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, शिवदयाल खत्री, गोपाल कृष्ण गोखले, नारायण गुरु, हेनरी विवियन डेरोजियो, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, डी.के.कर्वे, वीरेशलिंगम पुत्तलू, विष्णु शास्त्री पण्डित, बाल गंगाधर तिलक, डॉ. हरविलास शारदा इत्यादि।

जब ईसाई मिशनरियों ने भारत की जनता को ईसाई बनाना शुरू किया तो इसके विरूद्ध हिन्दुओं की तीखी प्रतिक्रिया हुई और कुछ जागरूक हिन्दु अपने धर्म की रक्षा के प्रयत्न में जुट गये। ये हिन्दू सुधारक इस बात को भलीभांति समझ रहे थे कि ईसाई मिशनरी और कम्पनी की व्यवस्था हिन्दुओं को कुछ कमजोरियों, जैसे कि इस समय हिन्दू धर्म और समाज निष्क्रिय एवं शक्तिहीन हो रहा है तथा हिन्दू समाज का निचला तबका सामाजिक सम्मान और आर्थिक सुविधाओं के लिये ईसाई धर्म को स्वीकार कर रहा है, और उसका फायदा उठा रहे थे। अतः हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये सुधार की अति आवश्यकता थी। भारतीय धर्म एवं समाज सुधारकों को ईसाई मिशनरियों की धर्म प्रचार प्रणाली से भी प्रेरणा मिली। यही कारण था कि उन्नीसवीं सदी में धर्म सुधार का कार्य ईसाई मिशनों की तरह संगठन के माध्यम से शुरू हुआ। सर्वप्रथम मध्यमवर्गीय भारतीयों द्वारा सुधार का कार्य प्रारम्भ किया गया। साथ ही इस पुर्नजागरण लाने में कुछ यूरोपीय विद्वानों का भी हाथ था, जो भारत की प्राचीन सांस्कृतिक उपलब्धियों से प्रभावित थे। इन्होंने प्राचीन भारतीय उपलब्धियों को प्रकाश में लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इससे भारतीयों में आत्मगौरव एवं आत्म–सम्मान की भावना उत्पन्न हुई।

भारतीय सुधारकों ने साामाजिक–धार्मिक परम्पराओं में सुधार लाने के लिये अनेक प्रणालियों का प्रयोग किया, जिनमें से मुख्यतः तीन पद्धतियाँ अपनाई गई[7]– प्रथम प्रणाली समाज में जागृति पैदा करने

पर बल देती थी। यद्यपि यह व्यवस्था भी दो भागों में विभक्त थी। सुधारवादियों के एक वर्ग की मान्यता थी कि सुधार को प्रभावी बनाये जाने के लिये यह आवश्यक है कि वह समाज के अन्दर से ही विकसित हो। इनके प्रयास लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने पर केन्द्रित थे। इसके लिये किताबों का प्रकाशन, सामाजिक समस्याओं पर परिचर्चा, संगोष्ठियों का आयोजन आदि पर बल दिया गया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के विधवा विवाह पर लिखे इस्तहार, बहराम मालाबारों के विवाह को न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास तथा राजा राममोहन राय के सती प्रथा के विरूद्ध प्रचार इसके सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण हैं। ऐसे आंतरिक सुधार प्रणाली का नाम दिया जा सकता है। इस पद्धति के दूसरे सुधारवादियों का विश्वास केवल समाज में जागृति पैदा करने में ही नहीं था, बल्कि इन्होंने सुधारों के क्रियान्वयन पर भी जोर दिया। इस श्रेणी में आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को रखा जा सकता है। दूसरी पद्धति के विचारों का विश्वास कानूनी हस्तक्षेप के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन में था। इस मत के समर्थक सुधारकों ने सरकार पर सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिये दबाव डाला तथा सामाजिक कानून पारित करवाने में सहयोग दिया। ऐसे लोगों में राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर प्रमुख थे। तीसरी पद्धति के समर्थक लोगों की कोशिश विरोधी गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। इस वर्ग में यंग बंगाल आन्दोलन को रखा जा सकता है।

19वीं सदी में हुआ यह सांस्कृतिक–वैचारिक संघर्ष दो मोर्चो पर चल रहा था। एक तरफ तो यह भारत के रूढ़िवादी वर्ग से जूझ रहा था, तो दूसरी तरफ इसका मुकाबला औपनिवेशिक संस्कृति एवं विचारधारा से था। सुधार के शुरूआती दौर की कोशिशें सर्वप्रथम भारतीय धर्म, समाज एवं संस्कृति की रूढ़ियों को दूर करने के लिये की गईं थी। धार्मिक क्षेत्र में सुधारवादी आन्दोलन ने मूर्तिपूजा बहुदेववाद एवं पुजारियों के एकाधिकार को खत्म करने के लिये संघर्ष किया। ये मुद्दे धार्मिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण थे, क्योंकि हिन्दू धर्म इतना गहन और विस्तृत है कि इसका प्रभाव समाज के हर एक पहलू एवं गतिविधियों पर पड़ता है। धर्मग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराया गया, जिससे धार्मिक ज्ञान पर पुजारियों एवं धर्माचार्यों का एकाधिकार नहीं रहा और जनसाधारण तक प्रामाणिक धार्मिक जानकारियाँ पहुँची, जिससे पाखण्ड और बिचौलियों का खात्मा हुआ। अगला संघर्ष जाति व्यवस्था के खिलाफ छेड़ा गया, जिसने लोगों में देश प्रेम की भावना को खत्म कर दिया था, साथ ही यह लोकतंत्र के विकास में भी बाधक थी। राजा राममोहन राय, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने जाति व्यवस्था का विरोध किया। सुधारवादी वर्ण विभाजन को गुणों के आधार पर मानते थे, जन्म के आधार पर नहीं।[8] उनका मानना था कि ''कोई भी ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण कहलाने योग्य है, जिसने सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त किया हो और जो उत्तम चरित्र का हो; और जो व्यक्ति ज्ञान और चरित्र के मामले में निकृष्ट हो वह शूद्र है।'' जाति व्यवस्था का सबसे सशक्त विरोध निचली जातियों के बीच से उभरे आन्दोलनों ने किया। ज्योतिबा फूले एवं नारायण गुरु इस व्यवस्था के सबसे बड़े आलोचक थे। चार्तुवर्ण एवं व्यक्ति के गुणों में जन्मजात भिन्नताओं की तरफ इशारा करते हुए गाँधीजी ने नारायण गुरु से कहा था कि एक ही पेड़ की सारी पत्तियाँ आकार एवं बनावट में एक जैसी नहीं होती हैं। इसके प्रत्युत्तर में नारायण गुरु ने कहा कि ''फर्क सिर्फ ऊपरी है, पत्तियों के रस में तो कोई फर्क नहीं होता है। एक पेड़ की सारी पत्तियों के निचोड़े गये रस का स्वाद एक ही होता हैं'' नारायण गुरु ने यह भी कहा था ''मानव मात्र के लिये एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर है।''

इसी तरह महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिये अनेक सुधारकों द्वारा अभियान चलाये गये। इस सुधार के पीछे पूरे समाज को सुधारने की व्यापक दृष्टि थी। कोई भी सामाजिक सुधार तब तक प्रभावी नहीं हो सकता, जब तक पारिवारिक स्थितियों को न सुधारा जाय, क्योंकि परिवार ही शुरूआती समाजीकरण की पाठशाला होता है।[9]

सुधारवादियों ने भारतीय परम्परओं को पूरी तरह नकारा नहीं था। उनका उद्देश्य आधुनिकीकरण था, ना कि पश्चिमीकरण। पश्चिम की संस्कृति का अंधानुकरण सुधारवादी आन्दोलन का हिस्सा नहीं था। इन सुधारों को अमली जामा पहनाना उस समय की परिस्थितियों में आसान नहीं था। बहुत विरोध

हुए, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में तनाव उत्पन्न हुए, एक असमंजस की स्थिति पैदा हो गयी थी। समाज दो राहे पर आकर खड़ा हो गया था, परंतु धीरे–धीरे समाज ने इसे सवीकार और आत्मसात किया।

दूसरी तरफ इन सुधारवादियों का मुकाबला औपनिवेशिक संस्कृति एवं विचार से था। भारतीय समाज पर औपनिवेशिक संस्कृति एवं विचारधारा का हमला लगातार तेज होता जा रहा था, इसलिये पारम्परिक संस्थाओं को पुर्नजीवित करने की कोशिशें की गईं। औपनिवेशिक सांस्कृतिक हमले से मुकाबले के लिये इसे लोगों की भावनाओं से जोड़ दिया गया और सांस्कृतिक अस्तित्व को लेकर भारतीयों में संशय स्थापित कर दिया गया। भाषा, धर्म, कला, दर्शन सभी इस औपनिवेशिक हमले के निशाने पर थे, इसलिये इस पर नियोजित रूप में दोतरफा जवाबी कार्रवाई की गई। एक तरफ वैकल्पिक सांस्कृतिक–विरासत पर जोर दिया गया, धर्म की रक्षा का आह्वान किया गया, प्राचीन ज्ञान परम्परा को पुर्नस्थापित करने की कोशिशें हुईं।

इन सामाजिक–धार्मिक आन्दोलनों के जरिये जो सांस्कृतिक एवं वैचारिक संघर्ष चला, उसने राष्ट्रीय चेतना को जन्म देने के साथ ही जो बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जागरूकता पैदा की, उसने लोगों को न केवल भविष्य के प्रति एक नई दृष्टि मिली, बल्कि इससे हुए राष्ट्रवाद के विकास ने लोगों में औपनिवेशिक शक्ति के विरूद्ध जूझने हेतु भी शक्ति प्रदान की, जिसकी परिणति आजादी एवं समूचे भारत की एकता में प्रतिबिम्बित होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Charles Hiemsalh, Indian Nationalism and Hindu Social reform, Princeton, 1964
2. Viswanathan, Gauri, Marks of Conquest : Literary study and Political rule in India, New York, 1989.
3. V.C. Joshi, editor, Ram Mohan and the Process of Modernization in India, Delhi, 1975.
4. Nurullah, S; and J.F. Naik. A Students History of Education in India (1800-1965), 5th edition, Calcutta, 1971.
5. Ghosh, S.C. The History of Education in Modern India (1757-1986), Hyderabad, 1995.
6. Mc Cully, B.T.; English education and the origins of Indian Nationalism, Gloucesler, 1966.
7. Bandhopadhyay, S. Caste, Widow-remarriage and the reofrm of Popular Culture in Colonial Bengal in from the seams of History : Essay on Indian Women, ed. Bharati Ray, Delhi, 1995.
8. Jaffrelot, Christophe, the Hindu rationalist movement and indian politics 1925 to 1990, London, 1996
9. Sarkar, Tanika, Nationalist Iconography : image of women in nineteenth century Bengali literature, 1987

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

सल्तनत काल से बाबर के काल तक शासक परिवार की स्त्रियाँ

विवेक कुमार अमर
अतिथि सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग,
भारत सेवक समाज महाविद्यालय, सुपौल

सारः

भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता हड़प्पा सभ्यता मातृसत्तात्मक थी। मतलब स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान मिला हुआ था। आगे बढ़ने परहम देखते हैं कि ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ रथ–दौड़ में भाग लेती थी, धार्मिक अनुष्ठान उनके बिना पूरा नहीं हो सकता था, उन्हें वर चुनने का भी अधिकार था, उन्होंने ऋग्वेद की कई ऋचाओं की भी रचना की। इनमें से अधिकतर स्त्रियाँ उच्चवर्ग की थीं। बाद के कालों में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट देखने को मिलती है जो भारत में मुस्लिम अक्रांताओं के आक्रमण के बाद बढ़ गई। सल्तनत काल से बाबर के काल तक शासक परिवार की स्त्रियों ने कई उपलब्धियाँ अर्जित की। कहने की जरूरत नहीं है कि ये शाही परिवार की स्त्रियाँ उच्च वर्ग या कुलीन वर्ग में आती थी। सबसे पहले हम शाह तुर्कान को देखें तो उसने गद्दी के पिछे से राज्य पर अपना पूरा नियंत्रण रखा तो रजिया–सुल्तान सीधे गद्दी पर बैठ गई। लेकिन हमारे पास देवल देवी या खानजाद बेगम जैसे उदाहरण भी हैं जो यह बताते हैं कि किस तरह शासकों ने अपने परिवार की लड़कियों का अपनी गद्दी बचाने के लिए उपयोग किया। बिना अपनी इच्छा के वो अपने भाई/पिता के सत्ता को बचाने हेतू वो किसी से भी ब्याही गयी। ये विवाह नाममात्र के समझौते होते थे जो बार–बार तोड़े जाते थे। अधिकतर शासक स्त्रियों के लिए लालायित रहते थे। बेचारी ये शासक परिवार की स्त्रियाँ कई सारे आजादी पाते हुए भी ताज बचाने हेतु अपने देह के सौदे से अक्सर कुंठित जीवन ही व्यतीत की।

विशेष शब्दः

शाह तुर्कान, रजिया–सुल्तान, कमलादेवी, झट्यपाली, देवल देवी, खानजाद बेगम

1. सल्तनतकाल से बाबर के कालतक शासक–परिवार की स्त्रियाँ

हमें किसी भी काल में अगर स्त्री की स्थिति जाननी है तो हमें कुछ प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने आवश्यक होते हैं कि उस समय वंश मातृ या पितृ किस आधार पर चलता था? समाज में आर्थिक उत्पादन में स्त्रियों का योगदान कितना था? लाभांश पर खुद स्त्री का नियंत्रण था या पति का। क्या उन्हें अपने जीवन संबंधी फैसले लेने का अधिकार थे? कालकोईभीहो शासकपरिवार की स्त्रियाँ हमेशा उच्च वर्ग में ही आती हैं। प्राचीन काल से ही हम जब उच्च वर्ग की स्त्रियों का इतिहास पढ़ते हैं तब यह पाते हैं कि उन्हें सामान्य वर्ग की स्त्रियों से बहुत ही ज्यादा अधिकार प्राप्त थे। चाहे वह अधिकार शिक्षा प्राप्त करने का हो या नृत्य सीखने का या अन्य किसी प्रकार की आजादी।

ऋग्वैदिक काल में कुलीन वर्ग की स्त्रियों ने ऋग्वेद की 12–15 ऋचाओं की रचना की।[1] उत्तर–वैदिक काल से स्त्रियों की स्थिति में गिरावट शुरू हुई और भारत में मुस्लिम आक्रमण के बाद पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियाँ समाज में फैल गयी। मध्यकालीन हिंदू स्त्रियों की बात करें तो गृह स्वामिनी समझा जाता था और उन्हें अर्द्धांगिनी भी समझा जाता था पर इन सबके बावजूद भी उनकी स्वतंत्रता पुरूषों के हाथ में थी।[2]

शासक परिवार की स्त्रियों में कई उदाहरण हैं जिन्होंने राजगद्दी तक संभाली या उनके नियंत्रण में शासन चला पर इन से ज्यादा उदाहरण उन स्त्रियों का भी है जिनके अभिवावक शासक ने

गद्दी पर बने रहने के लिये उनका इस्तेमाल किया। अगर पड़ोसी मजबूत राज्य के आक्रमण से बचना है तो अपनी बहन/बेटी का विवाह उनसे करा दें। दो चिरप्रतिद्वंदी दुश्मन भी आपस में दुश्मनी समाप्त करने के लिये बिना अपने घर की स्त्रियों की इच्छा जाने विवाह संबंधों द्वारा दुश्मनी समाप्त करते थे। अधिकत्तर मामलों में विवाह नाममात्र का समझौता होता था जो जब मन तब तोड़ा जाता था। इन्हीं शासक परिवार की स्त्रियों के देह का सौदा करके राजगद्दियाँ बचाई जाती थी। आईये हम सल्तनत काल से बाबर के काल तक की शाही परिवार की स्त्रियों की स्थिति को उस काल की शाही परिवार के स्त्रियों के उदाहरण से जानतें हैं।

बिना गद्दी पर बैठे शासन की बागडोर हाथ में लेने वाली प्रथम सल्तनत कालीन महिला शाह तुर्कान थी। यह पूर्व में एक दासी रह चुकी थी।[3] इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद जब उसका पुत्र रूकनुद्दीन सुल्तान बना पर विलासपूर्ण जीवन जीने पर ध्यान देने लगा तो शाह तुर्कान ने राज्य संभाला। उसने राजकीय आज्ञा तक देना प्रारंभ कर दिया।[4] उसने उन सारे लोगों से बदला लेना आरंभ कर दिया जिसने उसे पहले कभी नीचा दिखाया था।[5] खैर इन्हीं परिस्थितियों मे जब सुल्तान अलोकप्रिय था व उसकी माँ निजी प्रतिशोध में व्यस्त थी इसका फायदा उठा के रजिया गद्दी संभाली।

रजिया राजपद की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु अपने भरोसेमंद सरदारों को विभिन्न पद दिये। उसने पहली बार स्त्री के संबंध में इस्लामी परंपराओं को तोड़ा व अपने राज्य की शक्ति को सरदारों व सूबेदारों में बाँटने के बजाय खुद के हाथों यानी सुल्तान के हाथों केंद्रित करना चाहा।[6] रजिया को लाहौर के हकीम कबीर खान, तब रहिंदा के हकीम अल्तूनिया का विद्रोह झेलना पड़ा। इस सबका उसने डटकर सामना करने की कोशिश की फिर भी दिल्ली सल्तनत व उसके अमीर एक महिला को सुल्तान के रूप में झेल नहीं पाये। परिणामस्वरूप उसकी हत्या हो गई।

आगे बढ़ते हूए हम कमलादेवी की ओर चलते हैं। गुजरात के शासक कर्ण की पत्नी जो की अत्यंत रूपवती स्त्री थी। 1299 ई0 में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापतियों ने गुजरात पर आक्रमण कर कमलादेवी को उठा लिया। अलाउद्दीन खिलजी ने उससे पुनः विवाह कर लिया। बात यहीं समाप्त नहीं हुई। कमलादेवी ने अपनी दूसरी पुत्री को देखना चाहती थी।

फरिश्ता के अनुसार कमलादेवी अपनी द्वितीय पुत्री देवल देवी को देखना चाहती थी। देवगिरी के शासक रामचंद्रदेव के निधन (1312 ई0) के बाद उसका पुत्र सिंघनदेव वहाँ का शासक बना। उसका विवाह देवल देवी से होना था। लेकिन अलाउद्दीन के आज्ञा पर सेनापति अलप खाँ ने उसे पकड़कर अलाउद्दीन के सामने ला दिया। अलाउद्दीन ने उसका विवाह अपने पुत्र खिज्र खाँ से करवा दिया।[7] अमीर खुसरों ने खिज्र खाँ व देवलरानी के प्रेम को वर्णित करते हुए 'आशिका' नामक कृति लिख डाली।

अलाउद्दीन खिलजी के मृत्यु होने पर उसका अल्पवयस्क छः वर्षीय पुत्र शिहाबुद्दीन उमर शासक बना जिसका संरक्षक मलिक काफूर बना। इसने खिज्र खाँ को अंधा करवा दिया। लेकिन काफूर की हत्या मुबारक खिलजी ने कर दी। 1320 ई0 में मुबारक की भी हत्या खुसरो खाँ ने कर दी। खुसरो ने खिज्र खाँ की विधवा देवलदेवी से विवाह कर लिया। लेकिन जल्द ही खुसरो की भी हत्या हो गई। यानी देवलदेवी की जिंदगी से कई शासक खेलते रहें।

जब अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरी के यादव शासक रामचंद्र को हराकर दिल्ली–दरबार सम्मानपूर्वक लाया वह खातिरदारी की तो उसने मित्रता प्रगाढ़ करने के लिए अपनी पुत्री झट्यपाली का विवाह अलाउद्दीन से कर दिया। लेकिन जब अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई तो गुलाम हिजरे मलिक काफूर ने बेचारी झट्यपाली से विवाह कर लिया।[8]

इसी तरह बाबर सर–ए–पुल के युद्ध में उजबेक शैबानी खाँ से बुरी तरह हारने के बाद उससे सुलह करने का निश्चय किया और संधि के एक शर्त के रूप में अपनी बहन खानजाद बेगम उससे ब्याह दी। इधर मर्व के निकट हुई लड़ाई में शाह इस्माईल जीता व शैबानी खाँ मारा गया। लेकिन इससे पहले ही वह बाबर की बहन को छोड़ चुका था। जिसे पुनः मेंहदी ख्वाजा की बेगम बनना पड़ा था। चूँकि शैबानी खाँ के राज्य पर ईरानियों के कब्जे से बाबर की बहन संकट में फंस गई थी। जिसे शाह इस्माईल ने बाईज्जत बाबर को लौटा दिया।

स्पष्ट है कि शाही परिवार की स्त्रियों ने राजगद्दी तक संभालकर अपनी स्वतंत्रता की शानदार मिशाल पेश की। शाह तुर्कान का गद्दी के पीछे बैठकर राज्य चलाते हुए देखना सुखद था। रजिया का सीधे सुल्तान बन जाना बड़ी बात थी। लेकिन कोई पितृसत्तात्मक समाज कब तक स्त्रियों को अपने पर शासन करते हुए देख सकता है? रजिया की हत्या हो गई। मिन्हाज सिराज रजिया के ढेर सारे गुणों की प्रशंसा करते हैं पर यह भी बोलते हैं कि इन सारे गुणों का क्या फायदा जब वो स्त्री के रूप में पैदा हुई? इसी तरह हमारे पास कमलादेवी, देवलदेवी, खानजाद बेगम जैसी स्त्रियों के भी उदाहरण हैं जो शासक परिवार की स्त्रियाँ होते हुए भी अपने शरीर को बार–बार अलग–अलग पुरूषों को सौंपने को मजबूर हुईं। जिस तरह शासकवर्ग ने अपने घर की स्त्रियों के देह को सत्ता में बने रहने के लिए इस्तेमाल किया वह उन पर एक काला धब्बा है। स्त्रियों के शरीर पर खुद स्त्री का अधिकार होना चाहिए उन्हें सभी निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो तभी आदर्श समाज की कल्पना की जा सकती है।

संदर्भः

1. उपिंदर सिंह, प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, हिंदी अनुवाद, हितेंद्र अनुपम, उत्तर–प्रदेश, 2018, पृ0 201
2. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार, 1974, पृ0 141
3. सतीशचंद्र, मध्यकालीन भारत (1206–1526), नयी दिल्ली, पृ0 38
4. एल0पी0 शर्मा, दिल्ली सल्तनत (700–1526), आगरा, 1975, पृ0 85–84
5. सतीशचंद्र, पूर्वोक्त, पृ0 38
6. मिनहाज–उस–सिराज, तबकात–ए–नासिरी, अंग्रे0 अनु0 रेवटी, दिल्ली, 1963, पृ 643
7. हरीशचंद्रवर्मा, मध्यकालीन भारत (750–1540), दिल्ली, 2015, पृ0–482
8. सतीशचंद्र, पूर्वोक्त, पृ0 87

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

विवाह के विविध आधार एवं स्त्री जीवन

डॉ0 भावना सिंह शाक्य
असिस्टेंट प्रोफेसर
राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे

किसी भी सामाजिक या कानूनी संस्था के अपने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियम–कायदे होते हैं। विवाह संस्था के भी अप्रत्यक्ष नियम और कानून है। जिनका उल्लंघन करने पर समाज व्यक्ति को अपनी तरह से दण्डित करता है। इन नियमों को बनाने के लिए कुछ आधार भी होते हैं। जिनसे संस्था संचालित होती है। जैसे विवाह संस्था में कब कैसे और किससे विवाह होगा इसके पीछे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधार करम करते हैं। कुछ आधारों पर विस्तार से चर्चा हम करेंगे।

(1) विवाह का धर्म, जाति और संस्कृति से संबंध

विवाह मानव समाज की सबसे मौलिक एवं प्राचीन सामाजिक संस्थाओं में से एक है। प्राचीन काल से यह समाज में व्यवस्था एवं अनुशासन बनाये रखने का प्रमुख माध्यम रही है। इसके बिना समाज मुक्त यौन संबंधों की अराजकता में भटक गया होता। इसका स्वरूप, प्रकृति तथा प्रक्रियाएँ अलग-अलग समाजों में एक जैसी नहीं होतीं। इसके बावजूद इस संस्था के कई सार्वभौमिक सामान्य तत्व एवं प्रकार्य है। एडवर्ड वैस्टरमार्क के अनुसार, "विवाह एक या अधिक पुरुष का एक या अधिक स्त्री के साथ संबंध है जिसे प्रथा या कानून की मान्यता प्राप्त होती है और जिसमें शामिल लोगों तथा इस संबंध से पैदा हुए बच्चों को कुछ अधिकार तथा कर्तव्य प्राप्त होते हैं।"[1] सार रूप में विवाह का तात्पर्य नियमों तथा पतियों के समुच्चय से है जो यह निर्धारित करता है कि किस व्यक्ति का किससे विवाह होगा, किस विधि से विवाह होगा, तथा किस परिस्थिति में विवाह होगा। विवाह के पश्चात् विवाह संबंध में बंधने वाले व्यक्तियों के अधिकार और कर्तव्य क्या होंगे तथा आवश्यकता पड़ने पर संबंध विच्छेद कैसे होगा।

विवाह की इस प्रक्रिया में स्त्री और पुरुष दोनों की धर्म, जाति और वर्ग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है माना जाता है। 'आदर्श विवाह' वही होता है जिसमें दोनों की जाति, धर्म और वर्ग समान हो। लेकिन गोत्र अलग-अलग हो। भारत में माता व पिता दोनों के कुल से गोत्र संबंधी विधि का निर्धारण होता है। दोनों कुल के पूर्वजों के अलग-अलग नाम होते हैं। विवाह के लिए पिता के कुल में सात पीढ़ी व माता के कुल में पाँच पीढ़ी के मध्य विवाह वर्जित है। इस गोत्र के इतिहास के विषय में एंगेल्स की टिप्पणी है, "जिन कबीलों में इस कदम के द्वारा कुटुम्ब में अगम्यागमन पर रोक लग गयी थी; उन्होंने अनिवार्यतः उन कबीलों के मुकाबले में कहीं जल्दी और अधिक पूर्ण विकास किया। जिनमें भाई -बहनों के बीच अन्तर्विवाह एक नियम और कर्तव्य था। और इस कदम का कितना जबर्दस्त असर पड़ा, यह गोत्र की संस्थापना से सिद्ध होता है। जो सीधे-सीधे इसी कदम से पैदा हुआ और उसके कहीं आगे निकल गया। गोत्र बर्बर युग में संसार के यदि सभी नहीं तो अधिकतर लोगों के सामाजिक संगठन का आधार था और यूनान तथा रोम में तो हम इससे सीधे सभ्यता के युग मे प्रवेश कर जाते है।"[2]

कुछ दिनों पहले तक गोत्र के अलावा कुलीन-प्रथा भी निरंकुश विवाह में बाधक थी। यह प्रथा बंगाल एवं मिथिला में विशेष रूप से प्रचलित थी। कहीं-कहीं आदिवासी समाज में भी कुलीन-प्रथा देखने को मिलती है। इस विधि के अनुसार बर्हिविवाह जाति-समूहों की मर्यादा के अनुसार निर्धारित होता है। इस प्रथा के अनुसार उच्चतर जाति समूह की लड़की का विवाह कुलीन जाति-समूह में ही होना चाहिए। अपने से निम्न मर्यादावाले जाति-समूह में ऐसा करने पर उसे पतित होना पड़ता था। इसीलिए जिस समाज में कुलीन प्रथा प्रचलित होती है वहाँ कन्या के लिए वर मिलना अत्यन्त मुश्किल होता है। प्रायः कुलीन कन्या का विवाह वृद्धावस्था तक नहीं होता था। इसी कारण से किसी-किसी स्थान पर जहाँ कुलीन प्रथा का प्रचलन था वहाँ कन्या शिशु की हत्या कर दी जाती थी। इसीलिए कहीं-कहीं पर जैसे बंगाल में कुलीन-प्रथा से निपटने के लिए कुलीन ब्राह्मण अनगिनत विवाह करते थे। यहाँ तक सुनने में आता है कि कुलीन, मर्यादा की रक्षा के लिए लड़कियों का विवाह कुलीन वृद्ध गंगा यात्रियों (गंगा यात्री उसे कहते है जिन्हें मौत से पहले गंगा तट पर ले जाया जाता है ताकि मृत्यु गंगा -तट पर ही हो) तक से, कर दिया जाता था।

साधारणतः हिन्दी समाज में कन्या की आयु वर की तुलना में कम होती है परन्तु पश्चिम और दक्षिण भारत में हमेशा इस नियम का पालन नहीं होता है– क्योंकि वहाँ 'वाँछनीय विवाह' का प्रचलन है और 'वाँछनीय' कन्या प्रायः वर से उम्र में बड़ी होती है। ऐसे मौके पर उम्र के अन्तर के कारण आये असामंजस्य के दोष को दूर करने के लिए वर एवं कन्या को आयु में जितने साल का फर्क होता है कन्या की कमर में उतनी संख्या में नारियल बांध दिये जाते हैं।

अब हिन्दू धर्म के प्राचीन ग्रंथों की तरफ यदि नजर डालें तो हम पाते हैं कि ब्राह्मण कानून निर्माताओं का अन्तर्विवाह के प्रति इतना उत्साह होते हुए भी उन्होंने अपने वर्ण से बाहर के विवाह को उसके अनुलोम तथा प्रतिलोम

नियमों में स्थान दिया है। इस नियम के अनुसार कोई भी ब्राह्मण अपने वर्ण तथा अन्य तीनों निम्न वर्णों की स्त्री से विवाह कर सकता है। कोई भी क्षत्रिय अपने वर्ण तथा अन्य दोनों निम्न वर्णो की स्त्री से विवाह कर सकता है। कोई भी वैश्य दो पत्नियाँ रख सकता है और शूद्र केवल अपने वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है। निम्न वर्ण के पुरुष का उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह प्रतिलोम कहलाता था और उसकी घोर निन्दा होती थी। परन्तु जहाँ किसी शूद्र वर्ण के पुरुष का विवाह किसी ब्राह्मण स्त्री से हो जाता तो उसकी अत्यन्त ही घोर निन्दा होती थी। इस प्रवृत्ति से यह कारण स्पष्ट हो जाता है कि क्यों व्यभिचार इस प्रकार निन्दित किये जाने के स्थान पर तभी निन्दित होता था कि जब अपराधी शूद्र वर्ण का पुरुष होता। शूद्र अपराधी को सार्वजनिक स्थान में कुत्तों से नुचबाने अथवा तपे हुए लोहे की धार पर जलाने की धमकी दी जाती थी।

अनुलोम ओर प्रतिलोम विवाहों का वास्तविक महत्व बतलाने के लिए हमें अब यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि ब्राह्मणों का दृष्टिकोण विभिन्न वर्ण की स्त्रियों के प्रति कैसा था। मनु कहते हैं कि द्विज का पहिला विवाह उसके वर्ण की स्त्री से होना चाहिए। उन लोगों के लिए, जो पुनःविवाह करने की इच्छा रखते हो, निम्न वर्णों की स्त्रियों को मान्यता दी जा सकती है। वे द्विज लोग जो अपनी गलती से निम्न वर्ण की स्त्रियों से विवाह करते हैं अपने परिवार तथा संतान को शूद्र की स्थिति में गिरा देते हैं। उस व्यक्ति के लिए कोई प्रायश्चित नहीं सोचा जा सकता। जो शूद्रा के होठों को चूसता है, उसके श्वास से अशुद्ध हो जाता है तथा उससे पुत्र उत्पन्न करता है। जो शूद्रा पत्नी की सहायता से देवता, पितर तथा अतिथियों को बलि प्रदान करता है, उसे देवता, पितर, अतिथि ग्रहण नहीं करते। शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र पार्षव कहलाता है क्योंकि जीवित होते हुए भी वह लाश के समान है। शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र को पैतृक संपत्ति में दसवाँ भाग भी प्राप्त होता है जबकि इसके पिता के दूसरे वर्ण की स्त्रियों से कोई पुत्र भी न हो और बाकी भाग अन्य पुरुष उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो जाता है। और कभी-कभी उसका वह भाग भी रोक दिया जाता है। "शूद्र पत्नी से उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के पुत्र को उत्तराधिकार में कुछ भी भाग नहीं मिलता है।"[3] "जो कुछ उसका पिता उसे दे देता है, वही उसकी संपत्ति होती है।"[4] मनु से पूर्व गौतम ने लिखा कि "शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र आज्ञाकारी होने पर भी अपने मृत ब्राह्मण पिता की संपत्ति से केवल भरण-पोषण प्राप्त करता है चाहे उसे कोई भी अन्य पुत्र न हो।"[5] याज्ञवल्क्य द्विज के लिए शूद्र पत्नी की व्यवस्था ही नहीं करते है और तदनुसार वह ब्राह्मण के लिए तीन पत्नियाँ, क्षत्रिय के लिए दो तथा वैश्य के लिए एक पत्नी होना उचित मानते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए वह अनुलोम विवाह में क्षत्रिय अथवा वैश्य पत्नी द्वारा संस्कार किये जाने की व्यवस्था करते हैं तथा पार्षव पुत्र को द्वितीय श्रेणी के पुत्रों में भी स्थान नहीं प्रदान करते हैं। मनु ने जिस ढंग से शूद्र पत्नी के संबंधों तथा उसके साथ विवाह से उत्पन्न पुत्र के अधिकारों का वर्णन किया है इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि शूद्र स्त्री के साथ विवाह बिल्कुल अप्रचलित तो नहीं थे फिर भी उन्हें इतनी नीची दृष्टि से देखा जाता था कि मनु के बाद याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार के विवाह का बिल्कुल ही वर्णन नहीं किया।

शूद्र पत्नी की कामना पत्नीत्व के गुणों की अपेक्षा काम-तृप्ति के लिए अधिक की जाती थी, दूसरे वर्णों की स्त्रियों को इतना नहीं गिराया गया, क्योंकि संस्कृति तथा प्रजाति की दृष्टि से बाकी तीनों वर्णों का शूद्रों से अलग अपना एक सजातीय समूह था। विभिन्न वर्णों की पत्नियों में भेदभाव स्पष्ट रूप से बतलाया गया तथा उनके अधिकारों के संबंध में कुछ अयोग्यताएँ तथा विवाह के कृत्यों में अन्तर दिखलाया गया है। विवाह में हस्तग्रहण करने का कृत्य केवल अपने ही वर्ण की स्त्री के साथ बतलाया गया है। दूसरे वर्ण की वधू पति का हस्तग्रहण नहीं करती किन्तु क्षत्रिय पत्नी उसके वाण को, वैश्य पत्नी उसके अंकुश को तथा शूद्र स्त्री उसके वस्त्र के छोर को पकड़ती।

मनु ने विभिन्न वर्णों की पत्नियों के प्रति आचरण के प्रतिमान की रूपरेखा का वर्णन किया है, "यदि द्विज लोग अपने वर्ण तथा अन्य वर्ण की स्त्रियों से विवाह करें तो इन पत्नियों की प्रतिष्ठा तथा निवास उनके वर्ण क्रमानुसार निश्चित होने चाहिए। विभिन्न पत्नियों में केवल समान वर्ण की (न कि भिन्न वर्ण की) पत्नी की व्यक्तिगत रूप से पति की सेवा में उपस्थित होगी तथा उसे दैनिक धार्मिक कृत्यों के सम्पादन में सहायता देगी। जबकि उसकी समान वर्ग की पत्नी जीवित हो तो वह ब्राह्मण होते हुए भी प्राचीनों द्वारा चांडाल की भाँति निन्दनीय घोषित किया जाता है।"[6]

हिन्दुओं के सामाजिक इतिहास के इस युग में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह के नियम, विवाह के प्रतिमान की अपेक्षा हिन्दू समाज की जातीय संरचना के लिए विशेष महत्व रखते हैं। विवाह के प्रतिमान के लिए तो इनका महत्व इसी बात में है कि सामाजिक श्रेणी-विभाजन भारतवर्ष में भविष्य में होने वाले अनुलोम विवाहों के लिए आधार प्रदान करती है तथा अनुलोम सिद्धान्त ऐसे विवाहों को दैविक मान्यता प्रदान करता है।

हिन्दू सामाजिक आदर्शों के अनुसार स्त्रियाँ पहले से ही निम्न स्तर पर थी। अनुलोम विवाह ने उनकी स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला और अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं को उत्पन्न कर दिया। अनुलोम विवाह की प्रथा वाली इन जातियों में पुरुष का मुख्य ध्येय स्त्री तथा उसके परिवार वालों का आर्थिक शोषण करना था। दुर्व्यवहार, अपमान एवं अपशब्द तो उसके स्वाभाविक परिणाम होते थे। प्रत्येक माता-पिता अपनी कन्या का ऊँचे से ऊँचे सामाजिक समुदाय में विवाह करना चाहता था ताकि उसकी प्रतिष्ठा बढ़े और इसलिए वह इन बुराइयों को सहन कर लेता था। जब एक ही व्यक्ति को विवाह के लिए अनेक कन्याएँ प्रस्तुत की जातीं तो स्वभावतः वह अपनी शर्तो पर बलपूर्वक आग्रह करता और उसका मूल्य बढ़ जाता। वर मूल्य का प्रभाव पति -गृह में पत्नी पर भी पड़ता है। चूँकि प्रत्येक विवाह में ठोस रकम प्राप्त होती है, इसलिए स्वभावतः आर्थिक उपयोगिता के विचार से दूसरे तथा तीसरे विवाह का प्रलोभन उत्पन्न होता है।

सामान्यतः अन्तर्जातीय विवाह का अर्थ उस विवाह से लिया जाता है जो प्राचीन उपजातियों द्वारा बने हुए विशाल उपसमूह में होता है। इसलिए यह अनुमान निकालना गलत नहीं होगा कि अपनी संतान का जाति के बाहर विवाह करने की इच्छा करने वाले लोगों का ध्यान अधिकतर जाति के विशाल समूह से होता है न कि उस विवाह से कि जिसमें जाति का कुछ विचार ही न किया जाता हो। इस प्रकार के विवाह बढ़ते जा रहे हैं। जाति की सीमा के बाहर तो कम ही विवाह होते हैं, किन्तु सामान्यतः ऐसे विवाहों से संबंधित व्यक्तियों का रुख उनके प्रति विरोध, असहनशीलता अथवा उपेक्षा का होता है। वास्तव में यह एक नकारात्मक स्थिति है। इस प्रकार के विवाहों के प्रति सुनिश्चित प्रोत्साहन की अभी कमी ही है।

मुस्लिम विवाह

हिन्दू समाज की तुलना में मुस्लिम समाज के विवाह में रूकावटें बहुत कम हैं, पर पहला विवाह अपने सम्प्रदाय में ही कुवाँरी कन्या से होना चाहिए। इसके बाद के विवाह में कोई रोक-टोक नहीं है। हिन्दुओं की तरह मुसलमानों में विवाह के दौरान गोत्र रूकावट का कारण नहीं बनता। इसलिए सम्प्रदाय के बाहर विवाह का नियम नहीं है। अपने सम्प्रदाय में कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से विवाह कर सकता है। नजदीकी रिश्तेदार से विवाह नहीं होता है पर विवाह के लिए योग्य चचेरे, ताऊ के बेटे, मौसेरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहनों में विवाह का प्रचलन है। इस प्रकार के भाई-बहन रहने से उसी का पहला अधिकार होता है, अगर ऐसा न हो तो दूसरे परिवार में विवाह होता है। इस प्रकार के विवाह के समर्थन में तर्क यह है कि इससे खून की शुद्धता बनी रहती है और संपत्ति का बँटवारा भी नहीं होता पर कहीं कहीं भाई-बहन में विवाह का विरोध होते हुए भी देखा जाता है।

हिन्दुओं की तरह मुस्लिम समाज में भी विवाह सार्वजनिक होते हैं। कुँवारा रहना किसी को पसंद नहीं और सभी को विवाह करना पड़ता है। मुसलमानों में 15 साल से अधिक उम्र का कोई भी पुरुष विवाह कर सकता है। अभिभावक से अनुमति लेकर 15 साल से कम उम्र के लड़के-लड़की भी विवाह कर सकते हैं। इस समाज में विवाह के लिए दूल्हा-दूल्हन दोनों की सहमति जरूरी होती है और उनकी सहमति का स्पष्ट रूप से पता चलना चाहिए। दो पुरुष या एक पुरुष और एक स्त्री के सामने विवाह प्रस्ताव और स्वीकृति एक ही समय पर करना पड़ता है। छल या बल प्रयोग के द्वारा विवाह वैध नहीं माना जाता। मुसलमानों में स्त्री मुसलमान के अलावा और किसी से विवाह नहीं कर सकती पर पुरुष मुसलमान के अलावा 'किताबिया' (ईसाई या यहूदी) स्त्री से भी विवाह कर सकते हैं। मुस्लिम समाज में एक से अधिक विवाह करने पर कोई रोक नहीं है। चार से अधिक विवाह गैर-कानूनी समझा जाता है।

मुस्लिम समाज में बहुपत्नीत्व विवाह प्रचलित में था। राबर्टसन स्मिथ के अनुसार, "प्राचीन अरब विवाह के तीन लक्षण थे। स्त्री अपने पति के चुनाव में स्वतंत्र थी। वह अपने डेरे अथवा तम्बू में उसे बुलाती और जब उसकी इच्छा होती तभी उसे निकाल बाहर करती। जो संतान उत्पन्न होती वे स्त्री के बंधु-बाधव के होते और उसी के संरक्षण में बड़े होते थे। इस विवाह को वे 'बीना' विवाह के नाम से पुकारते हैं। इसका स्थान बाद में 'बाल' अर्थात आधिपत्य के विवाह ने ले लिया, जिसमें स्त्री अपने पति के पास रहने को आती और संतान पति के गोत्र की होती। स्त्री ने पति को जब चाहे तब छोड़ देने की मूल स्वतंत्रता को खो दिया। इसके विपरीत विवाह-विच्छेद पति का पूर्ण अधिकार हो गया। किन्तु विवाह का यह नवीनतम रूप प्राचीन प्रथा को पूरी तौर पर नहीं मिटा सका जो मोहम्मद के समय 'मूता' विवाह के रूप में चलती रही। यह विवाह दोनों पक्षों की पारस्परिक स्वीकृति से होता था तथा इसमें स्त्री के बंधुओं का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता था। इस विवाह का अनुबंध एक निश्चित अवधि के लिए होता था और उस अवधि में पत्नी अपने पति से विवाह विच्छेद नहीं कर सकती थी। स्त्री की मौलिक स्वतंत्रता नहीं छीनी गयी, यद्यपि उसे सीमित अवश्य कर दिया गया और उसके बंधु-बाधव उसकी संतान पर स्वामित्य रखते रहे।"[7]

विवाह की स्वीकृति के मामले में, पिता का प्राचीन अधिकार भी अप्रत्यक्ष रूप से अब भी विद्यमान है। इससे स्त्री के चुनाव की स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है। 'वली' अर्थात संरक्षक का यह अधिकार दो प्रकार से उपयोग में आता है। संरक्षक का यह देखने का मुख्य कर्तव्य होता है कि 'दोनों पक्षों में समानता के सिद्धांत का निर्वाह हो रहा है या नहीं तथा वह स्त्री जिस पर उसका आधिपत्य है अनुपयुक्त अथवा अवांछनीय व्यक्ति को तो अपना साथी नहीं बना लेती है कि जिससे उसकी जनजाति का अपमान हों।' इसके अतिरिक्त यह संरक्षक का ही कार्य होता है कि वह 'महर' के स्वीकृत अंश को चुका देने पर वधू का नियंत्रण उसके पति के हाथ में सौंपे।

पिता की भूमिका के पीछे जो कारण दिया गया है वह स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण की ही पुष्टि करता है। मालिक तथा शकी के अनुसार, "विवाह का प्रस्तावित लक्ष्य उन लाभों को प्राप्त करना है जो इसके द्वारा उत्पन्न होते हैं जैसे संतानोत्पादन आदि और यदि इस अनुबंध का परिणाम किसी भी प्रकार से स्त्रियों पर छोड़ दिया गया तो उसका लक्ष्य सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे थोड़ी बुद्धि वाली तथा चापलूसी एवं छल कपट से प्रभावित होने वाली है।"[8] हनीफी तथा शफ़ी के अनुसार इस समानता का संबंध जन्म, धंधे आदि से है और मलिकी के अनुसार आचरण तथा निष्ठा -भक्ति से है। यह समानता केवल पति के संबंध में होनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि पत्नी भी पति के समान हो, क्योंकि पुरुष अपने से निम्न स्त्रियों के साथ सहवास करने से नहीं गिरते। पुरुषों को तो वह छूट दी गयी कि वह किसी 'कितबिया' से विवाह कर ले किन्तु मुस्लिम स्त्री का किसी गैर मुस्लिम से विवाह तो अवैध ही था। वास्तव में पति के

दूसरे धर्म में, प्रवेश कर लेने पर विवाह अपने आप ही समाप्त हो जाता था और मुस्लिम स्त्री को दूसरे मुस्लिम से विवाह करना ही पड़ता है।

इस्लाम में पत्नियों की संख्या चार तक सीमित करके स्त्री-बाल-हत्या की निन्दा करके, उत्तराधिकार में स्त्रियों का भाग निर्धारित करके, 'मेहर' को वधू को दी जाने वाली भेंट धोषित करके तथा विवाह और विवाह विच्छेद संबंधी अरबी कानून को स्त्रियों के अनुकूल बनाकर स्त्रियों की स्थिति में सुधार किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इसने स्त्री और पुरुषों के मध्य समानता का विचार किया, यद्यपि अमीर अली हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि "पैगम्बर ने कानूनी अधिकारों तथा कार्यों में स्त्रियों को पुरुषों के समान आधार पर रखा।" वहीं स्त्री और पुरुष के मध्य असमानता हमें प्रत्येक कदम पर दिखाई देती है। जैसे "पुरुष उनसे ऊपर के पद पर है।" "पुरुष स्त्रियों से उच्चतर इस कारण है कि ईश्वर ने एक को दूसरे की अपेक्षा विशेष अधिमान्यता दी।" "सदाचारी स्त्रियाँ अपने पतियों की अनुपस्थिति में आज्ञाकारी तथा सावधान रहती है क्योंकि ईश्वर उन्हें पुरुषों के संभाल तथा रक्षण में रखकर उनको बनाये रखता है। परन्तु उन स्त्रियों की भर्त्सना करो जिनकी दुःशीलता के कारण तुम भय करने लगे हो, उन को अलग सोने के कमरों में हटा दो, और उनको दण्ड दो, किन्तु यदि वे तुम्हारी आज्ञा पालक हों तो उनके विरूद्ध ऐसा अवसर मत ढूँढों।"[9]

मुस्लिम विवाह के अनुबंधों पर दो साक्षियों के (प्रत्येक पक्ष की ओर से एक) हस्ताक्षरों की आवश्यकता होती है। उनमें से प्रत्येक वयस्क और स्वतंत्र मुस्लिम तथा स्वस्थ मस्तिष्क वाला होना चाहिए। "यदि ऐसे दो पुरुष अप्राप्त हों तो दो मुस्लिम स्त्रियाँ एक पुरुष का स्थान ले सकती है, फिर भी साक्षियों में कम से कम एक तो पुरुष होना ही चाहिए।"[10] विवाह के कानून में, पुरुष के लिए अपने चचेरी बहन से विवाह करना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है, जबकि स्त्री के लिए अपने चचेरे भाई से विवाह करना अनिवार्य है। सर विलियम म्योर ने लिखा कि, "मोहम्मद ने जो स्थिति स्त्री के लिए निर्धारित की, वह एक निम्न जाति के जीव की है। जिसके भाग्य में केवल अपने स्वामी की सेवा करना लिखा है और जो बिना कोई कारण बतलाए तथा बिना एक घण्टे पूर्व भी सूचित किये हटाया जा सकता है। जबकि उसके पति को विवाह विच्छेद का सम्पूर्ण तथा आपत्तिहीन अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार का कोई भी अधिकार पत्नी के लिए सुरक्षित नहीं है। यदि उसके स्वामी को ऐसी ही इच्छा हो तो चाहे वह अनिच्छुक रहे, उसकी संभाल भी न हो अथवा उसकी पदच्युति भी कर दी जावे। फिर भी वह अपने स्वामी की सदा की दासी की भाँति चलती रहेगी।"[11]

आज की बदलती हुई परिस्थितियों में विवाह सार्वजनिक मसला न होकर व्यक्तिगत मामला हो गया है। यद्यपि यह एक धार्मिक प्रथा थी जिसे लगभग सभी धर्मों के लोग मानने के लिए बाध्य थे पर आज लोगों पर उतना दबाव नहीं है। कुछ प्रगतिशील माँ–बाप, बेटे को कन्या पंसद करने का अधिकार दे रहे है। लड़कियाँ भी पति चयन कर रही है देश या जाति के बिना ही। समय के साथ संबंधों और संस्कारों में भी परिवर्तन हुआ है। लेकिन ये परिवर्तन इतनी मात्रा में नहीं हो रहे है कि हम कह सके कि आज विवाह पर धर्म, जाति और संस्कृति का प्रभाव नहीं रहा है। एक बड़ा भाग आज भी इन्हीं बंधनों के अंदर ही विवाह करता है और निभाता भी है। आज की विवाह संबंध हमारी परंपरा में 'सात जन्मों का रिश्ता' माना जाता है।

(2) विवाह का आर्थिक पक्ष

विवाह को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक आर्थिक स्थिति है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, संपत्ति पर स्त्री की अधिकारहीनता, आर्थिक परनिर्भरता स्त्री जीवन का उद्देश्य विवाह तक सीमित करते हैं। स्त्रियों के लिए विवाह स्वयंसिद्ध 'कैरियर' हो जाता है। आर्थिक अधिकार के अभाव में उसे चयन का अधिकार भी नहीं होता। स्त्री के चयन के अधिकार को भारतीय समाज में व्याप्त दहेज प्रथा भी सीमित करती है। माता-पिता की क्रय क्षमता पर वर की योग्यता निर्धारित होती है। इस क्रय के बावजूद दामाद पर पुत्री या उसके पिता का अधिकार नहीं होता। न ही मात्र अधिक दहेज पुत्री को ससुराल में सम्मानजनक स्थिति दिलाता है। दहेज लगभग एक रिश्वत ही होती है जो वर पक्ष को अपनी बेटी को घर में रखने के तौर पर दिया जाता है।

यद्यपि स्त्री को कोई आर्थिक अधिकार नहीं मिला हुआ है, इसके बावजूद भी वे कौन से कारण हैं जो विवाह के संदर्भ में अर्थ को जोड़ देते हैं। पश्चिमी विद्वान ईस्टर बोसरूप ने अपनी पुस्तक "वीमेन्स रोल इन इकॉनॉमिक डेवलेपमेंट" में इन्हीं कारणों की तरफ इशारा किया है। वे कहती हैं– "जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ हल से खेती की जाने लगी। हल चलाना 'कृषि का मुख्य काम' पुरुष करते थे। इससे कृषि में पुरुषों की भूमिका बढ़ गयी। स्त्रियाँ गौण काम करती थीं, जैसे खेतों की गुड़ाई, निराई, फसल काटना, साफ करना, सुखाना तथा पालतू जानवरों की देखभाल करना। बहुपत्नी विवाह प्रथा के आर्थिक आधार को दर्शाती हुई बोसरूप लिखती है कि स्त्री प्रधान कृषि व्यवस्था इसकी जनक थी। जितनी अधिक पत्नियाँ, उतनी अधिक आर्थिक समृद्धि। जूनियर पत्नी को पति तथा अन्य सीनियर पत्नियों की सेवा करनी पड़ती थी। पुरुष-प्रधान कृषि व्यवस्था आते ही बहुपत्नी विवाह व्यवस्था आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं रह गयी। अतः एक पत्नी विवाह व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने लगा। साथ ही विवाह के रीति-रिवाज भी बदलने लगे। मसलन स्त्री प्रधान कृषि व्यवस्थाओं में विवाह के समय लड़की के पिता को, दूल्हा या उसके परिवार के लोगों से दुल्हन-मूल्य मिलने की प्रथा रही है। जबकि पुरुष प्रधान कृषि व्यवस्था में दहेज प्रथा आ गयी। अब लड़की के पिता को दूल्हे के परिवार को धन देना पड़ता है। अतः समाज में बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप स्त्री के रिश्ते में भी बदलाव आता है।"[12]

स्त्री, प्रजनन शक्ति का आधार और श्रम द्वारा आर्थिक मददगार भी है। अतः वह संपत्ति हुई। ऐसे में कोई उसे लूटकर ले लाये तो इससे जनन-शक्ति और आर्थिक क्षति होती है। इसी क्षति को पूरा करने के लिए कन्या विनिमय प्रथा प्रारंभ हुई। कन्या विनिमय प्रथा त्रावणकोर के पहारिया पान्ताराम एवं उरालियों में वर्तमान काल में भी प्रचलित है। इन लोगों के समाज में कन्या का मूल्य देने पर भी विवाह के लिए वधू नहीं मिलती। जब किसी युवक को विवाह करना होता है तो उसे अपनी बहन या रिश्तेदारी में किसी भी स्त्री को दूसरे दल के हाथों सौंपकर वधू प्राप्त करनी पड़ती है। इस बहन या रिश्तेदार का युवती होना आवश्यक नहीं है, किसी भी उम्र की हो चलेगी। स्त्री होना मात्र आवश्यक है।

भारतीय समाज या कहे वैश्विक समाज में स्त्री को अर्थशक्ति दी नहीं गयी है। धर्मग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि पत्नी को भी संपत्ति का कुछ भाग स्त्री धन की विशिष्ट श्रेणी में रखने की आज्ञा दी गयी। मनु के अनुसार इसमें वह सब सम्मिलित किया गया जो उसे विवाह की अग्नि के पूर्व अथवा वधू की शोभा यात्रा अथवा बाद के समय में भाई, माता अथवा पिता से भेंट में प्राप्त हुआ और जो उसे अपने प्रियपति के द्वारा दिया गया हो। जब माता की मृत्यु हो जाती तो सभी सहोदर भाई और बहिन माता की संपत्ति को परस्पर में समान बाँट लेते। मनु से पूर्व गौतम ने बतलाया था कि "स्त्री की अपनी संपत्ति (स्त्री धन) उसकी अविवाहित पुत्रियों की और उनके न होने पर निर्धन विवाहित पुत्रियों को उत्तराधिकार में प्राप्त होती है।" वशिष्ठ ने भी इसका उत्तराधिकार पुत्रियों को दिलाने का आदेश दिया। परन्तु इन दोनों में से किसी न भी यह स्पष्ट नहीं किया कि इस संपत्ति में क्या-क्या सम्मिलित होता था। क्या इसका यह अर्थ है कि स्त्री धन संबंधी धारणा धर्मसूत्रों के प्रारंभिक दिनों में अस्पष्ट थी और उसने मनुसंहिता के वर्तमान रूप में आने के समय यह स्पष्ट स्वरूप ग्रहण किया।

प्रारंभिक लेखकों ने इस बात को स्पष्ट नहीं किया कि स्त्री को अपने स्त्रीधन पर किस प्रकार का नियंत्रण होता है। फिर भी कौटिल्य हमें बतलाते हैं कि स्त्री को पवित्र होना चाहिए और अपने पति के निकट संबंधियों के संरक्षण में रहना चाहिए अन्यथा उसे अपने स्त्रीधन से वंचित कर दिया जावेगा। यदि कौटिल्य से प्रारंभिक कानून का कुछ भी संकेत मिलता हो तो यह कहा जा सकता है कि जब ऐसे साधन अपनाए गये जिससे संपत्ति का कुछ भाग पत्नी को (जिसे पति की संपत्ति में उत्तराधिकार नहीं प्राप्त था) मिलता फिर भी यह आवश्यक समझा गया कि उसके उस संपत्ति के भोगने पर कठोर नियंत्रण रखा जावे। "सौदायिक परस्त्री का स्वामित्व पूर्ण होता है और वह उसे बेचने अथवा अचल संपत्ति होने पर किसी को देने के लिए स्वतंत्र होती है।"[13] कात्यायन उससे और भी आगे बढ़ गये, जबकि नारद के अनुसार, "जो कुछ इसे पति के द्वारा प्रेम से दिया जावे उसे (अचल संपत्ति को छोड़कर) वह जैसे चाहे वैसे पति की मृत्यु के बाद भी भोगेगी।"[14] कात्यायन उसे अचल संपत्ति पर भी पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं। परन्तु यही सब कुछ नहीं है। वे 'सौदायिक' की व्याख्या करते हुए उसमें वह सब कुछ सम्मिलित करते हैं जो विवाहित स्त्री को उसके अथवा उसके पिता के घर से माता-पिता अथवा भाइयों से प्राप्त हुआ हो।

इस्लाम धर्म में भी स्त्री को मेहर या 'जहेज' दिया जाता है। इस्लाम धर्म में मेहर पति द्वारा पत्नी के सम्मान में दी जाने वाली राशि है। यह पत्नी का अधिकार है। हर पति का फर्ज है कि वह अपनी पत्नी का मेहर अदा करें। कुरान में पति को स्पष्ट आदेश दिया गया है– "फिर जो वैवाहिक जीवन का आनन्द तुम उनसे उठाओ इसके बदले में उनके मेहर कर्तव्य के रूप में अदा करें।"[15] प्रत्येक निकाह के लिए मेहर अनिवार्य है। मेहर निकाह के समय निश्चित किया जाये अथवा न किया जाये, तब भी मेहर का भुगतान करना होगा। रसुल अल्लाह ने कहा है कि यदि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री से कम अथवा अधिक मेहर पर निकाह किया और उसके दिल में उक्त मेहर के अधिकार की अदायगी का इरादा नहीं है। तब वह कयामत के दिन अल्लाह के समक्ष व्यभिचारी की हैसियत से पेश होगा।

मुसलमानों में दहेज को 'जहेज़' कहा जाता है। 'जहेज' अरबी भाषा के 'तजहील' से बना है जो साधारणतया 'सामान की तैयारी' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। दहेज का शरअी दृष्टिकोण से कोई अस्तित्व नहीं है परन्तु समाज में विवाह के समय बधू को माता-पिता स्वेच्छा से जो सामान देते हैं। उसे जहेज़ कहा जाता है। इस पर पूर्ण रूप से वधू का स्वामित्व होता है, पति का कोई अधिकार नहीं होता। इस्लाम धर्म में निकाह के बाद गृहस्थी चलाने के समस्त दायित्व पुरुषों पर है। अतः 'जहेज' का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ व्यक्तियों का यह मानना है कि 'जहेज़' देना रसूल की सुन्नत है। वास्तव में ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि उस समय अरब के समाज में कोई भी व्यक्ति अपनी बेटी को निकाह के समय कुछ सामान नहीं देता था। जहेज़ का किसी भी रूप में प्रचलन नहीं था।

हिन्दू विवाह का एक अनिवार्य संस्कार है बधू के माता-पिता द्वारा 'कन्यादान' – लड़की का दान कर देना। दान के बाद -दक्षिणा' दी जाती है। दक्षिणा एक और आनुष्ठानिक उपहार है। पारंपरिक वर-दक्षिणा – दूल्हे को दिया जाने वाला उपहार – एक संकेतिक रस्म है। आन्ध्र प्रदेश की रेड्डी और कम्मा तथा तमिलनाडु की पामगेरी तथा अम्बल्लक्केंरर जैसी सम्पन्न भूस्वामी जातियाँ अपनी पुत्रियों को उनके विवाह के अवसर पर नकदी, आभूषण तथा भूमि देती है। नकद रुपये वर तथा उसके पिता को दिये जाते हैं, आभूषण लड़की के पास रहते हैं और उपहार में मिली भूमि भी उसके ही नाम रहती है। लेकिन ये अपवाद ही है। स्वतंत्रता के बाद उपहार-दहेज – ने विशाल रूप ग्रहण कर लिया है। अब सामान्यतः उपहार स्वयं अपनी इच्छा से नहीं दिये जाते बल्कि उनकी मांग की जाती है और उस पर मोलभाव होता है। नवधनाढ्यों ने जबर्दस्त दहेज तथा तड़क-भड़क वाली दावतें देकर स्थिति को गंभीर बना दिया है। भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य श्रेष्ठ सरकारी सेवाओं के लोग जमकर दहेज पाने की अपेक्षा करते हैं और उन्हें मिलता भी है। अन्य अच्छी सेवाओं के वर्ग भी पीछे नहीं है। यह रिवाज मुसलमानों और ईसाइयों में भी प्रचलित है। विवाह के बाद

भी लूट-खसोट जारी रहती है। समकालीन भारतीय समाचारपत्रों में वधूदहन तथा दहेज हत्याओं के समाचार निरंतर प्रकाशित हो रहे हैं। जो वधू को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता था वही अब उसकी जान के लिए खतरा बन गया है।

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति पर सरला महेश्वरी लिखती हैं, "चूँकि औरतों पर होने वाले जुल्मों का बहुत गहरा संबंध उनकी आर्थिक स्थिति से, संपत्ति में उनके अधिकारों से है, इसलिए इस दिशा में कानून में ठोस संशोधन किये जाने चाहिए। मसलन, सरकार देहाती या शहरी क्षेत्रों में जमीन के पट्टे, घर या अन्य किसी भी प्रकार की जो सहायता प्रदान करें, वह पति और पत्नी दोनों के नाम होनी चाहिए। महिलाओं का संपत्ति में समान अधिकार होना चाहिए तथा पुरखों की संपत्ति या अपने द्वारा अर्जित संपत्ति में उनका उतना ही अधिकार होना चाहिए जितना पति या भाइयों की तरह के उनके संबंधियों का होता है। विवाहित जीवन के दौरान तैयार की गयी संपत्ति पर पति-पत्नी दोनों का समान अधिकार होना चाहिए।"[16]

सवाल है कि क्या स्त्री को किसी भी प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता और अधिकार दिया गया है? 'नहीं' ही होगा। हम बातें चाहे जितनी करें, हकीकत में स्त्री चाहे आर्थिक श्रम भी कर रही हो लेकिन उसे उस अर्थ और संपत्ति को अपनी मर्जी से खर्च करने का कोई अधिकार नहीं है। वैवाहिक जीवन में उसके अर्थ से जुड़े लगभग सभी फैसले पति या ससुराल पक्ष ही लेता है। ऐसे में एंगेल्स की यह बात खारिज होती है कि उत्पादन की समानता से स्त्री-पुरुष के बीच भी समानता आ जायेगी। बात सिर्फ कमाने की शक्ति और उत्पादन की क्षमता की नहीं बल्कि मानसिकता की है। वह मानसिकता जो किसी भी रूप में सशक्त स्त्री से डरती है और यह तय करती हैं कि स्त्री को हमेशा दबाकर ही रखना चाहिए। इसी संदर्भ में सीमोन कहती है, "स्त्री को अपने जीवन में किसी रचनात्मक कार्य को स्वतंत्र रूप से करने की अनुमति नहीं है, इसलिए पूर्ण व्यक्ति के रूप में कभी भी उसे स्वीकार नहीं किया जाता। चाहे वह कितनी भी सम्मानीय क्यों न हो, पर उसकी स्थिति हमेशा गौण, नीची और पराश्रित होती है। इसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप उसकी पराश्रयिता है। प्रणय-जीवन की सफलाताएँ और असफलताएँ पुरुष के लिए उतना महत्व नहीं रखतीं जितना वे स्त्री के लिए रखती है। पति नागरिक और उत्पादक पहले है, पति बाद में, किन्तु स्त्री केवल पत्नी रूप है।"[17]

(3) विवाह और स्त्री/पुरुष यौनिकता

विवाह संस्था स्त्री को उसकी यौन सेवा के लिए सुविधाएँ और जीवन जीने का अधिकार प्रदान करती रही है। इसलिए स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह सेक्स और सेवा प्रदान करने में वह ईमानदारी बरते। शरीर वह पूँजी है जिसके माध्यम से स्त्री को परिवार में आर्थिक संरक्षण प्राप्त होता है। इसे लेव टालस्टॉय क्रूजर 'सोनाटा' में इस तरह व्यक्त करते हैं "सब उन स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं जो थोड़ी देर के लिए वेश्याएँ बनती है, पर उन स्त्रियों का (ही) आदर और मान करते हैं जो उम्र भर वेश्यावृत्ति करती है।"[18] स्त्री की यौनिकता और यौन अधिकार दोनों ही हमारी परंपरा और समाज में निन्दनीय है। भारतीय विवाह संस्था कामनात्मक आवश्यकताओं की अपेक्षा भौतिक सुख-सुविधा की जरूरतों को अधिक महत्वपूर्ण मानती है। इसीलिए फ्रायड का कहना है कि पति प्रेम का सम्पूरक तो हो सकता है किन्तु वह प्रेमी पुरुष नहीं हो सकता।

भारतीय समाज विवाहित स्त्री में अनेक चारित्रिक गुणों की अपेक्षा करता है। इनमें से पहला अपेक्षित गुण है – पतिवत्य या सतीत्व। विवाह से पूर्व स्त्री को किसी पुरुष के विषय में यौन संदर्भ में नहीं सोचना चाहिए। विवाह के बाद अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का विचार मन में न लाये। सिमोन द बोउवार कहती है, "सामाजिक परंपरा द्वारा स्त्री को अब भी यौन स्वतंत्रता नहीं दी गयी है। आज भी समाज में स्त्री का स्वतंत्र प्रेम या विवाहित स्त्री का विवाह के बाहर प्रेम व्यभिचार एवं एक बड़ा अपराध है, यदि वह किसी से प्रेम करती है तो यह जरूरी है कि वह उससे विवाह करे।"[19] इसीलिए प्रायः साहित्य में भी एवं जीवन में भी 'इज्जत' बचानेवालों के प्रति अहसान का प्रत्युत्तर स्त्रियाँ प्रायः विवाह द्वारा चुकाते देखी गयी है एवं विवाह के उपरान्त यह दायित्व उसके पति को सौंपा जाता रहा है। स्त्री के लिए विवाह हमेशा सम्मान के साथ जोड़कर देखा जाता है। इसीलिए आत्मनिर्भर स्त्री भी विवाहित होना चाहती है। विवाहित स्त्री से परपुरुष का सेक्स संबंध सजा का कारण बनता है, अविवाहित, विधवा व तलाकशुदा से विवाहित पुरुष का सेक्स सबंध तलाक का आधार प्रदान करता है, सजा का कारण नहीं। वह तथ्य विवाह को स्त्री के सम्मान से जोड़ता है व विवाह से बाहर स्त्री के संबंधों में स्त्री के सम्मान पर प्रश्न चिह्न लगता है।

एंगेल्स ने स्त्रियों से विवाह संस्था में एकनिष्ठता के कारणों की ओर संकेत किया है। वे मानते हैं कि, "जीवन की आर्थिक परिस्थितियों के विकास के फलस्वरूप, अर्थात् आदिम कम्युनिज्म के ध्वंस के साथ-साथ पुराने परम्परागत यौन-संबंधों का भोलेपन से भरा हुआ आदिम स्वरूप जितना ही नष्ट होता गया, उतना ही ये संबंध नारियों को अपमानजनक और उत्पीड़क प्रतीत हुए होगें और इस अवस्था से मुक्ति के रूप में सतीत्व के एक पुरुष से ही अस्थायी अथवा स्थायी विवाह के अधिकार के लिए उतनी ही उनकी आकांक्षा बढ़ी होगी। पुरुषों की ओर से यह कदम कभी नहीं उठाया जा सकता था–और कुछ नहीं तो केवल इसलिए कि पुरुषों ने आज तक कभी भी वास्तविक यूथ-विवाह के आनन्द की व्यवहार में त्यागने की बात सपने में भी नहीं सोची है। स्त्रियों द्वारा युग्म-विवाह की प्रथा में संक्रमण सम्पन्न किये जाने के बाद ही पुरुष कड़ाई से एक विवाह प्रथा लागू कर सके– पर जाहिर है कि यह बंधन भी उन्होंने केवल स्त्रियों पर ही लगाया।"[20]

हमारे धर्मग्रंथ मानते हैं कि स्त्री का स्वभाव ही है कि वह पुरुष को इस संसार में ललचाकर पथभ्रष्ट करती है। वह न केवल अज्ञानी को बल्कि ज्ञानी पुरुष को भी वासना का दास बना देती है। इसी कारण उसे 'प्रमदा' अर्थात प्रलोभक कहा गया है। विभिन्न ग्रंथों के अनुसार, "स्त्री का निर्माण ही पुरुष को प्रणयोन्मत्त बनाने के लिए हुआ है और इसलिए स्त्री से अधिक घृणित कोई भी नहीं है।" "सृष्टिकर्ता ने स्त्री को निंदा-चुगली प्रेम और काम वासना प्रदान की है। पुरुष इनसे अपनी रक्षा शब्द, प्रहार अथवा विविध प्रकार के दण्ड द्वारा नहीं कर सकता, क्योंकि वे निरकुंश है। जो इनकी संभाल करता है वह केवल हवा में प्रहार करता है।" इस संसार से विदा होते हुए मनु ने, स्त्रियों को पुरुषों की संभाल और रक्षा में सौंपा, क्योंकि वे जानते हैं कि स्त्रियाँ दुर्बल है और वे पुरुषों के प्रलोभन का शिकार सरलतापूर्वक बनजावेगी। अपने भावुक स्वभाव के कारण वे पुरुषों की प्रणय याचना के प्रति तुरन्त ही आकृष्ट हो जाती है। प्रलोभनों का सामना करने की उनमें दृढ़ इच्छाशक्ति ही नहीं होती।

उपर्युक्त उदाहरण है हमारी संस्कृति और धर्म में स्त्री की यौनिकता को परिभाषित करने के। यहाँ स्त्री 'कर्ता' नहीं बल्कि 'भोग्या' ही मानी गयी है। इसकी सहज यौन इच्छा को न तो विवाह पूर्व सम्मान मिलता है न विवाह पश्चात्। ऐसा कोई भी संबंध उसकी जान की कीमत माँगता है। परम्परागत दृष्टि विवाह के अन्दर यौन संबंधों को नैतिक और विवाह के बाहर संबंधों को अनैतिक मानती रही है। भारतीय विवाह व्यवस्था में स्त्री के कौमार्य और योनि-शुचिता को एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। ब्राह्मण लेखकों ने जो समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना चाहते थे, स्त्री में पवित्रता होना उचित माना तथा उसे श्रेष्ठ महिला का चिह्न बतलाया। अखण्ड कौमार्य विवाह योग्य वधू की योग्यता हो जाती थी। वह इस बात से सिद्ध होता है कि वात्स्यायन ने भी, जो धर्म का वर्णन नहीं कर रहे थे, उसका संकेत किया है। "जब किसी ऐसी कुमारी कन्या से, दृढ़ प्रेम हो जाये जो उसी जाति की हो और जिसे पवित्र नियमों के विधान के अनुसार प्राप्त किया गया हो, तो उससे वैध संतान प्राप्त करने का साधन उपलब्ध होता है, संसार में कीर्ति प्राप्त होती है और उसके साथ ही साथ सार्वजनिक मान्यता भी मिल जाती है।"[21] ऐसा विवाह ही धर्म, धन तथा संतान की वृद्धि, सामाजिक सम्पर्क, सामाजिक चक्र का विस्तार और 'अलौकिक' आनंद की प्राप्ति का कारण बनता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने एक लेख में कहती है, "विवाह का अर्थ ही है, तन-मन का समर्पण, जहाँ शरीर का रिश्ता तय हो गया, वहीं मन का रिश्ता स्थापित मान लिया।"[22] स्त्रियाँ आज 'काम-तृप्ति का साधन' मात्र नहीं रह गयी है। आज विवाह संस्था के अन्दर के विषम और क्रूर होते संबंधों ने स्त्री को विवाह के बाहर प्रेम आधारित रिश्तों की ओर आकृष्ट किया है। विवाह से जुड़े यौन-एकाधिकार स्त्री को संपत्ति या पूँजी की तरह देखता है अथवा वस्तु की तरह। पैसे, धर्म या विवाह की मज़बूरी से जुड़े यौन संबंधों की नीयत पर पुनः सोचा जा रहा है। आज भी यद्यपि विवाह पूर्व संबंध पुरुष के लिए सभ्य और स्त्री के लिए असभ्य और स्त्री के लिए विवाह की अयोग्यता माने जाते हैं। परन्तु एक ओर यौन शुचिता के लिए स्त्री-पुरुष के लिए एक से मानदण्डों की मांग कर रही है तो दूसरी ओर यौन स्वतंत्रता के लिए पुरुष के दोहरे मानदण्डों का निषेध भी। स्त्री ने गर्भाधान के भय से मुक्ति से यौन संबंधों पर अपनी नयी दृष्टि और तृष्टि के लिए विचार किया है। गर्भपात के अधिकार ने स्त्री की जैविक आवश्यकताओं की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया एवं इस बहुप्रचारित तथ्य पर विचार का सामर्थ्य भी कि विवाह पुरुष के प्रति स्त्री की 'यौन-सेवा' है जिसके बदले उसे रोटी, कपड़ा और मकान मिलता है अथवा स्त्री निष्क्रिय यौन साथी है। इस रूप में विवाह के प्रति स्त्री के दृष्टिकोण में बदलाव आया है एवं स्त्री की यौन तुष्टि का महत्व भी रेखांकित हुआ है।

जैनेन्द्र ने विवाह के यौन एकाधिकार की निरकुंशता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा, "पति-पत्नी का आशय यदि परस्पर भोग की एकाधिकारिता का ही संबंध हो तो इस धारणा को बदलना होगा। एकाधिकार में संशय और दावे की भूमिका है। वह संबंध संपत्तिमूलक है। पति-पत्नी एक दूसरे की जायदाद नहीं है। दोनों अपने में व्यक्तित्व हैं और एक मात्रा में उन्हें स्वतंत्रता भी अपेक्षित है। संबंध यदि परस्पर विश्वास और सौहार्द का होगा, तभी उसमें रस या स्थायित्व रह सकेगा। इसका आशय यही कि उन दोनों व्यक्तियों के आपसी संबंधों का क्षेत्र केवल उन दो तक ही सीमित रहने को बाध्य न होगा, बल्कि दूसरी दिशाओं में भी वह विस्तार पा सकेगा।"[23]

एक बात महत्वपूर्ण है कि यदि विवाह को यौन आकर्षण की आवश्यक परिणति तभी माना जा सकता है जब हम यौन-क्रिया को एक धार्मिक स्वीकृति देने का आग्रह करें क्योंकि उसके बिना विवाहित यौन और अविवाहित यौन में कोई बुनियादी और वास्तविक भेद नहीं रह जाता। इस तरह के संबंधों पर तब सिर्फ उपयोगिता की दृष्टि से ही विचार किया जा सकता है, नैतिक दृष्टि से नहीं। लेकिनयह आश्चर्यजनक है कि पारंपरिक समाजों में ही नहीं, अपने को आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष मानने वाले समाजों में भी यौन आचरण को अधिकांशतः रूढ़िबद्ध नैतिकता-जिसका आधार साम्प्रदायिक मान्यताएँ ही रही है– की ही कसौटी पर परखा जाता है और कहीं गहरे में यह आशंका अवचेतन तक घर की हुई है कि विवाहेत्तर यौन को मान्यता देने या उसे निषिद्ध न मानने पर पूरे समाज का ढाँचा ही जैसे बिखर जायेगा।

सर्वेक्षणों की बात करें तो विवाह संबंध में यौन प्रसंग को लेकर लगभग अस्सी प्रतिशत स्त्रियाँ अपनी मर्जी के विरुद्ध पति को समर्पण करने को मजबूर होती है। लगभग चालीस फीसदी स्त्रियों को पति का बलात्कार झेलना होता है। ये दोनों ही स्थितियाँ उसे परिवार में एक सरल स्त्री वेश्या बना दी जाती है और उसे सहर्ष झेलना पड़ता है। शहरों के नौकरीपेशा अड़सठ फीसदी ऐसे पति होते हैं जो पत्नी से उम्मीद करते हैं कि जब वे घर लौटे तो पत्नी सजधज कर उनका स्वागत करें। इन अड़सठ फीसदी में से लगभग एक तिहाई ऐसे है जो इस बात को लेकर झगड़ा भी करते है। यह भी पत्नी को वेश्या बनाकर रखने का एक उदाहरण है। प्रदीप सक्सेना के शब्दों में, "दाम्पत्य में मुझे और सब चीज

ठीक लगती है। सिवाय प्रेम की हिलती मीनार के जिस पर चढ़े दंपत्ति कभी भी धराशायी हो सकते हैं। क्योंकि प्रेम जहाँ पारस्परिक यौन-संबंधों की वैधता विश्वास से ज्यादा किसी अन्य गुण को प्रदर्शित करता नहीं मिलता। विश्वास ही यहाँ, प्रेम है। भले ही अवैध संबंधों में हम लिप्त हों लेकिन पत्नी को विश्वास हो। कवि की पंक्ति है – 'दोनों ओर प्रेम पलता है।' मेरा कहना है – दाम्पत्य में एक ही ओर प्रेम चलता है।"[24]

(4) कानून में विवाह और स्त्री

भारतीय समाज में विवाह, स्त्री और पुरुष दोनों के ही जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन लाता है। विवाह जैसी महत्वपूर्ण संस्था को कानूनी रूप से भी मजबूत बनाया गया है। साफ है कि जब विवाह एक सामाजिक समझौता है तो उसके कुछ अपने नियम और कायदे भी होंगे। और उन नियमों की अवहेलना करने पर दण्ड का भी प्रावधान होगा। भारतीय गणतंत्र में विवाह को स्पष्ट रूप से 1955 में कानूनी नियमों में बाँधा गया है। यद्यपि इससे पहले भी अव्यवस्थित रूप में कई कानून बने थे।

पारंपरिक हिन्दू समाज में पूर्ण विरोध के बावजूद राजा राममोहन राय ने अपने प्रयास से सती-प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा के लिए कानून बनवाया। सन् 1829 में 27 न. कानून के तहत सती प्रथा हमेशा के लिए बन्द हो गयी। पति के साथ चिता में जलकर मरने से तो हिन्दू विधवा को मुक्ति मिल गयी अब उनके लिए जिन्दगी भर कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा। पण्डित विद्यासागर बाल विधवाओं के इस कठोर जीवन से दुःखी होकर सहानुभूतिवश अक्षतयोनिवाली बाल विधवाओं के दूसरे विवाह के लिए दृढ़-निश्चयी हुए। उन्होंने तत्कालीन सरकार पर दबाब डालकर सन् 1856 में 15. कानून लागू करवाया। इस कानून के द्वारा विधवा विवाह को वैध रूप मिला।

हिन्दू विवाह में सुधार लाने के लिए दो प्रमुख कानून सन् 1946 में लागू हुए। पत्नी को विशेष स्थिति में पति को त्यागने का अधिकार उसी वर्ष 19 न. कानून के द्वारा दिया गया। पति अगर कुत्सित रोग ग्रस्त हो या उसका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति निष्ठुर हो जिससे पत्नी असुरक्षित हो, पत्नी को त्याग दे अथवा फिर से विवाह करे, घर में रखैल रखे या व्यभिचार में लीन हो अथवा दूसरा धर्म ग्रहण करे तो उस कानून की मदद से पति-पत्नी को त्यागकर अलग रहने के लिए आजाद हो सकती है। 28 न. कानून में निर्देश है कि एक ही गोत्र और एक ही प्रवर में विवाह वैध है। आजादी के बाद 1949 में 21न. कानून द्वारा जाति संबंधी, वर्ण संबंधी, श्रेणी संबंधी, सम्प्रदाय संबंधी जितनी प्रकार की रूकाबटें थी सबको समाप्त किया गया। विवाह संबंधी आखिरी कानून लागू हुआ सन् 1955 में। यही विवाह के विषय में सबसे महत्वपूर्ण कानून है। इसे हिन्दू विवाह कानून या सन् 1955 का 25 न. कानून कहा जाता है। वैध विवाह की जो शर्ते इसमें है वे इस प्रकार है –

(1) विवाह के समय पत्नी या पति का पहला पति या पत्नी जीवित नहीं होनी चाहिए।

(2) दोनों पक्ष में कोई भी पागल या मन्दबुद्धि नहीं होना चाहिए।

(3) लड़के की उम्र कम से कम 18 और लड़की की उम्र कम से कम 15 वर्ष होनी चाहिए।

(4) दोनों पक्षों में कोई भी ऐसा नजदीकी रिश्तेदार न हो जिसके साथ विवाह मना है।

(5) दोनों पक्षों में कोई स्वपिण्ड नहीं होगा।

(6) कन्या की उम्र अगर 15 वर्ष से कम है तो अभिभावक की सहमति जरूरी है।

वैध विवाह के अवैध बनने के कुछ कारण भी इस कानून के तहत है –

(1) अगर पति नामर्द है।

(2) अगर विवाह के समय कोई भी पक्ष पागल या मन्दबुद्धि हो।

(3) अगर छल करके या बलपूर्वक अभिभावक द्वारा अर्जी देने वाले की सहमति ली गयी हो।

(4) अगर विवाह के पहले पत्नी पति के अलावा किसी और के द्वारा गर्भवती हुई हो।

(5) अन्य पति या पत्नी के जीवित रहते विवाह हुआ हो।

(6) यदि नजदीकी रिश्तेदार के साथ विवाह हुआ हो जिसके साथ विवाह नहीं होना चाहिए।

विवाह संबंधी कानून बनने के बाद सभी को यह आशा थी कई प्रकार के कानून बनने के बाद विवाहित स्त्री समाज और परिवार के अत्याचार से मुक्ति पायेगी। पर ऐसा नहीं हुआ, स्त्री को मुक्ति मिलने के स्थान पर उसका शोषण होने लगा। रोजाना समाचार -पत्रों में वधू हत्या के कई समाचार प्रकाशित हो रहे हैं। आदिम बर्वरता से प्रेरित होकर सास-ससुर, ननद-देवर, पति सब मिलकर स्त्री को या तो आग में जलाकर मार डालते हैं नहीं तो फाँसी लगाकर लटका देते हैं। अथवा जहर पिलाकर मौत की नींद सुला देते हैं। शिक्षित या अशिक्षित सभी श्रेणी की स्त्रियाँ इस प्रकार के अत्याचार को सह रही हैं। पवित्र विवाह बंधन अब कुँवारी लड़कियों के लिए डरावना बंधन बनता जा रहा है।

हिन्दू विवाह अधिनियम 155 की धारा-9 को बार-बार पीड़ित स्त्रियाँ संविधान की धारा 14 का विरोधी बता रही है। कारण व्यवहार में पति ही अपनी पत्नी को परेशान करने के लिए इस धारा का दुरुपयोग करता है। यह दुरुपयोग सामाजिक असमानता की वजह से संभव है। हिन्दू उत्तराधिकार कानून 1956 की धारा 14 को भी चुनौती दी गयी है। न्यायालयों ने इन धाराओं को सदियों से हो रहे अन्याय का सुधार बताकर सही ठहराया है। इसी प्रकार भारतीय दण्ड संहिता के भरण पोषण संबंधी प्रावधानों को समानता के अधिकार का उल्लंघन बताकर चुनौती दी गयी। इन चुनौतियों को भी न्यायालयों ने नहीं स्वीकारा है। रोजगार के क्षेत्र में अलबत्ता कई नियमों को समानता के अधिकार का उल्लंघन बताकर न्यायालयों ने स्त्रियों को राहत दी है।

विवाह विच्छेद के लिए भी हर सम्प्रदाय में निजी कानूनों का प्रावधान है। हिन्दुओं के लिए 1955 का विवाह कानून, ईसाइयों के लिए 1869 का भारतीय तलाक कानून, पारसियों के लिए 1939 का पारसी विवाह एवं तलाक कानून तथा मुसलमानों के लिए 1939 का मुसलमान विवाह-विच्छेद कानून के साथ-साथ परम्परागत रीति-रिवाज अन्तर्जातीय विवाहों के लिए विशेष विवाह कानून 1956 के तहत तलाक लिया जा सकता है।

हिन्दू विवाह कानून में दोनों को तलाक का समान अधिकार तो है लेकिन पत्नी के व्यभिचारिणी हो जाने पर उसके गुजारे भत्ते का अधिकार समाप्त हो जाता है। आदर्श पत्नी के मापदण्डों के आधार पर पत्नी को व्यभिचारिणी सिद्ध करना आसान हो जाता है। क्रूरता निश्चित करने के मामले में भी स्त्री और पुरुष को अलग-अलग मापदण्डों से जाँचा जाता रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने क्रूरता को शारीरिक और मानसिक दोनों माना है। न्यायालय के निर्णय के अनुसार क्रूरता का निर्धारण हर केस के सामाजिक, शैक्षणिक स्तर के आधार पर होना चाहिए। पुरुष पत्नी पर आदर्श पत्नी न होने का आरोप लगाकर या क्रूरता के आधार पर तलाक ले लेता है। मसलन पत्नी का मंगलसूत्र नहीं पहनना या पति के परिजनों के साथ रिश्ते नहीं निभाना क्रूरता माना जाता है। इस प्रकार क्रूरता का मापदण्ड भी पारंपरिक आदर्श पत्नी के मापदण्डों के आधार पर ही निर्धारित होता रहा है। अकसर पत्नी इन मापदण्डों पर अपनी आस्था तथा इनके अनुसार किया गया अपना आचरण सिद्ध कर पति की तलाक की दलील को न्यायालय से अमान्य करने में सफल रही है।

व्यभिचार और क्रूरता, इन सभी कानूनों में तलाक के दो मुख्य कारण माने जाते हैं। मुस्लिम कानून इसका अपवाद है। लेकिन व्यभिचारिणी स्त्री को व्यभिचारी पुरुष से अधिक दण्डनीय माना जाता है। कारण स्त्री अपने पति की संपत्ति मानी जाती है। समाज और राज्य दोनों मानते हैं कि पुरुष की भौतिक संपत्ति की असली उत्तराधिकारी उसकी अपनी ही संतान/पुत्र हो। स्त्री पर व्यभिचार करने से नियंत्रित करने का अर्थ पुरुष के इस हित की रक्षा करना है। कानूनी प्रावधान तथा न्यायालयों के निर्णय पुरुष के इस हित की पारिवारिक हित की संज्ञा देकर रक्षा करते हैं। जबकि पुरुष के यौनाचार संबंधी मामलों में पारिवारिक हित को गौण स्थान दे दिया जाता है। ईसाइयों के 1869 के तलाक कानून की धारा 10 के अनुसार पत्नी के व्यभिचारिणी होने पर पति तलाक हासिल कर सकता है। परन्तु पत्नी को इसके साथ-साथ बलात्कार, क्रूरता, दूसरा विवाह या परित्यक्ता होने पर ही तलाक मिल सकता है। इसी कानून के तहत पति-पत्नी के प्रेमी से मुआवजे की मांग कर सकता है परन्तु पत्नी पति की प्रेमिका से मुआवजे की मांग नहीं कर सकती। पत्नी के लिए मुआवजे की राशि निश्चित करने के लिए भी न्यायालय पत्नी से आदर्श पति के मापदण्डों पर खरा उतरने की अपेक्षा करता है।

स्त्रियों के गुजारा भत्ता का प्रावधान भी परिवार की अखण्डता सिद्धांत से ही प्रभावित होते हैं। हर धर्म के अनुयायी को विवाह के दूर जानेपर पत्नी को थोड़ा–बहुत गुजारा भत्ता देना होता है। आर्थिक परतंत्रता ही स्त्री के लिए गुजारा भत्ता प्रावधान के मूल में है। इस प्रकार की परतंत्र स्त्री को यह भत्ता तभी मिल सकता जब वह माँ, बीवी, बहन, बेटी की पारिभाषित भूमिका में खरी उतरे। हिन्दू अधिनियम के अन्तर्गत पत्नी धर्म परिवर्तन करने पर, 'दुश्चरित्र' करार दिये जाने पर या पुनर्विवाह करने पर यह सुविधा खो देती है। ईसाई अधिनियम में गुजारे भत्ते का प्रावधान तो है पर यह तलाक मिलने पर ही मिल सकता है, जिसको हासिल करना स्त्री के लिए टेढ़ी खीर है। पारसी कानून में भी 'अच्छे आचरण वाली, होने पर तथा पुनर्विवाह नहीं करने पर ही गुजारा भत्ता मिल सकता है। विशेष विवाह कानून में भी इसी प्रकार के प्रावधान है।

दहेज प्रथा पर रोक लगाने के लिए 1961 ई. में कानून बना। 1984 ई. और 1986 ई. में इस कानून में महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। इन संशोधनों से इस कानून को और कठोर बना दिया गया। जैसे जुर्माने की राशि 15,000 रुपये कर दी गयी। अभियुक्त पर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की जिम्मेदारी डाल दी गयी। दहेज के लिए प्रताड़ित स्त्री की मौत हो जाने पर उसकी संपत्ति उसके बच्चों और बच्चे नहीं होने की स्थिति में यह संपत्ति उसके माँ-बाप को दिये जाने का प्रावधान है। हकीकत में इन कड़े प्रावधानों के वावजूद दहेज नहीं लाने पर बहुओं/पत्नियों को मारना-पीटना या जलाना नहीं रूका। मौत की आशंका से जब भी ये प्रताड़ित लड़कियाँ माँ-बाप के घर शरण माँगने गयी इनको वापस ससुराल भेज दिया गया। अकसर दहेज संबंधी मामले पीड़ित विवाहिता के माँ-बाप उसकी मौत के बाद ही उठाते है। मृत्यु से पहले वे अपनी बेटी को निबाहने की सलाह देते हैं। धीरे-धीरे सब शांत हो जायेगा। इस उम्मीद में बेटी के पति और ससुराल वालों के विरुद्ध मामला दर्ज नहीं करते हैं।

भारतीय दण्ड संहिता में खासकर धारा 498 (आ) तथा 304 (ब) में दहेज निरोधक कानून के तहत संशोधन किये गये हैं। 1983 तथा 1986 के संशोधनों से पहले भी भारतीय दण्ड सहिता की धारा 493-98 तक विवाहित मामलों से

संबंधित अपराधों के निपटारे के लिए बनी थी। संशोधनों के बाद, परिवार की अंदरूनी हिंसा संबंधी मामले अध्याय 16 के बदले घारा 498 (अ) में डाल दिये गये। इस प्रावधान के तहत स्त्री को पुरुष की संपत्ति की तरह लिया जाता है। (धारा 497-498 में पुरुषों के दण्डित होने की वजह उनका पराई स्त्रियों के साथ किये गये अपराध होते हैं।) लेकिन अब धारा 498 (अ) की भाषा में, हिंसा के क्षेत्र को विस्तृत कर पारिवारिक हिंसा को भी कानून और व्यवस्था का मसला बना दिया है।

विज्ञान और तकनीक के विकास के साथ-साथ स्त्रियों के साथ हिंसा की वारदातों में वृद्धि तो हो रही है। साथ में हिंसा और जान से मारने के नये-नये तरीके भी ईजाद किये जा रहे है। परन्तु कानून और न्यायालयों की लिंग संबंधी संवेदनशीलता नहीं जगी है। क्रूरतम हिंसा से हुयी मौतों के सबूतों के बावजूद अकसर अभियुक्त बरी हो जाते हैं। घरेलू हिंसा संबंधी कानून 1983 के बाद ही बनाये गये। उसके बाद 2007 में 'घरेलू हिंसा अधिनियम' बनाया गया है। इससे पहले धरेलू हिंसा संबंधी मामले भी अपराध संबंधी कानूनों के तहत ही आते थे। इन मामलों में चूंकि राज्य अभियुक्तों के विरूद्ध याचिका दायर करता है। अभियुक्त के अधिकारों के संरक्षण के लिए कठोर नियम और कानून बनाये गये हैं। इनकी वजह से ससुराल वालों की प्रताड़ना को शक सुबह के घेरे से बाहर पूरी तरह से सिद्ध करना प्रताड़ित बहू के लिए कठिन होता है। सर्वप्रथम, हिंसा घर के भीतर खिड़की दरवाजे बंद करके होती है, ऐसे में गवाह जुटा पाना कठिन होता है। दूसरा, गंभीर और मामूली चोट पर कानूनी प्रावधान अलग-अलग है। किस चोट ने कितनी गहरी मनोवैज्ञानिक चोट की यह तो कोई कानून या न्यायालय देखने की कोशिश नहीं करता।

यह सच है कि कानून बनने के बाद भी स्त्रियों को न्याय नहीं मिलता है। दरअसल कानून बनाने वाले और उन्हें लागू करने वालेएक खास मानसिकता के लोग है। ऐसे में हम स्त्री की बेहतर स्थिति के लिए कानून के भरोसे नहीं बैठ सकते हैं। सबकुछ होते हुए भी "भैंस उसी की, लाठी जिसकी" वाली स्थिति ही है। कानून ने विवाह के लिए एक बाहरी सीमा तय की है जिसमें स्त्री की स्थिति कमजोर ही है। विवाहिता स्त्रियाँ व्यावहारिक रूप से कानून से कोई न्याय नहीं पा सकती है।

के.एम. मुन्शी लिखते हैं, "विवाह, परिवार और स्त्री-पुरुषों के अन्तर्संबंध ऐसे सामाजिक घटक है जिन्हें किसी काजी, पंडित या पादरी या अन्य धर्म सत्ता के निर्णय द्वारा नहीं, लोकतांत्रिक कानून के शासन एवं समतावादी समाज व्यवस्था द्वारा लागू किया जाना चाहिए।" हिन्दू कानून हो या मुस्लिम, सूक्ष्म विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वे स्त्रियों के विरुद्ध हैं। अतः यदि निजी कानूनों को लागू करते हुए स्त्री पुरुषों की समानता के कानून बनाये जाए, तो संभव नहीं है। समान नागरिक संहिता का प्रश्न न तो धर्म निरपेक्ष संदर्भों में स्त्री के पक्ष में उठाया जा सका और न ही निजी कानूनों को एकरूपता देने के संदर्भ में। निजी कानूनों की तलवार से पैदा की गयी फाँक स्त्री के प्रति कैसी दृष्टि रखती है, यह इन कानूनों के देखने और आकलन करने से ही साफ हो जाता है।

(5) विवाह और व्यक्तित्व की चुनौतियाँ

स्त्री शिक्षा, रोजगार, स्त्री प्रतिभा और साक्षरता के अवसर बढ़ने के साथ स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की चर्चा विवाह संस्था के अन्तर्गत संभव हुयी है। स्त्री-पुरुष की समान भूमिकाओं और घर से बाहर निकलने के अवसरों ने स्त्री को अपने बारे में सोचने के अवसर भी दिये हैं। अब विवाह संस्था में बदलाव की जरूरत है, क्योंकि विवाह की संस्था का मौजूदा ढाँचा कानूनी और सामाजिक दोनों स्तरों पर स्त्री-पुरुष की समानता के अधिकारों का खुला उल्लंघन करता है। यह स्थिति पहले भी थी, लेकिन अब उन अधिकारों की चेतना स्त्रियों में पैदा हो गयी है। वे शिक्षित और जागरूक हो गयी हैं और कामकाजी बनकर आर्थिक रूप से भी कुछ स्वाधीन हो गयी हैं। इसलिए वे स्वयं को एक व्यक्ति और नागरिक के रूप में देखने लगी है तथा नागरिक के जो अधिकार है, उन्हें समझने लगी है। इसी समझ के आधार पर वे विवाह और परिवार के बंधनों की जकड़न को पहले से ज्यादा महसूस करने लगी है। इससे विवाह की संस्था का जो ढाँचा अभी तक चला आ रहा था, गड़बड़ा गया है।

शिक्षित और कामकाजी स्त्रियाँ अब ये सोचने लगी कि एक व्यक्ति और नागरिक होने के नाते उन्हें अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है, जैसे मैं विवाह करूँ या न करूँ और करूँ तो कब और किससे करूँ। इसी कारण पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों में ऐसे ढेरों उदाहरण हमारे सामने आये हैं कि स्त्रियाँ अविवाहित और अकेले रहने लगी या विवाह किये बिना ही माँ बनने लगी। इसकी एक वजह वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति भी है, जिसके कारण गर्भधारण करना या न करना, स्वयं बच्चा पैदा करने के बजाय इसके लिए परायी कोख का इस्तेमाल आदि संभव हो गया है।

दरअसल विवाह की संस्था की स्थापना संपत्ति और उत्पादन तथा पुनरुत्पादन पर पुरुषों का कब्जा जमाने और बनाये रखने के लिए की गयी थी। इसीलिए उत्तराधिकार के कानून इस तरह बनाये गये कि संपत्ति पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरुषों की ही होती जाये। विवाह की संस्था और उत्तराधिकार संबंधी कानूनों के माध्यम से उत्पादन और उत्पादन के साधनों के साथ-साथ पुनरुत्पादन पर भी ऐसा शिंकजा कसा गया कि स्त्रियों के लिए उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया। यह शिंकजा इतना अमानवीय है कि इसमें जकड़ी स्त्री को बराबरी का कोई अधिकार नहीं है, उसका कोई मान-सम्मान नहीं है। उसके जीवन में दुःख ही दुख है और बंधन ही बंधन है।

आज की परिस्थितियाँ स्त्री जीवन में भी बदलाव लायी हैं। आज वे विवाह की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगा रही हैं। इससे विवाह की संस्था में बदलाव होना अनिवार्य है। हम जो समाज बना रहे हैं, वह उपभोक्तावादी और कामुक समाज है। ऐसे समाज में यौन शुचिता पर आधारित विवाह का कोई रूप नहीं चल सकता। यह चीज भी ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है कि परिवार की संपत्ति बेटों को मिलेगी और बेटियाँ दूसरे परिवार में जायेंगी। हालाँकि पितृसत्ता बड़ी मजबूती से जमी हुई है, जिसके कारण दुनिया की 98 प्रतिशत संपत्ति पर अभी तक पुरुषों का ही अधिकार है, फिर भी अब ऐसे कानूनी सुधार पर संशोधन होने लगे हैं (पिछले दिनों हिन्दू विवाह कानून में भी हुए हैं) कि बेटों और बेटियों को पैतृक संपत्ति में समान अधिकार मिल पाएगा या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है, लेकिन इसका कुछ असर स्त्री-पुरुष संबंधों और विवाह की संस्था पर अवश्य पड़ेगा।

पूँजीवाद और सामन्तवाद के घालमेल ने स्त्री की स्थिति को और भी विकट बना दिया है। पुरुष मानसिक रूप से अभी भी सामन्त और बुर्जुआ बना हुआ है, जिसे घर के भीतर तो सती-सावित्री चाहिए और बाहर चाहिए बिकने वाली स्त्री। पत्नी परदे या बुर्के में रहे और बाहर-बाजार में, सिनेमा में, टीवी पर सौंदर्य प्रतियोगिताओं आदि में स्त्रियाँ कम से कम कपड़े पहने दिखायी दे। अपनी बहनों और बेटियों के चरित्र पर कोई आँच न आये, पर दूसरों की बहनें और बेटियाँ आसानी से या जबर्दस्ती भोगने के लिए उपलब्ध हों। समूचे मनोरंजन उद्योग को लड़की चाहिए। और वह लड़की सुंदर होनी चाहिए। विज्ञापनों में हर चीज बेचने के लिए सुंदर लड़की चाहिए। फिर इसके पीछे लड़कियों को सुन्दर बनाने वाली चीजों का बड़ा भारी उद्योग है। तेल, साबुन, क्रीम, पाउडर और दूसरे तमाम सौंदर्य प्रसाधनों, कपड़ों आभूषणों आदि का अरबों-खरबों का व्यापार लड़की की सुन्दर छवि बेचने पर चलता है। इसलिए पुरुष को बाहर हर जगह बिकनेवाली स्त्री चाहिए और अपने घर में विवाह और परिवार के तमाम बंधनों में जकड़ी हुई सती-सावित्री।

इसी सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि विवाह की संस्था को इसी रूप में बनाये रखने के लिए वर्तमान विश्व-व्यवस्था संचार और प्रचार की अद्योतन विकसित तकनीकों के जरिये अत्यंत पिछड़े हुए विचारों, विश्वासों और रीति-रिवाजों को (विशेष रूप से 'आईटिंटी तथा एथनिसिटी के नाम पर) जरूरी बताकर लोगों को विवाह के पुराने बंधनों में ही बाँधे रखने के प्रयास कर रही है वह इसके लिए धर्म, राजनीति, साहित्य, सिनेमा, शिक्षा शोधकार्य आदि सभी क्षेत्रों के लोगों को धन, पद, प्रचार पुरस्कार आदि देकर अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करती है। वह नारे तो स्त्रियों को सबल, समर्थ और स्वावलम्बी बनाने को देती है, लेकिन वास्तव में उन्हें पतिव्रता, पति और उसके परिवार की दासी, त्याग और तपस्या की प्रतिमा आदि बनाने के प्रयास करती है, ताकि वे विवाह की संस्था में बदलाव की मांग न करें, बल्कि उसे उसी रूप में बनाये रखने को अपना नैतिक कर्तव्य मानती रहें। दूसरी तरफ वह पुरुषों को यह बताती रहती है कि वे विवाह की संस्था को इसी रूप में बनाये रखकर स्त्रियों पर अपना अधिकार और नियंत्रण कायम रखें, अन्यथा स्त्रियाँ स्वतंत्र होकर समानता की मांग करेंगी और पुरुषों का सर्वस्व समाप्त हो जायेगा।

यही कारण है कि बिल्कुल वेमेल विवाहों के कारण पत्नी-पति में होने वाले झगड़ों का निपटारा तलाक के जरिये करने के बजाय ज्यादातर पति घरेलू-हिंसा, वैवाहिक बलात्कार, पत्नी के शोषण-उत्पीड़न तथा निरंतर अपमान के जरिये उन्हें काबू में रखने की कोशिश करते हैं और उसमें सफल न होने पर या तो पत्नियों को मार डालते है या आत्महत्या के लिए मजबूर कर देते हैं।

दहेज की मांग और उसके लिए की जाने वाली हत्याएँ भी स्त्रियों को आतंकित करके 'आदर्श पत्नी' बनी रहने के लिए उन्हें मजबूर करने के प्रयासों का ही एक हिस्सा है। इसी दोहरे पुरुष व्यवहार की ओर इशारा उपन्यासकार मेहता लज्जाराम शर्मा ने अपने उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' में किया है, "जो लोग स्त्री को 'बेटर हाफ' बनाकर उनका दर्जा आकाश पर चढ़ाने के पक्षपाती हैं वे ही उन्हें तलाक देकर दूसरा खसम कर लेने की सम्मति जब दे रहे हैं, तब मानों जरासंघ के शरीर की तरह एक शरीर के कभी टुकड़े करते है ओर फिर कभी-कभी जोड़ने का उद्योग करते है किन्तु इसका फल यही होता है कि 'टूटे पीछे फिर जुड़े, तो गाँठ गठीली होय' सो भी एक बाद एक के साथ और दूसरी बार दूसरे के साथ। बस इसीलिए यह जोड़ा नहीं, वह विवाह नहीं। वह एक ठेका है, जो अमुक-अमुक बातों में किया जाता है और यदि संयोगवश जैसा कि प्रायः होता रहता है, दोनों में से एक भी शर्त चूक गया, तो बस एक को छोड़कर दूसरा और दूसरे को छोड़कर तीसरा। कुम्हार की हाँड़ी की तरह जन्मभर पति बद्दोबल अर्थात पत्नी-परिवर्तन हुआ करें।"[25]

कहने को तो आज विवाह की संस्था में भी बदलाव हुये हैं। लेकिन यह बदलाव स्त्री-पुरुष की समानता वाला, स्त्री को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान देने वाला बदलाव नहीं होता। कारण यह है कि विवाह का संबंध संपत्ति के उत्तराधिकार से जुड़ा हुआ है। किसी के पास पूँजी, संपत्ति, उद्योग या व्यापार है, तो उसे आगे अपने ही परिवार में बनाये रखने के लिए वैध संतान का होना जरूरी है। दुनिया भर में जितने भी कानून है, उनके मुताबिक वैध संतान पुरुष की होती है और अवैध संतान स्त्री की। वैध संतान का स्वाभाविक अभिभावक पिता है, जबकि अवैध संतान की स्वाभाविक अभिभावक माँ है। विवाह के बिना वैध संतान नहीं हो सकती और उत्तराधिकार के लिए वैध संतान का होना जरूरी है। इसीलिए विवाह की संस्था को बनाये रखना जरूरी है। इसीलिए धर्म, राज्य, मीडिया, सिनेमा, साहित्य आदि के जरिये विवाह की संस्था को जरूरी बताकर कायम रखा जाता है, अन्यथा उसकी कोई जरूरत नहीं है। स्त्री की संपत्ति के अधिकार विहीनता पर मैत्रेयी पुष्पा का कटाक्ष, "विवाहिता स्त्री जान जाती है कि जमीन जायदाद से लेकर घर-बार की मिल्कियत पिता और पति की होती है। स्त्री केवल दासी है। विरोध की चेतना रोने के रूप में हो सकती है। इसलिए ही

हमारा रोना पिया का मनभावन शगल बनता है। वे अरदास में रोते भक्त को देखकर भगवान की तरह प्रसन्न हो जाते हैं। पुचकारते पुटियाते हुए सीने से लगा लेते हैं; हमारे लिए बराबरी का यही विधान है और स्त्री का यही सौभाग्य है।"[26]

सवाल उठता है कि क्यों विवाह की संस्था स्त्रियों के लिए जरूरी है? उनके सामने तो संपत्ति के उत्तराधिकार की समस्या नहीं है। जब उनके लिए जरूरी नहीं है तो विवाह की संस्था के टूटने या खत्म होने का खतरा इन्हीं से है। अतः उन्हें विवाह के लिए मजबूर करना जरूरी है। उन्हें बचपन से ही यह सिखाया जाता है कि वे स्त्री है। उन्हें पराये घर जाना है। वहाँ जाकर बच्चे पैदा करने है। बच्चे पति की वैध संतान होने चाहिए, इसलिए उन्हें पतिव्रता होना चाहिए। विवाह से पहले कौमार्य भंग हो गया तो पति स्वीकार नहीं करेगा। विवाह के बाद किसी और से संबंध रखा, तो वह व्यभिचार होगा और उसकी बड़ी सख्त सजा मिलेगी। इस तरह स्त्रियों को एक तो शुरु से ही विवाह के लिए मानसिक रूप से ऐसा 'कंडीशड' कर दिया जाता है कि वे विवाह को अपने लिए अनिवार्य समझें।

दूसरा, घर के बाहर का समाज ऐसा बनाया जाता है कि अकेली स्त्री हमेशा असुरक्षित महसूस करें, चाहे पति घर के अन्दर रोज उससे बलात्कार करे। लेकिन उसे बोलने का हक नहीं है। या बोलना उसे सिखाया ही नहीं जाता है। विवाह उनकी 'जानबूझ' कर बनायी गयी 'स्वेच्छा' हो जाता है। जिसका उनके पास कोई विकल्प नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा की टिप्पणी द्रष्टव्य है, "सच मानिये शास्त्र सम्मत विधान में बंधी गृहस्थ औरत जो अपने तन-मन की आकांक्षाओं और सपनों को बेरहमी से कुचलती हुयी परिवार की सुख सुविधा में अपनी ताकत निचोड़ देती है, मेरा मन आज उस औरत से जुड़ने में असहज था। जिस छत के नीचे बैठी हूँ, उसी को पलटने की धुन, रक्षा कवच हटाकर कौन सी स्त्री बच सकी है? सीता तक को लक्ष्मण रेखा लाँघने का परिणाम भूमि समाधि में समाने के रूप में भुगतना पड़ा। चलो, माना जा सकता है कि सीता कुलीन रानी थी, मगर सूर्पनखा? राक्षसी कही जाने वाली उस लड़की ने भाई के राज्य की सीमा लाँधी, अंग भग हुए, अपनी नस्ल में हर औरत को मालिक के बाड़े में भेड़ की तरह रहना है, बरना भेड़िये घेर लेंगे, भेड़िये यानी सामन्ती मूल्य, वे मूल्य जो चाहते हैं कि पंख होते हुए भी हम बतख की तरह चलें।"[27]

इस प्रकार स्त्रियों को मजबूर किया जाता है कि वे विवाह की संस्था के भीतर ही रहें। लेकिन अब स्त्रियाँ समझने लगी है कि बाहरी समाज की असुरक्षा से बचने के लिए वे जिस संस्था के भीतर आती है, वह भी उनके लिए उतनी ही भयावह है, उतनी ही घातक और हत्यारी है। हजारों स्त्रियाँ यह कहकर मार दी जाती है कि उनका किसी परपुरुष से संबंध है, इसलिए वे चरित्रहीन या दुष्यचरित्र है। मैत्रेयी पुष्पा कहती "मेरे शरीर का फैसला मर्दों ने लिया और मुझसे पूछा तक नहीं। सर हिलाना तक निर्लज्जता के हवाले माना। आज कहूँ कि इस आदमी के साथ मेरी देह मेल नहीं खाती तो औरत ही समझाने लगती है– खाना, कपड़ा ही हमारी औकात में आता है, कुत्ते जैसे वफादारी हमारा गुण होना चाहिए।"[28] जबकि लगभग सारी दुनिया में पुरुष को विवाहेत्तर संबंध बनाने की खुली छूट है। वह किसी भी अविवाहित, विधवा या तलाकशुदा स्त्री से संबंध बना सकता है और पत्नी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती है।

उसे लगता है कि विवाह कोई प्राकृतिक व्यवस्था या दैवीय विधि-विधान नहीं, बल्कि मानव निर्मित सामाजिक संस्था है। वह धर्मशास्त्रों में वर्णित नियमों के अनुसार किया जानेवाला कर्मकांड नहीं, बल्कि अपनी परिस्थितियों के अनुसार हमारे द्वारा बनाया जाने वाला एक मानवीय संबंध है। अतः विवाह की संस्था को अधिक लोकतांत्रिक बनाने के लिए स्त्री-पुरुष में भेदभाव न किया जाये। संपत्ति में दोनों का समान अधिकार हो। दोनों का मान-सम्मान बराबर हो और दोनों के बीच सच्चा प्रेम और सच्चा सहयोग हो। जब तक ऐसा नहीं होता, इस संस्था को टूटने से नहीं बचाया जा सकेगा। इसे एक स्त्री को ज्यादा व्यावहारिक समानता देनी होगा। इसके लिए पितृसत्ता को खत्म होना होगा। यह मुश्किल है कि पितृसत्ता बनी रहे और आप विवाह की संस्था को स्त्री के लिए अधिक लोकतांत्रिक और व्यक्तित्व विकास की सीढ़ी बना सकें। दरअसल विवाह, और परिवार केवल परम्परा या संस्कृति का सवाल नहीं, वह अर्थशास्त्र और राजनीति का सवाल भी है। इसमें बड़े निहित स्वार्थ हैं जो परम्पराओं का इस्तेमाल करके स्त्रियों के शोषण को और ज्यादा जटिल बनाते हैं, असमानता का इस्तेमाल करके और ज्यादा शहीद बनाते हैं और स्त्रियों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर को नीचा ही रखने में अपना बहुत बड़ा फायदा देखते हैं। सीमन्तनी उपदेश की लेखिका ने विवाह में स्त्री की इस स्थिति पर अपनी राय दी है, "जब शादी करना चाहो अपनी मर्जी के मुताबिक पसंद कर लो। बेसब्री को काम में न लाओ क्योंकि बुरे खाबिन्द से बगैर खाबिंद रहना अच्छा है। विवाह स्त्रियों की प्राथमिकता नहीं हो सकता– "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।"[29]

संदर्भ :

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम : एक दृष्टि, श्री भगवान श्रीवास्तव, पृ.23
2. एगेल्स, परिवार, निजी संपत्ति राज्य की उत्पत्ति, पृ.46–49
3. भारतवर्ष में विचार और परिवार : के. एम. कपाड़िया, पृ.39
4. वही, पृ.39
5. वही, पृ.39
6. भारतवर्ष में विचार और परिवार : के. एम. कपाड़िया, पृ.57
7. के.एम. कपाड़िया, भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.192
8. के.एम. कपाड़िया, भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.204

9. जाकिया रकत : मुस्लिम विवाह : सिद्धांत और व्यवहार, पृ. 39
10. इस्लामी कानून, पृ. स. 269
11. के.एम. कपाड़िया, भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, पृ.209
12. डॉ. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, पृ. 18
13. के.एम. कपाड़िया – भारतवर्ष में विवाह और परिवार, पृ. 83
14. वही
15. कुरान, 4: 24
16. सरला महेश्वरी, नारीप्रश्न, पृ.103
17. सीमोन, स्त्री उपेक्षिता, पृ. 217
18. अरविन्द जैन, न्यायसेत्रे : क्षेत्रे, पृ.33
19. सीमोन द वऊबा, स्त्री उपेक्षिता (प्रभा खेतान), पृ.179
20. एगेल्स, परिवार, निजी संपत्ति राज्य की उत्पत्ति, पृ.46–49
21. के.एम. कपाडिया – भारतवर्ष में विाह और परिवार, पृ. 67
22. मैत्रेयी पुष्पा – कथा साहितय में सतीपूजा, हंस, जुलाई 04, पृ. 37
23. जैनेन्द्र, जीवन, समय और स्वतंत्रता, पृ.145
24. प्रदीप सक्सेना, एक गन्दे विषय के कुछ अच्छे पहलू, आशय, पृ. 100
25. मेहता लज्जाराम शर्मा, आदर्श हिन्दू' तीसरा भाग, पृ.82
26. मैत्रेयी पुष्पा, कथा साहित्य में स्त्री पूजा, लेख–हंस जुलाई 2004, पृ.36
27. मैत्रेयी पुष्पा, कथा साहित्य में स्त्री पूजा, लेख–हंस जुलाई 2004, पृ.36
28. मैत्रेयी पुष्पा, कथा साहित्य में स्त्री पूजा, लेख–हंस जुलाई 2004, पृ.37
29. अज्ञात हिन्दू औरत : सीमन्तनी उपदेश, सं. धर्मवीर भारती, पृ. 74

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन

राजीव सिंह
एम.एड्., नेट, पी.एच–डी. (शिक्षाशास्त्र)
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन **माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन** करना है। अध्ययनकर्त्ता ने अपने अध्ययन में सर्वेक्षणात्मक अध्ययन विधि का प्रयोग किया है। जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् सभी शिक्षक–शिक्षिकाओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 100 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया गया है। उपकरण के रूप में स्वनिर्मित आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता मापनी का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकी विश्लेषण के लिए प्रतिशतीय विश्लेषण का प्रयोग किया है। विश्लेषणोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये– माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता बहुत उच्च है।

मुख्य शब्द– माध्यमिक विद्यालय, शिक्षक–शिक्षिका, संचार माध्यम, जागरूकता

प्रस्तावना–

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति तब ही सम्भव है जब शिक्षण कार्य बालक की रूचि, रूझान, योग्यता व अभिक्षमता के अनुसार किया जाए अर्थात् बालक की वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर किया जाए। प्रत्येक बालक एक दूसरे से भिन्न होता है उनमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती है प्रत्येक बालक की रूचि अभिक्षमता तथा अधिगम आवश्यकताएं भिन्न–भिन्न होती हैं। अतः बालक के सर्वांगीण विकास हेतु यह आवश्यकता है कि शिक्षण वैयक्तिक भिन्नता के अनुरूप हो।

वर्तमान समय में शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षण मशीन कम्प्यूटर सहायक अनुदेशन, रेडियो, बहुमाध्यम उपागम आदि का प्रयोग किया जा रहा है। शिक्षण–अधिगम को सरल, रूचिकर व प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न दृश्य–श्रव्य सामग्रियों, यथा–ओवरहेड प्रोजेक्टर, टी0वी0 आदि का प्रयोग किया जा रहा है। रूचि का सृजनात्मकता से सीधा सम्बन्ध है। बालक की जिस वस्तु–क्रिया या व्यक्ति में रूचि होती है। वह उसी कार्य को अच्छे ढंग से कर सकता है तथा कुछ नया या मौखिक कार्य करने का प्रयास करता है। संचार रूचि जाग्रत करने का महत्वपूर्ण साधन है।

वर्तमान में संचार माध्यमों का विकास तीव्र गति से हो रहा है किन्तु शिक्षा जगत में संचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण है और इसके प्रयोग में अभी हमारा देश कही पीछे है। संचार माध्यमों के द्वारा शिक्षा को जोड़ने और संचार माध्यमों के द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षित करने हेतु भारत देश विकासशील देशों की श्रेणी में से एक है। हमारे देश में संचार माध्यमों के द्वारा शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रयास जारी ही था कि सन् 2019 में कोविड महामारी ने पूरे देश–विदेश को एक जगह रोक दिया जिससे सामान्य जन–जीवन के साथ–साथ आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक इत्यादि गतिविधियों पर भी ताला लग गया।

WHO ने 11 मार्च 2020 को कोविड–19 को एक महामारी घोषित किया। भारत में कोविड–19 का पहला केस 30 जनवरी 2020 को केरल में पाया गया, जो कि वुहान से आया था (Wikipedia)।

भारत में कोविड–19 के कारण पहली मृत्यु 12 मार्च 2020 को हुयी। इसने जून 2020 तक दुनिया के 4. 5 मिलियन से अधिक लोगों को अपने प्रभाव में ले लिया था। UNESCO की माने तो इसने विश्व के समस्त छात्र जनसंख्या के 90 प्रतिशत तक की जीवन शैली को अपने प्रभाव में ले लिया था। समस्त दुनिया के लगभग 120 करोड़ से अधिक छात्र एवं युवा इससे प्रभावित हुए। भारत में 32 करोड़ से अधिक छात्र कोविड–19 के लिए निर्धारित सरकारी बाधाओं एवं व्यापक लॉक–डाउन से प्रभावित हुए। यूनेस्को की रिपोर्ट के आधार पर भारत के दो सर्वाधिक प्रभावित छात्र समूह रहे, पहला प्राइमरी स्तर के छात्र (14 करोड़) दूसरे माध्यमिक स्तर के छात्र (13 करोड़)।

कोविड–19 की भयावहता के दृष्टिगत WHO ने सामाजिक दूरी बनाने के जो दिशानिर्देश जारी किये उसके परिणामस्वरूप पूरी दुनिया में लॉक–डाउन किया जाने लगा। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय तक बन्द किये जाने लगे। सभी कक्षाएँ अचानक बंद कर दी गयी, यहाँ तक की परीक्षाओं को अचानक बीच में ही रोक दिया गया, प्रवेश परीक्षाओं की सारी गतिविधियाँ बंद कर दी गयी।

महामारी के प्रसार को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक कदम उठाये गये। 16 मार्च 2020 को भारत सरकार ने पूरे भारत वर्ष की सभी शिक्षण संस्थाओं को पूर्ण बन्द करने का आदेश दिया। सी.बी.एस.ई., आई.सी.एस.ई. के साथ–साथ सभी परीक्षा बोर्डों ने तथा समस्त विश्वविद्यालयों ने अपनी परीक्षाएँ स्थगित कर दी। संघ लोक सेवा आयोग, लोक सेवा आयोग (समस्त राज्य सरकार), स्टाफ सलेक्शन कमीशन, उच्चत्तर शिक्षा सेवा चयन आयोग, माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड के साथ–साथ सभी परीक्षा नियामकों ने अपने कार्यक्रम तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिये। यहाँ तक कि न्यायालयों में ताला लग गया, सरकारी आदेश के अधीन प्रशासन ने अनुपालन शुरू किया तो सड़के वीरान हो गयी। 22 मार्च 2020 को भारत सरकार ने एक दिन का जनता कर्फ्यू घोषित किया, उसके बाद राज्य सरकारें एवं केन्द्र सरकार ने मिलकर विभिन्न स्तरों पर लॉक–डाउन लगा दिया। भारत सरकार ने महामारी के दृष्टिगत लॉक–डाउन लगा दिया। भारत सरकार ने महामारी के दृष्टिगत लॉक–डाउन को समय–समय पर विस्तारित भी किया एवं सुरक्षा एवं बचाव कार्य को तेजी से सक्रिय किया। 19 जून 2020 को लॉक डाउन 6.00 (प्रभावकाल 1 जुलाई 31 जुलाई 2020) में जनता को कुछ राहत पहुँचाने के उद्देश्य से काफी ढील (स्वतंत्रता) दी गयी। परन्तु इस दौरान भारत सरकार एवं लगभग सभी राज्य सरकारों ने शैक्षिक संस्थाओं को बंद रखा एवं ऑनलाइन कक्षाओं के संचालन की प्रविधियों को अपनाना शुरू किया।

इन प्रयासों के कारण शिक्षा में एक नयी प्रकार की एवं उत्तम किस्म की प्रवृत्ति देखने को मिली जो कि अब डिजिटल मोड में कार्य कर रही थी। इस महामारी के दौर में ऑन लाइन लर्निंग–टीचिंग सबसे सफल विकल्प बनके उभरी (प्रवृत जेना, 2020b)। और भारत सरकार की डिजिटल इण्डिया मुहिम की प्रासंगिकता भी प्रमाणित हुयी। तकनीकि आधारित शिक्षा ने परम्परागत शिक्षा की तुलना में सार्थक परिणाम दिये। भारत सरकार ने परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए डिजिटल तकनीकि तक लोगों की पहुँच को आसान बनाने के लिए अनेक व्यवस्थायें की। शैक्षिक चैनेल, ऑन लाइन पोर्टल, (टी. वी. के माध्यम से), रेडियो के शैक्षिक कार्यक्रम जैसी अनेक सुविधाओं का विस्तार किया गया। लॉक डाउन के दौरान छात्रों एवं शिक्षकों ने व्यापक रूप से सोशल मीडिया उपकरणों का प्रयोग किया जैसे– व्हाट्सऐप, जूम, गूगल मीट, टेलीग्राम, यू–ट्यूब लाइब, फेसबुक लाइव आदि।

समस्या कथन–

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन।

उद्देश्य–

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

परिकल्पना–

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन विधि–

अध्ययनकर्त्ता ने अपने अध्ययन में सर्वेक्षणात्मक अध्ययन विधि का प्रयोग किया है।

जनसंख्या–

जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् सभी शिक्षक–शिक्षिकाओं को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श–

न्यादर्श के रूप में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 100 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि से किया गया है।

उपकरण –

उपकरण के रूप में स्वनिर्मित आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विश्लेषण–

सांख्यिकी विश्लेषण के लिए प्रतिशतीय विश्लेषण का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष–

- 82% शिक्षकों को यह ज्ञान है कि रेडियो, टेलीविजन, मोबाइल, कम्प्यूटर इत्यादि संचार माध्यम है।
- 82% शिक्षकों को ज्ञान है कि स्मार्ट फोन आधुनिक संचार का सबसे उपयुक्त माध्यम है।
- 80% शिक्षकों को यह ज्ञान है कि आधुनिक संचार माध्यम ने गति, गुणवत्ता तथा विविधता तीनों में बदलाव किया है।
- 87% शिक्षकों को यह ज्ञान है कि आधुनिक संचार माध्यम ने संचार माध्यम को तीव्र किया है।
- 61% शिक्षकों को यह ज्ञान है कि आधुनिक संचार माध्यम सक्षम इण्टरनेट पर निर्भर है।
- 92% शिक्षकों को यह ज्ञान है कि इस समय भारत में 4जी जनरेशन का मोबाइल नेटवर्क कार्य कर रहा है।
- 97% शिक्षकों को यह मालूम है कि वर्तमान में 5जी लेवल के स्पेक्ट्रम की नीलामी की प्रक्रिया चल रही है।
- 90% शिक्षकों को यह मालूम है कि ई–मेल को इलेक्ट्रिानिक मेल कहा जाता है।
- 93% शिक्षकों को जानकारी है कि ई–मेल के द्वारा वीडियो, शाब्दिक तथा लिखित तीनों प्रकार के संवाद किया जा सकता है।
- 95% शिक्षकों को यह जानकारी है कि ई–मेल का सही एड्रेस क्या होता है।
- 73% शिक्षकों को एस.एम.एस. का पूरा नाम शार्ट मैसेज सर्विस है, की जानकारी है।
- 81% शिक्षकों को यह मालूम है कि इण्टरनेट का उपयोग मोबाइल, कम्प्यूटर एवं टेलीविजन तीनों में कर सकते हैं।
- 82% शिक्षकों को यह जानकारी है कि वीडियो कॉलिंग के लिए कम्प्यूटर या मोबाइल के साथ डिजिटल कैमरा एवं इण्टरनेट कनेक्शन की जरूरत होती है।

- 68% शिक्षकों को यह जानकारी है कि याहू डॉट काम एक ई–मेल प्लेटफार्म है जिसके द्वारा ई–मेल की प्रक्रिया की जा सकती है।
- मात्र 64% शिक्षकों को यह जानकारी है कि यू–ट्यूब सोशल मीडिया नहीं है जबकि फेशबुक, इन्स्ट्राग्राम एवं व्हाट्सएप सोशल मीडिया है।
- 78% शिक्षकों को यह जानकारी है कि व्हाट्सएप के माध्यम से ऑडियो, वीडियो एवं रिटेन तीनों तरह के डाटा ट्रान्सफर होते हैं।
- 73% शिक्षकों को यह मालूम है कि फेशबुक एक सोशल मीडिया साइट है।
- 66% शिक्षक में जागरूकता है कि व्हाट्सएप डिजिटल संचार माध्यम है।
- 46% शिक्षकों को जानकारी है कि जूम एक वीडियो कान्फ्रेसिंग मीडियम है।
- 72% शिक्षकों को जानकारी है कि गूगल मीट एक वीडियो कान्फ्रेसिंग मीडियम है।
- 78% शिक्षकों को यह जानकारी है कि मैसेन्जर के द्वारा मैसेज भेजना, ऑडियो एवं वीडियो कॉल अर्थात् तीनों प्रकार के कार्य किये जा सकते हैं।
- 50% शिक्षकों को ही यह जानकारी है कि स्काईपे का उपयोग वीडियो कॉल करने में किया जाता है।
- 41% शिक्षकों को ही यह जानकारी है कि बिना इण्टरनेट कनेक्शन के द्वारा केवल साधारण कॉल किया जा सकता है।
- 41% शिक्षक जागरूक है कि इण्टरनेट ऑडियो, वीडियो तथा ऑडियो विजुअल तीनों कार्यों के प्रयोग में आता है।
- 76% शिक्षकों की ही यह जानकारी है कि टेलीग्राम एप्प एक सोशल मीडिया प्लेटफार्म है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूकता बहुत उच्च है।

सुझाव–

- शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक संचार माध्यमों का अपना एक अलग स्थान है जिसके द्वारा आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से व्यवस्थित कर विद्यार्थियों को शिक्षित करने में अहम् भूमिका निभा सकते हैं।
- वर्तमान में आधुनिक संचार माध्यमों की शिक्षा में आवश्यकता को देखते हुए सरकार द्वारा शिक्षकों को आधुनिक संचार माध्यमों के बारें में सही जानकारी हेतु प्रशिक्षण का प्रावधान किया जाना चाहिए जिससे वे आधुनिक संचार माध्यमों के बारें में जानकारी प्राप्त कर उनका शिक्षण क्षेत्र में सही तरीके से प्रयोग कर विद्यार्थियों को शिक्षित कर सके।
- शिक्षकों द्वारा आधुनिक संचार माध्यमों की जानकारी एवं प्रयोग हेतु ग्रीष्मावकाश में प्रशिक्षण हेतु प्रावधान किया जाना चाहिए जिससे वे आधुनिक संचार माध्यमों के प्रति जागरूक एवं जानकार हो सके तथा उनका प्रयोग करने में सक्षम हो सके।
- आधुनिक संचार माध्यमों का प्रयोग अनिवार्य करना चाहिए जिससे शिक्षकों के साथ–साथ विद्यार्थियों में भी जागरूकता एवं व्यवहारिक प्रयोग करने की सक्षमता हो सके।

- आज के युग में आधुनिक संचार माध्यम सभी की आवश्यकता एवं जरूरत बन गयी है ऐसे में शिक्षा व्यवस्था भी संचार माध्यमों से पूर्णरूप से जुड़ चुकी है। अतः संचार माध्यमों के द्वारा पाठ्यक्रम को पूर्णरूप से जोड़कर बच्चों को शिक्षित करने का प्रावधान किया जाना अति आवश्यक है क्योंकि वर्तमान में ऐसी विकट परिस्थिति देखने को मिल चुकी है जिसमें सभी संस्थानों को लगभग एक साल तक बंद किया जा चुका है और बच्चों की शिक्षा बाधित हो चुकी है।
- वर्तमान में परम्परागत शिक्षण व्यवस्था जहाँ एक तरफ उच्च मानी जाती थी वहीं कोविड–19 के बाद से ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है जिसके कारण आज विद्यार्थियों में ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था के प्रति जागरूकता एवं प्रयोग बढ़ा है। अतः ऐसे में ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता सर्वोपरि हो गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- रटोरिया, शालिनी (2019). सोशल मीडिया का उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता, आवासीय पृष्ठभूमि एवं उनकी अन्तर्क्रिया के संदर्भ में प्रभाव का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन, *रिसर्च रिव्यू इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिपलनरी*, वॉ0 4, इश्शू–4, पृ0 653–656
- ली, अरूधंती बी. (2018). अवरनेस एण्ड इम्पैक्ट ऑफ इन्फार्मेशन कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी ऑन द एकेडेमिक परफार्मेन्स ऑफ द स्टूडेन्ट्स ऑफ सारदा विलास टीचर्स (बी.एड.) कॉलेज, मैसूर : ए स्टडी, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ लाइब्रेरी एण्ड इन्फार्मेन्शन स्टडीज*, वॉ0 8(4). पृ0 29–35
- वर्मा, जग प्रसाद (2016). सिंगरौली जिले में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) समर्थित शिक्षण की प्रभावकारिता का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एजुकेशनल रिसर्च*, वॉ0 1, इश्शू–6, पृ0 14–16
- शर्मा, विवेक एवं गोदारा, राजेन्द्र (2020). शिक्षक शिक्षा में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव का अध्ययन, *इण्टनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, वॉ0 6(7). पृ0 70–72
- सरकार, तन्मय (2021). अवरनेस एण्ड एप्लीकेशन ऑफ इन्फार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी इन एजुकेशन एमंग द हायर सेकेण्डरी स्टूडेन्ट, वॉ0 6, इश्शू–1, पृ0 85–90
- सांगबिन (2004). मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में स्वायत्त अधिगम दशाओं का सर्वेक्षण चीन के रूडांग ब्रान्च स्कूल ऑफ नॉन टांग रेडियो एण्ड टेलीविजन यूनिवर्सिटी (आर.टी.बी.यू.)।
- साहू, पी0के0 एवं मुछाल, एम0के0 (2000). *राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय के दूरस्थ शिक्षण अधिगम उपागमों की उपयुक्तता का अध्ययन,* भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 19, अंक 2, अक्टूबर।
- सुराणा, अजय एवं बिष्ट, ज्योत्स्ना (2017). सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी से शिक्षा का बदलता स्वरुपः एक अध्ययन, *एशियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च टेक्नोलॉजी*, वॉ0 3(7). 31–34
- सिंह एवं कुमार (2018). शिक्षक–शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी : उपयोगिता, समस्याएँ एवं सुझाव, *रिसर्च रिव्यूलुशन इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एण्ड मैनेजमेण्ट*, वॉ0 5, इश्शू–5, पृ0 5–11
- सिंह एवं सिंह (2016). आगरा जिले के माध्यमिक शिक्षा स्तर पर शैक्षिक तकनीकी प्रभाव का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिपलनरी एजुकेशन एण्ड रिसर्च*, वॉ0 1, इश्शू–6, पृ0 64–67

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

कथा आधारित सिनेमा में विस्थापन

बृजेश कुमार
शोधार्थी
म.गां.अं.हिं.वि.वि.वर्धा, महाराष्ट्र
प्रवक्ता हिंदी, उत्तर प्रदेश सरकार

साहित्य का सिनेमा से बहुत गहरा रिश्ता है। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में विस्थापन और उसके बदलते स्वरूप का बहुत प्रामाणिक चित्रण हुआ है। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त विस्थापन की कथा का और उसके बदलते स्वरूप का हिंदी सिनेमा में बहुत प्रामाणिक चित्रांकन हुआ है। हिंदी सिनेमा में चित्रांकित विस्थापन की कथा ने भारतीय जनमानस को बहुत गहरे प्रभावित किया है। सिनेमा एक कला है। "कला, साहित्य और सिनेमा ये तीनों आपस में इस रूप से जुड़े हुए हैं कि इन तीनों का पृथक् अस्तित्व हो ही नहीं सकता–खासकर सिनेमा का। सिनेमा और साहित्य ऐसे होते हैं जिन पर दो राष्ट्रों की सीमाएं भी कभी बाधक नहीं बन पातीं।"[1] ये दोनों विधाएं तमाम देशों की सरहदें पार कर अपना अनन्त वर्तमान रचती हैं।

आज लगभग पूरी दुनिया 'धार्मिक युद्ध' और 'विकास जनित युद्ध' के गिरफ्त में हैं। इन युद्धों के परिणामस्वरूप "अकेले 2013–14 में कोई पांच करोड़, बारह लाख लोग अपनी–अपनी जगहों से विस्थापित हुए हैं।"[2] आज तुर्की, लेबनान, इथोपिया, जार्डन सहित दुनिया के तमाम देशों में लोग इन दोनों प्रकार के युद्धों से घरों, गांवों और देशों के तबाह हो जाने के कारण विस्थापित होकर जान बचाने के लिए भटक रहे हैं। विस्थापितों की संख्या लगतार बढ़ती जा रही है। "इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि युद्धों में कमी नहीं आ रही है और बहुत सारे देश लगातार अशान्ति के चपेट में हैं। इस संकट को बढ़ाने में बड़े मुल्क खास तौर पर अमेरिका तथा उसके मित्र देशों की बड़ी भूमिका है। दुनिया पर अपना वर्चस्व कायम करने और संसाधनों पर कब्जा करने की प्रवृत्ति लगातार युद्ध की परिस्थितियां निर्मित कर रही है।"[3] जिसके कारण विस्थापन की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने ऐसे हालात पैदा कर दिए हैं कि देश के अन्दर ही लोगों को जल, जंगल, जमीन और अपना घर–बार छोड़कर दर–ब–दर भटकना पड़ रहा है। तीसरी दुनिया के देश इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हैं।

भारत जैसे देश में जहां एक तरफ, भारत–पाकिस्तान विभाजन के दौरान उपजे दंगों के कारण लोग बहुत बड़ी संख्या में विस्थापित जीवन गुजारने को मजबूर थे; वहीं दूसरी तरफ, साम्राज्यवादी पूंजी विस्तार और उदारीकरण, निजीकरण की प्रक्रिया ने इस समस्या में 'कोढ़ में खाज' जैसी स्थिति पैदा कर दी है। साम्प्रदायिक दंगों के कारण लोगों का घर–द्वार उजड़ा, देश छूटा। प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा के कारण लोगों को अपनी जमीन से खदेड़ा गया। कम्पनी–फैक्ट्री को जबरदस्ती लगाने के लिए लोगों को अलग–अलग बहानों से उजाड़ा जा रहा है। बेरोजगारी में लोग तेजी से बड़े होते शहरों की तरफ भाग रहे हैं। घर से बेघर होकर किस तरह लोग ईंट–भट्ठों पर, सड़कों के किनारे, उजड़ी हुई रेल पटरियों पर, फ्लाईओवर के नीचे और न जाने कहां–कहां और किन–किन परिस्थितियों में जीवन जीने के लिए मजबूर हैं, इसका बेहद जीवन्त और प्रामाणिक चित्रण हिंदी कहानियों और उपन्यासों में हुआ है। इन कहानियों–उपन्याासों में वर्णित कथाओं को आधार बनाकर हिंदी सिनेमा में भी विस्थापितों के जीवन का बहुत जीवन्त चित्रण हुआ है। अन्य विधाओं की तरह सिनेमा ने भी विस्थाापन की त्रासदी को सूक्ष्मता से चित्रित किया हैं।

विस्थापितों की ज़िन्दगी और बदलते पूंजीवादी दौर को आधार बनाकर ढेर सारी जीवन्त फिल्में बनीं हैं। विस्थापितों के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली फिल्मों में गर्म हवा, पिंजर, दो बीघा जमीन, पार, गमन, घरौंदा, चक्र, द स्लिम डॉग मिलिनेयर, मम्मो, कोमल गंधार, मेघे ढंका तारा, आक्रोश, रामजी

लंगड़ेवाले, नीचा नगर, तमस, ट्रेन टू पाकिस्तान, गदर–एक प्रेम कहानी, ख्याल–दर्पण, हिना, अर्थ 1947, ब्लैक बोर्डस जैसी फिल्में अपना विशेष महत्व रखती हैं। यदि हम विस्थापन को अभिव्यक्त करती फिल्मों का वर्गीकरण करें तो इन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. पहला वर्ग, विभाजन की त्रासदी पर आधारित फिल्मों का है।

2. दूसरा वर्ग, जातीय हिंसा पर आधारित फिल्मों का है।

3. तीसरा वर्ग, स्त्री विस्थापन (पितृसत्ता) पर आधारित फिल्मों का है।

4. चौथा वर्ग, विकासजनित विस्थापन पर आधारित फिल्मों का है।

इन चारों वर्गों में से प्रथम वर्ग की फिल्मों में, विभाजन से उत्पन्न विस्थापन का सबसे ज्यादा और सबसे जीवन्त चित्रण हुआ है। जिन फिल्मों ने विस्थापन के इस स्वरूप से हमारी संवेदना को झकझोर दिया उनमें गर्म हवा, पिंजर, तमस, मम्मो, अर्थ 1947, ख्याल–दर्पण, ट्रेन दू पाकिस्तान, मेघे ढंका तारा जैसी फिल्में प्रमुख हैं। ये फिल्में दर्शकों के स्मृतिपटल पर सदा के लिए अपनी छाप छोड़ गयीं। एम.एस. सथ्यू निर्देशित 'गर्म हवा' फिल्म के नायक 'सलीम मिर्जा' एक ऐसे मुसलमान हैं जो विभाजन के समय पाकिस्तान न जाकर भारत में रहने का निर्णय लेते हैं। मुसलमान होने के कारण उन्हें बैंक से लोन मिलने में अनेक मुश्किलें आती हैं; अन्ततः उन्हें पूर्वजों की हवेली से बेदखल होना पड़ता है। पूर्वजों की हवेली से अम्मा का लगाव, उनका छिप जाना, उनको लड़खाने से उठाकर उन्हें किराये के मकान में ले जाने के लिए पालकी में बैठाना और पूर्वजों का घर न छोड़ने के लिए उनकी छटपटाहट फिल्म में विस्थापन की वेदना को मार्मिक स्तर तक कारुणिक बना देता है। "धर्म और राष्ट्र'' के नाम पर नफ़रत की आग से लोग किस कदर बेघर होते हैं, इसे फिल्म के शुरू में मुसाफिरों से ठसाठस भरी रेलगाड़ी के जरिए दिखाया गया है।"[4] "इस विभाजन के मूल में संकीर्ण साम्प्रदायिकता और सत्ताल के प्रति लोलुप महत्वाकांक्षा थी।"[5] गर्म हवा फिल्म में सलीम मिर्जा, अम्मा, काजिम मिर्जा बेटी अमीना, बेटे सिकन्दर मिर्जा, बाकर मिर्जा, काजिम और शमशाद प्रमुख पात्र हैं। इन सभी पात्रों का जीवन और उनके जीवन की विसंगतियां मिलकर विभाजन की त्रासदी का वर्तमान और भविष्य का आख्यान बन जाता है। सलीम मिर्जा हिन्दू–मुस्लिम एकता के पक्षधर थे, तो पाकिस्ताान नहीं गये थे। आज़ाद भारत में देखते ही देखते उनका जूता बनाने का कारोबार मंद पड़ता गया। वो अपने ही कारखाने में कारीगर की हैसियत से काम करने लगे। उन्हें जासूस बताकर गिरफ्तार कर लिया गया और एक दिन दंगे में उनका कारखाना जलाकर राख कर दिया जाता है। आज़ाद भारत में इतनी ज्यादतियों के बाद एक दिन वो यह कहते हुए पाकिस्तान चले जाते हैं कि भारत में मुसलमान भिखारी बनकर रह सकता है, व्यापारी बनकर नहीं। यह आज़ाद भारत में विस्थापितों का दर्द है जो फिल्म में पूरी संवेदना के साथ चित्रित हुआ है।

बाकर मिर्जा नए जमाने के युवक हैं। वो नए जमाने के युवकों की बदलती मानसिकता, नैतिकता के प्रतीक हैं। 'सिकन्दर मिर्जा' यानि सलीम मिर्जा के छोटे बेटे को सभी योग्यताओं के बावजूद नौकरी नहीं मिलती। उसका जीवन सामाजिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक स्तर पर बदलते भारत का दर्पण है।

पिता 'सलीम मिर्जा' और घर की आर्थिक तंगी के बीच बेटी 'अमीना' का काजिम से प्रेम पनपता है लेकिन उनके विवाह का सपना परिस्थितियों के समंदर में डूब जाता है। काज़िम मिर्जा अपने अब्बा के साथ पकिस्तान चले जाते हैं और जब लौट कर आते हैं तो पासपोर्ट न होने के कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। टूटी–बिखरी अमीना न चाहते हुए भी अपने ज़िन्दगी की डोर अपनी फूफी के बेटे 'शमशाद' से बांध लेती है। वह शमशाद भी एक दिन झूठी दिलासा दे कर पाकिस्तान चला जाता है, वहीं उसकी शादी तय हो जाती है। अपने बांझ–प्रेम से त्रस्त अमीना ब्लेट से अपने हाथ की नस काट कर आत्महत्या कर लेती है। फिल्म के अंत में बेहतर ज़िन्दगी और सुन्दर समाज की उम्मीद में सलीम मिर्जा अपने बेटे के साथ हमारी मांगे– 'रोज़ी–रोटी और मकान' का नारा लगाते एक जुलूस में शामिल हो जाते हैं। यह किसी एक सलीम मिर्जा और उसके परिवार की दारूण कथा नहीं है, यह तो विभाजन से उपजे समस्त विस्थापितों का दर्द है, जो हमें अंदर ही अंदर टीसता रहता है । इस

तरह "गर्म हवा फिल्म ऊपर से अपने रूपाकार में सरल जरूर दिखती है लेकिन वस्तुतः यह एक जटिल और संश्लिष्ट फिल्म है। जिसमें उस समय का पूरा समाज और उसका समय समाया है।"[6] डॉ. चन्द्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा निर्देशित फिल्म 'पिंजर', अमृता प्रीतम की पंजाबी रचना 'पिंजर' पर आधारित है। इसके प्रमुख पात्र पूरो, रामचन्द्र, रशीद, त्रिलोक और पूरो के माता–पिता तथा रशीद के परिवारीजन हैं। पूरी फिल्म सामन्ती झगड़ों, साम्प्रदायिक उन्माद और भारत–पाकिस्तान विभाजन के परिवेश के इर्द–गिर्द घूमती है। जिसमें विभाजन के दौरान स्त्री पीड़ा की बहुत सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दूसरे मुल्क और दूसरे समाज में जाकर पूरो का अपना नाम तक खो जाता है। फिल्म में एक विस्थापित स्त्री अपना वजूद खोजती भटक रही है। फिल्म में स्त्री पीड़ा के साथ–साथ विभाजन के दौरान अपनों से बिछुड़ गए समस्त लोगों की पीड़ा की बहुत सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "इस फिल्म में विभाजन की पृष्ठभूमि बहुत ही मार्मिकता से व्यक्त है।"[7]

'पिंजर' पूरो नाम की एक लड़की की कहानी है। विभाजन के पहले वह आज के पाकिस्ताान के सीमावर्ती गांव में रहती है। समृद्ध जमींदार की बड़ी बेटी पूरो की शादी रामचन्द्र से होनी थी, लेकिन उसके पहले ही रशीद उसका अपहरण कर लेता है। रशीद से उनकी पुश्तैनी दुश्मनी है। पूरो के परिवार ने कभी रशीद के परिवार की एक औरत को अगवा कर बेइज्जत किया था। रशीद पर दबाव था कि वह उसका बदला ले। पूरो के साथ रहता–रहता रशीद उससे प्याार करने लगता है। एक रात पूरो रशीद के घर से भाग कर अपने माता–पिता के घर आ जाती है, लेकिन उसके माता–पिता उसे नहीं अपनाते। पूरो उदास मन से रशीद के पास लौट जीती है। रशीद उससे कोई सवाल नहीं करता। इसी बीच विभाजन हो जाता है। विभाजन की त्रासदी में उसके मंगेतर की बहन खो जाती है। मंगेतर के बहन की तलाश में पूरो द्वारा किये जाने वाले प्रयास और उन प्रयासों के छायांकन ने स्त्री के कद और फिल्म को बहुत उठा दिया है। पूरो रशीद की मदद से मंगेतर की बहन खोजने और छुड़ाने में सफल हो जाती है। फिल्म का वह दृश्य जब पूरो अपने मंगेतर रामचन्द्र की बहन को पाकिस्ताान की सीमा पार कराने बार्डर पर लेकर पहुंचती है और उसका परिवार बांह फैलाए पूरो का इन्तजार कर रहा होता है, लोग एक दूसरे से मिलने के लिए जिस तरह बेकरार थे, वो दृश्य समस्त विस्थापितों की पीड़ा को अवर्णनीय स्तिर तक बढ़ा देता है। दर्शक घायल परिन्दों की तरह छटपटाने लगते हैं।

फिल्म की कहानी अपने अन्तिम दृश्य में उससे भी ज्यारदा मर्मान्तक है। जब पूरो अपने मंगेतर की बहन को उसके घर पहुंचाने के लिए उसे लेकर बार्डर पर पहुंचती है, तो बार्डर के एक तरफ, पूरो से मिलने के लिए तड़पता उसका पूरा परिवार बांह फैलाये खड़ा है, रामचन्द्र उसे स्वीकार करना चाहता है और दूसरी तरफ, मंगेतर की बहन को यहां तक लाने में मददगार रशीद खड़ा है, जो पूरो को सच्चा प्रेम करने लगा है। ऐसी परिस्थितियों में जब शायद पूरो के बिना रशीद बेज़ान हो जाता, उस समय पूरो द्वारा रशीद का हाथ पकड़ लेना दंगों में इंसानियत की जीत है। पूरो द्वारा रशीद का हाथ पकड़ लेना, प्रेम और स्त्री दोनों को बहुत ऊँचा उठाकर समय की सीमा से पार अनन्त तक पहुंचा देता है। फिल्म की कहानी कहती है कि विस्थापन की त्रासदी इंसानियत को खत्म नहीं कर सकती, इंसानियत हर बुरे समय पर भारी पड़ती है। मनुष्य विस्थापन का भी इलाज निकाल लेगा और इंसानी फितरत में आगे निकल जाएगा। दीपा मेहता की फिल्मा 'अर्थ 1947' में यह दिखाया गया है कि विभाजन के दौरान "किस तरह एक साथ रहने वाले लोग एक–दूसरे के खून के प्यासे हो गए थे। एक पारसी के घर पर काम करने वाले अलग–अलग धर्मों के लोग दोपहर को एक साथ वक़्त बिताते थे, एक–दूसरे के सुख–दुख से वाकिफ थे, लेकिन विभाजन के फैसले ने उनके आपसी सम्बन्धों को बिगाड़ दिया।"[8] इस नज़रिए से यह एक महत्त्वपूर्ण फिल्म है। 'मम्मो', 'तमस' और 'हिना' जैसी फिल्में विभाजन, विस्थापन, तात्कालिक परिस्थितियां, बदलते समाज और विस्थापितों के दुखों को समझने और उससे कुछ सीख लेने के नज़रिए से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। दूसरा वर्ग, जातीय हिंसा और उससे होने वाले विस्थापन पर आधारित फिल्मों का है। भारत वर्णव्यवस्था आधारित बसाहट वाला समाज है। इसमें वर्णों और जातियों का संघर्ष लगातार होता रहा है लेकिन आज़ादी के बाद आधुनिक चेतना के विस्तांर ने श्रमजीवी और अछूत मानी जाने वाली जातियों में चेतना की धार को तेज किया, परिणामस्वरूप शोषक जातियां और हिंसक हो गयीं। शोषक जातियों द्वारा की जाने वाली हिंसा और उसके बदले में होने वाली प्रतिहिंसा से बहुत बड़ी संख्याा में विस्थापन हुआ है। हिंसा–प्रतिहिंसा के इस घात–प्रतिघात

से दलितों और आदिवासियों का ही बड़ा हिस्सा विस्थापन का शिकार हुआ है। हिंदी सिनेमा में प्रकाश झा की फिल्म 'दामुल', मुजफ्फर अली की फिल्म 'गमन' और गौतम घोष की 'पार' जैसी फिल्मों में जातीय हिंसा से उत्पन्न विस्थापन का प्रामाणिक चित्रण हुआ है। मुजफ्फर अली की फिल्म 'गमन' के नायक गुलाम हसन है, जो आठवीं पास बेरोजगार है। गांव का ज़मींदार, गुलाम हसन के पिता की ज़मीन बेईमानी से हथिया लेता है। ऐसे में उसे अपने मित्र लल्लू लाल तिवारी की याद आती है, जो बम्बई में रहता है। एक दिन गुलाम हसन अपना गांव छोड़कर रेलगाड़ी में बैठकर बम्बई चला जाता है। गौतम घोष की फिल्म 'पार' में जातीय हिंसा से उपजा करुण विस्थापन व्यक्त न हुआ है। गांव में मुखिया का चुनाव पहली बार दलितों ने जीत लिया। वे लोग गांव में मजदूरी बढ़ाने की मांग करते हैं। उनके पक्षधर स्कूल मास्टर की गांव के दबंगों ने जीप की टक्कर मारकर हत्या कर देते हैं। उसका बदला लेने के लिए गांव के नौजवान दबंग के बेटे की हत्या कर देते हैं। इसके बाद बौखलाए दबंगों ने दलितों के गांव के गांव जलाना शुरू कर दिया। रात के अँधेरे में दलितों के घर फूँक दिए जाते हैं और आदमियों को टार्च की रोशनी से पकड़कर गोलियों से भून दिया जाता है। कहानी के नायक 'नौरंगी' और उसकी पत्नी 'रमा' को नौरंगी के पिता पिछवाड़े की खिड़की से भगा देते हैं। संघर्ष का माहौल देखकर स्वर्गीय मास्टर साहब की पत्नी चन्द रुपए और एक पत्र देकर नौरंगी को प्रेमसेन के पास भेज देती हैं। प्रेमसेन उन्हें गांव छोड़ने की सलाह देते हैं और नौरंगी–रमा गांव छोड़कर कलकत्ता जाने के लिए रेलगाड़ी में सवार हो जाते हैं। वो कहां जाएंगे? क्याह करेंगे? कैसे जीवित रहेंगे? प्रेमसेन द्वारा पता लिखी एक चिट्ठी के सिवा उनके पास कुछ नहीं था। कलकत्ता पहुंचकर नौरंगी रोजगार की तलाश में अनगिनत पापड़ बेलता है और एक दिन उसे 75 पैसे प्रति सुअर, सुअरों को नदी पार कराने का काम मिलता है। पत्नी रमा पेट से थी लेकिन उन दोनों ने और कोई रास्ता नहीं है, यह जानकर जान की बाजी लगा देते हैं। सुअरों में एक सुअर गाभिन भी थी। फिल्मी का आखिरी दृश्य मानवीय संवेदनाओं को पूरी ताकत से झकझोर देता है। सुअरों के पार उतर जाने पर दोनों बहुत खुश थे क्योंकि नायक की पत्नी रमा गर्भवती थी। पार उतरकर नौरंगी और रमा अभी बात करना शुरू ही किए थे कि सुअरों का 'दलाल मालिक' आ जाता है और खुश होते हुए कहता है–"उसे गर्भवती सुअरी की चिन्ता ज्यादा थी।" गर्भवती स्त्री की तुलना में गाभिन सुअरी की चिन्ता, पूंजीपति वर्ग और व्यापारी वर्ग के प्रति घृणा का भाव पैदा करती है। "कहना न होगा कि एक गर्भवती स्त्री से अधिक एक गर्भवती सुअरी की चिन्ता मानवीय संवेदना के क्रूर और पथरीले होते जाने का बयां है।"[9] गांव–घर से बेघर होकर व्यक्ति शहर में अकेला, अनाथ और निर्बल हो जाता है। कलकत्ता में सम्पर्क के लिए फिल्म के नायक के पास पता लिखा एक पुर्जा होता है। "हावड़ा स्टेशन की भीड़भाड़, धक्का–मुक्की और चिल्पों के बीच नौरंगी के हाथ से अचानक वह पते वाला पुर्जा छूट जाता है। वह पुर्जा रेलयात्रियों के जूता–चप्पलों और पांवों के बीच बवंडर में एक सूखी पत्ती की तरह उड़ता फिरता लथड़ाता रहता है और नौरंगी उसे पकड़ने की अथक चेष्टा करता है। शहर में आये प्रवासी मजदूर की दशा इसी कागज के पुर्जे–सी होती है, जिनका न तो कोई ठौर–ठिकाना होता है और न ही पहचान। मुआवजे में उन्हें सिर्फ ठोकरें मिलती हैं और अकेलापन।"[10] चौथा वर्ग, पितृसत्तात्मक सामाजिक, आर्थिक संरचना के कारण विस्थापित स्त्री जीवन का चित्रण करता है। हिंदी सिनेमा में इस तरह की ढेर सारी फिल्में आयीं। जिसमें स्त्रियां अपने घरों से रोती बिलखती विदा हो रही हैं। ऐसी फिल्मों में परदेश, नमस्ते–लन्दन, दिलवाली दुल्हनियां ले जाएंगे, बाबुल, उमंग, राखी, डोली, हम आपके हैं कौन जैसी अनेक फिल्में हैं लेकिन इन फिल्मों में विस्थापित स्त्रियों के जीवन के अन्य कारुणिक दुखों का चित्रण बहुत कम हुआ है। जिसका परिणाम यह हुआ कि ऐसी फिल्में दर्शकों में लोकप्रिय ज़रूर हुईं लेकिन समाज में पितृसत्तात्मक सामाजिक–आर्थिक संरचना के विरूद्ध कोई स्थायी प्रतिरोध रचने में सफल नहीं हुईं। विस्थापितों के जीवन की करुण कथा को चित्रित करने वाली फिल्मों का चौथा और अन्तिम वर्ग, विकासजनित विस्थापन पर केन्द्रित फिल्मों का है। ऐसी फिल्मों में 'दो बीघा जमीन', 'चक्र',' घरौंदा', 'ब्लैक बोड्र्स', 'आक्रोश' और 'नीचा नगर' जैसी फिल्में महत्त्वपूर्ण हैं। इन फिल्मों का वैविध्य यह है कि इनमें आजादी के बाद से लेकर 1990 के पूर्व तक और 1990 से लेकर अब तक के पूंजीवाद के बदलते और बढ़ते दुष्परिणामों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हुई है। दो बीघा जमीन और घरौंदा जैसी फिल्में 1990 के दौर और उस समय के विस्थापन को चित्रित करती हैं, तो ब्लैंक बोड्र्स, आक्रोश और नीचा नगर जैसी फिल्में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की विसंगतियों का चित्रण करती हैं।

विमलराय की फिल्म 'दो बीघा जमीन' के नायक शंभू महतो की जमीन गांव के ताकतवर ठाकुर 'हरनाम सिंह' हड़प लेता है। उसकी जमीन पर हरनाम सिंह शहर के उद्योगपतियों की मदद से एक कारखाना लगाना चाहत है। यानि लघु उद्योग के बजाय बड़े उद्योग गांवों की ओर आना शुरू कर दिए। उसके लिए तमाम दांवपेंच लगागर छोटे–मझोले किसानों की जमीनें छीनी जाने लगीं।

भूमण्लीकरण से पूर्व, जनता से उनकी जमीनें जबरदस्ती छीनने के बजाय विभिन्न सामन्ती तिकड़मों में फंसाकर ली जाती थीं। जिसका प्रामाणिक उदाहरण शंभू महतो द्वारा कर्ज के रूप में लिए गए 65 रुपयों का 235 रुपए हो जाना है। ठाकुर हरपाल सिंह ने मुनीम द्वारा 65 रूपयों को 235 रूपये बनवा दिया और फिर अदालत में भी उसे कोई राहत न मिली। अदालत ने उल्टा हरनाम सिंह के पक्ष में फैसला दिया और शंभू को तीन माह के अन्दर कर्ज चुकाने का आदेश तथा न चुकाने पर जमीन की नीलामी कर कर्ज चुकाने का फैसला दिया। 235 रूपये के इन्तजाम में शंभू और उसके बेटे कन्हैया का जीवन कलकत्ते की गलियों में रिक्शा खींचते–खींचते तमाम हो जाता है। दो बीघे के कास्तकार शंभू और उसके बेटे कन्हैया को कलकत्ते में (बेघर होने पर) सड़क की पटरी से नींद में उठा दिया जाता है, तो वे ग्रैंड होटल के नीचे जमीन पर आकर सोते हैं। यह 'पूंजीवादी विकास' है कि जिनकी जमीन पर कारखाने लगते हैं, उन्हें सड़क भी नसीब नहीं होती।

गांव में कम मजदूरी मिलने, दबंग जातियों के अत्याचार, शोषण और काम कम होने के कारण पिछले कुछ दशकों में शहर की ओर पलायन में तेजी आयी है। शहर आकर भी लोगों का जीवन नहीं बदला। गांव से शहर आये लोग, पूरी ज़िन्दगी घर बसाने की चिंता में जीते रहे। उनका जीवन वीरान हो गया लेकिन उनका घर कभी बस नहीं पाया। विस्थापित लोगों और बेघर लोगों के लिए घर बसाना सबसे बड़ी चिन्ता होती है। 'घरौंदा' जैसी फिल्में इन्हीं सपनों के पूरा न हो सकने की करुण दास्तान हैं। चक्र जैसी फिल्में विस्थापितों की अगली पीढ़ियों के आपराधिक दुष्चक्र में फंस जाने की कथा है। हिन्दी सिनेमा में एक तरफ जहां 'दो बीघा जमीन', 'घरौंदा' और 'चक्र' जैसी फिल्में 90 के पूर्व के पूंजीवादी चरित्र का चित्रांकन करती हैं, वहीं दूसरी तरफ 'आक्रोश' और 'नीचा नगर' जैसी फिल्में 90 के बाद के पूंजीवादी चरित्र को बेनकाब करती हैं। आक्रोश भूमण्लीकरण के बाद संघर्षरत आदिवासियों के जीवन पर आधारित फिल्म है। यह फिल्म जल, जंगल, जमीन, अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए लड़ते आदिवासियों का इस्पाती दस्तावेज है। 'नीचा नगर' में उद्योगपतियों को शॉपिंग मॉल्स बनाने के लिए शहर के बीचोबीच वह जमीन चाहिए थी, जिस पर बहुत लम्बे समय से कुछ विस्थापित परिवार रह रहे थे। उन्होंने जमीन देने से इनकार किया तो उनकी बस्ती के बगल शहर का विषैला पानी भारी मात्रा में जमा करा दिया गया। जिससे लोग महामारियों से मरने लगे और अन्य तमाम तिकड़मों से पूंजीपतियों द्वारा उनकी वह जमीन हड़प ली जाती है, जिस पर वो विस्थापित होने के बाद रह रहे थे। शायद इसी तरह की परिस्थितियों को देखकर ही कहा जाता है कि अपने जड़ें और घर छोड़कर विस्थापित यदि एक बार लुढ़कना शुरू करते हैं, तो उनके लुढ़कने का कोई अन्तर नहीं होता। लुढ़कना, लुढ़कना फिर लुढ़कना और लुढ़कते रहना ही उनके जीवन का सच बन जाता है। आधुनिक विकास से उपजे विस्थापन ने आज विकास के 'वर्तमान मॉडल' को प्रश्नांकित कर दिया है। विस्थापन जिन अर्थों में कारुणिक माना जाता है, उस अर्थ में विस्थापितों के दुखों को विभिन्न कोणों से उठाने में हिन्दी सिनेमा जगत काफी सफल रहा है। विस्थापन को लेकर सिनेमा की यह अभिव्यक्ति और ये फिल्में आम जनमानस में सकारात्मक भूमिका निभा रही हैं। तथाकथित 'मुख्यधारा' से हटकर बनीं ये फिल्में पूंजीवाद के बारे में लोगों की आधारभूमि समझ बनाने में मील का पत्थर साबित होंगी।

संदर्भ सूची :

1. मंडलोई, लीलाधर, सं. सरहद, (2016) आलेख– रेखा, श्रीवास्तव, कलाकारों की कोई सरहद नहीं होती, पृ. 129
2. मण्डोलोई, लीलाधर, सं. नया ज्ञानोदय (2016), साहित्य वार्षिकी, आलेख– निश्चल, ओम, बेघरी का आलम दर–ब–दर मनुष्यता, पृ. 196
3. मण्डलोई, लीलाधर, सं. नया ज्ञानोदय (2016), साहित्य वार्षिकी, आलेख– कुमार, मुकेश, कोई बेघरबार न हो मौला, पृ. 203

4. मण्डमलोई, लीलाधर, सं. नया ज्ञानोदय (2016), साहित्य वार्षिकी, आलेख– दास, विनोद, सिनेमा में घर, पृ. 209
5. मंडलोई, लीलाधर, सं. सरहद (2016), भारतीय ज्ञानपीठ, आलेख– दास, विनोद, भारतीय मुस्लिम समाज और गर्म हवा, पृ. 107
6. मंडलोई, लीलाधर, सं. सरहद (2016), भारतीय ज्ञानपीठ, आलेख– दास, विनोद, भारतीय मुस्लिम समाज और गर्म हवा, पृ. 112
7. मंडलोई, लीलाधर, सं. सरहद (2016), भारतीय ज्ञानपीठ, आलेख– दास, विनोद, भारतीय मुस्लिम समाज और गर्म हवा, पृ. 134
8. मंडलोई, लीलाधर, सं. सरहद (2016), भारतीय ज्ञानपीठ, आलेख– महेश्वर, हिंदी सिनेमा में सरहद, पृ.134
9. मण्डोलोई, लीलाधर, सं. नया ज्ञानोदय (2016), साहित्य वार्षिकी, आलेख– दास, विनोद, सिनेमा में घर–बेघर, पृ. 208
10. मण्डलोई, लीलाधर, सं. नया ज्ञानोदय (2016), साहित्य वार्षिकी, आलेख– दास, विनोद, सिनेमा में घर–बेघर, पृ. 208

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

प्लास्टिक कचरा मानवीय सभ्यता एवं पर्यावरण के लिए एक अभिशाप

डॉ0 कौशल किशोर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर – भूगोल विभाग
लाल विजयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
टिकरी, अमेठी

सारांश :–

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्व के मनीषियों द्वारा सबसे सोचनीय बिन्दु प्लास्टिक कचरा के निपटान और नियंत्रण के उपायों पर समीक्षा की गयी है। प्लास्टिक ने धीरे–धीरे सम्पूर्ण मानव समाज को किस तरह अपना गुलाम बना लिया है इसके बारे में विस्तृत विवेचना की गयी है। प्लास्टिक कचरे से जल, थल, वायु के प्रदूषण के उपरान्त जैव जगत एवं पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले सर्वाधिक घातक प्रभावों का भी आँकलन किया गया है। सभी शहरों की मुख्य समस्याओं में अग्रणी समस्या कचरे का निस्पादन एवं पुनर्चक्रण है जिसके कारण शहरों का वातावरण विशाक्त एवं असुरक्षित होता जा रहा है। प्लास्टिक के डिस्पोज एवं पुनः उपयोग पर मंथन कर जनमानस को जागरूक करने का प्रयास किया गया है। आर्थिक उदारीकरण एवं कोविड–19 के पश्चात् किस तरह से प्लास्टिक ने वैश्विक स्तर पर अपनी व्यापक पहुँच बनाया है यह बेहद चिन्तनीय विषय बन गया है। मानवीय सभ्यता के सामने काल सदृश भयावह रूप से प्लास्टिक आ खड़ा हुआ है किन्तु तत्काल इसके रोक एवं उपयोग के बारे में चिंतन होना नितान्त आवश्यक है। जिसके बारे में गाँवों से लेकर शहरों की भूमिका वैश्विक स्तर पर तय किया ही जाना चाहिए।

मुख्य शब्द :– प्लास्टिक कचरा, पर्यावरण, अपशिष्ट, रिसाइकल, डिस्पोज, पारिस्थितिकी, शहर, प्रबंधन, उदारीकरण, माइक्रो प्लास्टिक, समुद्र, भौतिकता, ग्लोबलाइजेशन, उपभोक्ता, प्रतिबंध, कबाडी, दुष्प्रभाव।

प्रस्तावना :–

इंसान को सभ्य कहा जाय या असभ्य कहा जाय अब यह सोचने का प्रश्न बन गया है। क्योंकि हम अपने चारों तरफ जब भी निगाह डालते है तो हम प्लास्टिक के कचरों या सामानों से घिरे पाते है अपने घर के आस–पास के गड्ढ़ों को कचरों से पाटकर इसको समतल कर मकान बना रहे है जिस वातावरण को स्वच्छ रखकर हम अपने लिए आक्सीजन लेते है उसी को कचरा जलाकर प्रदूषित कर रहे है जिस नदी के जल को पीते है, नहाते है, पूजते है उसी में कचरों के अंबार डाल रहे है। जिन मछलियों को स्वच्छ आहार समझते है वही मछलियाँ कचरों को खाकर बिशाक्त हो रही है। जिन गायों की पूजा करते है वही गाय पन्नी और कचरों को खाकर मर रही है। इस सब के लिए अगर कोई जिम्मेदार है तो वह मानव है। निहित स्वार्थों के चलते वह असभ्य कब बन गया उसको ही नहीं पता चला। वर्तमान समय में यदि हम अपने चारों तरफ देखेंगे तो प्लास्टिक पदार्थ अवश्य दिखायी देगा बिना प्लास्टिक के प्रयोग के हम रह ही नही सकते और दिनों दिन इसके व्यापक प्रयोग में बढ़ोत्तरी हो रही है। प्लास्टिक का सरल उपयोग एवं कम लागत के कारण यह बहुत ही तेजी से व्यापक एवं विस्तृत रूप ले रहा है। जिसके उपयोग में बढ़ोत्तरी के कारण भारत ही नहीं अपितु पूरा विश्व एक बड़े संकट के सामने आ खड़ा हुआ है। बढ़ते प्लास्टिक कचरे के अंम्बार ने जल, थल, वायु को पूरी तरह से प्रदूषित कर रहा है। जिसका दुष्प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के लिए किसी काल से कम नहीं है। शनै–शनै प्लास्टिक मानवीय सभ्यता का अभिन्न अंग बन गया है और मानव इसका गुलाम किन्तु अब आवश्यकता है कि यदि भविष्य को सुरक्षित और स्वस्थ्य रखना है तो इस प्लास्टिक के गुलाँमी से निजात पाने के विकल्प के बारे में भी सोचना नितान्त आवश्यक है।

पर्यावरण का संकट हमारे लिए एक चुनौती के रूप में उभर रहा है। संरक्षण के लिए अब तक बने सारे कानून और नियम सिर्फ किताबी साबित हो रहे हैं। पारिस्थितिकी असंतुलन को हम आज भी नहीं समझ पा रहे हैं। पूरा देश जल संकट से जूझ रहा है। जंगल आग की भेंट चढ़ रहे हैं। प्राकृतिक असंतुलन की वजह से पहाड़ों, मैदानों एवं सागरों में तबाही आ रही है। आर्थिक उदारीकरण और उपभोक्तवाद की संस्कृति गांव से लेकर शहरों तक को निगल रही है। प्लास्टिक कचरे का बढ़ता अंबार मानवीय सभ्यता के लिए सबसे बड़े संकट के रूप में उभर रहा है।

प्लास्टिक उत्पादन में बढ़ोत्तरी की मूल वजह :–

1. आर्थिक उदारीकरण :–

भारत में प्लास्टिक का प्रवेश लगभग 60 के दशक में हुआ। आज स्थिति यह हो गई है कि 60 साल में यह पहाड़ के शक्ल में बदल गया है। दो से तीन साल पहले भारत में अकेले आटोमोबाइल क्षेत्र में इसका उपयोग पांच हजार टन वार्षिक था संभावना यह जताई गयी थी कि इसी तरफ उपयोग बढ़ता रहा तो जल्द ही यह 22 हजार टन तक पहुंच जाएगा। भारत में जिन इकाईयों के पास यह दोबारा रिसाइकिल के लिए जाता है वहां प्रतिदिन 1000 टन प्लास्टिक कचरा जमा होता है। जिसका 75 फीसदी भाग कम मूल्य की चप्पलों के निर्माण में खपता है। 1991 में भारत में इसका उत्पादन नौ लाख टन था। आर्थिक उदारीकरण की वजह से प्लास्टिक को अधिक बढ़ावा मिल रहा है।

स्वास्थ्य संबंधी प्लास्टिक प्रोटेक्शन :–

कोविड–19 एक ऐसी समस्या है जिसने हमारा पूरा ध्यान खींच रखा है। हालात ऐसे हो चुके हैं कि हम उन चीजों के बारे में बेखबर हो चले हैं जो हमारे भूतकाल का हिस्सा होने के साथ–साथ हमारे भविष्य के निर्माण के लिए भी जिम्मेदार हैं। हमारे जीवन में ऐसा भी एक मुद्दा है **प्लास्टिक** का। यह एक सर्वव्यापी पदार्थ है जो हमारी भूमि और महासागरों में फैलकर उन्हें प्रदूषित करता है और हमारे स्वास्थ्य संबंधी तनाव में इजाफा करता है। वर्तमान में चल रही स्वास्थ्य आपातकाल जैसी स्थिति ने प्लास्टिक के उपयोग को सामान्य कर दिया है क्योंकि हम वायरस के खिलाफ सुरक्षा उपायों के रूप में अधिक से अधिक उपयोग करते हैं। दस्ताने, मास्क से लेकर बॉडी सूट तक जैसे प्लास्टिक प्रोटेक्शन गियर कोविड–19 के खिलाफ इस युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य निभा रहे हैं लेकिन अगर इस मेडिकल कचरे को ठीक से नियंत्रित एवं प्रबंधित नहीं किया गया तो यह हमारे शहरों के कूड़े के पहाड़ों की संख्या में इजाफा ही करेगा।

घरेलू उपयोग में वृद्धि :–

गाँवों से लेकर शहरों तक प्रत्येक व्यक्ति बिना थैला लिये बाजार जाता है वहाँ से पॉलीथीन में ही सब्जी, किराना स्टोर सामग्री, फल, खाद्य पदार्थ के अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधन की सभी सामग्री प्लास्टिक थैली में ही लेकर आता है और उसको खाली होने के बाद सीधे कूड़ेदान में ही फेंक देता है। बड़ी संख्या में अनियंत्रित एवं विवेकहीन इस प्रयोग से गाँव एवं शहर की गलियों में प्लास्टिक थैली अवश्य ही दिखाई दे जाती है। शासन के प्रतिबन्ध के बावजूद भी खुलेआम बड़ी तेजी से लोग वेफ्रिक होरक प्लास्टिक पन्नी का प्रयोग कर रहे हैं।

प्लास्टिक पुनर्चक्रण का स्वरूप :–

प्लास्टिक की राजनीति का पूरा किस्सा पुनर्चक्रण नामक एक शब्द में सन्निहित है। वैश्विक उद्योग जगत ने यह तर्क लगातार सफलतापूर्वक दिया है कि हम इस अत्यधिक टिकाऊ पदार्थ का उपयोग करना जारी रख सकते हैं क्योंकि इसका एक बार प्रयोग कर लिए जाने के बाद भी प्लास्टिक को रीसाइकिल किया जा सकता है। हालांकि यह अलग बात है कि इसका अर्थ सबकी समझ से परे है। वर्ष 2018 में चीन ने पुनः प्रसंस्करण के लिए प्लास्टिक कचरे के आयात को रोकने के लिए नेशनल सोर्ड पॉलिसी तैयार की जिसके फलस्वरूप कई अमीर देशों का कठोर वास्तविकताओं से सामना हुआ। प्लास्टिक कचरे से लदे जहाजों को मलेशिया और इंडोनिशिया सहित कई अन्य देशों ने अपने तटों से

वापस कर दिया था। यह कचरा किसी के काम का नहीं था। हर देश के पास पहले से ही प्लास्टिक का अंबार है।

आँकड़े बताते हैं कि 2018 के प्रतिबंध से पहले यूरोपीय संघ में रीसाइक्लिंग के लिए एकत्र किए गए कचरे का 95 प्रतिशत और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्लास्टिक कचरे का 70 प्रतिशत चीन भेज दिया जाता था। चीन पर निर्भरता का मतलब था कि रीसाइक्लिंग मानक शिथिल हो गए थे। खाद्य अपशिष्ट एंव प्लास्टिक को साथ मिलाकर उद्योग जगत ने कचरे के नए उत्पाद, डिजाइन और रंग बनाने में महारत हासिल की थी। इस सब के कारण कचरा अधिक दूषित हो जाता और उसके पुनर्चक्रण में भी कठिनाइयाँ आती हैं। हालात यहाँ तक पहुँच गए कि कचरे में भी व्यापार ढूंढ लेने में माहिर चीन जैसे देश को भी इसमें कोई फायदा नहीं नजर आया।

भारत की प्लास्टिक अपशिष्ट समस्या समृद्ध दुनिया के देशों जितनी भयावह तो नहीं है, लेकिन यह लगातार बढ़ती जा रही है। प्लास्टिक कचरे पर केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की नवीनतम वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, गोवा जैसे समृद्ध राज्य प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 60 ग्राम प्लास्टिक का उत्पादन करते हैं। दिल्ली 37 ग्राम प्रतिव्यक्ति, प्रतिदिन के साथ इस रेस में ज्यादा पीछे नहीं है। राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाय तो औसतन लगभग 8 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है। दूसरे शब्दों में, जैसे–जैसे समाज अधिक समृद्धि होगा वैसे–वैसे प्लास्टिक कचरे की मात्रा भी बढ़ेगी। यह समृद्धि की वह सीढ़ी है जिस पर चढ़ने से हमें बचना होगा।

आइए पहले चर्चा करें कि उस कचरे का क्या होता है जिसे रीसाइकल नहीं किया जा सकता है? सभी अध्ययन (सीमित रूप से) दिखाते हैं कि नालियाँ या लैंडफिल में जमा प्लास्टिक अपशिष्ट में कम से कम रिसाइकिल करने योग्य सामग्री शामिल होती है। इसमें बहुस्तरीय पैकेजिंग (सभी प्रकार की खाद्य सामग्री), पाउच, (गुटखा या शैम्पू) और प्लास्टिक की थैलियाँ शामिल हैं। 2016 के प्लास्टिक प्रबंधन नियमों ने इस समस्या को स्वीकारा और कहा कि पाउच पर प्रतिबंध लगा दिया जाएगा और दो साल में हर तरह के बहुस्तरीय प्लास्टिक के उपयोग को समाप्त कर दिया जाएगा। वर्ष 2018 में इस कानून को लगभग पूरी तरह बदल दिया गया और केवल वैसे कचरे को इस श्रेणी में रखा जो रीसाइकल न किया जा सके।

यह कहना सही नहीं कि सैद्धांतिक रूप से बहुस्तरीय प्लास्टिक या पाउच को रीसाइकल नहीं किया जा सकता है। उन्हें सीमेंट संयंत्रों में भेजा जा सकता है या सड़क निर्माण में उपयोग किया जा सकता है। लेकिन हर कोई जानता है कि इन खाली, गंदे पैकेजों को पहले अलग करना, इकट्ठा करना और फिर परिवहन करना लगभग असंभव है। इसलिए सब पहले के जैसा ही चल रहा है। हमारी कचरे की समस्या बरकरार है। दूसरा मुद्दा यह है कि हम वास्तव में रीसाइक्लिंग से क्या समझते है? हम जानते हैं कि प्लास्टिक के पुनर्चक्रण हेतु घरेलू स्तर पर सावधानी से कचरे का अलगाव करने की आवश्यकता है। यह हमारी और स्थानीय संस्थाओं की जिम्मेदारी बनती है। अतः अब समय आ चुका है जब हम रीसाइक्लिंग की इस दुनिया को नए सिरे से निर्मित करें।

प्लास्टिक डिस्पोज में भारत प्रबन्धन प्रणाली :–

भारत के ज्यादातर लोग अपने घर के कचरे को अलग नहीं करते है। हम आलस के मारे शुरू में ही कचरे को अलग करने के बजाय सारा कचरा एक डिब्बे में ही डाल देते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि यह सब लैंडफिल (डाम्पिंग यार्ड के मैदान) में चला जाता है जिससे पर्यावरण को काफी हानि होती है। इसमें वो प्लास्टिक भी चले जाते हैं जिन्हें रिसाइकल करके इस्तेमाल किया जा सकता है। एक जागरूक नागरिक होने के नाते हमें कचरा निपटान के इस दुष्चक्र से निपटने के लिए जरूरी कदम उठाना चाहिए। हर साल कुल 9.4 लाख टन का प्लास्टिक कचरा निकलता है जिसमें से 40% कभी चुने ही नहीं जाते क्योंकि या तो वे सड़क पर होते हैं या लैंडफिल में। हालांकि, ऐसी सुविधाएं हैं जो प्लास्टिक को रिसाइकल करने में मदद करती हैं और इन्हें अक्सर प्लास्टिक ऐसी जगहों मिलते हैं जहां इनके होने की उम्मीद नहीं होती है।

भारत के कचरा चुनने वाले और कबाड़ी वाले जो कि अनौपचारिक क्षेत्र से हैं और जो हर साल भारत में निकलने वाले 62 लाख टन के प्लास्टिक के कचरे को साफ करने में मदद करते हैं। यही वे लोग हैं जो प्लास्टिक को चुनकर उन्हें अलग–अलग रिसाइल यूनिट में भेजते हैं। ये भारत की प्लास्टिक प्रबंधन प्रणाली में बहुत ही अहम भूमिका निभाते हैं। भारत में सफलता के साथ प्लास्टिक की पीईटी बोतलों को इसलिए रिसाइकल किया जा रहा है क्योंकि इन्हीं लोगों की मदद से कचरा सीधे अलग करने वाली यूनिट और रिसाइकल यूनिट में भेजा जा रहा है। इससे एक बात तो साफ होती है और वह यह है कि हम भी कचरे को अलग करने का महत्व समझ कर अपने पर्यावरण में कई सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं।

प्लास्टिक प्रतिबन्ध की तरफ अग्रसर दुनिया :–

एक अनुमान के मुताबिक 2050 तक समुद्र में मछलियों से अधिक प्लास्टिक होगी। पिछले साल अफ्रीकी देश केन्या ने भी प्लास्टिक पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया है। इस प्रतिबंध के बाद वह दुनिया के 40 देशों के उन समूह में शामिल हो गया है जहाँ प्लास्टिक पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध है। यहीं नहीं केन्या ने इसके लिए कठोर दंड का भी प्राविधान किया है। प्लास्टिक बैग के इस्तेमाल या इसके उपयोग को बढ़ावा देने पर चार साल की कैद और 40 हजार डॉलर का जुर्माना भी हो सकता है। जिन देशों में प्लास्टिक पूर्ण प्रतिबंध है उसमें फ्रांस, चीन, इटली और रवांडा जैसे मुल्क शामिल हैं। लेकिन भारत में इस पर लचीला रुख अपनाया जा रहा है। जबकि यूरोपीय आयोग का प्रस्ताव था कि यूरोप में हर साल प्लास्टिक का उपयोग कम किया जाए।

यूरोपीय समूह के देशों में हर साल आठ लाख टन प्लास्टिक बैग यानी थैले का उपयोग होता है। जबकि इनका उपयोग सिर्फ एक बार किया जाता है। 2010 में यहां के लोगों ने प्रति व्यक्ति औसत 191 प्लास्टिक थैले का उपयोग किया। इस बारे में यूरोपीय आयोग का विचार था कि इसमें केवल छह प्रतिशत को दोबारा इस्तेमाल लायक बनाया जाता है। यहां हर साल चार अरब से अधिक प्लास्टिक बैग फेंक दिए जाते हैं। भारत भी प्लास्टिक के उपयोग से पीछे नहीं है। देश में हर साल तकरीबन 56 लाख टन प्लास्टिक कचरे का उत्पादन होता है। जिसमें से लगभग 9205 टन प्लास्टिक को रिसाइकिल कर दोबारा उपयोग में लाया जाता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार दिल्ली में हर रोज 690 टन, चेन्नई में 429 टन, कोलकाता में 426 टन के साथ मुंबई में 408 टन प्लास्टिक कचरा फेंका जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि आने वाले समय में शहर कचरे के ढ़ेर पर बसा होगा या फिर कचरे के पहाड़ से घिरा होगा। भविष्य में शहरों की स्थिति कितनी भयावह होगी इसका आँकलन करके ही मनुष्य एवं जीव जन्तुओं के स्वास्थ्य जीवन का आँकलन किया जा सकता है।

सागर में बढ़ता प्लास्टिक :–

वैज्ञानिकों के विचार में प्लास्टिक का बढ़ता यह कचरा प्रशांत महासागर में प्लास्टिक सूप की शक्ल ले रहा है। प्लास्टिक के प्रयोग को हतोत्साहित करने के लिए आरयलैंड ने प्लास्टिक के हर बैग पर 15 यूरोसेंट का टैक्स 2002 में लगा दिया था। जिसका नतीजा रहा कि 95 फीसदी तक कमी आयी। जबकि साल भर के भीतर 90 फीसदी दुकानदार दूसरे तरह के बैग का इस्तेमाल करने लगे जो पर्यावरण के प्रति इको फ्रेंडली थे। साल 2007 में इस पर 22 फीसदी कर दिया गया। इस तरह सरकार ने टैक्स से मिले धन को पर्यावरण कोष में लगा दिया। अमेरिका जैसे विकसित देश में कागज के बैग बेहद लोकप्रिय हैं। वास्तव में प्लास्टिक हमारे लिए उत्पादन से लेकर इस्तेमाल तक की स्थितियों में खतरनाक है। इसका निर्माण पेट्रोलियम से प्राप्त रसायनों से होता है। पर्यावरणीय लिहाज से यह किसी भी स्थिति में इंसानी सभ्यता के लिए बड़ा खतरा है। यह जल, वायु, मृदा प्रदूषण का सबसे बड़ा कारक है। इसका उत्पादन अधिकांश लघु उद्योग में होता है जहाँ गुणवत्ता नियमों का पालन नहीं होता है।

मिट्टी की उर्वराशक्ति निगलता प्लास्टिक :–

प्लास्टिक कचरे का दोबारा उत्पादन आसानी से संभव नहीं होता है क्योंकि इनके जलाने से जहाँ जहरीली गैस निकलती है। वहीं यह मिट्टी में पहुँच भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट करता है। दूसरी तरफ मवेशियों के पेट में जाने से जानलेवा साबित होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार प्लास्टिक नष्ट होने

में 500 से 1000 साल तक लग जाते हैं। दुनिया में हर साल 80 से 120 अरब डॉलर का प्लास्टिक बर्बाद होता है। जिसकी वजह से प्लास्टिक उद्योग पर रिसाइकिल कर पुनः प्लास्टिक तैयार करने का दबाव अधिक रहता है। जबकि 40 फीसदी प्लास्टिक का उपयोग सिर्फ एक बार के उपयोग के लिए किया जाता है। प्लास्टिक के उपयोग को प्रतिबंधित करने के लिए कठोर फैसले लेने होंगे तभी हम महानगरों में बनते प्लास्टिक यानी कचरों के पहाड़ को रोक सकते हैं। वक्त रहते हम नहीं चेंते तो हमारा पर्यावरण पूरी तरह प्रदूषित हो जाएगा। दिल्ली तो दुनिया में प्रदूषण को लेकर पहले से बदनाम है। हमारे जीवन में बढ़ता प्लास्टिक का उपयोग इंसानी सभ्यता को निगलने पर आमादा है। बढ़ते प्रदूषण से सिर्फ दिल्ली ही नहीं भारत के जितने महानगर हैं सभी में यह स्थिति है।

कुशल प्रबंधन की आवश्यकता :–

प्लास्टिक और दूसरे प्रकार के कचरों के निस्तारण का अभी तक हमने कोई कुशल प्रबंधन तंत्र नहीं खोजा है। जिससे कचरे का यह अंबार पहाड़ में तब्दील हो रहा है। उपभोक्तावाद की संस्कृति ने गाँव गिराँव को भी अपना निशाना बनाया है। यहाँ भी प्लास्टिक संस्कृति हावी हो गई है। बाजार से वस्तुओं की खरीददारी के समय प्लास्टिक के थैले पहली पसंद बन गए हैं। कोई भी व्यक्ति हाथ में झोला लेकर बाजार खरीदारी करने नहीं जा रहा है। यहाँ तक चाय, दूध, खाद्य तेल और दूसरे तरह के पदार्थ जो दैनिक जीवन में उपयोग होते हैं उन्हें भी प्लास्टिक में बेहद शौक से लिया जाने लगा है। जबकि खाने–पीने की गर्म वस्तुओं में प्लास्टिक के संपर्क में आने से रसायनिक क्रिया होती है, जो सेहत के लिए हानिकारक है, लेकिन सुविधाजनक संस्कृति हमें अंधा बना रही है। जिसका नतीजा है इंसान तमाम बीमारियों से जूझ रहा है। लेकिन ग्लोबइजेशन के चलते बाजार और उपभोक्ता एवं भौतिकवाद का चलन हमारी सामाजिक व्यवस्था, सेहम के साथ–साथ आर्थिक तंत्र को भी ध्वस्त कर रहा है। एक दूषित संस्कृति की वजह से सारी स्थितियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। सरकारी स्तर पर प्लास्टिक कचरे के निस्तारण के लिए ठोस प्रबंधन की जरूरत है। पर्यावरण को हम सिर्फ दिवस में नहीं समेट सकते हैं, इसके लिए पूरी इंसानी जमात को प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर लंबी लड़ाई लड़नी होगी। समय रहते अगर हम नहीं चेते तो भविष्य में बढ़ता पर्यावरण संकट अगली पीढ़ी को निगल जाएगा।

स्रोत :–

- पर्यावरण अध्ययन– डॉ0 गायत्री प्रसाद पेज 313–317.
- Walling, D.E. and Gregory, K.J. Man and Environmental Processes.
- drishtiias.com
- White, G.F. 1980. Environment.
- Jagran.com.cdn.ampproject.org.
- ichowk.in-delivere

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

A study of Non-Performing assets on Public Sector Bank in India

Amar Kumar Amar
(JRF, Research scholar)
(University Deptt. of commerce & Business Administration
T.M.B.U. Bhagalpur)

Introduction:

The banking sector plays a crucial role in the development of any country. Banks for generating credit, follow the concept of maturity transformation, i.e., using short-term deposits from savers and turning them into long-term borrowings. Considering all borrowers pay back on a timely basis, the banks are able to generate credit, stimulate the money flow within the country, and thereby contribute to the economic development of the country by acting as the strong backbone of the economy. But this doesn't happen in reality, borrowers default when it comes to repaying their debt, hence leading to hindrances in credit creation and development of the nation. Non-Performing Assets (NPA) continue to be a prominent buzzword since the last decade.

When a borrower deliberately defaults on a loan payment (either on interest and capital repayment) or is unable to make loan repayments because of adverse business economic conditions, non-performing assets occur. RBI defined NPAs as credit in respect of which interest and/ or installment of principal has remained 'past due' for a specific period of time. This specified time period changed over time-

Table No.- 01

Year (ending March 31st)	Specified Period for 'Past Due'
1993	**4 quarter's**
1994	**3 quarter's**
1995 onward	**2 quarter's**

Source RBI

When either interest and principal amount is unpaid for 30 days after its due date, it is regarded as past late. The idea of "past due" has been abandoned as of March 31, 2001, and the term now begins on the day that payment is due. To comply with international norms and standards RBI in 2004, NPA's overdue time period has been reduced to 90 days.

Table No.- 02, provision requirement regarding NPAs:

Assets category	**NPA duration**	**Provision rate (%)**
Standard		**0.25 – 0.10**
Sub-standard	**< 1 year**	**15**
	Up to 1 year	**25**

Doubtful	**1 – 3 years**	**40**
	More than 3 years	**100**
Loss		**100**

Source RBI

For any given bank, Gross NPA indicates how much of the bad portfolio.

If we subtract provisions made by banks from gross NPA the remaining figure will be Net NPA. The term 'willful default' is somewhat unique to India.

NPAs from 2011-21:

Considering the long history of NPAs in India they have been at their lowest level during the global financial crisis and the few years following it. But there is an increase in NPAs since 2012, however, till 2014-15 the growth rate of NPA was considerably slow. From 2014 onwards, NPA grew at unexpected pace, reaching the maximum levels in 2018-19. The growth in NPAs was coming largely from the Public Sector Banks and Nationalized Banks.

Reasons for NPAs in India as per Raghuram Rajan-

(i) Over-optimism and slow growth

India was growing at a growth rate of 9.5-10.5% p.a. in the mid-2000s when heavy loans were taken by all sectors but loans and advanced given to the infrastructure sector accounted for the most. Banks assumed this high growth trend in India will continue so they took the liberty of accepting risky projects. The loans which turned into NPAs were mostly given during 2003-2008. All the expectations made by corporate houses as well as the banks suddenly failed due to GFC in 2008. Repercussions of GFC were felt in India too, RBI increased the interest rates, and a higher interest rate result in increased NPA. The companies found it difficult to meet their interest obligations and capital repayment, leading to rising in NPAs.

(ii) Government Permissions and Foot-Dragging

Government decision-making was dragged down by a number of governance issues, including the questionable allocation of coal mines and the associated fear of investigation investigations, during both the UPA and the succeeding NDA governments. Stalled projects saw an increase in cost overruns, and they grew more and more unable to pay back loans. Despite India's power shortage, the struggles of the stranded power plants indicate that government decision-making has not yet sped up enough.

Impact of NPA on the economy and profitability of the banks

Banking Sector is the power house of the Indian economy, a strong and growing economy thereby implies that the Indian banking sector must be working well and acting as a vital role for economic growth. Banks provide credit, which is further invested in profitable project and the development of the economy. But when money moves out of the financial system and cycle of lending-repaying and loan amount gets impacted. Banks have a responsibility to pay back their depositors and other lenders. In the absence of loan repayment, banks are forced to take out new loans in order to pay back depositors and creditors. This results in a situation where banks are hesitant to lend more money to ongoing or new projects. The economy suffers when credit to diverse areas of the economy slows down. Additionally, NPAs force credit risk management to take precedence over other parts of a bank's operation. A bank with a high NPA ratio would be required to pay carrying costs on non-income

producing assets. Some other consequences of NPAs are- high levels of provisioning, reduction in interest income, stress on profitability and capital adequacy ratio, gradual decline in the ability to meet the steady increase in cost, and increased pressure on Net Interest Margin (NIM) thereby reducing competitiveness, steady erosion of capital resources and increased difficulty in augmenting capital resources. Thereby rising NPAs imply an ailing economy.

Measures taken by RBI to reduce NPAs:

Both Government of India and RBI have undertaken some measures keypoint to reduce NPA like- Debt Recovery Tribunals (DRTs) in 1993, Lok Adalat in 2001, Securitization and Reconstruction of Financial Assets and Enforcement of Security Interest (SARFAESI) Act in 2002, and recently Insolvency and Bankruptcy Code (IBC) was issued in 2016. Over years there is a decreasing trend in the % of NPAs recovered via various institutes, which raises the question of the efficiency of these institutions

Table No.- 03, NPAs of SCBs Recovered through various channels (in %)

Recovery channel	2011-2012	2017-2018	2021-2022
Lok Adalat	11.8	4	4
DRTs	17	5.4	3.6
SARFAESI Act	28.6	32.2	41
IBC	-	49.6	20.2
total	23.6	14.9	14.1

Source- Report on trend and progress of Banking in India source and progress, RBI on different years

Literature review:

Joseph and M. Prakash, 2014 have studied the NPAs levels of the private sector banks and public sector banks. They found that NPAs level was more in case of substandard asset and doubtful asset. However in case of standard asset, private banks rule over which shows a good position of private sector banks. Also it shows that they have adopted all necessary measures in order to avoid any account becoming NPAs. The study by S.S.

Prasad and P. Goyal, 2015 revealed that NPAwas not the factor which significantly affected the ROCE, ROAand RONW of Vijaya Bank. The study concluded that Vijaya Bank was effectively able to manage its NPAs resulted in not affecting its profitability.

The study by R.K. Uppal and P. Khanna, 2015 has analyzed the primary reasons for the growth of NPAs in scheduled commercial banks of Punjab and also suggested the measures for controlling the same. The objectives of study were to find out the factors that affect the loan repayment capacity of the bank customers. The report published by CARE had emphasised that the NPA s of of at least 26 listed banks were Rs. 7.31lakh crore as per the declared results of FY 2017 Fourth Quarter. Ever since the remaining 12 listed banks which include Bank of Baroda, Andhra Bank, Corporation Bank and private financial lenders like City Union,

Dhanlaxmi and Karur Vysya (Business Today, 2018). The Government of India felt that the usual recovery measures like issue of notices for enforcement of securities and recovery of dues was a time consuming process.

(Rajeev and Mahesh, 2010).have studied the NPAs levels of the private sector banks and public sector banks. They found that NPAs level was more in case of substandard asset and doubtful asset. However in case of standard asset, private banks rule over which shows a good position of private sector banks. Also it shows that they have adopted all necessary measures in order to avoid any account becoming NPAs.

T R.K. Uppal and P. Khanna, 2015 has analyzed the primary reasons for the growth of NPAs in scheduled commercial banks of Punjab and also suggested the measures for controlling the same. The objectives of study were to find out the factors that affect the loan repayment capacity of the bank customers. The report published by CARE had emphasised that the NPA s of of at least 26 listed banks were Rs. 7.31lakh crore as per the declared results of FY 2017 Fourth Quarter.Ever since the remaining 12 listed banks which include Bank of Baroda, Andhra Bank, Corporation Bank and private financial lenders like City Union,

Objectives of the study:-

The main objectives of this study are:-

1. To study the trend in Gross NPA to Gross Advance of the SBI

2. To study the trend in Net NPA to Net Advance of SBI

3. To study the difference in average Gross NPA to Gross Advance of SBI

4. To study the difference in average Net NPA to Net Advance of SBI **Hypotheses:**

H1: There is significant difference in average Gross NPA to Gross Advance ratio of SBI

H2: There is significant difference in average Net NPA to Net Advance ratio of SBI.

Research Methodology:

The study uses secondary data collected from Annual Reports of respective Banks, Report on Trend and Progress of Banking in India, RBI, and Statistical Tables Relating to Banks in India, RBI. Period of the Study The study period covers past 5 financial years covering the period 2013 to 2017.

Collection of data:
Both primary and secondary data are used in the present study. The secondary data to non performing assets and the micro variable from 2015-016 to 2021-22 were collected from various issues of SBI Annual Reports and RBI Bulletins. The primary data in the form of the perception of officials on management of non-performing asset is measured with the help of pre structured questionnaire.

Statistical Tools Used One way ANOVA and Post Hoc Test. The results are tested and validated at 5 percent level of significance. The two ratios used to measure the NPA position of the banks are Gross NPA to Gross Advance and Net NPA to Net Advance.

One Way ANOVA- Analysis of variance is a statistical tool used to study the significance of difference in mean of two samples. In the present study ANOVA is applied to study that if there is significant difference in the mean ratios of small, medium and large banks. The objective of this analysis is to know the position of SBI in terms of total Assets. From the time period from 2013 to 2017. A firm's total assets include all current and fixed assets.

Table No.- 04. Total balance sheet assets of SBI Bank From 2013 to 2017

Year	Total assets (Rs in billions)
2013	15662.62
2014	17922.36
2015	20480.81
2016	22590.632
2017	27059.674

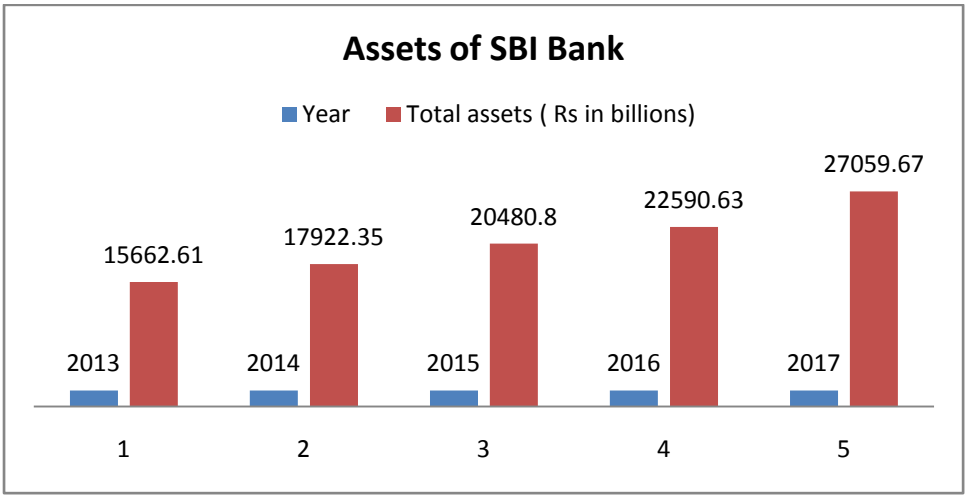

Interpretations:

Above **table No - 04** and graph show that total assets of SBI is increased in **2014 by 17922.36** billion, in 2017 increased by **27059.674** billion. It has been observed that the assets of the SBI bank increased in the last five year.

Findings:-

After finding the trend in average GNPA to Gross Advance ratio, let us see if there is any significant difference in the same on the basis of size. For this purpose we have applied One Way ANOVA. A perusal of Table 8 reveals that there is no significant difference in average GNPA to Gross Advance ratio as the p value obtained (1.05) is greater than .05 at 5% level of significance. Thus the alternate hypothesis is rejected and it has been safely concluded that there is no significant difference in average Gross NPA to Gross Advances.

References:

1. **A. Joseph, M. Prakash (2014),** "A study of analyzing the trend of NPA level in private sector banks and public sector banks", Research Paper, International journal of scientific and research publications, Vol. 4, Issue. 7, page no. 1-9.
2. **S. S. Prasad, P. Goyal (2015),** "A study of non-performing assets and its impact on Vijaya bank performance", Research Paper, Indian Journal of Accounting, Vol. XLVII (2), page no.89-92.

3. **R. K. Uppal, P. Khanna (2015),** "Factors affecting NPAs of Scheduled Commercial Banks: An empirical study based in Punjab" Research Paper, Indian journal of finance, Volume. 9, issue num. 2, page no. 7-16. IJS
4. **Master Circular** – Prudential norms on Income Recognition, Asset Classification and Provisioning pertaining to Advances, 2014.
5. **N. Ranee and D. Gaba,** Analysis of Non-Performing Assets of Public Sector Banks", GJRA- Global Journal for Research Analysis, 3(9), 2014, 5. [3] M. Shetty, Corporates" Rs 100000 crore bad loans written off: RBI, Times of India, 2013.
6. **R K Uppal,** "Priority sector advances: Trends, issues and strategy", Journal of Accounting and Taxation, 1(5), 2009, 89.
7. **A.Baijal,** "High Ratio of agriculture NPAs in priority sector lending by public and private banks in India- Reasons, suggestions and discussions", International Journal of Science and Research, 4(4), 2015, 885.
8. **N. Goyal, R. Agrawal and R.Agarwal,** "A study of effect of priority sector lending (sector wise) on Non Performing Assets of India commercial banks", International Journal of Research in Finance and Marketing, 5(5), 2015, 85.
9. **D. Nagarajan, Sathyanarayan and A. A. Ali,** "Non-Performing Asset is a threat to India Banking Sector- A comparative study between priority and non-priority sector lending in public sector banks", International Journal of Advanced research in Management and Social Sciences, 2(11), 2013, 39. [8] B. Pandya, "Impact of priority sector advances on bank profitability : Evidence from scheduled commercial banks of India", BVIMSR"S Journal of Management Research, 7(2), 2015, 75.

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

A study of Non- performing assets on Priority Sector in Bihar

Sadanand Gupta
(JRF, Research scholar)
(University Deptt of commerce & Business Administration
T.M.B.U. Bhagalpur)

Introduction

The main business of banking is to collect the deposits from the public and lend it to the individuals, business concerns, institution etc. The lending business is associated with risk. One of the important risks in lending is the possibility of account becoming non-performing assets. Non-performing assets do not earn interest income and repayment of loan to bank does not take place according to repayment schedule affecting income of the bank and their by profitability. Non- performing assets do not generate interest. This will results the banks to make provision for such non-performing assets out of their current profit. The efficiency of a bank is not always reflected only by the size of its balance sheet but by the level of return on its assets. NPAs do not generate interest income for the banks, but at the same time banks are required to make provision for such NPAs from their current output.

Origin of Priority sector:

The scheme of priority sector lending was concomitance of experiences which government of India acquired from its schemes of social control, introduced under the Banking Law (Amendment) Act 1968. Soon after implementation of the Banking Law (Amendment) Act 1968 the government realized that the type of control, exerted under this act, would not satisfy the objective of government as it could not serve adequately the needs of development of economy, in conformity of the priorities, laid down, and the objectives set to be achieved for planned development of the economy. Under its cherished objectives of planning and priorities given to the sectors, which were required to be given specific attentions in development process, on 19th July, 1969, the government of India nationalized 14 major Commercial Banks and, later on, 6 more Commercial Bank, with Rs. 2 Hundred crore deposit, were nationalized in 1980. The Banks, which nationalized in 19th July, 1969 were: 1.Bank of India 2.Union Bank of India 3.Bank of Baroda 4.Bank of Maharashtra 5.Punjab National Bank Patna University, Patna 47 6.Indian Bank 7.Indian Overseas Bank 8.Central bank of India 9.Canara Bank 10.Syndicate Bank 11.United Commercial Bank 12.Allahabad Bank 13.United Bank of India 14.Dena Bank and 2nd phase in 1980 were: 1.Andhra Bank 2.Corporation Bank 3.New Bank of India 4.Oriental Bank of Commerce 5.Punjab and Sindh Bank 6.Vijay Bank.

Meaning of priority sector:

Priority Sector means those sectors which the Government of India and Reserve Bank of India consider as important for the development of the basic needs of the country and are to be given priority over other sectors. The banks are mandated to encourage the growth of such sectors with adequate and timely credit.

The categories of priority sector are as follows:

1. Agriculture
2. Micro, Small and Medium Enterprises
3. Export Credit
4. Education
5. Housing
6. Social Infrastructure
7. Renewable Energy
8. Others

Target for priority sector:

1. **Total Priority Sector -** 40 per cent of ANBC or CEOBE, whichever is higher, which shall stand increased to 75 per cent of ANBC or CEOBE, whichever is higher, with effect from March 31, 2024
2. **Micro Enterprises -** 7.5 per cent of ANBC or Credit Equivalent Amount of Off-Balance Sheet Exposure, whichever is higher
3. **Advances to Weaker Sections -**12 per cent# of ANBC or credit equivalent amount of Off-Balance Sheet Exposure, whichever is higher**.**

Financial Sources of Priority Sector:

Like many inputs such as seeds, fertilizers, pesticites, equipments etc. finance is also one of the important, perhaps the most important, inputs for growth of the economy. Specially, for a state like Bihar, with an economy fully agrarian and backward too, banking credit is like life-support device to the economy. In recent 5 years the total credit from various banks, the agricultural sector of the state has received.

Statement of the Problem:

The basic function of banks provided loan to customers on the basis of soundness of investment and quality of loan assets. This function is depending on the capability of credit risk of the banks. Credit risk is associated with lending highly and whenever a party enters into an obligation to make payment or deliver value to the bank. Credibility correlated with the factors of profitability and the long run sustenance of the bank and these factors depend 67 on the income, expenditure, net interest income,

Objectives of the study:

The present study has the following objectives:

i. To review of related literature of the non-performing assets, advances and recovery performance of the Banks.
ii. To examine the performance of the state bank of India in respect of i.e gross NPAs and net NPAs.
iii. To analysis the impact of NPAs on profitability of the State Bank of India.
iv. To analysis the officials' perception on the management of NPAs in the State Bank of India.
v. To offer suitable suggestions, conclusions to reduce the NPAs in SBI effectively.

Methodology:

The research methodology enlightens the method to be followed in research activity starting from investigation to presentation. It includes research design, sampling framework, methods of data collection, framework of analysis and limitations.

Sampling design:

The present study is of descriptive nature, focusing on NPAs in SBI from 2015-2016 to 2021-22. The mutual relationships between NPAs and micro level variables in the banking sector and the officials' perceptions on the causes, consequences and remedies for NPAs have been discussed.

Collection of data:

Both primary and secondary data are used in the present study. The secondary data to non performing assets and the micro variable from 2015-016 to 2021-22 were collected from various issues of SBI Annual Reports and RBI Bulletins. The primary data in the form of the perception of officials on management of non-performing asset is measured with the help of pre structured questionnaire.

Limitation of the study:

i. A deep analysis is made non-performing assets only. The performing assets do not pose any problems to credit management.
ii. This study is only restricted to State Bank of India only.
iii. The data collected for examining the management of non-performing assets are based on primary data collected from the perception of bank officers and clerks.
iv. The result of the study may not be applicable to any other banks.
v. Since the part of the study is based on their perceptions, the findings may change over the years in keeping with changes in environmental factor.
vi. The variables relating to causes, predictors, consequences and measures to manage the troubled assets were selected from the literature survey.
vii. The present study does not ascertain the views from the borrowers who are not directly concerned with management of non-performing assets.

Operational definitions:

1. **Loan Assets**
   Both performing assets and non performing assets constitute loan assets.
2. **Performing Assets**
   This is an asset which is performing and does not disclose any weakness and does not carry more than normal business risk.
3. **Non Performing Assets**
   It points to the interest and installment of the principal remaining unpaid for a period of exceeding 90 days.

Conclusion:

It can be concluded that the bad loans create many problems for the banks over the years. Till the March 2022, the contribution of priority sector NPAs were more than 46 % over the years, obviously this become the case with the non priority sectors NPAs after that period. Still these both sectors have significant amount of NPAs, which put tax on the banks overall performance. However the percentage contribution of priority sector NPAs have been decreasing for last couple of years but increasing in absolute terms as bank‟s total advances are increasing. Similarly non priority sector NPAs are increasing both in percentage contribution to total NPAs as well as in absolute terms. Significantly, on the basis of the insights of the study, it can be concluded that both priority and non priority sector have significant effect on banks NPAs. It can also be concluded that there is a significant relation between priority and non priority sectors NPAs with one another and total NPAs. In spite of the contribution of these sectors in rising bad loans, it is also evident that it contributes to

socio economic development as well. Therefore the operating measures of banks and government should make efforts to manage and reduce NPAs along with the facilitation of accelerating this important vehicle of development.

References:

Master Circular – Prudential norms on Income Recognition, Asset Classification and Provisioning pertaining to Advances, 2014.

N. Ranee and D. Gaba, Analysis of Non-Performing Assets of Public Sector Banks‟, GJRA- Global Journal for Research Analysis, 3(9), 2014, 5. [3] M. Shetty, Corporates‟ Rs 100000 crore bad loans written off: RBI, Times of India, 2013.

R K Uppal, "Priority sector advances: Trends, issues and strategy‟, Journal of Accounting and Taxation, 1
(5), 2009, 89.

A.Baijal, "High Ratio of agriculture NPAs in priority sector lending by public and private banks in India- Reasons, suggestions and discussions", International Journal of Science and Research, 4(4), 2015, 885.

1. **N. Goyal, R. Agrawal and R.Agarwal,** "A study of effect of priority sector lending (sector wise) on Non Performing Assets of India commercial banks", International Journal of Research in Finance and Marketing, 5(5), 2015, 85.
2. **D. Nagarajan, Sathyanarayan and A. A. Ali,** "Non-Performing Asset is a threat to India Banking Sector- A comparative study between priority and non-priority sector lending in public sector banks", International Journal of Advanced research in Management and Social Sciences, 2(11), 2013, 39. [8] B. Pandya, "Impact of priority sector advances on bank profitability : Evidence from scheduled commercial banks of India", BVIMSR‟S Journal of Management Research, 7(2), 2015, 75.

Priority Sector Lending- Targets and classification, RBI, 2014.

Priority Sector Lending- Targets and classification, RBI/2014-15/573 FIDD. CO Plan. BC. 54/04.09.01/2014-15.

B. Selvarajan and G. Vadivalgan, "A study on management of Non Performing assets in priority sector reference to Indian Bank and Public Sector Banks (PSBs")", International Journal of Finance and Banking Studies IJFBS, 2(1), 2013, 34.

T. N. Sahu and J. K.Nandi, "Social responsibility of selected public and private sector banks in India and its impact on NPA level", Prestige International Journal of Information Technology and Management- Sanchayan, 2, 2013, 65.

Composition of NPAs of Public Sector Banks, RBI.

Rs. 1.14 lakh crores bad loans written off during 2012-15, The Hindu, Feb. 8, 2016, http://www.thehindu.com/business/rs-114-lakh-croresbad-loans-written-off-during-201215/article8209823.ece.

Priority Sector Lending- Targets and classification, RBI/2014-15/573 FIDD. CO Plan. BC. 54/04.09.01/2014-15, April 23, 2105, RBI.

Composition of NPAs of Public Sector Banks.

Bank- wise and group- wise Gross Non-Performing Assets, Gross Advances and Gross NPA ratio of Scheduled Commercial Banks.

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

हिंदी भाषा: वैशिष्ट्य एवं वैविध्य

डॉ. भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय,हजरतबल,श्रीनगर
जम्मू व कश्मीर- 190006

युवाओं में वैज्ञानिक क्षमता को बढ़ावा देने में हिंदी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके प्रमुख कारण यह हैं कि हिंदी भाषा का शब्द भंडार बहुत बड़ा है। ज्ञान-विज्ञान के ऐसे अनेक शब्द हैं, जो अंग्रेज़ी में उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिए तुलसी, चंदन, नागर मोथा, शीरीश, दूब, अलसी इत्यादि। हिंदी शब्दों से परिचित युवक इन नामों और पदार्थों के गुणवता की ओर आकृष्ट होकर उसके गुणों और प्रयोगों पर वैज्ञानिक शोध करने लगता हैं, जबकि यह शब्द अंग्रेज़ी भाषा में ठीक-ठीक नहीं मिल पाते हैं। अन्य कारण यह भी हैं कि हम देशकाल परिस्थिति के कारण जिस प्रकार हिंदी भाषा में सोच सकते है वैसा किसी अन्य भाषा में नहीं। यह भाषा हमारे मन में बैठी हुई है। अत: हम प्रेरणा ले सकते हैं कि प्राचीन काल से ज्ञान-विज्ञान की पुस्तके हिंदी एवं संस्कृत भाषाओं में लिखे गए मिलते हैं। यदि हम हिंदी भाषा जानेगे तो उन प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों पर आधुनिक वैज्ञानिक शोध कर सकते हैं। कहा गया हैं---

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटन न हिय के सूल।।
धर्म, युद्ध ,विद्या, कला, काव्य, गीत अरू ज्ञान।
सबके समझन योग है भाषा माहि समान।
और एक अति लाभ यह यामे प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिए जो विद्या की बात।।

प्राचीन विज्ञानिकों में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, श्रीधराचार्य, धंवतरि, चरक, शुश्रतु, वाग्भट, अश्वनी कुमार, शुक्राचार्य, बृहस्पति के द्वारा विज्ञान, भूगोल, गणित, खूगोल, वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद, वास्तु कला, संजीवनी विद्या इत्यादि के क्षेत्र में विकास हुआ हैं। आज के नवयुवक को कम से कम हिंदी तो सिखनी ही पड़ेगी क्योंकि ---

"भाषा व साधन है जिस के माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।" [1]

इस प्रकार भाषा के द्वारा हम अपने विभिन्न विचारों को परोसते हैं।

"मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों के लिए दूसरे के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कही मिलाता और कही लडाता हुआ अंत तक चला चलता हैं और इसी को जीना कहता है।" [2]

कहने का भाव हैं कि भाषा जीवन से विकसित होती है और विज्ञान जीवन का विशेष अंग है। अतं विज्ञान और भाषा का अटूट संबंध हैं। विज्ञान और कला तथा कला और विज्ञान का अभिन्न संबंध हैं।

"कला को भारतीय दृष्टि में उपविद्या मानने का जो प्रसंग आता है उस से यह प्रकट होता है कि यह विज्ञान से अधिक संबंध रखती हैं। उसकी रेखाएँ निश्चित सिद्धांत तक पहुँचा देती है।" [3]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं। अत: वह अपने समाज एवं समाज से संबंधित ज्ञान विज्ञान के बारे में जो भी सोचता हैं, तब वह अपनी भाषा को केंद्र में रखता है। हम उपयोगी और अनुउपयोगी वस्तुओं के बारे में जब भी चिंतन करते हैं, तब अपनी भाषा को सोचने का माध्यम बनाते हैं। आज विज्ञान का क्षेत्र अधिक बड़ा हुआ है। भूगोल से लेकर नक्षत्र विज्ञान तक, जड़ से चेतन तक, ठोस से लेकर गैस तक, अणु से लेकर इलेक्ट्रान तक, मनुष्य से लेकर वनस्पति तक यह सब कुछ विज्ञान के घेरे में आने वाले तत्व हैं। अत: हमारे आज के नव युवक अगर इन सब पर काम करना चाहते हैं तो उसके लिए हिंदी ही एकमात्र बेहतर भाषा होगी, क्योंकि हिंदी में अधिकांश पुस्तके भी उपलब्ध हैं, जिससे लाभ उठाया जा सकता है। जिस प्रकार वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में शोध करने वाले शोधार्थी संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों से लाभ ले सकते हैं। उसी प्रकार पर्यावरण पर काम करने वाले शोधार्थी गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस और महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से बहुत कुछ ले सकते हैं और उसके आधार पर विज्ञान के क्षेत्र में एक नया अध्याय जोड़ सकते हैं।

संदर्भ :

1. भाषा विज्ञान-डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ.-1, संस्करण:2002, किताब महल प्रयागराज
2. चिंतामणि, कविता क्या है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.-87, संस्करण: 2002, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. काव्य और कला तथा अन्य निबंध , श्री जयशंकर प्रसाद, पृ.-26, संस्करण:2002, लोक भारती प्रकाशन प्रयागराज

शिक्षक प्रशिक्षण बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण अभिवृत्ति में अभिवृद्धि हेतु प्रयास का एक अध्ययन

डॉ0 देवेन्द्र यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज।

सारांश

वर्तमान समय में छात्राध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शिक्षण के सिद्धान्तों पर बल दिया जाता है जिससे छात्राध्यापकों की शिक्षण अभिवृत्ति का उन्नयन किया जा सके। आज छात्राध्यापकों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण राष्ट्र निर्माण व भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वर्तमान छात्राध्यापक ही भविष्य के शिक्षक हैं और इन्हीं भावी शिक्षकों के कंधों पर राष्ट्र निर्माण का सारा दायित्व रहता है। अभिवृत्तियों का प्रसार असीमित है, यह वाह्य वस्तु के प्रतिपक्ष या विपक्ष में हमारी अभिव्यक्ति है। यह बहुत ही संतोष का विषय है कि शिक्षा के क्षेत्र में लोगों ने यह महसूस करना शुरू किया है कि कौशलों की जानकारी ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका शिक्षण अभिवृत्ति के प्रति अनुकुल अभिवृत्ति का होना भी आवश्यक है। अतः परिणामतः बी.एड. विद्यार्थियों ने इस तथ्य का प्रबल समर्थन किया कि कक्षाध्यापन में परिवर्तन की आवश्यकता है तथा कक्षाध्यापन में अध्यापक और छात्रों के बीच दूरी रहती है। अतः उपरोक्त तथ्यों के कारणों को जानकर आवश्यक सुधार व परिवर्तन करने हेतु भी प्रस्तुत शोध उपयोगी है।

मुख्य शब्द– शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बी0एड0 प्रशिक्षणार्थी, शिक्षण अभिवृत्ति, वृद्धि, प्रयास, अध्ययन

प्रस्तावना–

वर्तमान अध्यापक–शिक्षा कार्यक्रम का यह एक बड़ा अपेक्षित पक्ष है। अधिकांश प्रशिक्षण संस्थानों में इन दिनों न तो यथेष्ट अध्यापकीय निरीक्षण– पर्यवेक्षण की व्यवस्था दिखाईपड़ती है न ही प्रशिक्षणार्थियों को इतना समय दिया जाता है कि वे पाठ्य–विषयवस्तु के विधिवत् शिक्षण की पूर्व तैयारी कर सकें अथवा पाठ का समुचित समन्वयन कर सकें। वस्तु विश्लेषण के बारे में प्रायः शिक्षक अपने में सुस्पष्ट और विज्ञ नहीं होते। परिणाम यह होता है कि पूर्वाभ्यास के अभाव में प्रशिक्षु–अध्यापक विश्वासपूर्वक अपने शिक्षण का अभ्यास नहीं कर पाते। उसे वास्तविक शिक्षण–अभ्यास कक्षों में वहाँ के अध्यापकों का यथेष्ट सहयोग नहीं मिल पाता। इसी भाँति अधिकांश शिक्षण–प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षु–अध्यापकों के निरीक्षण और मूल्यांकन के लिये किसी स्तरीय मापनी का प्रयोग नहीं किया जाता। उन्हें प्रतिपुष्टि करने के लिये तो अभी तक कोई सर्वमान्य मानक निर्धरित ही नहीं किया गया है। फलतः निरीक्षण कार्य प्रशिक्षु–अध्यापकों की रुचि और इच्छा पर तथा वस्तुनिष्ठता पर निर्भर न होकर, व्यक्तिनिष्ठ रह जाता है। ऐसी दशा में मूल्यांकन में वांछित पारदर्शिता नहीं रह पाती और उनके अपेक्षित शिक्षण व्यवहारों में सुधार नहीं हो पाता है। शिक्षक–शिक्षा और प्रशिक्षु के शिक्षण अभ्यास के बीच वस्तुतः इन दिनों उपयुक्त सामंजस्य नहीं दिखायी देता।

प्राकृतिक, मानवीय, भौतिक कारकों के प्रभाव से सामाजिक व्यवस्था तथा जीवन शैली में तीव्र परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। आज हमारे यहाँ शिक्षक हैं,

अध्यापक हैं, वे छात्रों को निधारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा भी देते हैं किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात जीवन निमार्ण का व्यावहारिक शिक्षण आज नही हो पा रहा है। आज गुरू–शिष्य की तरह शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध पहले जैसे नही रहे। केवल कुछ अक्षरीय ज्ञान दे देने, एक निश्चित समय तक कक्षा में उपस्थित रहकर कुछ पढ़ा देने के बाद शिक्षक का कार्य समाप्त हो जाता है तथा व्याख्यान सुनने के बाद विद्यार्थी का भी मुक्त हो जाता है। अध्यापक और विद्यार्थी के बीच जो स्नेह, भाव, आत्मीयता, सौहाद्र, समीपता की आवश्यकता है, वह आज नही है और यही कारण है कि आज का विद्यार्थी डिग्री, डिप्लोमा ले लेता है लेकिन व्यावहारिक जीवन का शिक्षण, चरित्र, ज्ञान उत्कृष्ट व्यक्तित्व का उसमें अभाव रहता है। इन सबके बिना विद्या अधूरी है। जो जीवन को प्रकाशित न करे, पुष्ट न बनाये तो वह विद्या किस काम की।?

वर्तमान समय में बी0एड0 करने के लिए लाखों रूपये खर्च करने के बाद जो भी व्यक्ति सरकारी अध्यापक बन जा रहा है, वह अध्यापक ज्ञान के विस्फोट के सत्य को स्वीकार करने कौ तैयार नहीं है और न ही अपने शिक्षण सम्भावनाओं को मान रहा है। आज का अध्यापक येन–केन प्रकारेण अपनी सुविधानुसार विद्यालयों के चयन हेतु सदैव परेशान रहता है। शायद इसी कारण वह पठन–पाठन कार्य में, या कक्षा में जाने में रूचि नहीं लेता। इस परिस्थिति में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज का अध्यापक बदल गया है, पुराने मापदण्डों पर खरा नहीं बैठ रहा और वह बिना काम किये सफल डाक्टर के समान महत्वाकांक्षी हैं।

शिक्षा का प्रयोजन छात्र को एक निश्चित मार्ग पर ले जाना है। शिक्षा उद्देश्यपरक होनी चाहिए क्योंकि शिक्षा मनुष्य के जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इसके द्वारा कोई समाज अपने सदस्यों को अपनी पूर्व संचित सभ्यता एवं संस्कृति में निरन्तर विकास कर सके, इनके मतानुसार शिक्षा का उद्देश्य विस्तृत एवं प्यापक है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है तो इसमें सामाजिक, शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक, नैतिक एवं आत्मिक विकास की अवधारणा सम्मिलित हो जाती है।

आज देश पर वे तत्व प्रबल है जिससे देश का अस्तित्व तार–तार हो सकता है। जिसमें उन्होंने विघटनकारी तत्वों से सावधान रहने का विगुल बजायी है वे तत्व हैं– क्षेत्रीयता की भावना, जातीयता की भावना, साम्प्रदायिकता की भावना, भाषावाद, विदेशी राजभक्ति, आर्थिक असमानता, अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम का न होना आदि। इन्होंने इन कमजोरियों एवं दोषों से बचने एवं छुटकारा प्राप्त करने का उपाय बताया है, जिसके लिए शासन को प्रयत्न करना चाहिए।

काल के साथ मूल्यों की श्रेणी में विकास तो हुआ लेकिन हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हम मूल्यों के निर्माता बन गये है। प्रश्न उठता है कि क्या मूल्यों की शिक्षा दी जा सकती है। उनके अनुसार मूल्यों की जानकारी ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें अपनाना होगा। शिक्षक होने में हमें मानकर चलना होगा कि संसार के सारे मूल्य शिक्षा द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं क्योंकि शिक्षक ही मूल्यों का संस्थापक होता है।

पूर्व अध्ययनों में अध्यापक शिक्षा के मुद्दे के रूप में इंगित किया कि भारतीय मूल्यादर्शों एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों, को अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में पुनः सम्मिलित करने की चुनौती तथा युगीन विकेन्द्रीयकरण, भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण की प्रवृत्तियों को समुचित रूप से समंजित करने की चनौती तथा अभिनव मूल्यों को समाहित करने की चुनौतियाँ आदि है। **(कुमार, 2018)**

अध्यापक में अध्ययन व अध्यापन अभिवृत्ति का बहुत महत्व है। एक अध्यापक अपने कर्तव्य को किस प्रकार निभा सकता है, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उसका विषय सम्बन्धी ज्ञान व उसकी अध्यापन योग्यता का स्तर कैसा है तथा उसकी अभिवृत्ति एवं विश्वास का स्तर कैसा है। अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति न रखने की दशा में व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों का अनुपालन प्रभावी रूप में नहीं कर पाता है। अतः पेशे से सम्बन्धित जिम्मेदारियों को निभाने के लिए उस पेशे के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का होना आवश्यक है।

प्रायः छात्राध्यापक शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने से पूर्व उन सेवा क्षेत्रों की ओर

अपनी सकारात्मक अभिवृत्ति को दर्शाते हैं, जो उन्हें उनकी वर्तमान सामाजिक परिस्थिति से उच्च सामाजिक परिस्थिति प्रदान करने में सहायक होती है। अतः वे विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से इच्छित उच्च सामाजिक परिस्थिति प्रदान करने वाले सेवा क्षेत्रों में जाने का प्रयास करते हैं और वहाँ अपेक्षित सफलता न प्राप्त करने की स्थिति में वह अन्तिम विकल्प के रूप में अध्यापन व्यवसाय से सम्बन्धित सेवा क्षेत्र की ओर आने का प्रयास करते हैं, जो कि उनकी स्वभाविक रूचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप नहीं होता है। अतः गुणात्मक शिक्षा हेतु छात्राध्यापकों की शिक्षण अभिवृत्ति को जानना आवश्यक है और साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि छात्राध्यापकों की शिक्षण अभिवृत्ति उनके सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से किस रूप में सम्बन्धित है।

शिक्षा का गिरता हुआ स्तर आज किसी से छुपा नहीं है, क्योंकि यह स्वस्थ नागरिकों के विकास में बाधक है। अध्यापक के आचार–विचार, व्यक्तित्व अभिवृत्ति का सीधा असर बालकों पर पड़ता है। बालक का सम्पूर्ण विकास अध्यापकों पर ही आधारित होता है। अगर हम आज शिक्षा पर ध्यान दें, तो हमारा ध्यान एकाएक अध्यापक पर केन्द्रित हो जाता है, क्योंकि अध्यापक ही भावी देश का निर्माता होता है। अतः आवश्यकता इस बात की है, कि अध्यापकों की अभिवृत्तियों को विकसित किया जाये।

प्राचीन भारत में वशिष्ठ, व्यास, कौटिल्य आदि सफल शिक्षक हुए हैं, जिनके बारे में प्रशिक्षण का कोई उल्लेख नहीं मिलता है फिर भी इन लोगों में अपने शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति थी और कुशल अध्यापक की भाँति शिक्षण कार्य किया। अतः शिक्षण–व्यवसाय पर वित्त का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता था परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में कम परिश्रम से अधिक लाभ प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य बन गया है। इस दृष्टि से आज के छात्राध्यापकों को विभिन्न विधियों में निपुण बनाने हेतु नवीन शिक्षण विधियों एवं नवीनतम शैक्षिक उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय को आर्थिक सहायता एवं अनुदान उपलब्ध होंगे। अध्यापक के प्रशिक्षण की महत्ता का वर्णन करते हुये शिक्षा आयोग (1964–66) ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि ''शिक्षकों के प्रशिक्षण पर किये गये व्यय के परिणाम सवरूप लाखों छात्रों की शिक्षा में जितना सुधार होगा उसकी तुलना में व्यय की मात्रा बहुत कम होगी। अतः शिक्षा के विकास में उत्कृष्ट–कोटि के शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय बहुत बड़ा सहयोग दे सकते हैं।''

शिक्षक का व्यवहार व दृष्टिकोण विद्यार्थी, कक्षा वातावरण, उसके व्यवसाय को प्रभावित करता है। शिक्षा प्रक्रिया के सुचारू रूप से संचालन के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों की अभिवृत्ति और दृष्टिकोण की जानकारी की जाए। शिक्षकों को अपने व्यवसाय के प्रति क्या दृष्टिकोण है, शिक्षार्थी के प्रति उनकी क्या धारणायें हैं, वह किस प्रकार के कक्षा वातावरण की अपेक्षा रखते हैं, इन सबकी जानकारी भी नितान्त आवश्यक है। इन सबकी हेतु अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे शिक्षा प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके।

शिक्षण अभिवृत्ति में अभिवृद्धि हेतु प्रयास–

बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों अभिप्रेरित होकर अपने व्यवसाय में रुचि तथा सकारात्मक अभिवृत्ति लाने हेतु निम्न प्रयास किये जा सकते हैं–

- शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षिक आवश्यकताओं का आंकलन होना चाहिए तथा उसी के अनुरूप शिक्षकों को सुविधायें एवं सम्मान दिया जाय।
- महाविद्यालयों के भवनों का निर्माण उचित प्रकार से करायी जाय एवं पानी की व्यवस्था की जाय।
- अध्यापकों की कमी को पूरा किया जाय एवं योग्य अध्यापकों की ही सेवा ली जाय।
- महाविद्यालयों के अध्यापकों की गुणात्मकता को पर्याप्त रूप से प्रोन्नत किया जाय और व्यवहारिक कार्य एवं आन्तरिक शिक्षा अवधि को महत्व दिया जाय।
- शिक्षकों को पुस्तकें, पत्रिकायें और शिक्षण सामग्री आदि क्रय करने हेतु अनुदान देने की योजना

निर्मित की जाय।

- शिक्षकों की वृत्तिक क्षमता को विकसित करने तथा उनको आधुनिकतम ज्ञान से परिलक्षित करने हेतु शिक्षकों को नियमित समयावधि में सेवारत प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधा प्रदान की जाय।
- शिक्षकों के चयन एवं नियुक्ति की पद्धतियाँ इस प्रकार नियोजित की जाय जिससे प्रतिभावान एवं इस व्यवसाय के प्रति अभिरूचि रखने वाला व्यक्ति प्रवेश पा सके।
- शिक्षकों का स्थानान्तरण जल्दी–जल्दी न किया जाय।
- अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राज्यीय शिक्षक सम्पर्क के कार्यक्रमों को विकसित किया जाय तथा इस हेतु अवकाश, वेतन यात्रा में रियायत आदि सुविधायें प्रदान की जाय।
- शैक्षिक स्तर सुधारने एवं शिक्षण स्तर को प्रोन्नत करने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण अनुदान आयोग वैधानिक रूप से गठित किया जाय।
- केन्द्र सरकार शिक्षकों के लिए एक राष्ट्रीय वेतनमान नीति का निर्माण करें तथा सभी स्तर के शिक्षकों के लिए उसे लागू करें।
- महंगाई, क्षतिपूर्ति, आवास और अन्य भत्ते सभी शिक्षकों को दिये जाय तथा समय–समय पर वेतनवृद्धि जीवन स्तर के मूल्यों पर आधारित होती रहे जिसका निरूपण वैधानिक विधि से किया जाय।
- स्ववित्तपोषित बी0एड्0 महाविद्यालयों के शिक्षकों का वेतन बढ़ाया जाय तथा उन्हें स्थायी शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाय।
- शिक्षक का व्यवसाय अध्ययन एवं चिन्तन का व्यवसाय है। अतः शिक्षकीय व्यवसाय की दक्षता बढ़ाने के लिए अध्ययन और चिन्तन पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को अपना कार्य करने के लिए ऐसी सुविधा होनी चाहिए जिससे वह प्रभावशाली अध्यापन कर सके तथा अपने व्यवसाय में सम्बन्धित दायित्व को निभा सके।

यदि शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट नहीं है, व्यवसाय चयन मात्र उसकी औपचारिकता है तथा वह अपने विद्यार्थियों, शैक्षिक प्रक्रिया आदि के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति नहीं रखता तो, इसका स्पष्ट प्रभाव उसके शिक्षण पर पड़ेगा और मुख्य रूप से विद्यार्थी इससे प्रभावित होगा।

अतः प्रस्तुत अध्ययन की शैक्षिक उपादेयता इस प्रकार है–

1. प्रशिक्षण से पूर्व शिक्षकों की अभिवृत्ति ज्ञात करने में सहायक।
2. शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करने में सहायक।
3. शिक्षण प्रक्रिया के अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक।
4. शिक्षक और विद्यार्थी प्रगाण सम्बन्ध बनाने में सहायक।
5. विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण प्रक्रिया को प्रोत्साहन देने में सहायक।
6. कक्षा वातावरण प्रभावशाली बनाने में सहायक।
7. शिक्षण व्यवसाय को उन्नतिशील बनाने में सहायक।
8. शिक्षकों में स्तर में सुधार लाने में सहायक।

- शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। प्रशिक्षण के लिए प्रवेश करने वाले प्रशिक्षार्थियों की उनके व्यसाय के प्रति

दृष्टिकोण की जानकारी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जानकारी इसी अध्ययन के आधार पर की जा सकती है।

- शिक्षकों के शिक्षण, शिक्षण प्रक्रिया, विद्यार्थियों, शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने में उपयोगी है। इसके आधार पर शिक्षकों की अभिवृत्ति के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
- शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए प्रस्तुत अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। शिक्षकों की अभिवृत्ति को जानने के पश्चात् शिक्षण प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
- शिक्षा प्रक्रिया तभी सुचारूपूर्वक संचालित हो सकती है जब शिक्षक और विद्यार्थी के सम्बन्ध में प्रगाण एवं मधुर है। प्रस्तुत अध्ययन द्वारा हमनें बी.एड. विद्यार्थियों की छात्र सम्बन्धी अभिवृत्ति अध्ययन भी किया। अतः सकारात्मक अभिवृत्ति का पता लगाकर, शिक्षण प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्रस्तुत अध्ययन उपयोगी है।
- प्रस्तुत अध्ययन छात्र–केन्द्रित शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति का मापन करने में उपयोगी है।
- कक्षा वातावरण को किस प्रकार उपयोगी बताया जा सकता है। इस सम्बन्ध में भी प्रस्तुत अध्ययन उपयोगी है।
- बी.एड. विद्यार्थियों की शिक्षण अभिवृत्ति को प्रशिक्षण के दौरान जानकर, उसे सकारात्मक बनाने का प्रयास प्रशिक्षण के दौरान किया जा सकता है, जिससे शिक्षण व्यवसाय को उन्नतिशील बनाया जा सकता है।
- शिक्षकों के स्तर में सुधार लाने में भी प्रस्तुत अध्ययन उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत अध्ययन द्वारा हमें यह भी ज्ञात हुआ कि बी.एड. विद्यार्थियों ने इस तथ्य का प्रबल समर्थन किया कि कक्षाध्यापन में परिवर्तन की आवश्यकता है तथा कक्षाध्यापन में अध्यापक और छात्रों के बीच दूरी रहती है। अतः उपरोक्त तथ्यों के कारणों को जानकर आवश्यक सुधार व परिवर्तन करने हेतु भी प्रस्तुत शोध उपयोगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- आहुवालिया, एस0पी0, मैनुअल फॉर टीचर एट्टीटूड इन्वेन्टरी, आगरा : नेशनल साइकोलॉजी कार्पोरेशन।
- अहिरवार, ए0ए0 (2004). ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ टीचिंग एटिट्यूड ऐण्ड सेलेक्टेड वैल्यूज ऑफ प्री–सर्विस ऐण्ड इन–सर्विस टीचर–ट्रेनीज।
- काटोच सुमन कुमारी (2017). सेकेंडरी स्कूल टीचर्स आटिट्यूड टुवर्ड्स क्रियेटिव टीचिंग, *स्कॉलर्ली रिसर्च जर्नल फॉर इंटरडिसिप्लिनरी स्टडीस*, 4(37), *https://doi.org/10.21922/srjis.v4i37.10588*
- कपानी, मधु (1990), ''एजूकेशन इन ह्यूमन वैल्यूज : कन्सेप्ट एण्ड प्रैक्टिकल इम्पलीकेशन, *एम.बी. बुच फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, एन.सी.ई.आर.टी,* नई दिल्ली, वाल्यूम–II, पृ0सं0 1340
- कुमार, धर्मेन्द्र (2017). माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों के शिक्षण व्यवहार का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- कुमार, संजय एवं बाला, अन्जू (2017). उत्तर प्रदेश राज्य के सेवारत प्राईमरी एवं माध्यमिक स्तरीय शिक्षकों की अभिवृत्ति तथा समस्याओं का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजुकेशन एण्ड रिसर्च*, वॉ0 2, इश्शू–5, पृ0 76–79
- कुमार, संदीप (2013), एट्टीटूड ऑफ बी0एड0 स्टूडेन्ट– टूवर्ड क्रिएिटिव टीचिंग : ए स्टडी ऑफ साइंस एण्ड आर्ट्स स्ट्रीम टीचर्स, *एन इण्टरनेशनल इंन्डेक्स ऑनलाइन जर्नल : ग्लोबल इण्टरनेशनल रिसर्च थॉट*, पृ0 89–98

- खान, इमरान (2017). माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों के कक्षा शिक्षण व्यवहार का एक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज, जौनपुर सम्बद्ध पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
- चौधरी, रीता एवं कुमार, संजय (2017). हरियाणा राज्य के सेवारत प्राइमरी एवं माध्यमिक स्तरीय शिक्षकों की अभिवृत्ति तथा समस्याओं का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजुकेशन एण्ड रिसर्च*, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 35–38
- जैदी, जफर इकबाल (2015). फैक्ट्र्स इफेटिंग एट्टीटूड टूवर्ड्स टीचिंग एण्ड इट्स कोरिलेट : रिव्यू ऑफ रिसर्च, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइकोलोजिकल रिसर्च*, वॉ0 4, इश्शू–1, पृ0 46–51
- तिवारी, कमला पति (2017). संस्कृत शिक्षक तथा हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति एवं कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट*, वॉ0 2, इश्शू–5, पृ0 728–732
- दादू, प्रतिभा (2016). "ग्रामीण एवं शहरी पुरूष एवं महिलाओं के व्यक्तित्व, मूल्य एवं धार्मिक अभिवृत्ति का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के संदर्भ में अध्ययन" *इन्टरनेशनल एजुकेशन एण्ड रिसर्च जर्नल*, वॉल्यूम– 3, इश्यू–5।
- पटलवार, सुहासिनी (2010), बी0एड0 एवं डी0एड0 प्रशिक्षार्थियों की शिक्षण अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध सारांश संकलन, *राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद*, रायपुर, छत्तीसगढ़
- पाण्डेय, अरूण कुमार (2014). प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति तथा कक्षा–शिक्षण व्यवहार का समीक्षात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइंस रिसर्च*, वॉ0 1, इश्शू–1, पृ0 56–70
- पाण्डेय, नीरा (2018). उच्चतर माध्यमिक शाला के शिक्षकों के सृजनात्मक अधिगम एवं शिक्षण के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति पर एक अध्ययन, *शृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका*, वॉ0 6, इश्शू–4, पृ0 124–127
- भार्गव, अनुपमा एवं पैथी, एम.के. (2014). एट्टीटूड ऑफ स्टूडेन्ट टीचर्स टूवर्ड टीचिंग प्रोफेशन, *तुर्किस ऑनलाइन जर्नल ऑफ डिस्टेन्स एजुकेशन*, वॉ0 15, नं0 3, पृ0 27–36
- महतो, अंकुर एवं बेहेरा, सन्तोष कुमार (2018), एट्टीटूड ऑफ बी0एड0 स्टूडेन्ट–टीचर्स टूवर्ड प्रैक्टिकम, *अमेरिकन रिसर्च जर्नल ऑफ ह्युमैनेटिक्स एण्ड सोशल साइंसेस*, वॉ0 4, पृ0 1–13
- मित्तल, कविता एवं राय, दिव्या (2017). अध्यापक शिक्षा में प्रशिक्षुता कार्यक्रम : प्रासंगिकता एवं चुनौतियाँ, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, 3(7), 1037–1040
- राय, दुर्गेश (2011). प्राथमिक विद्यालयों में सेवारत स्थायी एवं अस्थायी अध्यापकों की शिक्षण अभिवृत्ति का अध्ययन, अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, वाराणसी : महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ।
- रतोड़िया, दुर्गा एवं सिंह, नवनीत (2015). गुरुजी तथा अध्यापकों की शैक्षिक अभिवृत्ति एवं अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन, *जर्नल ऑफ एडवांस एण्ड स्कालरली रिचर्सेस इन एलाइड एजुकेशन*, वॉ0 10, इश्शू–20, पृ0 1–2
- शर्मा, ब्रह्मदत्त (2017). प्रारम्भिक शिक्षा के भावी शिक्षकों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति, वचनबद्धता तथा जीवन सन्तुष्टि का अध्ययन, *इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ कार्मस, आर्ट्स एण्ड साइंस*, वॉ0 8, इश्शू–12, पृ0 271–288
- शर्मा, उर्मिला एवं शर्मा, विजय सागर (2018). समावेशी शिक्षा के प्रति बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन, *रिसर्च रिव्यू इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी*, वॉ0 3, इश्शू–9, पृ0 795–797
- सुधाकर के, रेड्डी दयाकारा वी, (2017), ए स्टडी ऑन एटिट्यूड ऑफ टीचर्स टुवर्ड्स टीचिंग प्रोफेशन, *द इंटरनॅशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकॉलजी*, 4(3),98, 130–136

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

युगीन पृष्ठभूमि एवम् परिस्थितियां : नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व

अनुपम देवी
शोध छात्रा
राणाप्रताप पी.जी. कॉलेज, सुल्तानपुर
मो. 7233027149

आधुनिक काल में भारत में 19वीं सदी में जो धर्म सुधार आंदोलन शुरू हुआ, उसे पश्चिम में पुनर्जागरण या रेनेसा नाम दिया गया। धीरे–धीरे रेनेसा शब्द और धर्म सुधारआंदोलन शब्द, पुनर्जागरण से अन्योन्याश्रित हो गया। यही कारण है कि पुनर्जागरण की जगह रेनेसा के पर्यायवाची रूप में अद्यतन नवजागरण शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। गौरतलब है कि 19वीं सदी की इस नई चेतना के लिए पुनर्जागरण और नवजागरण इन दोनों शब्दों के प्रयोग करने का श्रेय ख्यातिलब्ध प्रगतिवादी समीक्षक डॉ रामविलास शर्मा को है। डॉ रामविलास शर्मा ने 1977 ई. में 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' पुस्तक प्रकाशित किया। जिसमें 'नवजागरण' शब्द की संकल्पना अभिव्यक्त की थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिन्दी का जनक माना जाता है; क्योंकि हिन्दी कथा साहित्य का जन्म भारतेन्दु युग से ही हुआ है। इस कारण इस युग को हम "नवजागरण काल" भी कह सकते हैं ।

भारतेंदु युग अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। इसमें एक ओर पराधीनता से पीड़ित जन समुदाय था तो दूसरी ओर समाज में नई आकांक्षा और चेतना लिए विकासमान जनता थी। आम जनता चेतना से अनुप्राणित होकर देश तथा समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझने लगी थी।इस विकासमान नवचेतना से अनुप्राणित जनता से अंग्रेजी सरकार परेशान थी और भारतीय समाज में फूट डालो और राज करो की नीति का प्रयास कर रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा भारतेंदु मंडल के सहयोगी कवि, कथाकार,अंग्रेजों की नीति को अच्छी तरह समझ रहे थे और जनता को आगाह करने का प्रयास भी कर रहे थे। इस कालखंड के लेखकों ने जनता तक अपनी बात पहुंचाने के लिए न केवल पत्र–पत्रिकाओं का सहारा लिया अपितु निर्द्वंद होकर, नाटकों तथा प्रहसनों के माध्यम से अपनी बातें जनसामान्य तक पहुँचाई। द्विवेदी युग में सच्चे अर्थों में नवजागरण, जागरण सुधार काल की भावना विकसित हुई और यह युग ऐसा युग बना जो स्त्रियों, दलितों, पिछड़ों और अंत्यजों के लिए वरदान साबित हुआ। एक ओर राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र राष्ट्रवाद शुरू हुआ तो, दूसरी ओर स्त्री उत्थान और अधिकारों की चर्चा शुरू हुई। डीके कर्वे ने पुणे में पहला महिला विश्वविद्यालय खोलकर स्त्रियों को भी शिक्षा और साक्षरता से रूबरू कराया; ज्ञानार्जन के लिए उन्हें जागृत किया। बंग महिला राजेंद्र बाला घोष का आगमन यहीं होता है; जब वह 1906 में 'दुलाईवाली' कहानी लिखकर तत्कालीन नीति निर्धारकों समाज के पहरेदारो पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती हैं। एनी बेसेंट, नल्ली सेनगुप्त, सरोजनी नायडू जैसी राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली स्त्रियों ने आमजन को स्त्री चेतना और स्त्री महत्ता से परिचित कराया। छायावाद में स्त्रियों की पुकार सुनी गई। महादेवी स्वयं स्त्री थी और श्रृंखला की कड़ियां में स्त्री विमर्श को सशक्त स्वर देती हैं। पंत, प्रसाद, निराला सभी ने नारी के स्वतंत्रता की घोषणा की। प्रसाद जहां नारी में दया, माया, ममता, मधुरिमा के अगाध विश्वास की परिकल्पना करते हैं और उसे श्रद्धा का प्रतिरूप बताते हैं; वहीं निराला शक्ति की उपासना पर बल देते हैं। पंत की नारी स्वप्नलोक की मानसिक प्रतिमा थी। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मैत्रेई पुष्पा, महाश्वेता देवी जैसी कथाकार आती है।जब स्त्री विमर्श की शुरुआत हुई तो, स्त्री कथाकारों की एक श्रृंखला चल पड़ी। सभी विमर्श कारों की अपनी सोच थी, अपनी राग थी, अपने परिवेश थे, अपना गांव था और अपनी व्यंजना थी। इन कथाकारो ने कथा साहित्य में स्त्री विमर्श को नए अर्थों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यह विमर्श जन सामान्य से परे नहीं था, बल्कि आमजन में प्रचलित मुहावरों से ही लिया गया था। जिसे हम 'यत्र

नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' कहते हैं या कृत विधि सृजी नारि जग माही।पराधीन सपनेहु सुख नाही।। कहा गया। यह मुहावरा स्त्री स्वतंत्रता का पक्षधर है और स्त्री विमर्श कारों ने इसे केवल जुमला भर नहीं माना, अपितु उसे नया रूप, नया रंग–रोगन देने का प्रयास किया। वे आमजन में शोषित, पीड़ित, आधुनिक स्त्री की पीड़ा को ही अपनी पीड़ा मानकर सृजन कर्म करती है। जिसमें शिवानी, कृ ष्णाअग्निहोत्री, प्रभा खेतान, मृणाल पांडे, नल्ली सेनगुप्ता, नीरजा माधव, मंजुल भगत, रजनी गुप्ता, शशि प्रभा शास्त्री, जयश्री रॉय कथाकार आती हैं, लेकिन किसी कथाकार ने ऐसा कोई परिदृश्य नहीं बनाया, ऐसा कोई ताना–बाना नहीं बुना और न ही ऐसी कोई स्थिति या परिवेश बनाया कि स्त्रियों के संदर्भ में उनकी पीड़ा,उनके अधिकार, उनकी सुरक्षा या स्त्री विमर्श से संबंधित सभी बातें आ चुकी हो। कहीं न कहीं रिक्तता बनी रही, और इसी रिक्तता को पूर्ण करती हैं नासिरा शर्मा। इन्होंने मजहबी दुनिया से निकलकर हिंदू ,मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी मजहबो की स्त्रियों को अपनी नजरों से देखा, सोचा, समझा, महसूस किया और उन सब को अपने साहित्य में समुचित स्थान दिया। यदि नासिरा के पूर्व इस्लामिक क्रांति या उससे उत्पन्न हालातों पर चर्चा हुई होती तो शायद नासिरा को कलम उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परंतु ऐसा नहीं हुआ? यही कारण है कि नासिरा शर्मा ने अपनी लेखनी के माध्यम से उस इस्लामिक समुदाय, खाड़ी के देशों ईरान इराक, फिलीस्तीन, संयुक्तअरब अमीरात, तुर्की ,सीरिया, अफगानिस्तान, बहरीन,कुवैत, कतर, ओमान, सऊदी अरब आदि के गृह युद्ध से उत्पन्न हालातों और स्त्रियों को उन हालातों के मध्य देखने, परखने, समझने का वर्णन किया है। विद्रोह हो या क्रांति, आंदोलन हो या सशस्त्र संघर्ष, सब में सताई जाती है स्त्री। स्त्री को केंद्र में रखकर के संपूर्ण कथा साहित्य का सृजन नासिरा शर्मा ने किया और प्रस्तुत शोध में स्त्रियों की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्थितियों का चित्रण ही अभीष्ट है। समाज में नारी की महत्ता को भी बताया। कि यदि नारी नही होगी तो, सब कुछ नर्क हो जायेगा।

नासिरा शर्मा का जन्म इलाहाबाद के पत्थरगली, जीरो रोड बस अड्डे के पीछे एक संपन्न मुस्लिम शिया परिवार में 22 अगस्त 1948 ईस्वी सायं 4:00 हुआ था उस दिन शुक्रवार था जब पिता प्रोफ़ेसर जामिन अली जुमे की नमाज पढ़कर घर पहुंचे तो पता चला कि उनके घर एक कन्या ने जन्म लिया है। प्रोफेसर जामिन अली इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अरबी फारसी उर्दू विभाग में प्रोफ़ेसर थे। वह अग्रगामी सोच, प्रगतिवादी विचारों से परिपूर्ण थे। कहने का आशय है कि नासिरा शर्मा को पैतृक संस्कार में ही ज्ञान और शिक्षा मिली थी। इनकी मां श्रीमती नाझनीन बेगम थी। मां घर गृहस्थी के कार्यो में निपुण थी और नासिरा शर्मा ने बचपन की पाठशाला मां को ही बनाया। वह अपनी मां को ही अपना पहला गुरु मानती हैं। यूं तो परिवार में कुल पांच भाई बहन थे और जब नासिरा छोटी थी,तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। पिताजी के सिद्धांत,उनके व्यवहार, उनकी सहृदयता, उनके विचार,सदैव परिवार को प्रेरणा देते रहे। इसी कारण परिवार का कोई ऐसा सदस्य नहीं था, जो किसी दिन पिता को याद करने से भूलता हो। पिता की कमी परिवार में सदैव खलती रहती थी,क्योंकि पिता सभी की संवेदनाओ में रचे बसे थे। आजादी के समय का माहौल था, देश के विभाजन का परिवेश था, हिंदू–मुस्लिम दोनों में खाइया बनी थी। फिर भी पिताजी ने अपने व्यवहारों से, अपने विचारों से, यह महसूस होने नहीं दिया कि वे, किसी बेगाने राष्ट्र में रहते हैं या पाकिस्तान से उनका कोई सरोकार है। अरबी–फारसी, उर्दू पढ़ाते समय भी वे लोगों में प्रगतिशील विचारों को ही व्यक्त करते थे। पिता से बढ़कर मां का उत्कृष्ट कार्य परिवार के लिए था। क्योंकि मां ने दोहरी भूमिका निभाई। एक पिता की, दूसरी मां की, मां स्वाभिमानी और स्वावलंबी ढंग पर चलने वाली स्त्री थी। तमाम अंतर्विरोधो, शत्रुता, विद्रोह, दमन जैसे अफवाहों को दरकिनार करते हुए तीनों लड़कियों को सुशिक्षित कर रही थी। पिता ने घर में कभी धन का अभाव होने नहीं दिया। यही कारण था कि मां को किसी रिश्तेदार के यहां, किसी पड़ोसी के यहां हाथ फैलाने नहीं पड़े, अपितु मां ने हर तरह से बच्चों की परवरिश की। उनकी सुख–सुविधाओं का ध्यान रखा, उन्हें प्रगतिशील विचारों से जोड़ा। देश की आजादी के एक वर्ष, एक सप्ताह बाद ही नासिरा का जन्म हुआ था। यह सामान्य जन समुदाय या पाठक वर्ग भी जान सकता है कि अगस्त 1946 में पूरे देश में जिन्ना ने प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाया था। लड़कर लेंगे पाकिस्तान का नारा दिया था। हिंदू–मुस्लिम दोनों में नफरत की दीवार खड़ी की थी। इन्ही परिस्थितियो में मुस्लिम अत्यधिक रूढ़िवादी और कट्टर होते गए। मुस्लिम परिवार में पुरुषों को भी तालीम नहीं दी गई, स्त्रियों

के लिए तो यह और कठिन बात थी। बावजूद इसके मां ने तमाम अंतर्विरोध और वाह्य अवरोधों, विरोधियों को दरकिनार करते हुए बच्चियों की तालीम पर विशेष ध्यान दिया। यह एक आयरन लेडी जो कार्य कर सकती है, वही कार्य नासिरा की मां ने किया था। नासिरा अपने इस पांच भाई बहनों के परिवार में सबसे छोटी थी। इसी कारण सभी भाई–बहनों के लिए दुलारी थी। बचपन लाड़ और प्यार में बीता। कहीं भी उसकी पसंद नापसंद से उसे इतर नहीं रखा गया। वह लाड़–प्यार आज भी नासिरा के चेहरे पर गुलाब के फूल की तरह प्रस्फुटित होता है।आज भी बचपन का वह स्वभाव इनके अंदर विद्यमान है। मां–बाप की परवरिश बड़े भाई–बहनों का प्यार,उनके अंदर गजब का उत्साह और जोश भर रखा था। नासिरा बचपन से ही दिखावेपन से दूर रही। उनका जीवन रहन–सहन सादगी से परिपूर्ण था और ताम–झाम तथा आदर्शयुक्त जीवन उन्हें नीरस और बोझिल दिखता था। उनका परिवार जमींदार खानदान से होकर भी सामंती मानसिकता से काफी दूर था। सामंतवादी सोच और मानसिकता इस परिवार को स्पर्श न कर पाई। धैर्य सहनशीलता स्वाभिमान तथा दूसरों का सम्मान उसकी इज्जत उसके अस्तित्व को महत्व देना इनकी शिक्षा का आयाम था। अदब और तमीज उनके घर की विशिष्ट पहचान थी। पुरुष और स्त्री की स्थिति में उनके परिवार में जमीन और आसमान का फर्क नहीं था; बल्कि उनका फर्ज औरत की इज्जत करना उनसे मोहब्बत करना बना हुआ था। बाल्य–काल से ही नासिरा में पढ़ने की अभिरुचि थी। शेरो–शायरी–मुशायरो में पिता जी शिरकत करते थे। घर आकर अच्छी–अच्छी बातें परिवारके सदस्यों को बताते थे। यही कारण था कि बाहर की आबो–हवा साहित्य दुनिया की छाप नासिरा को मिली।किसी भी व्यक्ति की पहली पाठशाला उसका परिवार होता है और मां ही उसकी प्रथम गुरु होती है। नासिरा के लिए भी यही सब कुछ था। इनका परिवार, उन परिवारों से ज्यादा जुड़ा था, जो पढ़ा–लिखा सभ्य और सुसंस्कृत था।प्रतिभा इस परिवार में कूट–कूट कर भरी थी। नासिरा की दो बड़ी बहने थी। दोनों की साहित्य में रूचि थी।

शिक्षा–दीक्षा–नासिरा शर्मा में लिखने और पढ़ने की ललक बराबर बनी रहती थी। इसे पैतृक संस्कार कहें या मातृत्व रूपी पाठशाला, दोनों में से कोई एक कमतर नहीं था। पिता का लाड़–प्यार, मां द्वारा पिता की अनुपस्थिति का एहसास न होने देना, मां की अपनी संवेदनाएं, मां की ढेर सारी अपेक्षाएं नासिरा में जुड़ी थी। नासिरा में ही मां अपना अक्स देखती थी। नासिरा में ही मां संपूर्ण दुनिया की खुशियां देखती थी। नासिरा के मन में क्या है? मां को पता नहीं, लेकिन मां के अंदर क्या है? यह नासिरा को पता था। यही कारण है कि नासिरा की प्रारंभिक शिक्षा से लेकर आगे तक की शिक्षा में मां की सारी संवेदनाएं जुड़ी हुई थी। बच्चों में बालपन की स्वाभाविकता जिस प्रकार से होती है, वही नासिरा में भी थी। तुतला कर बोलना, उनकी संवेदना, बालकोचित मनोविज्ञान के ढंग से प्रस्तुत होना और दो टूक बातें करना यह बालपन की विशेषता होती है। जैसा कि नासिरा ने स्वयं कहा है किसी से भी सच्ची खरी बात कहने की हिम्मत थी मगर किसी के सच को बता इसे अपमानित कर या चालबाजी से अपना उल्लू सीधा करने की चार सौ बीसी वाली कला नहीं आती थी।"(नासिरा शर्मा–मेरा परिवेश और रचनाशीलता–संपादक कन्हैयालाल नंदन, गगनांचल, नई दिल्ली, जनवरी–मार्च अंक 1999 पृष्ठ 113) इलाहाबाद के कान्वेंट स्कूल में इनकी प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा हुई। इसी शहर से अर्थात इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इन्होंने स्नातक की पढ़ाई पूरी की। यह विश्वविद्यालय इनके पिता और पति से भी संबंधित था पिता इसी विश्वविद्यालय में अरबी भाषा–फारसी भाषा के विद्वान थे। पिताजी ने ही नासिरा शर्मा को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के बारे में बहुत सारी रोचक कहानियां भी बताई थी। स्नातक की शिक्षा के उपरांत नासिरा शर्मा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू) दिल्ली में परास्नातक में प्रवेश लिया। वहां पर इन्होंने फारसी भाषा साहित्य से परास्नातक की डिग्री ली। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय भारत का ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय कहलाता है। जहां पर कई भाषाओं और कई विषयों की शिक्षा का पाठ्यक्रम है। यहीं पर नासिरा शर्मा में शिक्षा और ज्ञान के प्रति विविधता आई। यही पर रह कर इन्होंने अंग्रेजी और पश्तो भाषा पर अपनी गहरी पकड़ बनाई। हिंदी ,उर्दू–फारसी तो बाल्यावस्था से ही इन्हें प्राप्त थी। ईरान भाषा और उनके साहित्य शोध का विषय रहा है। क्योंकि ईरानी साहित्य में पुनर्जागरण और और रूढ़िवादिता दोनों का संधि भाव था।यही कारण है कि उन्होंने इसे शोध के रूप में चुना। अनेक औपचारिकताओं को पूर्ण करने के पश्चात व्यवहारिक शिक्षा को भी इन्होंने आत्मसात किया। यहां व्यवहारिक शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा की खानापूर्ति न होकर जीवन

की अनेक समस्याओं के समाधान की शिक्षा थी। जो नौकरी के लिए नहीं होती; बल्कि सांसारिक जीवन में रहकर अनेक अनुभव और विचारों को ग्रहण करने की शिक्षा होती है।

आधुनिक मानव के शिक्षा ग्रहण का मूल उद्देश्य सभ्य, सुसंस्कृतनिष्ठ और अच्छा जीवन यापन करना होता है। और इसकी प्राप्ति के लिए नौकरी ही एक माध्यम है, जो बेहतर जीवन और अच्छे परिवार को चलाने का माध्यम होती है। नासिरा शर्मा के समक्ष यह बात आई कि शिक्षा पूर्ण होने के बाद अब क्या किया जाए? इसके लिए शिक्षण कार्य को ही अपना पेशा बनाया। पहला ही अवसर मिला नई दिल्ली के जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में उर्दू और फारसी भाषा में अध्यापन करना। इस हेतु इन्होंने विश्वविद्यालय में अपनी कुशलता और दक्षता का परिचय दिया। अध्यापन कार्य सकुशल ढंग से कर रही थी। धीरे–धीरे साहित्य लेखन में गंभीर होती गई और यथार्थ की अनुभूति के लिए कई बार ईरान, इराक, सीरिया, फिलिस्तीन अन्य देशों की यात्राएं करनी पड़ी। इस यात्रा में नौकरी बाधा लगने लगी क्योंकि विश्वविद्यालय की भी अपनी सीमाएं होती हैं और किसी शिक्षक को वह ज्यादा दिन तक अवकाश नहीं दे सकता। परिणामतः अपनी व्यस्तता और लेखन के प्रति अत्यधिक गंभीरता को ज्यादा महत्व दिया। नौकरी में अध्यापन पद से त्यागपत्र दे दिया। नई दिल्ली में आया नगर रेडियो स्टेशन पर प्रोग्राम ऑफिसर के रूप में कई महीनों तक सेवा दी। उनके अंदर पत्रकारिता का गुण इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षा के दौरान ही आ चुका था। और इसी पत्रकारिता के गुण से एक श्रेष्ठ पत्रकार के रूप में भी उनकी पहचान बनी।कई पत्र–पत्रिकाओं में वे नियमित रूप से लेखन कार्य करती रही।भले ही इन दिनों आपका लेखन कार्य स्वतंत्र रूप से चल रहा है।

विवाह संबंध एक ऐसा संबंध है जो दो परिवारों को जोड़ता है। दो विपरीत विचारधाराओं को भी एकाकार करता है। प्रकृति और पुरुष या स्त्री और पुरुष का भी मेल विवाह है। यह संस्कार सृष्टि के आरंभ से ही अलग–अलग रूपों में जाना गया। मनुष्य प्रकृति से इतर नहीं है।अपितु प्रकृति का भी अनुगामी है। हिंदू परिवारों में विवाह के लिए जाति, उपजाति गोत्र आदि का ध्यान रखा जाता है और मुस्लिम परिवारों में भी वर्ण संप्रदाय का ध्यान रखा जाता है, लेकिन नासिरा शर्मा ने वर्ण और संप्रदाय से इतर हिंदू परिवार के डॉ. रामचंद्र शर्मा के साथ वैवाहिक डोर से संबंध स्थापित किया।यह उस समय का महत्वपूर्ण विवाह था।एक मुस्लिम स्त्री का एक हिंदू पुरुष के साथ विवाह भले ही दोनों स्त्री और पुरुष प्रगतिशील विचारधारा के थे परंतु उनका परिवार और समाज अत्यधिक रूढ़िवादी था। दोनों ने अपनी पारंपरिक मान्यताओं से इतर धार्मिक कर्मकांड से दूर हट कर 'स्पेशल मैरिज एक्ट'के तहत अंतरधर्मीय प्रेम विवाह किया। इस विवाह में दोनों धर्मों के कर्मकांड को महत्व नहीं दिया गया। न तो हिंदू रीति की सप्तपदी थी और न ही मुस्लिम रीति से निकाह। अगर था तो भारतीय संविधान और कानून, जिसे अपनाकर दोनों ने विवाह किया। नासिरा शर्मा ने अपने वैवाहिक परिवेश के बारे में लिखा कि "डॉ शर्मा की शादी के इच्छुक पिता बरसों तक कोशिश करते रहे थे। राजस्थान में कई घराने दहेज में मकान कार देने को तैयार थे।यह सारे कटाक्ष ताने कुढन हमारे संबंध पर कभी न हावी हुए न धर्म,घर, परिवार, वर्ग प्रांत हमारे बीच कटुता के बीज बो पाए। अंतरधर्मीय विवाह के संबंध में वे लिखती हैं ,कि यदि इंसानियत पर विश्वास हो, धर्म के प्रति उदात्त भाव हो, तब यह विवाह करना चाहिए वरना नहीं। होता यह है कि ऐसे विवाह के बाद दोनों पक्ष अपने–अपने धर्म रीति रिवाज से चिपक जाते हैं। प्रेम का विस्तार संकीर्णता ले लेता है और पति–पत्नी कुंठित हो जाते हैं।"[1]

भारतीय समाज अंतरजातीय विवाह स्वीकार नहीं कर पाता है लेकिन नासिर आने तो अंतरधर्मीय विवाह किया। कैसा रहा होगा उस समय का वातावरण क्योंकि आजादी में बंटवारे की राजनीति पंजाब और बंगाल में सबसे ज्यादा सांप्रदायिक दंगे हुए आजादी के बाद पाकिस्तान से युद्ध कहीं न कहीं पुनः हिंदू मुस्लिम समाज में नकारात्मक सोच विकसित की सबसे महत्वपूर्ण होता है वह त्रासदी या जो सांप्रदायिकता की आग में झुलस दी हैं लेकिन नासिरा शर्मा ने अपनी संस्था अपनी स्वाभाविक था से दोनों कामों को प्रभावित किया ना तो कट्टर मुसलमान इनके खिलाफ हो पाए और ना ही इनके पति रामचंद्र शर्मा के विरोध में कट्टर हिंदू जैसा भी है नासिर आनी अपने व्यक्तित्व को अपने ढंग से व्यवस्थित किया। डॉ सरोज मारकंडे की दृष्टि से नासिरा के संदर्भ में कहती हैं कि "व्यक्तित्व शारीरिक मानसिक सांस्कृतिक पूंजी मूल रूप है यह विशेष गुण होते हैं जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की स्पष्ट और

स्वतंत्रता सूचित होती है।"[2] देखा जाए तो नासिरा शर्मा ने अपने व्यक्तिवाचक संज्ञा को भाववाचक संज्ञा में परिवर्तित कर लिया अब वह एक भाव बन गई एक अर्थ बन गई अपने परिवार के लिए अपने समाज के लिए यूं तो उस समय रामचंद्र शर्मा के समक्ष कई ऐसे अवसर उपलब्ध कराए गए जहां वे अपना व्यक्तित्व कर सकते थे विराट बना सकते थे व्यापक क्षेत्र में प्रविष्ट हो सकते थे लेकिन उनकी भी आ सकती नासिरा शर्मा के समीप ही थी नासिरा शर्मा ने स्वयं लिखा है–"एक हिंदू परिवार जो अपने विचारों में खालिस हिंदू था, उन्होंने बच्चों की परवरिश इस तरह की थी कि वे मुसलमानों के साथ खाना पीना तो दूर उठना बैठना भी पसंद नहीं करते थे। मगर भाग्य देखिए कि उनके लड़के की लाखों की नौकरी का बुलावा सऊदी अरब से आया, उसको ठुकराना सबको बहुत बड़ी मूर्खता लगी। लड़का 26 में था। एक तरफ बचपन में, मां–बाप का दिया संस्कार और दूसरी ओर विषय क्षेत्र में आगे बढ़ने का दबाव। वह गया और अब उस माहौल में रच बस गया। शेखों के साथ उठना–बैठना उसको नितांत अलग अनुभव दे गया।जो मां–बाप के लिए भय, घृणा, से बिल्कुल अलग था। उसका पूरा नजरिया अपने देश के मुसलमानों की तरफ से बदल गया। इसी तरह के कई अनुभव दंगे–फसाद के दरमियान मुसलमानों को हुए, जब उनकी जान स्वयं हिंदुओं ने और हिंदू उग्रवादियों से बचाई। जिससे उनका पूरा दृश्य पूर्ण हिंदुओं की तरफ से न केवल बदला बल्कि वे सभी के लिए आदर भाव रखने लगे इस तरह की कितनी मिसाले हैं जो एक के बाद एक दी जा सकती हैं।"[3]

संदर्भ :

1. विजय कुमार राऊत–कहानीकार नासिरा शर्मा ,पृष्ठ 10
2. डॉ विजय कुमार राऊत–कहानीकार नासिरा शर्मा पृष्ठ 11
3. नासिरा शर्मा राष्ट्र और मुसलमान किताबघर प्रकाशन संस्करण 2016 पृष्ठ 15

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के निष्पत्ति पर अध्ययन के माध्यम के प्रभाव का अध्ययन

डॉ विनीत कुमार मिश्रा
सहआचार्य
बी.एड. विभाग

सारांश:

किशोरावस्था मनुष्य के विकास यात्रा की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है । अध्ययन की दृष्टि से भी यह काल बालक के जीवन काल का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं निर्णायक कालखंड माना जा सकता है । अधिकांश अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी अपने पारिवारिक वातावरण में हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं । अपने बोलचाल की भाषा में हिंदी का प्रयोग करने वाले ऐसे विद्यार्थी जिनको विद्यालय में अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है उनके सामने भी एक अलग तरह की परिस्थिति पैदा होती है ।इस विषय को केंद्र में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र प्रस्तुत किया गया है ।प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक शोध विधि के अंतर्गत संपन्न किया गया है जिसके लिए जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के शहरी क्षेत्र में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम से माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण कर रहे छात्र एवं छात्राओं को जनसँख्या के रूप में संकल्पित किया गया है ।परिणाम स्वरुप पाया गया कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की निष्पत्ति हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों से अधिक है।

की वर्ड्स- निष्पत्ति, हिंदी एवं अंग्रेजी माध्यम,माध्यमिक स्तर ।

प्रस्तावना :

किशोरावस्था मनुष्य के विकास यात्रा की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है ।यही वहअवस्था है जिस में पहुंचने के बाद बालक सामाजिक सरोकारों को सीखता है , पारिवारिक आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को समझता है, देश-काल के सापेक्ष अपनी क्षमताओं का सही अंदाजा लगा लेता है, साथ ही साथ अपने लिए लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया भी इसी अवस्था में की जाती है । अध्ययन की दृष्टि से भी यह काल बालक के जीवन काल का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं निर्णायक कालखंड माना जा सकता है ।यहां तक पहुंचते-पहुंचते बालक को अपने भविष्य के लिए नए निर्णय लेने होते हैं साथ ही उन्हें उन्हें पूरा करने के रास्ते भी तलाशने होते हैं ।किशोरावस्था के अधिकांश बालक भारतीय शैक्षिक व्यवस्था के माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं ।भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक स्तर पर विशेषकर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रमुखता से अंग्रेजी या हिंदी को अपनाया जाता है ।

उत्तर भारत सहित भारत के कुछ अन्य क्षेत्रों में हिंदी मातृभाषा के रूप में भी प्रयोग की जाती है । इसीलिए बचपन से ही अपने सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों के अधीन बालक हिंदी में अपने आप को अधिक सहज एवं सक्षम पाते हैं । एक स्तर के बाद उन्हें अपने इस हिंदी

माध्यम के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है । इसी प्रकार अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के साथ भी एक अलग प्रकार की परिस्थितियों चलती रहती है ।अधिकांश अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी अपने पारिवारिक वातावरण में हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं ।अपने बोलचाल की भाषा में हिंदी का प्रयोग करने वाले ऐसे विद्यार्थी जिनको विद्यालय में अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है उनके सामने भी एक अलग तरह की परिस्थिति पैदा होती है ।हिंदी एवं अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना ना सिर्फ ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में द्वंदात्मक स्थिति पैदा करता है व रन व्यवहारिक जीवन में अनुप्रयोग के स्तर पर भी एक विशिष्ट प्रकार की परिस्थिति का निर्माण करता है।

वर्तमान भारत में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का जिस बड़े पैमाने पर प्रयोग शुरू हुआ है एवं जिस प्रकार इसका विस्तार होता जा रहा है लगता है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी कहीं ना कहीं दूर हो रही है ।इस प्रकार समाज ने एक मानक गढ़ लिए हैं की अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना बालक के लिए आवश्यक भी है और समाज में सम्मान प्राप्त करने के लिए जरूरी भी । अध्यापक, छात्र, अभिभावक, समाज के अन्य लोग लगभग सभी का यह मानना है की हिंदी की तुलना में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी निष्पत्ति के आयाम पर अधिक सक्षम एवं अधिक कुशल होते हैं। यद्यपि यह एक भ्रांति है तथापि समाज का एक बड़ा वर्ग इस भ्रांति को सत्य के रूप में स्वीकार कर चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से शोधकर्ता ने इस भ्रांति को का परीक्षण करने का एक प्रयास किया है कि शिक्षा का माध्यम माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की निष्पत्ति पर किसी प्रकार का प्रभाव डालता है अथवा नहीं ।

प्रस्तुत शोध पत्र में छात्रों से प्राप्त तत्वों के आधार पर यह निर्णय लेने का प्रयास किया गया है हिंदी एवं अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थियों के निष्पक्ष में सार्थक अंतर प्राप्त होता है अथवा नहीं ।प्रस्तुत शोध पत्र उपरोक्त वर्णित सामाजिक विवेचना एवं भ्रांतियों के परिक्षण का एक वैज्ञानिक एवं तर्क पूर्ण प्रयास है जिससे कि स्थिति को स्पष्ट रूप से देखा समझा और माना जा सकता है।इस प्रकार भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्यापक स्तर पर हिंदी और अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के बाद इन विद्यार्थियों द्वारा भाषाओं को शिक्षा का माध्यम के रूप में अपनाने के बाद उनके निष्पत्ति पर इस माध्यम का क्या प्रभाव पड़ता है, यह एक शोध का विषय है। इस विषय को केंद्र में रखते हुए अनुसंधानकर्ता ने हिंदी और अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की निष्पत्ति को जानने एवं उनके प्रभाव का अध्ययन करने का मन बनाया , परिणाम स्वरूप प्रस्तुत शोध पत्र अपने स्वरूप में प्रस्तुत है ।

अध्ययन के उद्देश्य:

प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों के अधीन सम्पादित किया गया है -

1-माध्यमिक स्तर के हिंदी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के निष्पत्ति की तुलना करना

२-माध्यमिक स्तर के हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की निष्पत्ति का की तुलना करना

3-माध्यमिक स्तर के हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्राओं की निष्पत्ति की तुलना करना

अध्ययन की परिकल्पना:

अध्ययन के उद्देश्यों के सन्दर्भ में निम्लिखित परिकल्पनाएं बने गयी है-

1- माध्यमिक स्तर के हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की निष्पत्ति में अंतर है

2- माध्यमिक स्तर पर हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की निष्पक्ष में अंतर है

3- माध्यमिक स्तर के हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्राओं के निष्पत्ति में अंतर है

अध्ययन विधि:

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक शोध विधि के अंतर्गत संपन्न किया गया है जिसके लिए जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जनपद के शहरी क्षेत्र में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम से माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण कर रहे छात्र एवं छात्राओं को जनसँख्या के रूप में संकल्पित किया गया है ।इसी प्रकार अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में से कुल 4 (2 हिंदी 2 अंग्रेजी) शिक्षण संस्थाओं का चयन वास्तविक न्यादर्श प्राप्त करने हेतु सोद्देश्य न्यादर्शन विधि से किया गया है एवं प्रत्येक चयनित विद्यालय से 50 छात्रो एवं 50 छात्राओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्शन विधी से किया गया है। इस प्रकार शोध हेतु कुल 200 छात्र-छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है ।चयनित छात्रों की उपलब्धि का मापन करने के लिए शोधकर्ता ने गणित , विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान विषय को सम्मिलित करते हुए एक निष्पत्ति परीक्षण का निर्माण किया एवं इस निष्पत्ति परीक्षण पर प्राप्त अंकों को प्रस्तुत अध्ययन में निष्पत्ति माना गया है।

सारणी संख्या-01

हिंदी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की निष्पत्ति का मध्यमान मानक विचलन एवं t-अनुपात

क्र.स.	समूह	N	M	S.D.	t- अनुपात	सरणी मान
1	**हिंदी माध्यम के विद्यार्थी**	100	19.60	4.67	**4.72***	1.97
2	**अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी**	100	23.60	5.57		
3	**हिंदी माद्यम के छात्र**	50	18.80	4.63	**4.54***	1.98
4	**अंग्रेजी माध्यम के छात्र**	50	23.34	6.07		
5	**हिंदी माध्यम की छात्राएं**	50	20.40	4.62	**2.41***	
6	**अंग्रेजी माध्यम की छात्राएं**	50	22.74	5.05		
परिणाम- *= 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक						

सारणी संख्या 01 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों के निष्पत्ति मध्यमान 19.60 एवं मानक विचलन4.67 है जबकि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का मध्यमान 23.04एवं मानव विचलन5.57 है एवं T अनुपात का मान 4.72 है जोकि .05 सार्थकता स्तरपर सरणी मान से अधिक है अत कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की निष्पत्ति हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों से अधिक है।

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों के निष्पत्ति का मध्यमान 18.80, मानक विचलन 4.63 है जबकि अंग्रेजी माध्यम के छात्रों का मध्यमा न23.34 एवं मानक विचलन 6.07 है, साथ ही परिगणित टी -अनुपात का मान 4.54 है, जो कि सारणी मान1.98

से अधिक है ।इस प्रकार कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की निष्पत्ति हिंदी माध्यम के छात्रों की तुलना में अधिक है ।

सारणी का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हिंदी माध्यम की छात्राओं एवं अंग्रेजी माध्यम कीछात्राओं की निष्पत्ति का मध्यमान 20.40 एवं 22.7 4 है जबकि परिगणित टी-अनुपात का मान 2.41 है जो की सरणी मान से अधिक है , जो कि दर्शाता है कि हिंदी माध्यम की छात्राओं की तुलना में अंग्रेजी माध्यम के छात्राओं की निष्पत्ति अच्छी है ।

पूर्व में अनेक शोध कार्यों में यह भी प्राप्त हो चुका है कि हिंदी माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के निष्पत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता , परंतु प्रस्तुत शोध में यह अंतर पाया गया है । संभवत इसका कारण शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का चयन करना अथवा न्यादर्श प्रक्रिया में त्रुटी भी हो सकती है ।शोधकर्ता का मानना है कि माध्यम का छात्रों के निष्पत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

सन्दर्भ:

- आचार्य,पी.(1986).*इंग्लिश एंड एलीट एजुकेशन* .देलही, रीजनल कांफ्रेंस ओंफ सोशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन ।
- एडियोयियाँ.ऍफ़.ए.(1986).द दाईनामिक्स ऑफ़ टीचिंग सोशल साइंस अट प्राइमरी स्कूल लेवल,इंडियन एजुकेशनल रिव्यु ।
- कुण्डले.एस.(2002)अ स्टडी ऑफ़ लिंगुस्तिक डिफरेंसेस बिटवीन मराठी एंड हिंदी एंड देयर इम्पैक्ट ओंन लर्निंग हिंदी अस सेकंड लैंग्वेज बी मराठी स्टूडेंट्स *,पी.*एच.डी.,एजुकेशन,नागा विश्वविद्यालय।
- चौधरी.यु.(2019).अ क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ थे लैंग्वेज पालिसी ऑफ़ इंडिया इन रिलेशन टूथे एजुकेशनल नीडपि.एच.डी.,शिक्षाशास्त्र ।

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 अरविन्द कुमार मौर्य
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नागरिक पी0जी0 कालेज,
जंघई, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
संजय कुमार यादव
एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र)

सारांश

अध्ययन का शीर्षक **माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध** ज्ञात करना है। प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जिले में स्थित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र– छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के अन्तर्गत जौनपुर जिले में संचालित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। न्यादर्श के रूप में हिन्दी माध्यम के 300 विद्यार्थी (150 छात्र एवं 150 छात्राएँ) तथा अंग्रेजी माध्यम के 300 विद्यार्थी (150 छात्र एवं 150 छात्राएँ) अर्थात् कुल 600 विद्यार्थियों को चयनित किया गया है। प्रो0 के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित 'स्कूल इन्वायरमेन्ट इन्वेन्टरी' एवं अल्पना सेन गुप्ता, पी.एच.डी., लेक्चरर, आर.पी.एम. कालेज, मगध विश्वविद्यालय, पटना एवं अरून कुमार सिंह, पी.एच–डी., प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय पटना द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु सह–सम्बन्ध गुणांक (कार्ल पियर्सन गुणन आर्घूण) विधि का प्रयोग किया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– हिन्दी माध्यम के सम्पूर्ण विद्यार्थियों एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में धनात्मक सम्बन्ध पाया गया जबकि अंग्रेजी माध्यम के सम्पूर्ण विद्यार्थियों एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में धनात्मक सम्बन्ध पाया गया।

मुख्य शब्द– हिन्दी, अंग्रेजी, माध्यमिक विद्यालय, छात्र–छात्राएँ, विद्यालयी वातावरण, नैतिक मूल्य, सम्बन्ध।

प्रस्तावना–

आधुनिक भारत में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वर्तमान पीढ़ी के जीवन–मूल्यों का ह्रास दृष्टव्य होता है। वृहत अनुशासनहीनता, व्यापक भ्रष्टाचार एवं क्षीण नैतिकता जीवन–मूल्यों के ह्रास की साक्षी है। सामाजिक और नैतिक जीवन–मूल्यों के कमजोर पड़ जाने एवं सामाजिक व नैतिक संघर्ष उत्पन्न हो रहे है। आधुनिकता और पाश्चातयीकरण के प्रभाव से हमारे देश का हर क्षेत्र कुछ न कुछ प्रभावित हुआ है। यहाँ तक कि केन्द्रीय व परिषदीय विद्यालय के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों में अन्तर पाया जाता है। उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा कार्य करने के तरीकों में भी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान परिस्थतियों को देखते हुए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा–प्रणाली को मूल्योन्मुख करें। इसमें दो राय नहीं है कि बच्चों में जीवन–मूल्यों का विकास परिवार और समुदाय की क्रियाओं में भाग लेने से स्वाभाविक रूप से होता है परन्तु इसमें भी दो मत नहीं है कि आज हमारे देश में परिवार और समुदाय का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश जीवन–मूल्यों के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है यहाँ तो बच्चे जीवन–मूल्यों के स्थान पर गैर जीवन– मूल्यों की शिक्षा प्राप्त करते है और

सहयोग के स्थान पर असहयोग की। वैसे भी स्वार्थ–प्रधान व्यक्तियों के बीच बालक परमार्थ की शिक्षा कैसे ग्रहण कर सकता है परन्तु शिक्षा की दृष्टि से जो कार्य परिवार और समुदाय नहीं कर पाते वही कार्य विद्यालय को करना होता है। आज विद्यालयों को जीवन–मूल्य शिक्षा का उत्तरदायित्व भी संभालना होगा।

परन्तु वर्तमान युग में शिक्षा इन सारी संवेदनाओं का सम्प्रेषण कर पा रही है। आज का युवा उपाधि प्राप्त करने के बाद नौकरी खोजने वालों की कतार में अपने को पाता है लेकिन इस व्यवस्था को सुधारने के लिए हम शिक्षा की प्रक्रिया को बन्द नहीं कर सकते, क्योंकि अनपढ़ विकास की तरफ कोई कदम बढ़ा ही नहीं सकता। इस सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि वस्तुतः इन सारी समस्याओं की जड़ मानव सभ्यता की जटिल मूल प्रवृत्तियाँ हैं। हमारे सामने यह परिणाम अवश्य आया है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भूख, अभाव और गरीबी कम हुई है किन्तु इसके विपरीत संवेदनाओं में क्रूरता और भ्रष्टाचार, अपराधों की बढ़ोत्तरी और बीमार स्पर्धा जिसमें आगे वाले को धकेलकर स्वयं आगे बढ़ जाने की उत्कट लालसा, मशीनी जीवन जीने का ढर्रा बन गया है।

आज का मानव इतिहास के बहुत ही उत्तेजनापूर्ण द्वार पर विराजमान है। भौतिक उपलब्धियों के बावजूद भी मनुष्य का मन अशान्त, दुःखी एवं संत्रास से आहत है। सर्वत्र विषाद ही परिलक्षित हो रहा है। सम्पूर्ण परिवेश संदेह, कटुता व अविश्वास से सराबोर है। नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों ने मानवता की अर्थवत्ता के सम्मुख एक प्रश्न चिन्ह उपस्थित कर दिया है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को आज की शिक्षा अछूत मान रही है, जबकि यही मूल्य उसको मानवता का ज्ञान प्रदान करने में समर्थ हैं। यही मूल्य आत्मबोध एवं आत्मसाक्षात्कार कराने में उपयोगी हैं। जब तक मनुष्य अपने स्वयं का बोध नहीं करेगा, तब तक उससे नैतिक एवं चारित्रिक गुणों से ओत–प्रोत कार्य एवं व्यवहार करने की आशा करना बेमानी होगा। अतएव मनुष्य को भौतिकतावादी और उपभोक्तावादी संस्कृति से पृथक कर धार्मिकता, आध्यात्मिकता, एवं मानवीय गरिमा, श्रम की महत्ता, सामाजिकतावादी मूल्यों से सम्पृक्त करने हेतु मूल्य को सशक्त एवं उपादेय बनाना होगा। हमारे भारतीय सद्साहित्य एवं धार्मिक रत्नग्रन्थों में ऐसे मूल्य समाहित हैं जो वर्तमान वीभत्स संस्थिति का प्रकट तो करते ही है, साथ ही साथ मानव जाति को मूल्यवादी मंतव्यों की शिक्षा प्रदान कर उनके आत्मसातीकरण का मार्ग भी बताते हैं। आज बच्चों में नैतिक मूल्यों की खोज कर एवं उन्हें बढ़ाने कोशिश ही वर्तमान शिक्षा की माँग है।

अतः वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को देखते हुए अध्ययनकर्त्ता ने अपने अध्ययन विषय में विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध को देखने का प्रयास किया है कि क्या विद्यालय की वातावरण का नैतिक मूल्यों से सम्बन्ध होता है या नहीं?

समस्या कथन–

''माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन।''

उद्देश्य–

1. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।
4. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

5. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

6. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

H_{01} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{02} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{03} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{04} अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{05} अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{06} अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

शोध–प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जिले में स्थित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र– छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के अन्तर्गत जौनपुर जिले में संचालित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। न्यादर्श के रूप में हिन्दी माध्यम के 300 विद्यार्थी (150 छात्र एवं 150 छात्राएँ) तथा अंग्रेजी माध्यम के 300 विद्यार्थी (150 छात्र एवं 150 छात्राएँ) अर्थात् कुल 600 विद्यार्थियों को चयनित किया गया है। प्रो0 के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित 'स्कूल इन्वायरमेन्ट इन्वेन्टरी' एवं अल्पना सेन गुप्ता, पी.एच.डी., लेक्चरर, आर.पी.एम. कालेज, मगध विश्वविद्यालय, पटना एवं अरून कुमार सिंह, पी.एच–डी., प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय पटना द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु सह–सम्बन्ध गुणांक (कार्ल पियर्सन गुणन आर्घूण) विधि का प्रयोग किया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{01} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 1

हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=300)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	0.256*

*.05 स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.256 है जो .05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का विद्यार्थियों के वृद्धि या कमी से सम्बन्ध है।

2. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{02} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 2

हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	-0.033

*.05 स्तर पर सार्थक नहीं

सारणी संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान –0.033 है जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित नहीं है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का छात्रों के नैतिक मूल्य के वृद्धि या कमी से सम्बन्धित नहीं है।

3. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं की नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{03} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं की नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 3

हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	0.427*

*.05 स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.427 है जो .05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का छात्राओं के नैतिक मूल्य में वृद्धि या कमी से सम्बन्धित है।

4. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{04} माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 4

अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0 सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=300)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	0.119*

*.05 स्तर पर सार्थक

सारणी संख्या 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.119 है जो .05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य में वृद्धि या कमी से सम्बन्ध है।

5. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{05} माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 5

अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	0.149*

*.05 स्तर पर सार्थक नहीं

सारणी संख्या 5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.149 है जो .05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का छात्रों के नैतिक मूल्य के वृद्धि या कमी से सम्बन्धित नहीं है।

6. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–

H_{06} माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 6

अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	विद्यालयी वातावरण एवं नैतिक मूल्य	0.106

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी संख्या 6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.106 है जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित नहीं है अर्थात् विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का छात्राओं के नैतिक मूल्य में वृद्धि या कमी से सम्बन्धित नहीं है।

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है।
- हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित नहीं है।
- हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है

- अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है
- अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्रों के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित है।
- अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का छात्राओं के नैतिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कंजल, वैश्नवी एट ऑल (2016). मोरल एजुकेशन : कैरेंट वैल्यूज इन स्टूडेन्ट्स एण्ड टीचर्स इफेक्टिवनेस इन इनकुलकेटिंग मोरल वैल्यूस इन स्टूडेन्ट्स, *द इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ इण्डियन साइकोलॉजी*, वॉ0 4, इश्शू–1, पृ0 174–187
- कौर, सुखविन्दर (2017). कम्परेटिव स्टडी ऑन स्कूल इन्वायरमेण्ट ऐस परसिव्ड बाइ बॉव्यज एण्ड गर्ल्स, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशल साइसेस*, वॉ0 7, इश्शू–9, पृ0 671–680
- कुमार, अनिल (2012). सरकारी तथा गैर सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- कुमारी, रीना एवं भटनागर, वन्दना (2018). छात्रों के नैतिक निर्णयों और समकालीन मुद्दों का अध्ययन, एरियो इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल–पीयर रिव्यूड मल्टीडिस्पिलनरी इन्डेक्सेस जर्नल, वॉ0 15, इश्शू–3, पृ0 526–543
- खान, नरगिस (2014). रोल ऑफ लिटरेचर इन मोरल डेवलपमेण्ट, इण्टरनेशन जर्नल ऑफ स्टडीज इन इंग्लिश लैग्वेज एण्ड लिटरेचर, वॉ 2, इश्शू–3, पृ0 6–9
- चौहान, यशोदा (2015). वर्तमान समय में नैतिक मूल्य की आवश्यकता (नैतिक मूल्य एवं वर्तमान शिक्षा), दिव्या शोध समीक्षा, एन इण्टरनेशनल रिफ्ररिड जर्नल, पृ0 229–230
- टोंके, मनीष (2016). विद्यार्थी जीवन में नैतिक शिक्षा का महत्व, डी.वी.एस. इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च, वॉ0 1, नं0 4, पृ0 36–40
- मंडलोई (2015). वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता, चुनौतियाँ एवं समाधान, दिव्या शोध समीक्षा, एन इण्टरनेशनल रिफ्ररिड जर्नल, पृ0 220
- मुंगी, अभय (2015). वर्तमान शिक्षा में नैतिक मूल्यों की भूमिका, दिव्या शोध समीक्षा, एन इण्टरनेशनल रिफ्ररिड जर्नल, पृ0 223
- यादव, उग्रसेन (2019). शिक्षा के महत्व और मूल्यों पर स्कूल और परिवार का सहयोग का अध्ययन, जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजिस एण्ड इनोवेटिव रिसर्च, वॉ0 6, इश्शू–5, पृ0 1591–1599

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 अवधेश कुमार
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सत्येन्द्र कुमार यादव
शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र)
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन **माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन करना है।** अध्ययन के उद्देश्य में माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण उद्देश्य का परीक्षण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के चार विद्यालयों का चयन करते हुए उसमें अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन याट्टच्छिक विधि द्वारा किया गया है। उपकरण के रूप में डा0 विनया रनसिंग, डा0 ज्योति शिवाल्कर तथा डा0 वृन्दा जोगलेकर द्वारा निर्मित "VALUE OF SPRIT OF NATIONALITY" का प्रयोग किया गया है जिसमें देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों में कुल 8, 5, 7, 8, 8, 7 एवं 9 कथन दिये गये है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत न्याय में अन्तर है अर्थात् छात्राओं में न्याय मूल्य छात्रों की अपेक्षा उच्च है। माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत एवं सम्पूर्ण राष्ट्रीय मूल्य में अन्तर नहीं है।

मुख्य स्रोत– माध्यमिक, छात्र एवं छात्राएँ, देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत एवं सम्पूर्ण राष्ट्रीय मूल्य, अन्तर

प्रस्तावना–

शिक्षा को सदैव से ही समाज तथा राष्ट्र की प्रगति की एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव ही शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मान जनक स्थान दिया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र का यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि वह बिना किसी भेदभाव के अपने नागरिकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करें। जब किसी समाज के सारे व्यक्ति किसी निर्दिष्ट भौगोलिक सीमा के अन्दर अपने पारस्परिक भेद भावों को भुलाकर सामूहीकरण की भावना से प्रेरित होते हुए एकता के सूत्र में बँध जाते हैं तो उसे हम राष्ट्र के नाम से संबोधित करते है। प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपनी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाआ ं को ध्यान में रखते हुए अपने नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु शिक्षा को अपना मुख्य साधन बना लेता है। शिक्षा सदैव ही समाज के विकास में सहायक रही है प्रत्येक छात्र एवं छात्राओं में कुछ जन्मजात अन्तर्निहित गुण होते है। शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्र का विकास किया जा सकता है।[1]

राष्ट्रीयता आग्ल भाषा के 'नेशनेलिटी' (Nationality) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'नेशिया' (Natio) शब्द से हुई है। लैटिन भाषा में 'नेशियो' शब्द (Natio) का अर्थ 'जन्म' या जाति होता है। एक ही देश में जन्म लेने या एक ही जातीय समूह का सदस्य होने से

जो एकता की भावना उत्पन्न होती है उससे राष्ट्रीयता का जन्म होता है दूसरे शब्दों में जब किसी प्रादेशिक जनसमूह में समान इतिहास, परम्पराओं और आदर्शों के कारण स्वतन्त्रता प ूर्वक सामान्य जीवन व्यतीत हरने की उत्कृष्ठ अभिलाषा उत्पन्न हा ेती है तब उसे राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता एक विशिष्ट प्रकार की एकता की भावना की द्योतक है जो व्यक्तियों को किसी एक निश्चित क्षेत्र में रहने के लिए बाध्य करती है। 'राष्ट्रीयता' या 'राष्ट्रवाद' एक व्यापक शब्द है। जे0एच0 रोज के शब्दों में ''राष्ट्रीयता ह्रदयों की वह एकता है जो एक बार बनकर कभी नहीं बिगड़ती।''

दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है जो एक राष्ट्र के निवासियों को एकता के सूत्र में बांधती है और उनको दूसरे राज्य के निवासियों से भिन्न करती है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र की दृ राष्ट्र का अंग समझने लगते हैं। स्मरण रहे कि राष्ट्रीयता तथा देश–प्रेम का प्रायः एक ही अर्थ लगा लिया जाता है। देश–प्रेम की भावना प्राचीनकाल से ही पायी जाती है परन्तु राष्ट्रीयता की भावना का जन्म केवल अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की महान क्रान्ति के पश्चात ही हुआ था। देश–प्रेम का अर्थ उस स्थान से प्रेम रखना है जहाँ व्यक्ति जन्म लेता हैं इसके विपरीत राष्ट्रीयता एक उग्र रूप का सामाजिक संगठन है जो एकता के सूत्र में बंधकर सरकार की नीति को प्रसारित करता है। राष्ट्रीयता का अर्थ केवल राज्य के प्रति अपार भक्ति ही नहीं है अपितु इसका अभिप्राय राज्य तथा उसके धर्म भाषा इतिहास तथा संस्कृति में भी पूर्ण श्रद्धा रखना है। संक्षेप में राष्ट्रीयता का सार राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति आज्ञा पालन तथा कर्तव्य परायणता एवं सेवा है।

राष्ट्रीयता शब्द की प्रसिद्धि पुनर्जागरण तथा विशेष रूपसे फ्रान्स की क्रान्ति के पश्चात हुई। यह साधारण रूप से देश–प्रेम की अपेक्षा देश भक्ति के अधिक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करती है। राष्ट्रीयता में स्थान के सम्बन्ध में अतिरिक्त प्रजाति, भाषा, इतिहास तथा संस्कृति एवं परम्पराओं के भी सम्बन्ध आ जाते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीयता की शिक्षा नागरिकों में राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति आज्ञापालन, आत्मत्याग कर्तव्यपरायणता तथा अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके सभी प्रकार के भेदभावों को भुलाकर एकता के सूत्र में बाँध देती है। इससे राष्ट्र की राजनीतिक आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की उन्नति होती रहती है। देश के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना तभी कायम रह सकती है जबकि देश के भावी नागरिकों अर्थात राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो। विद्यार्थियों के अन्दर राष्ट्रीयता के महत्व को विभिन्न तरीकों से भरा जाय और यह शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा देने के कार्य के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि शिक्षा एक बहुमुखी प्रक्रिया है।

राष्ट्रीयता आधारित मूल्यों में प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति इस बात पर निर्भर करती है कि इसके नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना किस सीमा तक विकसित हुई। यदि नागरिक राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है तो राष्ट्र उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहेगा अन्यथा उसे एक दिन उसे रसातल में जाना होगा। कहने का अर्थ, राष्ट्र का सकल एवं सफल बनाने के लिए प्रत्येक नागरिकों में राष्ट्रीयता के प्रति जागरूकता जगाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है और शिक्षा के माध्यम से ही नागरिकों को राष्ट्रीय मूल्य जागृत कर एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

समस्या कथन–

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय आधारित मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय आधारित मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय आधारित मूल्यों के अन्तर्गत देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के चार विद्यालयों का चयन करते हुए उसमें अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है। उपकरण के रूप में डा0 विनया रनसिंग, डा0 ज्योति शिवाल्कर तथा डा0 वृन्दा जोगलेकर द्वारा निर्मित "VALUE OF SPRIT OF NATIONALITY" का प्रयोग किया गया है जिसमें देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों में कुल 8, 5, 7, 8, 8, 7 एवं 9 कथन दिये गये है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

तालिका–1

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में राष्ट्रीय आधारित मूल्यों के अन्तर्गत देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत आधारित मूल्यों का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं टी–अनुपात

राष्ट्रीय मूल्य	छात्र		छात्राएँ		$D=M_1 \sim M_2$	SD_E	t-value
	M	S.D.	M	S.D.			
देश–प्रेम की भावना	24.12	3.38	25.18	2.35	1.06	0.41	2.59
भातृत्व–भावना	20.87	2.10	20.26	1.47	0.61	0.26	2.35
एकता	23.38	2.96	24.27	2.28	0.89	0.37	2.41
न्याय	19.90	3.21	21.27	2.39	1.37	0.40	3.43*
समानता	23.93	2.91	24.89	2.49	0.96	0.38	2.53
सामाजिकता	18.81	2.66	19.71	2.35	0.90	0.35	2.57
सांस्कृतिक विरासत	25.12	3.63	25.88	3.29	0.76	0.35	2.17
राष्ट्रीय मूल्य	156.13	12.17	157.46	8.80	1.13	1.50	0.75

माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं की राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत तथा सम्पूर्ण राष्ट्रीय मूल्य के मध्य टी–मान का मान क्रमशः 2.59, 2.35, 2.41, 3.43, 2.53, 2.57, 2.17 एवं 0.75 है जिसमें केवल मात्र न्याय मूल्य में .01 स्तर पर सार्थक है जबकि अन्य राष्ट्रीय मूल्यों में .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये

क्रान्तिक मान से कम है अर्थात् असार्थक है। परिणामतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत न्याय में अन्तर है अर्थात् छात्राओं में न्याय मूल्य छात्रों की अपेक्षा उच्च है जबकि देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत एवं सम्पूर्ण राष्ट्रीय मूल्य में समानता है।

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के राष्ट्रीय मूल्य के अन्तर्गत न्याय में अन्तर है अर्थात् छात्राओं में न्याय मूल्य छात्रों की अपेक्षा उच्च है।
- माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं में देश–प्रेम की भावना, भातृत्व–भावना, एकता, न्याय, समानता, सामाजिकता, सांस्कृतिक विरासत एवं सम्पूर्ण राष्ट्रीय मूल्य में अन्तर नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र व छात्राओं में राष्ट्रीयता आधारित मूल्यों को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। देश के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना तभी कायम रह सकती है जबकि देश के भावी नागरिकों को अर्थात विद्यालय में राष्ट्रीयता सम्बन्धित मूल्यों के लिए खेल–कूद, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय मूल्यों का समावेश तथा विद्यालय प्रांगण को राष्ट्रीय चित्रों, महानायकों एवं महान शिक्षाविदों की फोटो तथा राष्ट्रीय वातावरण समाहित कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- कौल, संगीता (2016). उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं की छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहभागिता का प्रभाव, *इमर्जिंग रिसर्च जर्नल*, वॉ0 1, इश्शू–2, पृ0 30–33
- खान, टी.एम. (2015), शैक्षणिक विकास में पाठ्योत्तर गतिविधियों का योगदान नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में, दिव्या शोध समीक्षा, *एन इण्टरनेशनल रिफ्रिड जर्नल*, पृ0 218–219
- जादौन एवं पारीक (2017). जयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पाठ्य सहगामी क्रियाओं व व्यक्तित्व विकास में सह सम्बन्ध का अध्ययन, बियानी गर्ल्स बी0एड0 कालेज, जयपुर (राजस्थान)
- त्यागी, आर.सी. (1978), एटीट्यूड आफ प्रिन्सिपल्स, टीचर्स एण्ड स्टूडेन्ट्स रिगार्डिंग स्टूडेन्ट्स पाटिसिपेशन इन एजुकेशन डेसीजन मेकिंग प्रासेस विद रिगार्ड टू देयर वैल्यूज, डिजर्टेशन, एम. फिल. शिक्षा, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ।
- देवी, एम.आई. (2002), एन इवैल्यूशन ऑफ द रिलाईजेशन ऑफ मोरल, सेक्यूलर एण्ड डेमोक्रेटिक वैल्यूज इन द टैक्टबुक कान्टेण्ट इन तेलगू लैंग्वेज एट प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी स्कूल लेविल्स इन आन्ध्राप्रदेश, *इण्डियन एजुकेशनल एब्सट्रेक्ट*, जनवरी 2004
- दूबे, विपिन कुमार (2013) ने सामाजिक न्याय एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
- शर्मा, अशोक एवं गुप्ता, प्रतिभा (2018). विद्यालय एवं पारिवारिक परिवेश के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना का अध्ययन, *लोकविशेकर इण्टरनेशनल ई–जर्नल*, वॉल्यूम–7, इश्शू–01, पृ0 25–30

Impact of School Environment and Medium of Education on Creativity of Secondary Level Students

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर शैक्षणिक वातावरण एवं शिक्षा के माध्यम के प्रभाव का अध्ययन

साधना त्रिपाठी
शोध–छात्रा
शिक्षाशास्त्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय,
जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर शैक्षणिक वातावरण एवं शिक्षा के माध्यम के प्रभाव का अध्ययन'' है। प्रस्तुत अध्ययन की समस्या की प्रकृति के अनुसार अनुसंधान के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत **''सर्वेक्षण विधि''** का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद में स्थित हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना है। अध्ययन के उद्देश्यों के लिए प्रयागराज जनपद में स्थित हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 100–100 छात्रों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया। **प्रोफेसर बाकर मेंहदी** का **शाब्दिक सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण** को अपने शोध में उपकरण हेतु लिया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों के सृजनात्मकता की विमा विविधता एवं सृजनात्मकता में अन्तर है अर्थात् अंग्रेजी माध्यम के छात्रों में विविधता एवं सृजनात्मकता हिन्दी माध्यम के छात्रों की अपेक्षा उच्च है।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों के सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता एवं मौलिकता एक–दूसरे के समान है।

मुख्य शब्द– माध्यमिक स्तर, छात्र, हिन्दी माध्यम, हिन्दी माध्यम, शैक्षणिक वातावरण, सृजनात्मकता, प्रवाहशीलता, विविधता, मौलिकता, तुलना

प्रस्तावना–

प्राचीनकाल में माना जाता था कि बौद्धिक क्षमता वाला व्यक्ति ही सृजनात्मक हो सकता है। किन्तु आज मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से स्पष्ट है कि सृजनात्मकता बुद्धि से स्वतंत्र है। वर्तमान समय में सृजनशील व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर सकता है। आज विज्ञान, तकनीकी व औद्योगिक क्षेत्र में नूतन आविष्कार हो रहे हैं। अनुसंधान के परिणाम विकास को गति प्रदान करते हैं। आज सृजनात्मकता शिक्षा मनोविज्ञान का एक अभिन्न अंग बन गई। विभिन्न प्रकार के सृजनात्मक परीक्षणों का विकास प्रत्येक आयु स्तर और क्षेत्र की सृजनात्मकता मापने के लिये किया जा रहा है। सृजनात्मकता विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रकार के पाठ्यक्रमों एवं सृजनात्मक शिक्षकों की भी व्यवस्था की चर्चा चल रही है। आज की समस्यायुक्त समाज में सृजनशील व्यक्ति का संरक्षण आवश्यक है। युवा हमारी धरोहर हैं उनकी प्रतिभा और क्षमता का उपयोग राष्ट्र निर्माण में होना चाहिए।

सृजनशील विद्यार्थियों को उनकी योग्यता के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। अगर सृजनशील विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता का सम्मान एवं संवर्धन नहीं किया जाता है तो वे इस क्षमता को विध्वंसात्मक कार्यों में इस्तेमाल कर सकते हैं। इसलिए सृजनशील व्यक्तियों की पहचान करना व उनके विकास के अवसर उपलब्ध कराना राष्ट्र का कर्तव्य है।

सृजनात्मकता, व्यक्तित्व और बुद्धि की अपेक्षा कम अन्वेषित है। भारत में विदेशों की अपेक्षा इस क्षेत्र में बहुत कम शोध कार्य हुए हैं। शिक्षा मुख्य रूप से शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम और उसकी अध्ययन विधि आदि तत्वों पर आधारित होती है। इनके समुचित संतुलन के अभाव में सृजनात्मकता का विकास सम्भव नहीं है। शिक्षकों में प्रायः सृजनात्मकता का अभाव है। शिशु स्तर से माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संचालित पाठ्यक्रम व शिक्षण विधि व्यावहारिक न होकर सैद्धान्तिक बनकर रह गये हैं। हमारे देश में समय–समय पर सरकार द्वारा गठित समितियों, आयोगों आदि विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा–नीति 1986 ने भी प्रत्येक स्तर के बालकों में सृजनात्मकता के विकास हेतु शिक्षा की गुणवत्ता पर बल दिया है। परन्तु उनके द्वारा दिये गये सुझावों का क्रियान्वयन न करने पर छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन नहीं हो पा रहा है।

वर्तमान समय में शिक्षा के माध्यमों का प्रभाव विद्यार्थियों पर देखा जा सकता है जहाँ सरकारी विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को केवल पाठ्यक्रम से ही मतलब रखा जाता है वहीं अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में बच्चों के सृजनात्मकता को बढ़ाने के लिए उन्हें तरह–तरह के प्रोजेक्ट वर्क के साथ–साथ संचार माध्यम का भी प्रयोग कराया जा रहा है तथा अच्छे शिक्षकों द्वारा उन्हें शिक्षा ग्रहण कराया जा रहा है।

अतः शिक्षा के माध्यमों का विद्यार्थियों के सृजनात्मकता पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है जैसा कि पारिवारिक वातावरण एवं परिवारिक सामाजिक–आर्थिक उच्च होने पर बच्चों को उच्च स्तरीय विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण के लिए भेजने पर वहाँ का वातावरण बच्चों के सृजनात्मकता पर सकारात्मक प्रभाव के साथ–साथ उन्हें सृजनशील जैसे खेलों एवं प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग के लिए तैयार किया जाता है जिससे उनके सृजनात्मकता क्षमता में वृद्धि होती है। पूर्व शोध अध्ययनों से ज्ञात होता है कि विद्यालय वातावरण का विद्यार्थियों के सृजनात्मक क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। **रिडंरमान व अन्य (2004)** ने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि प्रक्रिया–गति का विद्यालय निष्पत्ति पर बुद्धि व सृजनात्मकता के माध्यम से प्रभाव तो अवश्य है परन्तु यह अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित करता है। **लिंडस्टॉर्म (2006)** ने सृजनात्मकता क्या है? क्या आप इसका मूल्याकंन कर सकते हैं? क्या इसे शिक्षित किया जा सकता हैं? का अध्ययन किया। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि उचित शिक्षण माध्यमो का चुनाव करके विद्यार्थियो मे सृजनात्मकता को बढ़ाया जा सकता है। **क्लिमोविन, गिडरे एवं अन्य (2010)** ने शोधकर्त्ताओं ने पाया निष्कर्ष में पाया कि प्रायः छात्र एवं अध्यापक धैर्यपूर्वक कार्य नहीं करते, परन्तु यदि छात्रों को पर्याप्त समय दिया जाय तो छात्रों में अधिक सृजनात्मक व्यवहार उत्पन्न किया जा सकता है। यदि कक्षा–कक्ष में छात्रों के समक्ष खतरा मोल लेने की प्रवृत्ति के साथ कार्य करने को प्रोत्साहित किया जाता तो यह उनके सृजनात्मक क्षमताओं में विकास में सहायक होता है। छात्रों के सीखने में सृजनात्मक क्षमता के वृद्धि के लिए यह बहुत आवश्यक है कि कक्षा–कक्ष का वातावरण खुला हुआ, मजाकियाँ एवं पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए। **अलफुहैगी (2015)** ने विद्यालय वातावरण एवं सृजनात्मकता विकास सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण में पाया कि– छात्रों के सृजनात्मक विकास के लिए स्कूल एक मात्र संस्था होती है। वर्तमान वैश्वीकरण, आर्थिक प्रगति एवं संचार तकनीकी के युग में जहाँ एक तरफ नयी–नयी खोजे हो रही है वही पर स्कूलों में छात्रों की सृजनात्मकता उन्नयन हेतु किये गये प्रयासों का महत्त्व बढ़ जाता है। शोध से निष्कर्ष में पाया कि मस्तिष्क के विकास के साथ–साथ सृजनात्मकता का भी विकास होता है। **एलिसावेट एवं अन्य (2013)** ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में पाया कि– छात्रों के सृजनात्मक विकास कमी पायी गयी जिन संस्थाओं में सृजनात्मकता विकास हेतु आवश्यक संसाधनों का व्यवस्थित उपयोग एवं प्रयोग नहीं किया गया है तथा कक्षा–कक्ष वातावरण की संमृद्धिशाली होना अथवा संसाधन विहीन होना छात्रों के सृजनात्मक विकास से सीधा सम्बन्ध रखता है।

समस्या कथन–

''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर शैक्षणिक वातावरण एवं शिक्षा के माध्यम के प्रभाव का अध्ययन।''

उद्देश्य–

- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन की समस्या की प्रकृति के अनुसार अनुसंधान के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत **''सर्वेक्षण विधि''** का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या –

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद में स्थित हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना है।

न्यादर्श–

अध्ययन के उद्देश्यों के लिए प्रयागराज जनपद में स्थित हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 100–100 छात्रों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि से किया।

उपकरण–

प्रोफेसर बाकर मेंहदी का **शाब्दिक सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण** को अपने शोध में उपकरण हेतु लिया है।

सांख्यिकी प्रविधियाँ–

प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

उद्देश्य–1 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

H_1 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता में सार्थक अन्तर है।

H_{01} माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 1

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी– अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या **(N)**	मध्यमान **(M)**	मानक विचलन **(SD)**	मध्यमानों का अन्तर **(M_1-M_2)**	मानक त्रुटि **(S_{ED})**	टी– अनुपात **(t-value)**	सार्थकता स्तर एवं सारिणी मान	परिणाम
1	हिन्दी माध्यम	100	25.89	8.82	1.84	1.50	1.23	0.05 (1.98)	0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक
2	अंग्रेजी माध्यम	100	27.73	12.09					

तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता का मध्यमान क्रमशः 25.89 एवं 27.73 है और मानक विचलन क्रमशः 8.82 तथा 12.09 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उक्त मध्यमानों में अन्तर के टी–अनुपात का मान 1.23 है जो .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.98 से कम है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। दोनों मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता में सार्थक अन्तर है।

उद्देश्य–2 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

H_2 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता में सार्थक अन्तर है।

H_{02} माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 2

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी– अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या **(N)**	मध्यमान **(M)**	मानक विचलन **(SD)**	मध्यमानों का अन्तर **(M_1-M_2)**	मानक त्रुटि **(S_{ED})**	टी– अनुपात **(t-value)**	सार्थकता स्तर एवं सारिणी मान	परिणाम
1	हिन्दी माध्यम	100	22.84	7.07	2.73	1.15	2.37	0.05 (1.98)	0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
2	अंग्रेजी माध्यम	100	25.57	9.08					

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता का मध्यमान क्रमशः 22.84 एवं 25.57 है और मानक विचलन क्रमशः 7.07 तथा 9.08 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उक्त मध्यमानों में अन्तर के टी–अनुपात का मान 2.37 है जो .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.98 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। दोनों मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा विविधता में कोई सार्थक अन्तर है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के अंग्रेजी माध्यम के छात्रों में सृजनात्मकता की विमा विविधता हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है।

उद्देश्य–3 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

H_3 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता में सार्थक अन्तर है।

H_{03} माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 3

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी– अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या **(N)**	मध्यमान **(M)**	मानक विचलन **(SD)**	मध्यमानों का अन्तर **(M_1-M_2)**	मानक त्रुटि **(S_{ED})**	टी– अनुपात **(t-value)**	सार्थकता स्तर एवं सारिणी मान	परिणाम
1	हिन्दी माध्यम	100	5.12	2.79	0.53	0.37	1.43	0.05 (1.98)	0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक
2	अंग्रेजी माध्यम	100	5.65	2.50					

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता का मध्यमान क्रमशः 5.12 एवं 5.65 है और मानक विचलन क्रमशः 2.79 तथा 2.50 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उक्त मध्यमानों में अन्तर के टी–अनुपात का मान 1.43 है जो .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.98 से कम है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। दोनों मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

उद्देश्य–4 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता की विमा मौलिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

H_4 माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है।

H_{04} माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 4

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी– अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या **(N)**	मध्यमान **(M)**	मानक विचलन **(SD)**	मध्यमानों का अन्तर **(M_1-M_2)**	मानक त्रुटि **(S_{ED})**	टी– अनुपात **(t-value)**	सार्थकता स्तर एवं सारिणी मान	परिणाम
1	हिन्दी माध्यम	100	53.76	13.07	7.19	2.07	3.47	0.05 (1.98)	0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
2	अंग्रेजी माध्यम	100	60.95	16.01					

तालिका 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता का मध्यमान क्रमशः 53.76 एवं 60.95 है और मानक विचलन क्रमशः 13.07 तथा 16.01 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उक्त मध्यमानों में अन्तर के टी–अनुपात का मान 3.47 है जो .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.98 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। दोनों मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के अंग्रेजी माध्यम के छात्रों में सृजनात्मकता हिन्दी माध्यम के छात्रों की अपेक्षा उच्च है।

निष्कर्ष–

अध्ययपरोन्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों के सृजनात्मकता की विमा विविधता एवं सृजनात्मकता में अन्तर है अर्थात् अंग्रेजी माध्यम के छात्रों में विविधता एवं सृजनात्मकता हिन्दी माध्यम के छात्रों की अपेक्षा उच्च है।
- माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम एवं अंग्रेजी माध्यम के छात्रों के सृजनात्मकता की विमा प्रवाहशीलता एवं मौलिकता एक–दूसरे के समान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ओकेर एवं नदेके (2012). इन्फ्लुऐन्स ऑफ जेण्डर एण्ड नॉलेज ऑन सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स साइंटिफिक क्रियेटिविटी स्किल इन नकुरू डिस्ट्रिक, केन्या, यूरोपियन जर्नल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, 1(4), 353–366
- अलफुहैगी, सारी सलेम (2015). स्कूल इन्वायरमेट एण्ड क्रियेटिव डेवलेपमेण्ट : ए रिव्यू ऑफ लिटेचर, जर्नल ऑफ एजूकेशनल एण्ड इस्ट्रूक्शनल स्ट्डीज इन द वर्ल्ड, 5(2), पृ0 33–37
- एलिसावेट एवं अन्य (2013). प्राइमरी फिजिकल एजूकेशन परासपेक्टिव ऑफ क्रियेटिव : द कैरेटरस्टिक्स ऑफ द क्रियेटिव स्टूडेन्ट एण्ड देयर क्रियेटिव आउटकम, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमनिस्टिस एण्ड सोशल साइंस, 3(3), पृ0 234–247
- कान्त, रवि (2012). ए स्टडी ऑफ क्रियेटिविटी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल चिल्ड्रेन एस ए कोरिलेट ऑफ सम टेलीविजन व्यूईंग हैबिट्स, आई.जे. मॉर्डन एजूकेशन एण्ड कम्प्यूटर सांइस, 10 33–39

- क्लिमोविन, गिडेर एवं अन्य (2010). क्रिऐटिव क्लासरूम क्लाइमेट एसेसमेन्ट फॉर द एडवांसमेन्ट ऑफ फॉरेन लग्युवेज एक्वीजिशन. Kalbu Studi Jos, 2010. 16 NR, Studies about languages, No. 16
- गुप्त, डा0 गौरी शंकर (1996–97), *सृजनशीलताः स्वरूप और विकास,* प्रकाशक–श्रीमती गणेश्वरी देवी गुप्ता, नहरबाग, फैजाबाद।
- झा, जे.एस. एवं रस्तोगी, प्रवीन (2014). क्रियेटिविटी एण्ड स्टाइल ऑफ टीचिंग ऑफ हिन्दी मिडियम एण्ड अंग्रेजी मिडियम स्कूल टीचर्स – ए कम्प्रेटिव स्टडी, एडवाजरी बोर्ड ऑफ इण्डियन एजूकेशनल रिव्यू, एन.सी.ई.आर.टी. 52(1), 20–39
- ददवाद, रहमतुल्ला (2012). द रिलेशनशिप बिटविन इमोशनल इन्टेलिजेन्श एण्ड क्रियेटिविटी ऑफ फिमेल हाईस्कूल स्टूडेन्ट्स इन बफ्ट सिटी, जर्नल ऑफ बेसिक एण्ड एप्लाइड सांइटिफिक रिसर्च, 2(4), 4174–4183
- यादव, कृष्ण कुमार (2013). उच्च प्राथमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की शाब्दिक सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- यादव, रीना (2015). ए स्टडी ऑफ क्रियेटिविटी थिंकिंग इन रिलेशन टू इन्टेलिजेन्स एण्ड सेल्फ–कन्सेप्ट ऑफ 10+2 स्टूडेन्ट्स, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, 5(1), 7–10
- रानी, स्वीटी (2016). ए स्टडी ऑफ क्रियेटिव एमंग सीनियर सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू देयर सोशियो–इकोनॉमिक स्ट्टेस, एन इन्टरनेशनल पीयर रिव्यूड एण्ड रिर्फड, स्कॉलरली रिसर्च जर्नल फॉर इन्टरडिस्पिलनरी स्ट्डीज, 4/27 3151–3157
- रेड्डी, के. जनार्दन; विश्वनाथ, के. एवं रेड्डी, एस0 विश्वनाथ (2015). इम्पैक्ट ऑफ डिमोग्राफी वैरियेबल ऑफ नॉन वर्बल क्रियेटिव एमंग हाईस्कूल स्टूडेन्ट्स, द इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इण्डिया साइकोलॉजी, 2(4), 105–115
- सुमनगला, एन0 (2014). ए स्टडी ऑफ लैग्वेज क्रियेटिविटी ऑफ 9 स्टैण्डर्ड स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू इन्टेलिजेन्स एण्ड जेण्डर, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, 4(2), 109–112
- सनसनवाल, डी0एन0 एंड शर्मा, डी0 (1993) साइंटिफिक क्रियेटिविटि एज अ फंक्शन आफ इंटेलीजेन्स, सेल्फ कान्फीडेन्स, सेक्स एण्ड स्टैण्डर्ड ऑफ सांइटिफिक क्रियेटिविटि, इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी एंडएजुकेशन,वाल्यूम 2, पृ037–44

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

भटकाव से गुजरती स्त्री : उषा प्रियंवदा के उपन्यास

आशा सिंह
शोध छात्रा
महाराजा सयाजीरावविश्वविद्यालय वडोदरा गुजरात
मोबाइल नंबर–8160863767

इसका प्रकाशन 1961 में राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली से प्रथम संस्करण के रूप में हुआ। पांचवा संस्करण 1990 में और दूसरी आवृत्ति 2006 में आई। इसका बारहवां संस्करण 2018 में आया है।इस उपन्यास को 21 हिस्सों में विभक्त किया गया है। इसके फ्लैप पर लिखा गया है कि एक भारतीय नारी की सामाजिक–आर्थिक विवशताओं से जन्मी मानसिक यंत्रणा का मार्मिक चित्रण है।छात्रावास के पचपन खंभे लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं, जिनमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा एहसास होता है, लेकिन फिर भी वह उन से मुक्त नहीं हो पाती। शायद होना नहीं चाहती उन परिस्थितियों के बीच जीना ही उसकी नियति है। इसकी प्रधान नायिका सुषमा है। वह सुंदर है, सुशिक्षित है, सुशील है, सुसंस्कृत और संस्कारों से युक्त महिला है। उसके परिवार की आर्थिक हालत ठीक नहीं है। क्योंकि, उसके पिताजी पक्षाघात से पीड़ित रहते हैं। उन्हें नाम मात्र की पेंशन मिलती है। जिससे किसी तरह परिवार का गुजर बसर हो पाता है।यही कारण है कि सुषमा को अपना शहर कानपुर छोड़ना पड़ता है और वह भारत की राजधानी दिल्ली में एक महिला कॉलेज में प्रोफ़ेसर की नौकरी करती है। सुषमा के मन में धन उपार्जन के लिए अत्यधिक लालसा है। कारण उसका पारिवारिक उत्तरदायित्व भी है। अधिक अर्थ उपार्जन के लिए ही सुषमा ने कालेज के अतिरिक्त कार्यों में भी काम करना उचित समझा। जिससे कि कुछ अतिरिक्त पैसे मिल जाएंगे, इसीलिए वह कॉलेज के हॉस्टल में वार्डन का अतिरिक्त कार्य भी संभालती है। सुषमा की दो अन्य बहने भी हैं, जिनमें मझली बहन नीरू तथा छोटी बहन प्रतिमा की जिम्मेदारी भी है। मझली बहन नीरू की शादी के खर्चे भी सुषमा को ही करने हैं और छोटी बहन प्रतिमा की पढ़ाई की जिम्मेवारी भी सुषमा पर ही है। साथ ही भाइयों के परवरिश का आर्थिक बोझ भी सुषमा के ऊपर ही पड़ा है। उपन्यास में कथा की शुरुआत पहले हिस्से में सुषमा के प्रति आकर्षित नील की कथा है। और दूसरे हिस्से में सुषमा के कालेज में प्रवेश के समय की कथा है। छात्रावास का पुराना चपरासी हरिसिंह आकर चिट्ठियां ले गया। सुषमा ने क्लास में जाने को रजिस्टर उठाया और बाहर आई थी कि दो चपरासियों ने एक साथ उसे सलाम किया। पिछले साल तक यह दोनों काम के नाम से दूर भागते थे और सलाम करना तो दूर, सुषमा के टिप देने पर भी काम ठीक नहीं करते थे। सुषमा को लगा कि वह सचमुच अब 'कुछ' हो गई है। उसका आदर और सम्मान बढ़ गया है। वह मुस्कराई और क्लास में चली गई।

घंटा समाप्त होने पर वह लौटी तो देखा कि इस बीच उसके कमरे के आगे नेम प्लेट जड़ दी गई थीदृ मिस एस. शर्मा, एम.ए., वार्डन गर्ल्स होस्टल । अपने नाम के आगे इतनी बड़ी पूँछ देख उसे बड़ा विचित्र–सा लगा। उसने अन्दर आकर पाया कि उसके ऑफिस में उसकी दो सह–अध्यापिकाएँ बैठी हुई हैं।

"आइए वार्डन साहिबा," मिस शास्त्री ने कुछ व्यंग्य से कहा। मिसशास्त्री संस्कृत पढ़ाती थीं। संस्कृत–साहित्य के सम्पर्क से उनमें रस के प्रति रुचि तो थी, पर उस रसोपलब्धि का साधन न था, वह जीवन और संसार के प्रति कटु होती जा रही थीं।

सुषमा ने रजिस्टर रख दिया और अपनी घूमनेवाली कुर्सी पर बैठकर पूछा, ''इस समय आप फ्री है।"[1]

सुषमा के कॉलेज में उसी तरह से सारी घटनाएं घट रही थी जैसा कि अन्य कॉलेजो में भी होते हैं । यह उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। सहकर्मियों का बड़े के प्रति दिखावे का सम्मान करना और अवसर मिलते ही उसे बदनाम करना, यह कॉलेज, विश्वविद्यालय प्रत्येक जगह सामान्य बात

है। सुषमा अपने परिवार में बड़ी लड़की है और आर्थिक स्रोत का वही माध्यम भी है। माता–पिता का स्वार्थ कहें या कुछ! वह समय पर जानबूझकर सुषमा का विवाह नहीं करते। उनके लिए सुषमा कमांऊ पूत थी। उसके विवाह की आयु हो चुकी थी, बावजूद इसके उसके विवाह की चिंता किसी को नहीं थी। बस वह परिवार के दायित्व में अपने को समर्पित किए बैठी थी। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती थी। उसे तो अपने छोटे भाई बहनों के दायित्वों का निर्वाह करना था ।वह अपनी चिंता क्यों करें?कहीं न कहीं स्थिति के जिम्मेदार उसके पिता स्वयं वकील साहब भी थे। सुषमा की जो कोमल भावनाएं थी, उसका निश्छल मन था, वह भी किसी वेदना से पीड़ित हो रहा था। उसको अपना जीवन नीरस सा दिखने लगा। अकेलेपन की विडंबना उसके लिए यातना बन रही थी। उसके चारों ओर का वातावरण बोझिल हो चुका था। एक और पारिवारिक जिम्मेदारियां, पारिवारिक बंधन, दूसरी ओर पद की गरिमा और प्रतिष्ठा। इस गरिमा दृप्रतिष्ठा और जिम्मेदारियों के बाड़े में वह घुट रही थी, पिस रही थी।उसने भी अब निश्चय कर लिया कि अब वह विवाह नहीं करेगी। अपनी वियावन, सूनसान रास्ते पर वह अंधेरे में ही कहीं चली जा रही थी, बस चली जा रही थी। अचानक एक दिन नील नाम का एक साथी उसे मिल जाता है, जो उसके सूनसान भरे इस वातावरण से अकेलेपन की यंत्रणा को दूर करने का प्रयत्न करता है।

"फिर सुषमा कुछ काम से बाजार गई, तो यहाँ अचानक ही नील मिल गया। उसे देख नील के चेहरे पर ऐसी मुस्कान आई, जैसे कि उसे बहुत बड़ी निधि मिल गई है। आग्रह कर वह सुषमा को वहीं से एक रेस्ट्रॉ में ले गया और ऑर्डर देकर बोला, "आप नियति परः विश्वास करती हैं?"

"क्यों?"

"मैं आज यही सोच रहा था कि अभी कल ही तो आपके साथ गया था, आज कैसे जाऊँ? पर देखिए, आप ही मिल गई।" सुषमा को लगा कि नील की इस बात पर उसे बहुत बुरा लगना चाहिए, अब उसे नील को झिड़क देना चाहिए, क्योंकि कहीं बात बिगड़ न जाए वह सीमाएँ लाँघने लगा है।

"उसके इस द्वन्द्व को भापकर नील ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "आप मेरी बात पर नाराज तो नहीं हो गई? मैंने तो जो सोचा था, कह दिया।" "चायदानी का ढकना उठाकर नीचे देखते हुए बिना मुस्कराए,बुरा–सा मानते हुए सुषमा ने कहा, "फिर कभी न कहिएगा।"

डाँट खाए–से बच्चे की तरह नील ने कहा, "नहीं कहूँगा। पर सोचने पर तो प्रतिबन्ध नहीं लगा सकेंगी आप?" उस समय सुषमा को नील बहुत ही प्रियदर्शन लगा ।

"बताया नहीं आपने," सुषमा को अपनी ओर देखते पा, नील ने कहा।

"चाय पीजिए।" सुषमा चाय छानने लगी।

"आप लोगों में मेरा मतलब टीचर्स में–बस यही तो खराबी होती है–हर जगह ऑर्डर देने लगती हैं। अब आप ही हैं, नन्ही गुड़िया–सी लगती हैं, पररोब इतना कि डर लगे। न जाने क्या–क्या जिम्मेदारियाँ ले रखी हैं! वार्डन, लैक्चरर..."

यह सुनकर, न चाहने पर भी सुषमा के होंठों के कोने ऊपर उठ गए। वह जानती थी कि वह अपनी आयु से बहुत छोटी दिखती है। नील के मुँह से यह बात सुन उसे भला–सा लगा।

"मेरी पढ़ाई गई लड़कियाँ आपसे बड़ी ही होंगी," उसने चम्मच से चीनी मिलाते हुए कहा । वह नील से नाराज न हो सकी।

नील उसे छोड़ने कॉलेज तक आया–सुषमा ने बहुत मना भी किया, पर वह नहीं माना। अँधेरा हो जाने के बाद कॉलेज का गेट बन्द हो जाता था, टैक्सी वहीं रुकवाकर सुषमा उतर गई। नील ने कहा, "मुझे उतरने को नहीं कहेंगी?" आप को देर हो जायेगी। "सुषमा ने उसे टालना चाहा।"[2] नील का आकर्षण सुषमा का खिंचाव दोनों स्वाभाविक था।वयः संधि की उम्र में दो अजनबी,विपरीत लिंगी एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो यह कोई नई बात नहीं थी। नील प्रायः सुषमा के छात्रावास के वार्डन वाले बंगले के आसपास आने जाने लगता है। उसकी यौन भावनाएं जो सुषुप्त हो चुकी थी, वह उसे जागृत करने की कोशिश करता है। सुषमा के सूखे से जीवन में हरियाली का वातावरण प्रस्तुत होने लगता है। अंतर्मन में नील को लेकर उसकी चाहत बढ़ने लगी। वाह्य रूप में वह दिखावा नहीं करती, लेकिन नील भी उससे विवाह करने की इच्छा करता है। यह क्रम बढ़ता ही जाता है और सुषमा इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अब नील को वह अपनी अतृप्त काम इच्छाओं को पूर्ण करने हेतु निकट आने देगी। उन दोनों की निकटता यौन संबंधों की सुखानुभूति का एहसास कराने लगी। दोनों एक दूसरे को तृप्त करते

हैं। जबकि नैतिक रूप से एक प्रोफेसर के लिए यह अनैतिक संबंध था। फिर वही हुआ जिसे होना चाहिए था, उनके सहयोगी प्राध्यापकों ने सुषमा की आलोचना शुरू कर दी। क्या सुषमा के अंदर केवल यौनेच्छा ही थी या उसे घर बसाने की भी चिंता थी। नील फिलिप्स नाम की कंपनी में अच्छे पद पर कार्यरत था। वह विवाह का प्रस्ताव भी रखता है। लेकिन सुषमा पारिवारिक जिम्मेदारियों को अपने हृदय में सजोएं रखती है, और यह वाह्य रूप में बताती है कि नील उम्र में उससे पांच वर्ष छोटा है, इसलिए वह उससे विवाह नहीं कर सकती। उसका एक दूसरा मन भी कचोटता था, डर भी था कि कहीं नील को उससे छोटी सुंदर युवती मिल गई तो वह उसे किसी न किसी बहाने एक दिन छोड़ देगा। डर और पारिवारिक जिम्मेदारियों को हृदय में दबाए सुषमा निष्कर्ष पर पहुंचती है कि वह जीवन भर अविवाहित रहेगी। "अब मुझसे कहने को तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचा ?" "अभी तो कुछ कह ही कहाँ पाई थी." विवश–सी हँसी हँसकर सुषमा ने कहा, "वे सब बातें अब जाने दो नील। आओ, हम–तुम बातें करें इधर–उधर की, दुनियादारी की। तुम्हें मालूम है मीनाक्षी की शादी जल्दी ही होनेवाली है और मिस शास्त्री की डियरेस्ट खो गई है। अब भी सुबह–शाम उसके प्याले में दूध भरकर रखती हैं। उन्हें विश्वास है कि वह लौट आएगी, वह मिस शास्त्री के बिना नहीं रह सकती। उसकी बात करते हुए उनकी आँखों में से आँसू झरने लगते हैं। केवल में जानती हूँ कि वह अब नहीं लौटेगी। भौरी का सिपाही पति छुट्टी पर आया हुआ था और वह डियरेस्ट को मारकर कहीं फेंक आया है।" "सुषमा, क्या मेरे लिए कोई आशा नहीं है? तुम मेरे प्रति इतनी क्रूर क्यों हो गई हो?"

एक हवाई जहाज बहुत नीचा उड़ता हुआ एयरपोर्ट की ओर चला गया। सुषमा उसकी जलती–बुझती बत्तियाँ अपलक देखती रही। "जब हम फूल की पंखुड़ियाँ नोचकर फेंक देते हैं तब फूल को कैसा लगता होगा, मैं अब समझ पाई हूँ उन नुची पंखुड़ियों के ढेर पर मैं बैठी हूँ।"

नील कुछ कहते–कहते रुक गया। सुषमा ने उसे अपनी और विचित्र, व्याकुल दृष्टि से देखते हुए पाया।

"तो तुम्हारा निश्चय दृढ़ है?" नील ने पूछा। सुषमा ने सिर–भर हिला दिया, वह घास नोचने लगी। उस समय जैसे पागल तरंगों ने उसे तट पर लाकर पटक दिया और उसके खंड–खंड होकर चमकती रेत में मिल गए। उससे नील की वह दृष्टि न सही गई। उसने हाथ बढ़ाकर नील का हाथ पकड़ना चाहा, पर ऐसा किया नहीं। वह नील यह न कह पाई कि तुम मुझे भुला देना या समय सब भुला देता है। सांत्वना के ऐसे घिसे–पिटे शब्द उसके होंठों पर न आए। वह जानती थी कि कुछ रेखाएँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें समय भी नहीं मिटा पाता। भूलना क्या होता है? मन समझाने की बातें, कायरों के बहाने!"[3] निष्कर्षतः इस उपन्यास में कथाकार ने सुषमा को एक रूढ़िवादी और त्यागमई नारी के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। वह एकाकी जीवन जीती है और आत्म निर्वासन के द्वंद से पीड़ित है। उसके लिए पारिवारिक कर्तव्य ज्यादा है। बैयक्तिक सुख कम। जीवन में आए हुए राग–अनुराग, प्यार और आनंद की अनुभूति को भी वह पारिवारिक जिम्मेदारियों के सामने त्याग देती है। वह अपने द्वार पर जीवन को आगे ले जाने वाले साहिल (नील) को भी झिड़क देती है। और वापस उसी पचपन खंभे लाल दीवारें वाले छात्रावास की वार्डन बनकर रह जाती है। इसे एक स्त्री की नियति भी कह सकते हैं या फिर यही कथाकार का मूल मंतव्य भी है।

'रुकोगी नहीं राधिका' इस उपन्यास का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली से 1968 में पहला संस्करण के रूप में हुआ पहला सजल संस्करण 2000 और 1 आवृत्ति 2004 में आई इसका 12 में संस्करण 2018 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास के प्रधान नायिका राधिका है उसके बाल्यावस्था में ही उसकी मां का देहांत हो जाता है उसका बड़ा भाई विनय है राधिका और विनय का लालन–पालन पिता ही करते हैं। पिता दोहरी जिम्मेदारी का निर्वहन करते हैं। बच्चों के पालन–पोषण में मां की कमी नहीं होने देते। 18 वर्ष तक पिता अकेले ही मां और बाप दोनों के कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। इन दो दशकों के अकेलेपन की यंत्रणा से ऊबकर एक दिन पिता ने विद्या नामक एक युवती से विवाह कर लिया, जो उनसे उम्र में काफी छोटी थी। राधिका पिता के प्यार में इस प्रकार से पली–बढ़ी थी कि वह पिता को कदापि छोड़ना नहीं चाहती थी। वह यह नहीं चाहती थी, कि कोई अन्य स्त्री पिता के साथ जुड़े और उसके प्रति पिता का प्यार कम हो जाए । जब उसकी विमाता विद्या बनकर आई ,तब उसके अंदर पिता के प्रति प्रतिशोध लेने की भावना ने जन्म लेना शुरू किया। अब वह स्वच्छंद जीवन जीने लगती है।" दोनों दो–दो कप चाय पी चुके थे, डेन का मुख धूप की ओर था और

राधिका अपनी दाहिनी हथेली से चेहरे को आड़ में किए थी, चचौंध से बचने के लिए वह डैन की बात को ध्यान से सुन रही थी।

"माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव बहुत कुछ एब्नार्मल हो गया। यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारम्भ से ही युवा मित्र बनाने की सुविधा होती तो न होता। तब तुम्हे प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया।"

राधिका इन सब बातों को बड़े ध्यान से सुनती थी। उसके चरित्र का इस प्रकार विश्लेषण कभी किसी ने नहीं किया था।

"क्यों, बचपन में तुम्हारे संगी साथी थे?"

"नहीं।"

"स्कूल में?"

"थे, पर कम।"

"तुम्हें उनके घर आने–जाने की सुविधा थी?" "तुम तो जिरह कर रहे हो।"

तब डैन हँसा और बोला, "नहीं राधिका, मैं तुम्हें यह जताने की कोशिश कर रहा कि तुमने अपने ही बनाए दुख के घेरे में अपने को बाँध लिया है। ठीक है, पिता ने दूसरी शादी कर ली। तुम भी सीमाओं से निकलो, दुनिया देखो, अपनी सम्भावनाओं को विकसित करो। किसी युवा पुरुष से....।" "मुझे युवा पुरुष बहुत अपरिपक्व लगते हैं।"

"इसलिए कि तुम प्रत्येक में अपने पिता की–सी मानसिक प्रौढ़ता ढूंढती हो। मालूम है कि तुम मेरे साथ इतनी फ्री क्यों हो?"

"क्यों?" राधिका ने पूछा।

"क्योंकि तुम मुझमें कहीं अपने पिता का प्रतिबिम्ब पाती हो। ठीक है न?"

"बिलकुल गलत," राधिका ने उच्च स्वर में प्रतिघात किया। पर ऐसे ही अनेक वार्तालापों के बाद उसके मन में यह विश्वास दृढ़ होता गया कि उसे डैन की बात मानकर एक बार विदेश अवश्य जाना चाहिए।"[4] राधिका ने अवसर का लाभ उठाकर डैन के साथ फाइन आर्ट में परास्नातक की डिग्री लेने हेतु शिकागो अमेरिका चली जाती है। वहां पर वह उन्मुक्त और स्वच्छंद जीवन जीने लगती है। वह डैन के साथ इस तरह से रहती है, जैसे पति–पत्नी रह रहे हो। चौबीसदृ पच्चीस साल का अंतर दोनों में दिखता है, और है भी। लेकिन उस अंतर को कामेच्छा, यौनेच्छा में कभी आने नहीं देती। डैन पहले से ही विवाहित था और उसने अपनी पत्नी को दुष्चरित्रा का आरोप लगाकर तलाक दे चुका था। राधिका प्रारंभ से ही डैन के प्रति आकर्षित होती है, इसका कारण था डैन के अंदर अपने पितृत्व की तलाश। पिता से नफरत के क्षणों में ही वह डैन में पिता की तलाश करती थी। उधर डैन राधिका में अपनी पत्नी की तलाश करता था। दोनों की तलाश जारी थी। एक ऐसी स्थिति भी आई, जब दोनों अपनी तलाश में असफल हो गए। किसी कारण बस दोनों में तनाव बढ़ने लगा और यही तनाव संबंध विच्छेद का कारण भी बना। डैन राधिका को छोड़कर पूर्व के देशों की यात्रा पर चला गया और कुछ दिन बीतने के पश्चात वह पुनर्विवाह किसी अन्य स्त्री से कर लेता है। इधर राधिका को अमेरिका में आर्थिक विपन्नता का सामना करना पड़ता है। इन तीन वर्षों में ही अपनी शिक्षा समाप्त करके जब वह भारत लौट कर आती है तो, पुनः पुराने संबंधों को जीवित करने के लिए व्याकुल हो जाती है। पिता के निर्ममता पूर्ण व्यवहार के कारण वह किसी को अपना बना नहीं पाती,किसी के पास भी रुक नहीं पाती।"अन्दर गेट में स्कूटर मुड़ा ही था कि राधिका ने देख लिया कि पापा सामने ही टहल रहे हैं। उन्होंने इधर देखा और रुक गए। राधिका एकदम पास पहुँचने से पहले ही ड्राइवर को रोकने को कह दिया, और पूरी तरह रुकने से पहले ही उतर गई, विद्या ने उसे अजीब–सी दृष्टि से देखा है, यह जानते हुए भी वह हड़बड़ाते हुए पिता की ओर बढ़ गई।

पापा वहीं रुके खड़े रहे, राधिका ने पास पहुंचकर नमस्कार करते हुए भरपूर दृष्टि से पिता के मुख को देखादृ एक झटके के साथ यह महसूस करते हुए कि वे पहले से काफी दुर्बल और वृद्ध से दीख रहे हैं, बाल करीब–करीब सभी पक गए हैं, आँखों के नीचे काले साए हैं, और चेहरे पर एक थकापन–सा है, इस ताजी सुबह भी। "आप क्या बीमार थे?" राधिका ने ही पहले बात शुरू की।

"नहीं," थोड़ा–सा अन्तराल, "रास्ते में तकलीफ तो नहीं हुई?" उनके स्वर की दूरी और औपचारिकता से राधिका के पूरे शरीर में हताश कम्पन दौड़ गया। पर उसने प्रसन्नता को अपनी

आवाज में भरने की चेष्टा करते हुए कहा, "नहीं, तकलीफ क्या होती?"। "राधिका ने जीविकोपार्जन के अनेकानेक प्रयत्न किए। अंततोगत्वा वह भारत की राजधानी दिल्ली में प्रवेश करती है। जहां उसे लगता है कि शिक्षा–दीक्षा का असर दिखेगा और उसे कोई नौकरी मिल जाएगी। दिल्ली में उसे एक युवक से सहायता मिलती है, जिसका नाम अक्षय है। यह वही युवक है जो का राधिका की विमाता विद्या की सहेली का छोटा भाई है। उसने राधिका की काफी मदद की और राधिका अक्षय के साथ स्वच्छंद जीवन जीने लगती है। आगे के क्रम में उसे शिकागो में मनीष नामक युवक से मुलाकात हुई थी और मनीष के शारीरिक आकर्षण से भी राधिका प्रभावित थी। वह उसी उभयतःपाश में जी रही थी कि किसके साथ जीवन बिताया जाए? मनीष के साथ अथवा अक्षय के साथ। "राधिका ने बहुत बार पढ़ा और सुना था कि नितान्त अपरिचित से दुख–गाथा कहकर भार हल्का हो जाता है। अक्षय उसके लिए अपरिचित ही तो था। पापा ने जब अपने जीवन की राह चुन ली, तो वह क्यों नहीं स्वतंत्र, निर्मम हो अपने लिए राह खोज लेती।

राधिका की आँखें फिर अक्षय पर टिक गई। इस अल्प परिचय में जितना अक्षय को जाना था, उससे यह स्पष्ट था कि वह कभी भी उसके लिए अधीर, उन्मत्त कर देनेवाला प्रेमी न बन सकेगा। अक्षय के स्पर्श कभी भी उसकी धमनियों में रक्त के प्रवाह की गति तीव्र नहीं होती, इसका श्री बोध उसे था। हाँ, दोनों मित्र बन सकते थे, राधिका को एक समझदार मित्र की आवश्यकता भी थी।

राधिका को अपने विचारों की गति पर हँसी भी आई, और थोड़ी खीज भी। उसे क्या हो गया है, क्या वह भी रज्जू भैया का बनाया रास्ता खोज रही है। विवाह, गृहस्थी, बच्चे! क्या इस भटकन की यहीं परिणति होगी?

"मैं सोचती हूँ कि मकान ले ही लूँ." अपने विचारों पर प्रतिरोध लगाते हुए राधिका बोल पड़ी।"[5] मनीष से मुलाकात के बाद राधिका अपनी वेदना को व्यक्त करती है। अनिर्णय की स्थिति को भी प्रकट करती हैं।

"तब राधिका ने भी हँसकर कुछ उबरने का प्रयत्न किया। वह कितने दिनों से, किसी से स्पष्ट भाषण करने को तरसी हुई थी, यह भी उसने अपने आप जाना। अक्षय के साथ ऐसी बातें नहीं हो सकतीं, उससे वार्तालाप के कुछ सीमित ही विषय हैं।

"डैन से अलग तो मैं तुम्हारे सामने ही हो गई थी। उसके बाद मुझे संस्कृत की सहायक शिक्षिका की नौकरी मिल गई। वहीं से मैंने एम.ए. कर लिया। फिर एकाएक वहां इतना त्रासदायक लगने लगा कि मैंने सोचा कि जब तक में भारत न लौटेंगी, शान्ति न मिलेगी।" "शान्ति मिली?" मनीश मुस्कराया।

"नहीं मिली," राधिका उदास हो आई थी। "अक्सर टामस–वुल्फ की उस नावेल का शीर्षक याद आता रहता है। 'तुम घर वापस नहीं जा सकते।' कुछ अजीब ही किस्म की हो गई हूँ, न वहाँ सुखी थी न यहाँ।"

"तुम कॉफी बनाने को कह रही थीं?" मनीश ने कहा। राधिका के साथ वह भी उठा और दोनों कमरों के बीच खड़ा होकर बोला, "मुझे भी ऐसा ही लगता रहता है, यह कोई नई भावना नहीं है। और मैं तो सात साल बाद लौटा।" राधिका ने परकोलेटर का प्लग लगा दिया।

"तुम्हारा परिवार भी तो है न?"

मैं उन सबसे मिलने गई थी। बड़े भाई सपरिवार कलकत्ता गए थे। विमाता घर पर मिलीं, पापा से भी मिली, पर...!"

"उन्होंने तुम्हें क्षमा नहीं किया है," मनीश ने धीरे से बात जोड़ी । "हाँ, पर विश्वास नहीं होता था। सोचती थी कि जब वे मेरा मुख देखेंगे, तब शायद क्षमा कर दें...!" फिर मौन। आँसुओं से धुंधला गई दृष्टि राधिका ने झुका ली। आस–पास का शोर कमरे में घुस आया, नीचे आँगन में फटाफट धोए जाते कपड़े, सामने पार्क में गेंद खेलते बच्चों की आवाजें, पीछे गली में किसी स्त्री का कर्कश स्वर, और इन सबके ऊपर रेडियो पर फिल्मी धुनें ।

"मैंने तुम्हें दुःखद प्रसंगों की याद दिला दी।" मनीश का दायाँ हाथ राधिका के कन्धे पर हल्के–से आ टिका।"[6] काल की गति का प्रभाव भी निरंतर चलता रहा और एक ऐसा समय आया जब पिता चारपाई पर पड़ गए। अब उन्हें सहारे की जरूरत थी, क्योंकि पिता ने जो दूसरा विवाह किया था, उस विवाहित स्त्री (विद्या) की मृत्यु हो गई थी। राधिका के पास अवसर था कि विद्या की मृत्यु के बाद

अब पिता के प्यार को पुनः पा सकती है। लेकिन अब काफी देर हो चुकी थी, राधिका पिता के आग्रह करने पर भी नहीं रुकती है। पिताजी उससे कहते हैं 'रुकोगी नहीं राधिका'? लेकिन राधिका बेरहमी से पिता के इस वाक्य पर ध्यान नहीं देती है और वह मनीष के साथ खजुराहो की यात्रा पर चली जाती है।

"विनय, लोग कल जा रहे है?" पापा बड़े औपचारिक स्वर में पूछते

"कह तो रहे हैं।"

" और तुम?"

राधिका एक लम्बी साँस लेती है। पापा आगे झुककर उसके कंधे पर हाथ रख देते हैं। उस स्पर्श से राधिका सहसा पिघल उठती है। नथुने हल्का –सा फैलते हैं, ओंठ दाँतों से कुचल उठते हैं। वह अपने को संयत करना चाह रही है।

"और आप ?"

"मैंने अपने बारे में कुछ सोचा नहीं है। चाहता हूँ, तुम यहाँ रहो राधिका, पहले की तरह।"

राधिका को थोड़ी–सी स्वस्ति है कि अँधेरे में पापा का मुँह नहीं दीखेगा, नही पापा, मैं जाना चाहती हूँ। मनीश...मेरे एक बन्धु..." बात बीच में छोड़ रुक गई।

पापा का हाथ हट गया, शायद वह फिर पीछे कुशन की टेक लगाकर बैठ गए हैं।

शायद वह भी, कमरे में मँडराते जुगनू को एकटक देखने लगे।"[7]

यही न रुकने वाली कथा भी कथाकार ने सृजित किया है। निष्कर्षतः इस उपन्यास के संदर्भ में कहा जा सकता है कि अकेली स्त्री के जीवन अनुभवों और प्रसंगों को प्रतिशोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि आधुनिक समाज में जो रिश्ते बदल रहे हैं, उन बदलते रिश्तो से तालमेल न बिठा पाने की कसक स्त्री और पुरुष दोनों में होती है। एक असामान्य पिता की सामान्य संतानों के साथ और सामान्य संबंध की कथा रुकोगी नहीं राधिका है। क्योंकि दुनिया में ऐसे तमाम लोग पड़े हैं, समाज में ऐसे अनगिनत लोग पड़े हैं, जिनके पारिवारिक परिधि पर बाहरी पात्रों की सहज दस्तक होती है और पारिवारिक संबंधों को वे पात्र तार–तार कर देते हैं। हो न हो यह संयुक्त परिवार के विघटन का परिणाम भी है। इसके फ्लैप पर उषा प्रियंवदा का यह वाक्य हृदय की गहराइयों को स्पर्श करता है कि 'विगत को सोचने से क्या? तब जो मैं थी, अब वह नहीं हूं। हर समय जो भी बीतता है जीती हूं, उसके बाद पहलीदृसी कहां रहती हूं कल भी तुम्हारे जाने के बाद मैं।' स्वाभाविक है कि एक ऐसी बेटी के उलझन की कथा इसमें है, जो पिता से विद्रोह करती है और निरंतर भटकाव से गुजरती हुई पिता के पास आने के बावजूद भी पिता का आश्रय नहीं लेना चाहती हैं। समाज का केंद्र यहां पिता ही है, उसकी एकमात्र गलती पुनर्विवाह करना था। बच्चों के प्रति अपनापन का रिश्ता न रखना। लेकिन बच्चे आधुनिकता की इस चकाचौंध में पिता से नफरत करते हैं और नफरत के कारण ही वह रुकती नहीं दूर चली जाती है। बार–बार नजदीक आकर भी दूर ही रहती है।

संदर्भ सूची :

1. उषा प्रियंवदा– पचपन खंभे लाल दीवारें राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज,नई दिल्ली, संस्करण 2018 पृष्ठ 10,11
2. वही, पृष्ठ 27,28
3. वही, पृष्ठ 149
4. उषा प्रियंवदा– रुकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृष्ठ 32
5. वही, पृष्ठ 67
6. वही, पृष्ठ 83
7. वही, पृष्ठ 136

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में मध्याह्न भोजन योजना एक सकारात्मक शासकीय पहल

डॉ0 प्रमोद कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षाशास्त्र विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

मनीषा गुप्ता
शोधछात्रा (शिक्षाशास्त्र)
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

शिक्षा ही एक असहाय शिशु के व्यवहार में परिवर्तन, परिमार्जन तथा परिष्कार करके उसे एक जिम्मेदार वयस्क नागरिक बनाती है। शिक्षा की इसी उपयोगिता को भली–भाँति समझते हुए अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक व्यवस्था सुनिश्चित की गई थी। समय–समय पर प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए विभिन्न नीतियों, संस्तुतियों तथा योजनाओं के माध्यम से अनेक प्रयासों के बावजूद आशातीत सफलता नही मिल सकी। सर्वेक्षणों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि बच्चों तथा उनके अभिभावकों का शिक्षा के प्रति उदासीन होने का प्रमुख कारण बच्चों का कुपोषण से पीड़ित होना था। अतः शासकीय विद्यालयों में 1995 से अनाज वितरण की योजना लागू की गई, जिसके प्रभावहीन होने पर 2001 से मध्यान्ह भोजन योजना के अन्तर्गत सभी शासित विद्यालयों में दोपहर के मध्यावकाश में स्कूलों में ही पका हुआ भोजन देने की व्यवस्था शुरू की गई जिससे न केवल बच्चों के पोषण स्तर में सुधार हो सके अपितु उनमें शिक्षा के प्रति सार्थक अभिवृत्ति का विकास भी सम्भव हो सके। नामांकन तथा ठहराव को सुनिश्चित करने में योजना काफी हद तक सफल भी रही। सम्प्राप्ति के क्षेत्र में भी योजना अपना प्रभाव छोड़ सके, इस दिशा में अभी और प्रयास अपेक्षित है।

Key Words-

1. अनिवर्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा
2. शासित विद्यालयों में अनाज वितरण योजना
3. मध्याह्न भोजन योजना (MDM)

प्रस्तावना–

प्राथमिक शिक्षा की सुदृढ़ नींव पर ही उच्च शिक्षा की सफलता निर्भर करती है। प्राथमिक शिक्षा उस वृक्ष के जड़ की भांति है, माध्यमिक, उच्च और उच्चतर शिक्षा जिसकी अन्य शाखाओं के समान है और जिनकी मजबूती जड़ के सुदृढ़ीकरण पर निर्भर है। अतः सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षा की नींव को मजबूत किया जाए और यह तभी सम्भव है जब देश का प्रत्येक बालक और बालिका अनिवार्य रूप से शिक्षित हो सके। शिक्षा की आवश्यकता, उपयोगिता और महत्त्व असंदिग्ध है। शिक्षा ही वह धुरी है जस पर मानव का विकास गति पाता है। अतएव प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता की व्यवस्था संविधान द्वारा स्थापित की गई। सभी को शिक्षा सुलभ हो सके, इसे पूरी तरह से निःशुल्क कर दिया गया। राज्य को निर्देश दिया गया कि–

''राज्य अपने प्रदेश के 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था को बाध्य होगां'' प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए समय–समय पर अनेक प्रयास किए गये।

प्राथमिक शिक्षा को 86वें संविधान संशोधन 2002 में 21ए के अन्तर्गत बच्चों का मौलिक अधिकार बना दिया गया।

86वें संविधान संशोधन 2002 में 51–क के अन्तर्गत अभिभावकों को अपने 6–14 आयु वर्ग के प्रतिपाल्य को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दिलाना मूलकर्त्तव्य बना दिया गया।

इसके अलावा भी अनेक नीतियाँ एवं योजनाएँ समय–समय पर लागू और कार्यान्वित की गई, परन्तु प्राथमिक शिक्षा अपने सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल न हो सकी। सर्वेक्षणों से पता चला कि देश का एक बड़ा तबका जो ग्रामीण और दुर्गम इलाकों में रहता है और सामाजिक तथा आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़ा हुआ है, उनके बच्चे कुपोषण से पीड़ित है उन्हें दो वक्त का भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। बच्चे भूख मिटाने के लिए बाल मजदूरी करने को बाध्य है। ऐसी स्थिति में उन्हें शिक्षा की ओर उन्मुख करने के लिए सर्वप्रथम उनकी भूख को मिटाने की आवश्यकता थी। अतः राष्ट्रीय पोषण गारंटी अधिनियम के तहत 1995 से सभी शासकीय प्राथमिक विद्यालयें में राष्ट्रीय पौषणिक सहायता कार्यक्रम की शुरुआत की गई। जिसके अन्तर्गत 80% की उपस्थिति प्रतिमाह 3किग्रा गेहूँ/चावल अनाज के रूप में वितरित किया जाता था, परन्तु यह योजना विशेष रूपसे लाभकारी न हो सकी, कयोंकि विद्यालयों की ओर से दिया जाने वाला अनाज पूरे परिवार में बँट जाता था और बच्चों को पूरा पोषण नहीं मिल पाता था। अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से अप्रैल 2001 से राष्ट्रीय पौषणिक सहायता कार्यक्रम मध्याह्न भोजन योजना में परिवर्तित हो गई और अब अनाज वितरण के स्थान पर सभी शासित प्राथमिक विद्यालयों में दोपहर के मध्यवाकाश में पका हुआ भोजन बच्चों को दिया जाने लगा। मध्याह्न भोजन योजना के फलस्वरूप बच्चों का रूझान विद्यालयों की ओर हुआ, अभिभावक भी बच्चों को दिन में एक समय का भोजन मिल सके, इस आशा में विद्यालयों में भेजने लगे। नामांकन के क्षेत्र में प्रस्तुत योजना काफी हद तक सफल दिखाई पड़ती है। अत्यन्त निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले बच्चें भी मध्याह्न भोजन योजना लागू होने के बाद प्रवेश लेने लगे। बालिकाओं का नामांकन भी बढ़ने लगा। 80% की उपस्थिति अनिवार्य होने की दशा में नियमित उपस्थिति और ठहराव में भी सुधार आया। कतिपय कारणों से उत्तर–प्रदेश में यह योजना 2 अक्टूबर 2004 से प्रभावी हुई। शोधछात्रा ने उत्तर–प्रदेश के वाराणसी जनपद के परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन पर मध्यान्ह भोजन योजना के प्रभाव को जानने हेतु एक शोध कार्य किया है। समय, धन और श्रम सम्बन्धी संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए शोध का क्षेत्र वाराणसी जनपद के एक ब्लॉक तक सीमित रखा गया है।

अध्ययन की आवश्यकता–

जो आवश्यक है, वह निश्चित रूप से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होगा। यह बात शिक्षा के सम्बन्ध में अक्षरशः सही सिद्ध होती है। शिक्षा ही मानव विकास के परिमार्जन और परिष्कार का एकमात्र साधन है। शिक्षा की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। प्राथमिक शिक्षा की नींव को सुदृढ़ करने में मध्याह्न भोजन योजना एक सकारात्मक शासकीय पहल है। जिसने दुर्गम, पहाड़ी और अत्यन्त निम्न तबके के बच्चों को भी शिक्षा की ओर उन्मुख करके विद्यालय के द्वार तक लाने में महती भूमिका निभाई है। शासित प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन, ठहराव तथा सम्प्राप्ति के निमित्त अनेक सरकारी/गैर सरकारी योजनायें संचालित है। नामांकन बढ़ाने में सबकी सम्मिलित भागीदारी है। परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में बालक तथा बालिकाओं के नामांकन की क्या स्थिति है? और नामांकन के संदर्भ में मध्यान्ह भोजन योजना क्या भूमिका निभा रही है? विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश को बढ़ाने में प्रस्तुत योजना कितना सक्रिय योगदान दे पा रही है? जिस उद्देश्य से इस योजना को प्रारम्भ, लागू, कार्यान्वित और संचालित किया गया है, उसमें कितना सफल रही है? इन्हीं सब प्रश्नों का उत्तर पाने की अभिलाषा में शोध छात्रा ने यह शोध कार्य किया है।

समस्या कथन–

प्रस्तुत शोध कार्य में परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1–5 तक अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव को जानने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य– अपने शोध अध्ययन में शोध छात्रा ने जो उद्देश्य रखे है वे निम्नवत हैं–

प्रमुख उद्देश्य–

परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव का अध्ययन।

उप उद्देश्य–

1. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव का अध्ययन।
2. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्राओं के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव का अध्ययन।
3. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्र–छात्राओं के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव का अध्ययन।
4. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1–5 तक कक्षावार नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना के प्रभाव का अध्ययन।

परिकल्पना–

प्रस्तुत शोध अण्ध्ययन में शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए निम्नलखित परिकल्पनायें निर्मित की गई हैं–

1. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों के नामांकन पर मध्याह्न भोजन का प्रभाव संयोवगश है।
2. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्राओं के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना का प्रभाव संयोगवश है।
3. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में छात्र–छात्राओं के नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना का प्रभाव संयोगवश है।
4. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1–5 तक कक्षावार नामांकन पर मध्याह्न भोजन योजना का प्रभाव संयोगवश है।

शोध विधि एवं प्रदत्त संकलन

अध्ययन विधि– प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या– प्रस्तुत शोध अध्ययन में परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् समस्त विद्यार्थी जनसंख्या के रूप में है।

न्यादर्श– सरल यादृच्छिक विधि से वाराणसी जनपद के 8 ब्लाक में से आराजी लाइन्स ब्लॉक का चयन किया गया तथा पुनः लाटरी विधि से आराजी लाइन्स ब्लॉक के 16 संकुलों में से सुईचक संकुल के 13 विद्यालयों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया।

प्रयुक्त उपकरण–प्रस्तुत शोध अध्ययन में ब्लॉक संसाधन केन्द्र से प्राप्त ऑकड़े व विद्यालयों से प्राप्त छात्र प्रोफाइल उपकरण के रूप में प्रयोग किए गए हैं।

प्रदत्त संकलन– शोध छात्रा ने स्वयं उपस्थित होकर सुईचक संकुल के विद्यालयों से छात्रों के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त किया और (B.R.C.) ब्लॉक संसाधन केन्द्र से नामांकन सम्बन्धी दो वर्षों से सत्र 17 और सत्र 18 का विवरण प्राप्त किया।

सुईचक संकुल के 13 परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में सत्र 2017 व 2018 में बालिका वर्ग की स्थिति

सुईचक संकुल	कक्षा–1		कक्षा–2		कक्षा–3		कक्षा–4		कक्षा–5	
सत्र	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018
परिषदीय प्रा0वि0										
गंजारी	20	22	32	22	21	34	22	20	27	29
कनेरी	16	15	16	19	9	17	13	9	2	13
जमीन बैरवन	9	4	7	13	8	10	7	12	6	4
गंगापुर– ।	20	4	15	26	9	15	13	12	17	11
गंगापुर– ।।	21	21	24	26	28	24	23	27	25	21
बसंतपट्टी	29	22	11	23	10	10	23	11	20	19
धमहापुर	13	10	7	12	11	7	7	10	4	9
दयापुर	10	5	7	12	8	13	13	10	6	13
नरैचा	12	16	4	12	6	4	6	6	6	4
तुलाचक	12	16	8	12	9	13	3	10	8	5
रामरायपुर	3	8	8	6	4	7	2	4	7	6
बेलौड़ी	33	27	19	34	30	20	17	28	25	19
आहोपुर	8	14	12	12	9	13	14	8	11	14
कुल योग	206	184	170	229	162	187	163	167	164	167
मध्यमान	15.84	13.38	13.07	17.61	12.46	14.38	12.53	12.84	12.61	12.84

कक्षा–I	15.8-13.3F-2.5	कक्षा 1 में 2.5 फीसदी की कमी दर्ज
कक्षा–II	13.0-17.60=+4.6	कक्षा 2 में 4 फीसदी से अधिक नामांकन
कक्षा–III	12.4-14.3=+1.9	कक्षा 3 में लगभग 2 फीसदी की बढ़त
कक्षा–IV	12.5-12.8=+0.3	कक्षा 4 में केवल 0.3 फीसदी की बढ़त
कक्षा–V	12.6-12.8=0.2	कक्षा 5 में केवल 0.2 फीसदी की बढ़त

अर्थात कक्षा 4 व 5 में नामांकन स्थिर

सुईचक संकुल के 13 परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में सत्र 2017 व 2018 में कक्षा 1–5 तक नामांकन की स्थिति

परिषदीय प्राथमिक विद्यालय	कक्षा–1		कक्षा–2		कक्षा–3		कक्षा–4		कक्षा–5	
सत्र	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018
परिषदीय प्रा0वि0										

गंजारी	28	18	29	29	20	33	24	25	24	31
कनेरी	25	12	12	26	14	13	7	14	6	7
जमीन बैरवन	13	5	9	9	10	7	4	7	6	7
गंगापुर–।	23	11	19	23	20	21	16	18	19	20
गंगापुर–।।	23	30	24	20	13	25	22	16	22	19
बसंतपट्टी	23	22	14	12	21	16	21	20	16	17
धमहापुर	13	15	7	11	12	10	5	11	7	6
दयापुर	5	7	9	9	7	11	11	10	12	11
नरैचा	20	16	21	23	4	21	10	4	5	4
तुलाचक	6	18	7	8	4	8	10	4	9	10
रामरायपुर	9	5	3	6	6	8	5	5	3	1
बेलौड़ी	31	10	17	32	25	16	23	17	15	23
आहोपुर	19	13	13	23	9	16	6	11	8	6
कुल योग	245	182	184	231	165	205	164	162	152	162
मध्यमान	18.84	14	14.15	17.15	12.69	15.76	12.61	12.46	11.69	12.46

कक्षा–I	18.8-14=-4.8	कक्षा 1 में लगभग 5 फीसदी की कमी
कक्षा–II	14.1-17.10\+3	कक्षा 2 में लगभग 3 फीसदी की बढ़त
कक्षा–III	12.6-15.7=+3.1	कक्षा 3में लगभग 3 फीसदी की बढ़त
कक्षा–IV	12.6-12.4=-0.2	कक्षा में .2 की बढ़त अर्थात स्थिर
कक्षा–V	11.6-12.4=+0.8	कक्षा 5 में केवल 0.8 फीसदी की बढ़त अर्थात लगभग 1 फीसदी की बढ़त

सत्र 2017 व 2018 में सुईचक संकुल के 13 विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन का विवरण

	कक्षा–1		कक्षा–2		कक्षा–3		कक्षा–4		कक्षा–5	
सत्र	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018	2017	2018
प्रा0वि0										
गंजारी	46	38	61	51	41	87	46	45	51	60
कनेरी	41	27	28	45	23	30	20	23	8	20
जमीन बैरवन	22	9	16	22	18	17	11	19	12	11
गंगापुर–।	43	15	34	49	29	36	29	30	36	31
गंगापुर–।।	44	61	48	45	41	50	45	43	47	40
बसंतपट्टी	52	44	25	35	31	26	44	31	36	36
धमहापुर	26	25	14	23	23	17	12	21	11	15

दयापुर	15	12	16	21	15	24	24	20	18	24
नरैचा	32	32	25	35	10	25	16	10	11	8
तुलाचक	18	34	15	18	13	21	13	14	17	15
रामरायपुर	12	8	11	11	10	10	7	9	10	7
बेलौड़ी	64	37	36	86	55	36	40	45	40	42
आहोपुर	27	27	25	35	18	29	20	19	19	20
कुल योग	442	369	354	476	327	408	327	329	316	329
मध्यमान	34	28.38	27.23	36.61	25.15	31.38	25.15	25.3	24.3	25.3

कक्षा–I	34-28.3=-3.4	कक्षा 1 में लगभग 3 फीसदी की कमी
कक्षा–II	27.2-36.6=+9.4	कक्षा 2 में स्थिति बेहतर 9 फीसदी की बढ़त
कक्षा–III	25.1-31.3=6.2	कक्षा 3 में 6 फीसदी की बढ़त
कक्षा–IV	25.1-25.3=+0.2	कक्षा 4 में केवल 0.2 फीसदी की बढ़त
कक्षा–V	24.3-25.3=+1	कक्षा 5 में 1 फीसदी की बढ़त

- नामांकन संतोषजनक (गंजारी, गंगापुर– I, II, बसंतपट्टी, बैलाड़ी
- नामांकन कक्षा 1–3 तक संतोषजनक कक्षा 4 व 5 में ड्रापआउट (कनेरी, नरैचा, आहोपुर, धमहापुर)
- नामांकन असंतोषजनक (दयापुर, रामरायपुर, जमीन बैरवन, तुलाचक)

सुईचक संकुल के समस्त 13 विद्यालयों में सत्र 17 व सत्र 18 में कक्षा 1–5 तक समस्त विद्याथ्रियों का नामांकन

कक्षा	माह 31 अगस्त 2017			माह सितम्बर 2018			तुलनात्मक अंतर + सकारात्मक– नकारात्मक
	छात्र	छात्रा	छात्र	छात्रा	छात्र	छत्रा	
1	245	206	451	182	174	356	-95
2	184	170	354	223	229	452	+98
3	165	162	327	205	187	392	+65
4	164	163	327	162	167	329	+02
5	152	164	316	162	167	329	+13
कुल योग	910	865	1775	934	924	1858	+83
मध्यामान	182	173	355	186.8	184.8	371.6	16.6

सत्र 2017 में छात्र व छात्रा नामांकन में अंतर–9 फीसदी (छात्र अधिक मध्यमान)

सत्र 2018 में छात्र व छात्रा नामांकन में अंतर–1 फीसदी (छात्र अधिक मध्यमान)

सत्र 2017 और सत्र 2018 में कुल छात्र संख्या में अन्तर +16.6 फीसदी

कक्षावार मध्यमान की स्थिति बालक वर्ग

	सत्र 2017	सत्र 2018	अंतर	नामांकन पर प्रभाव
कक्षा–I	18.8-	14	=4.8	लगभग 5 फीसदी कम
कक्षा–II	14.1-	17.1	=+3	लगभग 3 फीसदी बढ़त
कक्षा–III	14.6-	15.7	=+3.1	लगभग 3 फीसदी बढ़त
कक्षा–IV	12.6-	12.4	=-0.2	सूक्ष्म अंतर प्रभाव 1 फीसदी से बहुत अधिक
कक्षा–V	11.6-	12.4	=+0.8	1 फीसदी के लगभग 1 की बढ़त

कक्षावार मध्यमान की स्थिति बालिका वर्ग

	सत्र 2017	सत्र 2018	अंतर	नामांकन पर प्रभाव
कक्षा–I	15.8-	13.3	=-2.5	लगभग 2ण्5 फीसदी कमी
कक्षा–II	13.0-	17.6	=4.6	4.5 फीसदी से अधिक बढ़त
कक्षा–III	12.4-	14.3	=+1.9	लगभग 2 फीसदी की बढ़त
कक्षा–IV	12.5-	12.8	=+0.3	1 फीसदी से भी बहुत कम बढ़त
कक्षा–V	12.6-	12.8	=+0.2	1 फीसदी से भी बहुत कम बढ़त

कुल छात्र संख्या पर नामांकन का प्रभाव

	सत्र 2017	सत्र 2018	अंतर	प्रभाव
कक्षा–I	34-	28.3	=-3.4	लगभग 3.5 फीसदी की कमी
कक्षा–II	27.2-	36.6	=9.4	लगभग 10 फीसदी की बढ़त
कक्षा–III	25.1-	31.3	=+6.2	लगभग 6 फीसदी से अधिक बढ़त
कक्षा–IV	25.1-	25.3	=+0.2	बहुत कम सूक्ष्म वृद्धि प्रभाव
कक्षा–V	24.3-	25.3	=+1	1 फीसदी की सामान्य बढ़त

व्याख्या

- प्रस्तुत शोध में सुईचक के 13 विद्यालयों के कक्षा 1–5 तक छात्र–छात्राओं का 2 वर्षों सत्र 2017 और सत्र 2018 का नामांकन सम्बन्धी ऑकड़ो का विश्लेषण करने पर निम्नवत तथ्य प्रकाश में आए।

छात्रों के नामांकन से सम्बन्धित व्याख्या

- ये आकड़े बताते हैं कि सत्र 2017 की तुलना में सत्र 2018 में कक्षा एक में नामांकन कम है इसके अनेक कारण हो सकते हैं
- कक्षा दो, तीन और पाँच में सत्र 2018 में नामांकन बढ़ा है।
- कक्षा 4 में नामांकन सत्र 2018 में 0.2 के मामूली अंतर से कम रहा है।

छात्राओं के नामांकन से सम्बन्धित व्याख्या–

- सत्र 2017 की तुलना में सत्र 2018 में केवल कक्षा एक में नामांकन कम हुआ है, शेष सभी कक्षाओं में नामांकन अधिक रहा है।
- कक्षा एक में 2.5 फीसदी की कमी है, जिसके अनेक कारण हो सकते है।
- कक्षा दो में सबसे अधिक 4.5 फीसदी नामांकन रहा है।
- कक्षा तीन में 2 फीसदी नामांकन सत्र 2018 में अधिक रहा है।
- कक्षा चार और पाँच में स्थिरता है + 1 फीसदी से भी बहुत कम नामांकन बढ़ा है।

छात्रों की तुलना में छात्राओं के नामांकन की स्थिति

- सत्र 2017 से सत्र 2018 में छात्रों की तुलना में छात्राओं के ामांकन की स्थिति में बहुत अधिक भेद नही दिखाई देता।
- कुछ कक्षाओं मं अंतर अधिक है पर ज्यादातर कक्षाओं में लगभग समानता ही दृष्टिगोचर होती है।
- कक्षा एक में लगभग 2.5 फीसदी का अंतर दिखाई देता है छात्रों तथा छात्राओं दोनों का ही नामांकन कतिपय कारणों से कक्षा एक में कम है। छात्रों के नामांकन में 4.8 फीसदी तो छात्राओं के नामांकन में 2.8 फीसदी की कमी है।
- कक्षा 4 और 5 में लगभग सामान्य स्थिति है।
- सत्र 2017 में छात्रों की कक्षा 1–5 तक सम्मिलित रूप से मध्यमान 182 है और छात्रों का 173 है अर्थात्, 9 फीसदी छात्राओं का नामांकन छात्रों से कम है।
- सत्र 2018 में छात्रों का कुल नामांकन 186.8 अर्थात् 4.8 फीसदी बढ़ा। छात्राओं का नामांकन 184.8 अर्थातृ 11.8 फीसदी की बढ़त के साथ सत्र 2017 की तुलना में वह अंतर 2 फीसदी ही रह गया। अर्थात् सत्र 2017 की तुलना में सत्र 2018 में अधिक छात्रायें नामांकित हुई।

कुल छात्र संख्या पर प्रभाव

- कक्षा एक में 3.5 फीसदी नामांकन कम है।
- कक्षा दो लगभग 10 फीसदी नामांकन बढ़ा है।
- कक्षा तीन में लगभग 6 से अधिक फीसदी नामांकन हुआ हे।
- कक्षा चार में नामांकन बहुत कम अंतर से बढ़ा है। मात्र 0.2 फीसदी
- कक्षा पाँच में 1 फीसदी नामांकन अधिक है।
- कक्षा एक में नामांकन एक हुआ है परन्तु कक्षा 2 और तीन में नामांकन अधिक है। चार और पाँच में स्थिरता झलकती है।

शोध का परिणाम–

सुईचक संकुल के 13 विद्यालयों के सत्र 2017 और सत्र 2018 में कक्षा 1–5 तक छात्र–छात्राओं के नामांकन सम्बन्धी आंकड़े के विश्लेषण के बाद जो परिणाम प्राप्त हुए वे निम्नवत है–

- कतिपय कारणों से दोनों सत्रों में छात्रों तथा छात्राओं का कक्षा एक में नामांकन कम हुआ है।
- कक्षा दो और तीन में अधिक बच्चे नामांकित हुए हैं।

- कक्षा चार और पाँच में बहुत कम संख्या बढ़ी है।
- बालिकाओं की स्थिति बालकों की तुलना में अच्छी रही है।
- सत्र 2017 में 9 फीसदी कम लड़कियाँ नामांकित थी। सत्र 2018 में यह अंतर मात्र 2 फीसदी ही रह गया।
- अर्थात् कन्या शिक्षा के प्रति अभिभावकों में जागरुकता बढ़ी।
- छात्रों की प्रोफाइल से पता चला कि परिषदीय विद्यालयों मं नामांकित छात्र–छात्राओं में अनु0जाति/जनजाति बच्चे अधिक हैं।
- कन्याओं की शिक्षा के प्रति जागरुकता जगाने में विद्यालयों में महिला शिक्षिकाओं की नियुक्ति की एक कारण हो सकता है।
- बच्चों को शिक्षा की ओर उन्मुख करने में MDMS की भी सक्रिय भूमिका है क्योंकि कुछ बच्चे बेहद गरीब परिवारों से है जो भूखे पेट विद्यालय आते हैं।
- बच्चों का नामांकन बढ़ाने में शासन की ओर से संचालित अन्य योजनाओं व निःशुल्क वितरित विद्यालयीय सामगी की भूमिका से भी इंकार नहीं किया जा सकता।
- नामांकन बढ़ाने में शिक्षकों की भी सक्रिय भागीदारी झलकती है। अकेले MDMS उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि अभिभावकों में बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरुकता जगाना शिक्षकों का ही काम है।

निष्कर्ष–

देश को उच्चकोटि के वैज्ञानिक, अभियंता, चिकित्सक, वकील, शिक्षक, व्यवसायी बेहतर उच्च और उच्चतर शिक्षा से मिल सकते हैं किन्तु इसकी शुरुआत होती है सुदृढ़ प्राथमिक शिक्षा से। प्राथमिक स्तर पर साक्षरता का प्रतिशत अधिक हो। अधिक बच्चों का स्कूलों में नामांकन हो। अपव्यय तथा अवरोधन में कमी आए तो देश को आगे चलकर अच्छे शिक्षित युवा मिल सकते हैं। साक्षरता बढ़ाने, नामांकन, उपस्थिति, ठहराव को सुनिश्चित करने तथा अपव्यय व अवरोधन में सुधार करने, अभिभावकों को बच्चों को शिक्षा दिलाने तथा शिक्षा के महत्त्व के परिचित कराने जैसे उद्देश्यों को लेकर शुरू की गई मध्याह्नभोजन योजना अपने उद्देश्यों में काफी हद तक सफल रही है। स्कूलों में नामांकन बढ़ने, कन्याओं की शिक्षा के प्रति भी जागरुकता में मध्याह्न भोजन योजना की सार्थक भूमिका नजर आती है। हालांकि शासकीय विद्यालयें में अन्य बहुत सी योजनायें संचालित है सबका उद्देश्य अंततः बच्चों व अभिभावकों को शिक्षा के महत्त्व से परिचित कराना ही है। इन योजनाओं में मध्याह्न भोजन योजना एक उत्तम सकारात्मक शासकीय पहल के रूप में उभरकर सामने आई है और अपना प्रभाव छोड़ने में काफी हद तक सफल भी रही है। आवश्यकता इस बात की है कि यह योजना और बेहतर परिणाम दे सके इसलिए इसे सही रूप से कार्यान्वित किया जाए। कर्मचारी व अधिकारी अपने काम में निष्ठा और ईमानदारी बरतें। मध्याह्न भोजन योजना पर पूरी तरह से निर्भर न होकर इसे एक हस्तक्षेप चर के रूप में प्रयोग किया जाए तथा विद्यालय अपने शैक्षिक दायित्व को निभाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. w.w.w. upmdm.org
2. navbharattimes.indiatimes.com मंजरी चतुर्वेदी की रिपोर्ट
3. mdm.nic.in
4. middaymeal-MHRD-onhrd.gov.in-School Education
5. Essay-Middaymeal-A social Equity Program
   www.rosemaryinstitute.com

6. http://graduateway.com.
Topic- The mid day meal scheme free short esay and assignment
7. Mid day Meal Scheme- wikipedia.org
8. http://w.w.w.livemint.com.
Topic-Everything you wanted to know about MDM-livemign
9. https://w.w.w.akshayapatra.org
Topic-objectives of Mid day Meal Program
10. समरजीत 2001–02
11. अनीता एवं कुलवंत 2004
12. जोसेफिन एवं पी0एस0 राजू, 2008
13. अलवा साफोवोरा ओलानीयी 2010
14. दैनिक हिन्दुस्तान 2011
15. उमा एच0आर0 एवं के0मनोहर 2012
16. NCERT की रिपोर्ट 2005
17. कुमार श्रवण–2007
18. रवजका काटरजिना 2010
19. चन्दनिकेश 2011
20. पाल वी0 के एण्डमोन्डाल एन0 के 2012
21. स्वेन चन्द्रशेखर और डा0 दास सुष्मिता 2017
22. अफरीदी फरजाना व विदिशा बारोहा व रोहिणी सोमानाथन 2013
23. अब्दुल कय्यूम लोन 2017
24. भार्गव माधुरी अनुराग और अग्रवाल प्रदीप 2015
25. आराजी लाइन्स ब्लॉक के 6 विद्यालयों का सर्वेक्षण

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित दार्शनिक एवं शैक्षिक व्यवस्था की प्रासंगिकता

डॉ0 प्रमोद कुमार मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षाशास्त्र विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता का अमर सन्देश सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। भारतीय विचारधारा के निर्माण में श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा की महती भूमिका रही है। आज शिक्षा जगत की यह विडम्बना है कि शिक्षक छात्रों को नियंत्रित करने में, छात्रों को शिक्षण प्रदान करने में असमर्थ है, वह छात्रों से भयभीत है फलतः दया का पात्र है अन्ततः छात्र अनुशासनहीनता की समस्या का कोई निदान नहीं हैं गीतोक्त शिक्षक के लिए यह समस्या अर्थहीन हैं वस्तुतः वह इस तथ्य का साक्षात् प्रमाण है कि ''परमात्मा कुछ नहीं करता। अभिप्राय यह है कि वास्वत में करना उसे पड़ता है जो अशक्त और दुर्बल है और शक्तिशाली वह है जिसकी उपस्थिति का अर्थ होता है कक्षा में भय रहित शान्ति और अनुशासन का वातावरण, छात्रों में आनन्ददायी स्फूर्ति की विद्यमानता, शिक्षक के प्रति सहज किन्तु सशक्त आदर भाव का अविरल प्रवाह। वस्तुतः गीता के शिक्षक की गत्यात्मकता जिसमें मन, वचन और कर्म की आन्तरिकता और एकरूपता समाहित है निःसंदेह आधुनिक शिक्षक के लिये अनुकरणीय प्रमाण है तथा अनुशासनहीनता सम्बन्धी समस्या के समाधान की अचूक औषधि है। श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक व्यवस्था का अध्ययन करने के उपरान्त हमने यह पाया कि वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान मूल्यों में आई गिरावट व उसके क्षरण को रोकने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक व्यवस्था आज भी प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, दार्शनिक, शैक्षिक, प्रासंगिकता

भारतीय समाज में देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक परिस्थितयों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व प्राथमिक शिक्षा की प्रगति असन्तोषजनक प्रतीत होती है। पूर्व माध्यमिक शिक्षा अनेकोनेक समस्याओं में उलझ गयी है और इसके समाधान के बिना हम उसे प्रशिक्षुओं के सामाजिक, मानसिक, शरीरिक, सांवेगिक तथा नैतिक विकास का सशक्त साधन नहीं बना सकते।

हमारे भारतीय समाज में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा के रूप में प्रस्तुत की गयी, जो बहुत प्राचीन है। 1911 में ''इंडियन लेजिस्लेटिव काउन्सिल'' में ''श्री गोपाल कृष्ण गोखले'' द्वारा इसके बारे में विधेयक प्रस्तुत किया गया था। भारतीय संविधान के 54वें अनुच्छेद 1060 में 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क व अनविार्य शिक्षा की सुविधायें देने की बात कही गयी थी, लेकिन स्वतंत्रता के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी इन वचनबद्ध कार्य को पूरा नहीं किया गया। सत्यता यह है कि संसाधनों की कमी या युक्तिसंगत कार्य नीति की कमी की आड़ में सरकार इस लक्ष्य को निरन्तर आगे आगे बढ़ाती जा रही है। हम यह उम्मीद करें कि प्राथमिक शिक्षा से तुड़ी भारतीय सरकार की नयी नीति के सफल क्रियान्वयन से बच्चों के अंधकारमाय जीवन में शिक्षा की विकास ज्योति प्रज्जवलित होगी।

जब मानव जाति किसी समस्या से ग्रस्त होती है तो उसके निर्वारणार्थ शोधों की आवश्यकता होती है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा उसकी उपादेयता की प्रामाणिकता की समीक्षा करके समस्या का समाधान होता है। शिक्षा मानवजीवन का एक आवश्यक अंग है। अतः समय–समय पर समाज की आवश्यकता के अनुरूप उसमें भी परिवर्तन या परिवर्धन की अपेक्षा होती है। वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में नित्य

नये–नये प्रयोग हो रहे हैं। अनेकों उच्च स्तरीय विद्यालय तथा विश्वविद्यालय खुलते जा रहे हैं जिनमें विज्ञान, साहित्य, कला, मानविकी, अभियंत्रण, व्यापारशास्त्र तथा तकनीकी आदि विविधि विषयों का समावेश हुआ है परन्तु राष्ट्रोन्नयन हेतु जिस अपेक्षित परिणाम की हम आशा करते हैं वह नहीं मिल पा रहा है। शिक्षा अपने मूल्य उद्देश्य से भटकती जा रही है। हमारी भारतीय मनीषा विद्या को विनम्रता की जननी कहती है पर आज यह शिक्षा आचारहीनता के कारण चाल, फरेब, गुंडई, दुरभिसंधियों एवं विभिन्न दुराचरणों की जननी होकर रह गई है। फलतः देश में दिनानुदिन भ्रष्टाचार की जड़े दृढ़ से दृढ़तर होती जा रही हैं। छात्र जीवन से ही नैतिकता का क्षरण दृष्टिगोचर हो रहा है। अभिभावक अपने पाल्यों के लिए ऊँचे–ऊँचे सपने देखते है परन्तु उनकी शिक्षा हेतु आर्थिक संसाधन जुटाने मात्र में ही अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं। अधिक अंक युक्त अंक–पत्र तथा उच्च श्रेणीका प्रमाण पत्र प्राप्त कराने में धन, बल तथा बुद्धि का उपयोग करते हैं। परिणामतः शिक्षा में उत्तरोत्तर गुणवत्ता का अवनयन दिखाई देने लगा है। केवल छात्रों में ही नहीं अपितु आचार्यों में भी गम्भीर ज्ञान का अभाव देखा जा रहा है। गत वर्ष की टी0ई0टी0 परीक्षा के अनेकशः संशोधन इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

भारतीय संस्कृत में निहित मूल्यों की अवहेलना से ही हमें यह दिन देखने पड़ रहे हैं। हमें इस समय ऐसे छात्रों की आवश्यकता है जो अपने मन की चंचलता को नियंत्रित करके अपनी उद्दाम ऊर्जा को अविरत अध्ययन, चिन्तन एवं मनन में लगाये। इसके लिए उन्हें तपस्वी जैसा जीवन जीना होगा। भोगवादी प्रवृत्ति से दूर रहना होगा क्योंकि ज्ञान प्राप्ति हेतु श्रीमद्भगवद्गीता में उपदिष्ट श्रद्धा, तत्परता वं संयतेन्द्रियता ही उपाय है। इन मूल्यों के अभाव में मिला अधकचरा ज्ञान दुराचरणोन्मुख ही होगा।

आज छात्रों में परावलम्बन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। उनमें आत्म– विश्वास विलुप्त प्राय है। सांसारिक भोगों के प्रति आसक्ति अधिक होने के कारण अध्ययन में निष्ठा का अभाव है। परिणामस्वरूप जीवन में एक हताशा, कुंठा तथा उद्विग्नता परिलक्षित होती है जिससे अनुशासनहीनता जन्म लेती है। इन समस्याओं का निराकरण तभी संभव है जब छात्रों में नैतिक जीवन जीने का आग्रह, तथा अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा हो। इसके लिए हमें अपनी शिक्षा पद्धति को मूल्यपरक बनाना होगा। हमारे धार्मिक ग्रन्थ विशेषकर मनुस्मृति में छात्रों एवं आचार्यों की जीवन–पद्धति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। अतएव हमें मनुस्मृति की प्रासंगिकता का पुनरावलोकन करना पड़ेगा।

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य का एकमात्र उद्देश्य भौतिक संसाधनों का संग्रह करना ही रह गया है, किन्तु भौतिक पदार्थों से आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है। कहा भी गया है– ''मनसि च परितुष्टे को अर्थवान् को दरिद्रः।'' इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे देश में आध्यात्मिक विज्ञान और मनोविज्ञान पर बहुत बल दिया गया है जिसका उत्कृष्ट रूप हमें श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। आचार्य रजनीश के शब्दों में ''गीता विश्व में मनोविज्ञान का आदि ग्रन्थ है और उसके उपदेष्टा श्रीकृष्ण आदि मनोवैज्ञानिक हैं।'' श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का जैसा व्यावहारिक और सहज समाधान प्रस्तुत किया गया है वैसा विश्व के किसी भी अन्य शास्त्र में दुर्लभ है। श्रीमद्भगवद्गीता के बहुआयामी कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न व्याख्याओं का विभिन्न दृष्टिकोणों से जो प्रणयन हुआ उनमें से अधिकांश व्याख्याएँ किसी एक सिद्धान्त की श्रेष्ठता सिद्ध करने के दृष्टिकोण से लिखी गयी हैं। यद्यपि ये व्याख्याएँ जिस दृष्टिकोण से लिखी गयी उस रूप में वे सही हैं तथापि पक्ष विशेष पर बल देने से व्याख्यान्तर्गत अन्य पक्ष गौण हो गये हैं। यथा– शंकराचार्य ने ज्ञान पर तथा रामानुज ने भक्ति पर विशेष बल दिया है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अन्य भाष्यकारों एवं टीकाकारों ने भी अपनी–अपनी दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्याएँ की है। वस्तुतः किसी भी शास्त्र की मीमांसा तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में की जाती है और श्रीमद्भगवद्गीता जैसे शास्त्र के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि श्रीमद्भगवद्गीता में केवल यही सिद्धान्त है। ऐसा कहना सूर्य को दिया दिखाने जैसा ही है।

''सर्व तु सम्वेक्ष्येदं निखिलं ज्ञान चक्षुषा।

श्रुतिप्रामाण्यतों विद्वान स्वधर्मों निविशेत वै।।''

भारत सदैव से ही धर्मप्राण देश रहा है। जहाँ सभ्यता एवं संस्कृति प्रस्फुटित हुई है। हमारे

सनातन धर्म इस सभ्यता व संस्कृति के वाहक रहें है। हमारी समस्त मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शों एवं मूल्यों का आधार यही संस्कृति है। मूल्य जो हमारी सभ्यता–संस्कृति के वाहक थे, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के साथ उत्पन्न हुई भौतिकता एवं आधुनिकता ने उसे प्रभावित करने का प्रयास किया और आज जनमानस इनसे इतना आक्रान्त हो चुका है कि उसे प्राचीन आदर्श संस्कार, मूल्य आदि दकियानूसी लगने लगे हैं।

आधुनिक भारत में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वर्तमान पीढ़ी के मूल्यों का ह्रास दृष्टव्य होता है। अनुशासनहीनता, व्यापक भ्रष्टाचार एवं क्षीण नैतिकता मूल्यों के ह्रास की साक्षियाँ हैं। शैक्षिक एवं नैतिक मूल्यों के कमजोर पड़ जाने से आज जनमानस अपने आप से ही असहाय महसूस कर रही है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली को मूल्योन्मुख करें। जहाँ तक समाज के विश्वासों, आदर्शों, सिद्धान्तों और व्यावहारिक मानदण्डों की बात है, इसकी चर्चा परिवारों में भी होती है और समुदायों में भी और बच्चे भी इनसे परिचित हो जाते हैं। परन्तु विडम्बना तो यह है कि ये सब केवल सिद्धान्तों तक ही सीमित रहते हैं, हमारे व्यवहार को प्रभावित नहीं करते हैं। ऐसे परिवेश में प्राचीन आदर्शों एवं मूल्यों को पुनः स्थापित करने में श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक एवं नैतिक विचारों को जनमानस तक पहुँचाकर मूल्यों के क्षरण को रोका जा सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता मात्र एक पुस्तक ही नहीं अपितु भारतीय मनीषा का सार है। जिसमें कर्मयोग जैसा मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान, भक्ति व कर्म की त्रिवेणी है। कर्मयोग की अवधारणा जहाँ निष्काम कर्म की शिक्षा देती है वहीं असफलता मिलने पर मानसिक कुण्ठा से भी मुक्त रखती है। श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु उसका कर्मयोग का सिद्धान्त है। कर्मयोग का अर्थ सामाजिक कर्त्तव्य करने के प्रति निष्ठा है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार मनुष्य जब कर्मों में और उसके फल में आसक्ति का त्याग कर देता है, तब उसमें राग–द्वेष और उनसे होने वाले हर्ष–शोकादि का अभाव हो जाता है ऐसा होने से ही वह सिद्धि और असिद्धि में सम रह सकता है। इसलिये भगवान् ने यहाँ आसक्ति का त्याग करके और सिद्धि–असिद्धि में सम होकर कर्म करने के लिए कहा है। मनुष्य को प्रत्येक क्रिया करते समय किसी भी पदार्थ में, कर्म में या उसके फल में अथवा किसी भी प्राणी में विषम भाव न रखकर नित्य समभाव में स्थित रहना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति के कर्त्तव्य कर्म पालन में दत्तचित्त् रहने और किसी भी प्रकार के कर्मफल की इच्छा न रखने और निष्काम कर्म को अपने जीवन का आदर्श बनाने का उपदेश देती है। निष्काम कर्म योग को अनासक्ति योग भी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता शैक्षिक मूल्यों व नैतिक विचारों का अमूल्य स्रोत है। यह शिक्षा के साथ–साथ आध्यात्मिक पक्ष पर भी ध्यान देती है। यह सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता के महात्म्य का वाणी द्वारा वर्णन करने के लिए किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें वर्णित शैक्षिक व नैतिक विचार समस्त उत्कृष्टताओं से युक्त है।

श्रीमद्भगवद्गीता का शिक्षा दर्शन किसी काल विशेष के लिए नही था, अपितु वह सार्वकालिक है जब–जब समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न होती है तभी–तभी समाज में उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में अवतार धारण करना पड़ता है। सामाजिक–परिवर्तन सतत् प्रक्रिया है और उसे परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिए शिक्षक को हमेशा अवतार की भूमिका निभानी पड़ती है। सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न कुण्ठा को दूर करने के लिए शिक्षक को प्रयास करना पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न कुसमायोजन से निबटने के लिए शिक्षा को अध्यवसाय करना पड़ता है। इसी को कर्म कहा जाता है आज के युग में कर्म की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। मौलिक सृजन वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक क्रान्ति, अधिक उत्पादन सभी कुछ कर्माश्रित है, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीताकार मनुष्य को एक तरफ से भी उसकी रक्षा करता है। सामाजिक प्रगति के लिए यदि मनुष्य कर्म करता है और इस प्रकार कम करते हुए सफलता नहीं मिलती, तो इसके लिए भी वह उत्तरदायी

नहीं है मनुष्य को तो कर्म का अधिकार है। शुभाशुभ कर्मों का फल उसे भगवान पर छोड़ देना चाहिए। सफलता या प्रसन्नता को प्रभु पर छोड़ देना चाहिए। यही अपेक्षा शिक्षक से भी की गयी है कि उसे अपना कार्य उत्कृष्ट रूप से पूरे परिश्रम के साथ करना चाहिए और उसके परिश्रम काफल भगवान पर छोड़ देना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता को कर्मनिष्ठत शिक्षा के कर्मफल में उस पवित्रता को मिश्रित करती है, इसमें कर्म करते हुए भी व्यक्ति में आसक्ति की भावना नहीं होती।

अतः हम कह सकते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता के विचार सदैव ही समाज के अनुकूल रहे हैं। ऐसे समय जब सभ्यता एवं संस्कृति के अस्तित्व का खतरा बना हुआ है और मानव संवेदनहीनता का शिकार हो चुका है। तब एक ही मार्ग बचता है कि हम श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिक व्यवस्था को अपनाकर मूल्यों को पुनः स्थापित करें। जो आज के युग की प्रासंगिकता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करने के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग पर सर्वाधिक बल देती हैं
- श्रीमद्भगवद्गीता सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।
- श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर बल देती है।
- श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य के आध्यात्मिक व भौतिक दोनों पक्षों को स्वीकार करती है।
- गीता निष्काम कर्म की प्रेरणा देती है।
- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही सिखाना नहीं है, अपितु अन्तरात्मा की आवाज को सुनने, समझने एवं उनका अनुसरण करने की योग्यता प्रदान कराना है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यवहारिक व आध्यात्मिक विषयों का समावेश किया गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में श्रव्य व दृश्य दोनों पद्धतियों से शिक्षण विधि को स्वीकार किया गया है छात्र की योग्यता एवं क्षमता के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए।
- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार शिक्षक का यह दायित्व है कि वह अपने शिष्यों में यह आत्म विश्वास उत्पन्न करें एवं उनका कर्त्तव्य है कि वह अपने शिष्यों को चिन्ताओं से मुक्त करके सफलता का विश्वास दिलाए।
- शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए छात्र में संयम तथा तप होना चाहिए, उसमें शिक्षक के लिए श्रद्धा होनी चाहिए तथा विद्यार्थी से यह अपेक्षा करती है कि विद्यार्थी सर्वतोभावेन शिक्षक के प्रति समर्पण भाव रखें।
- श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्तित्व में शिक्षक के व्यक्तित्व को आदर्श रूप देने वाले विशेषताओं का विशिष्ट स्थान होता है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में छात्रों में इन विशिष्ट विशेषताओं के विकास के लिये अध्यापक को अधिक से अधिक योगदान देना बताया गया है।

- श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यापक को संयमी एवं संवेग से परिपक्व होना नितान्त आवश्यक बताया गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में छात्रहित में कार्य करने, रूचिपूर्ण ढ़ंग से शिक्षा पर कार्य करने तथा समय–समय पर छात्रों को अभिप्रेरित करने से शिक्षण में कुशलता का विकास किया जाना बताया गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में छात्रों में विविध वांछित कौशलों के विकास के लिये अध्यापक ही पूर्ण उत्तरदायी होना बताया गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षकों का छात्रों के प्रति नम्र व्यवहार, आपसी समन्वय होना बताया गया है।
- श्रीमद्भगवद्गीता में छात्रों और अध्यापकों के मध्य मधुर समबन्धों का स्थापित करना अति आवश्यक बताया गया है।
- अतः आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों से पुत्रवत् व्यवहार करे और छात्रों को चाहिए कि वे शिक्षक से पितातुल्य अर्थात गुरू रूप में ही व्यवहार करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. **मंगल एवं शर्मा (2014),. श्रीमद्भगवद्गीता** का शिक्षा दर्शन, स्कालर्री रिचर्स जर्नल फॉर ह्युमिनिट्ज साइंस एण्ड इंग्लिस लैग्वेज, वॉ0 1/4, पृ0 1009–1014
2. **अखण्डानन्द एस**., ''अष्टावक्र गीता', सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, मुम्बई, 2011, अध्याय–1, श्लोक–20, पृ. सं. 5।
3. **गोस्वामी एवं अन्य (2017),** अष्टावक्र श्रीमद्भगवद्गीता में निहित दार्शनिक चिन्तन, मेमोरियल शिक्षा शोध संस्थान, एनल्स ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड ह्युमिनिट्ज, वॉ0 2, इश्शू–1, पृ0 10–18
4. **मिश्रा, वागीश (2018),.**श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित स्वधर्म की परिकल्पना, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ सांइटिफिक रिसर्च इन साइंस, इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नोलाजी, आई.जे.एस.आर.एस.ई.टी., वॉ0 4, इश्शू–6, पृ0 142–147
5. **त्रिपाठी, भानु प्रकाश (2017),** श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 2, इश्शू–4, पृ0 803–404
6. **पटेल, मंजू (2017),.** श्रीमद्भगवद्गीता का नैतिक पक्ष, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन इकोनॉमिक्स सोशल साइंस, वॉ0 7, इश्शू–11, पृ0 793–797
7. **परिहार, शताब्दी सिंह (2018),.** श्रीमद्भागवत महापुराणः एक परिचय, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्च, 4(3), पृ0 78–81
8. **जाटव, पिताम्बर दास (2016),.** समाज दर्शन की पद्धतियाँ, रिमॉक्र एन एनालाइेजशन, वॉ0 1, इश्शू–9, पृ0 133–140
9. **वर्मा एवं वर्मा (2016),** भारतीय शिक्षा दर्शन में समाज में व्याप्त शैक्षिक समस्याओं, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च वॉ0 2, इश्शू–4, पृ0 76–79

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 अरविन्द कुमार मौर्य
एसोसिएट प्रोफेसर (बी0एड0)
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नागरिक पी0जी0 कालेज,
जंघई, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
विजयेन्द्र कुमार गुप्त
एम0एस–सी0,, एम0एड्0,
नेट (शिक्षाशास्त्र)

सारांश

समस्या कथन प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान की सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद में स्थित सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद के अन्तर्गत शहरी एवं ग्रामीण सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 400 शिक्षकों का चयन यादृच्छिकी विधि से किया गया है। शिक्षक–प्रभावशीलता को मापने हेतु प्रमोद कुमार एवं डी0एन0 मूथा द्वारा निर्मित– ''शिक्षक प्रभावशीलता मापनी'' एवं डॉ0 प्रमोद कुमार और डी0एन0 मुथा द्वारा ''कार्य संतुष्टि मापनी'' का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में सम्पूर्ण शिक्षकों, पुरुष एवं महिला शिक्षकों के अलग–अलग अध्ययन करने के उपरान्त पाया गया कि उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है अर्थात् प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर प्रभाव है।

की–वर्ड : प्राथमिक विद्यालय, नवनियुक्त शिक्षक, शिक्षण प्रभावशीलता, कार्य सन्तुष्टि, प्रभाव, एनोवा, टी–अनुपात,

प्रस्तावना–

शिक्षा व्यक्ति को स्वयं से एवं समाज से जोड़ने का कार्य करती है। प्रत्येक समाज के अपने मूल्य, व्यवस्थाएं एवं ज्ञान होता है। इनके संचय, प्रसार एवं विकास हेतु समाज ने विद्यालयों की स्थापना की। शिक्षण की प्रक्रिया त्रिध्रुवी कही जाती है– शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम। शिक्षक, समाज की प्राथमिकताओं पर आधारित पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षार्थी का मार्गदर्शन करता है। विद्यालयी शिक्षण की इस औपचारिक व्यवस्था में शिक्षक का स्थान अति महत्वपूर्ण दृष्टिगोचर होता है। शिक्षक का कार्य सदैव केंद्रीय भूमिकाओं में रहा है इसीलिए इस पर ध्यान भी अधिक जाता है। शिक्षा से जुड़े हुए शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा व्यवस्था की कमियों की पहचान करना व उनके समाधान प्रस्तुत करना है।

शिक्षा बीज और जड़ है, सभ्यता फूल और फल हैं। यदि कृषक विवेकपूर्ण है और अच्छे बीज बोता है तो समुदाय उत्तम दाने प्राप्त करता है और सम्पन्न रहता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है और झाड़–झंकार को बोता है तो ज़हरीले बेर मिलते है और बीमारी और मृत्यु फसल होती है। हमारे कृषक शिक्षक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है कि कोई भी समाज अपने शिक्षकों के स्तर से अधिक उन्नत नहीं हो सकता। अतः समाज एवं सरकार को अपने शिक्षकों को संरचनात्मक व

सृजनात्मक चिंतन की दिशा में प्रोत्साहित करना चाहिये। शिक्षकों को समाज की आवश्यकताओं व योग्यताओं के अनुरूप नवाचार, संवाद की नवीन पद्धतियों की खोज आदि की स्वतंत्रता मिलनी चाहिये।

मुदालियर (1952) "हम इस बात से पूर्ण सहमत है कि संभाव्य शैक्षिक सुधारों में शिक्षक उसके गुण, व्यक्तित्व, योग्यताएं, व्यावसायिक प्रशिक्षण, उसका समाज व विद्यालय में स्थान अति महत्व रखते हैं। विद्यालय की प्रतिष्ठा व समुदाय पर प्रभाव शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर है। अतः उनके स्तर उन्नयन से जुड़ी समस्याओं पर प्राथमिकता से ध्यान दिया जाना चाहिए।"

शिक्षण प्रक्रिया को शिक्षकों की प्रभावशीलता के संदर्भ में समझा जा सकता है। शिक्षक की प्रभावशीलता से ज्ञात होता है कि वह कितना उच्च या मध्यम अथवा निम्न प्रभावपूर्ण है। जिसका मूल्यांकन शिक्षकों की विभिन्न विशेषताओं, गुणों, अध्यापन कार्य, योजना तैयारी, कक्षा प्रबंधन, विषय विशेषज्ञता, पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षण परिणामों के आधार पर किया जाता है।

वास्तव में योग्य, कुशल एवं प्रभावपूर्ण शिक्षक ही वह धुरी है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया घूमती है। शिक्षक के सामान्य एवं कक्षागत क्रियाकलाप शिक्षक व्यवहार की ओर संकेत करते हैं और इन क्रियाकलापों पर शिक्षक की प्रभावशीलता आधारित होती है। इस सफलता के सन्दर्भ में शिक्षक के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रतिक्रियाएं प्रदर्शित की जाती हैं। ये प्रतिक्रियाएं शिक्षक की प्रभावशीलता को दर्शाती हैं। शिक्षक की प्रभावशीलता में उसकी शिक्षा तथा सामान्य व तात्कालीन ज्ञान, प्रेरित करने की योग्यता, शिक्षण कौशल, व्यवसाय से सम्बन्धित ज्ञान, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का ज्ञान, कक्षा–कक्ष प्रबन्ध की योग्यता, समाज एवं विद्यालय के अन्य सदस्यों के साथ आपसी मेल–मिलाप का स्वभाव, संवेगात्मक रूप से स्थिर, सलाह, निर्देशन की योग्यता, नैतिक रूप से कुशल तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व को समाहित किया जाता है। इन सब क्रियाओं के प्रति विद्यालय के प्राचार्य, साथी समूह, स्वयं शिक्षक एवं विद्यार्थियों की प्रति क्रियाओं में आमुक शिक्षक की प्रभावशीलता के रूप में प्रेरित किया जाता है।

शिक्षण प्रभावोत्पादकता के द्वारा प्रभावपूर्ण आदर्श शिक्षकों व अप्रभावी शिक्षकों का मूल्यांकन किया जाता है। **लाउरा और बेल (2008)** के अनुसार शिक्षकों की प्रभावशीलता में कर्तव्यबोध, कार्य के प्रति लगन, ईमानदारी, योग्यता, व्यवहार, रूचि, आकर्षणत्व, गुण, कक्षा शिक्षण प्रदर्शन व बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि आदि शामिल रहती हैं। जो शिक्षक योग्यतानुसार व परिश्रम द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन करता है व योजना के साथ कक्षा शिक्षण करते हुए कक्षा प्रबंधन रखते हैं उनमें विषय योग्यता के साथ–साथ आदर्श व प्रभावी शिक्षक की सभी विशेषतायें में विद्यमान होती हैं।

एक अच्छे अध्यापक में सिर्फ विषय का ज्ञान और कुशलता का होना ही आवश्यक नहीं है अपितु इस दिशा में उसका जुड़ाव भी अति महत्वपूर्ण है। शिक्षकों का दैनिक कार्य चुनौती पूर्ण व जटिल है अतः बिना लगाव के व्यवसाय में रहना अति दुष्कर कार्य है। शिक्षक प्रतिबद्धता पर गहन दृष्टि डालकर देखने से ज्ञात होता है कि यह शिक्षण की गुणवत्ता, शिक्षक में अनुकूलन योग्यता, शिक्षक की उपस्थिति, शिक्षकों का ठहराव व विद्यालय संगठन का स्वास्थ्य, छात्रों की अभिवृत्ति और अधिगम से निकट रूप से जुड़ा हुआ है।

क्रासवेल (2006) के अनुसार एक प्रतिबद्ध अध्यापक वह होता है जो अपने कार्य के प्रति पूर्ण समर्पित हो, शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति वचनबद्ध हो, शिक्षार्थी के प्रति गहरा लगाव रखता हो, उच्च स्तर की व्यवसायगत नैतिकता रखता हो।

वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने के कारण तथा अन्य कोई विकल्प न मिलने पर विवशतावश शिक्षक बन जाने पर उनके सामने कई प्रकार की समस्या उत्पन्न हो रही है जहाँ उनकी प्रभावशीलता एवं प्रतिबद्धता प्रभावित होती है तथा उनकी योग्यतानुसार उचित पद, सेवा सुरक्षा, वेतन, कार्य दशाएँ, प्राप्त साधन–सुविधाएँ, वातावरण, संगठन का अभाव, सहयोगियों आदि के अभाव में उनके कुण्ठा, तनाव, के साथ–साथ उनकी कार्य सन्तुष्टि भी प्रभावित होती है।

अतः वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए अध्ययनकर्त्ता द्वारा प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्ति शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन का चुनाव किया है जिससे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कारकों को जाना जा सकें।

समस्या कथन–

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
2. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान की सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद में स्थित सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद के अन्तर्गत शहरी एवं ग्रामीण सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 400 शिक्षकों का चयन यादृच्छिकी विधि से किया गया है। शिक्षक–प्रभावशीलता को मापने हेतु प्रमोद कुमार एवं डी0एन0 मूथा द्वारा निर्मित– **''शिक्षक प्रभावशीलता मापनी''** एवं डॉ0 प्रमोद कुमार और डी0एन0 मुथा द्वारा **''कार्य संतुष्टि मापनी''** का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु एनोवा एवं टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

उद्देश्य–1 प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{01} प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी सं0 1

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	5230.80	2615.40	56.46*	.01(2,397)=4.66
Within Groups	397	18390.90	46.32		
Total	**399**	**23621.70**	**2661.72**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 56.46 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 397) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.66 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना (H_{01}) अस्वीकृत। परिणामतः उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है।

सारणी सं0 1.1

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	101	49.33	0.83	5.25	6.30*
	Moderate	197	44.08			
2	High	101	49.33	0.96	10.15	10.62*
	Low	102	39.18			
3	Moderate	197	44.08	0.83	4.90	5.90*
	Low	102	39.18			

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का मध्यमान क्रमशः 49.33, 44.08 एवं 39.18 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 6.30, 10.62 एवं 5.90 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च शिक्षण प्रभावशीलता वाले शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले शिक्षकों की तुलना में अधिक है जबकि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में भी अन्तर है। परिणामतः प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर सार्थक प्रभाव है।

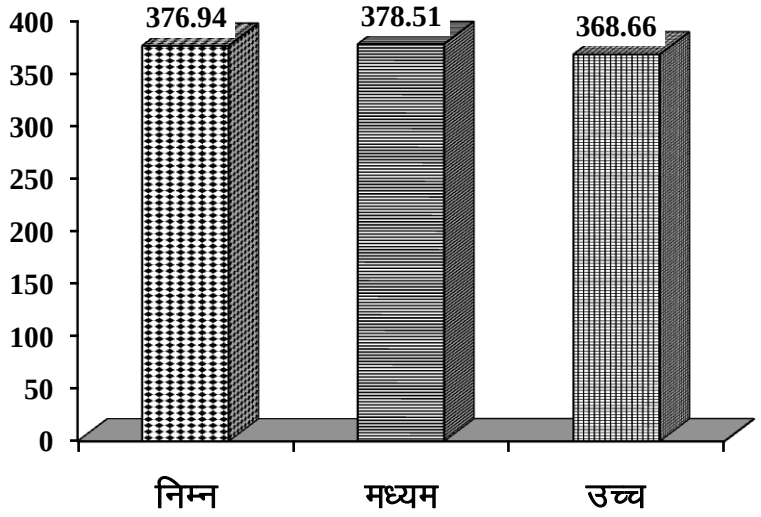

उद्देश्य–2 प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{02} प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी सं0 2

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	2153.53	1076.77	22.50*	.01(2,197)=4.71
Within Groups	197	9426.69	47.85		
Total	**199**	**11580.22**	**1124.62**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 22.50 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना (H_{02}) अस्वीकृत। परिणामतः उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है।

सारणी सं0 2.1

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	51	49.43	1.19	4.94	4.14*
	Moderate	98	44.49			
2	High	51	49.43	1.37	9.18	6.70*
	Low	51	40.25			
3	Moderate	98	44.49	1.19	4.23	3.55*
	Low	51	40.25			

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का मध्यमान क्रमशः 49.43, 44.49 एवं 40.25 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 4.14, 6. 70 एवं 3.55 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च शिक्षण प्रभावशीलता वाले पुरुष शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले पुरुष शिक्षकों की तुलना में अधिक है जबकि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले पुरुष शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में भी अन्तर है। परिणामतः प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर सार्थक प्रभाव है।

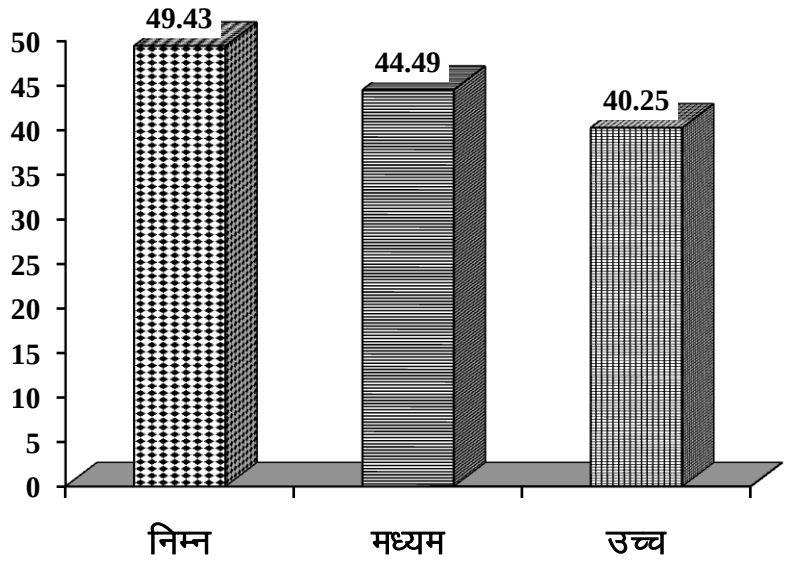

उद्देश्य–3 प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन–

H_{03} प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी सं0 3

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में अन्तर का एफ–मान

Source	df	SS	MS	F	Table Value
Between Groups	2	2895.66	1447.83	31.56*	.01(2,197)=4.71
Within Groups	197	9038.69	45.88		
Total	**199**	**11934.35**	**1493.71**		

0.01 पर सार्थक

एफ–अनुपात = 31.56 जो कि स्वतंत्रांश = (2, 197) पर एफ–अनुपात के क्रान्तिक मान 4.71 से अधिक है, 0.01 पर सार्थक तथा शून्य परिकल्पना (H_{01}) अस्वीकृत। परिणामतः उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है।

सारणी सं0 3.1

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि के मध्यमानों के बीच टी–अनुपात में अन्तर

S.No.	Level	N	M	S_D	D	t-value
1	High	51	48.51	1.17	4.41	3.76*
	Moderate	97	44.10			
2	High	51	48.51	1.33	10.53	7.89*
	Low	52	37.98			
3	Moderate	97	44.10	1.16	6.12	5.26*
	Low	52	37.98			

उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का मध्यमान क्रमशः 48.51, 44.10 एवं 37.98 तथा तीनों के मध्य टी–मान क्रमशः 3.76, 7.89 एवं 5.26 है। सार्थक युग्म तुलना में उच्च शिक्षण प्रभावशीलता वाले महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक है जबकि मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले महिला शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में भी अन्तर है। परिणामतः प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर सार्थक प्रभाव है।

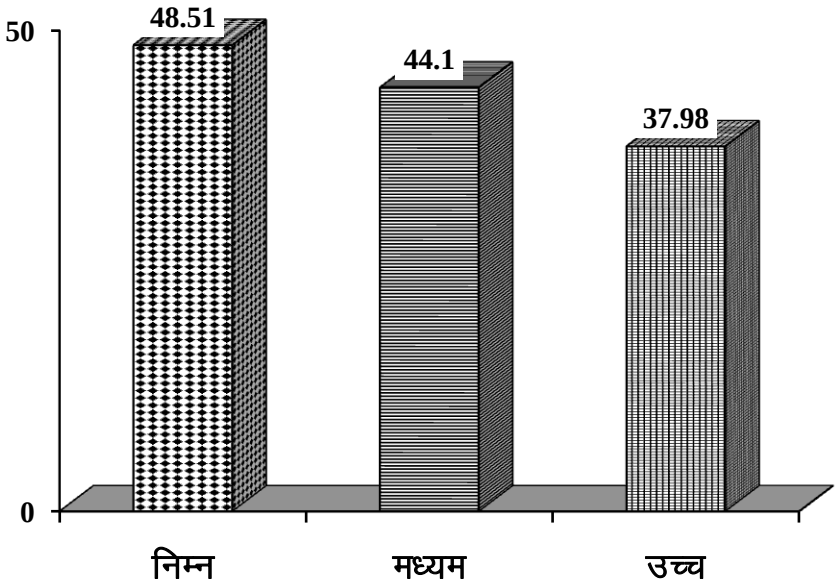

निष्कर्ष–

अध्ययनोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है अर्थात् प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर प्रभाव है।
- उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है अर्थात् प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त पुरुष शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर प्रभाव है।
- उच्च, मध्यम एवं निम्न शिक्षण प्रभावशीलता वाले प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि में भिन्नता है अर्थात् प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त महिला शिक्षकों के शिक्षण प्रभावशीलता का उनके कार्य सन्तुष्टि पर प्रभाव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गौड़, रविकान्त (2020). प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.एल.एड. चार वर्षीय और डी.एल.एड. द्विवर्षीय पाठ्यक्रम उत्तीर्ण शिक्षकों की शिक्षण दक्षता और शिक्षण प्रभावशीलता का शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट*, वॉ0 8, इश्शु–12, पृ0 3299–3306
- गौड़, शोभा एवं विश्वकर्मा, ऋषिकेष (2016). गोरखपुर मण्डल के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की कार्य संतुष्टि, प्रभावशीलता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, *जर्नल ऑफ सोशियो एजुकेशनल एण्ड कल्चरल रिसर्च*, वॉ0 2, नं0 5, पृ0 163–180
- दत्त, विष्णु एवं भारद्वाज, ऋतु (2015). मुरादाबाद जनपद के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बी0टी0सी0 शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि, शिक्षक प्रभावशीलता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड साइंस रिसर्च*, वॉ0 2, इश्शू–5, पृ0 6–12

- बाजवा (2003). दक्षता आधारित शिक्षण प्रशिक्षण व्यूह रचना की प्रभावशीलता का अध्ययन, पी–एच0डी0, शिक्षा दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय।
- शर्मा, ब्रह्मदत्त (2017). प्रारम्भिक शिक्षा के भावी शिक्षकों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति, वचनबद्धता तथा जीवन सन्तुष्टि का अध्ययन, *इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ कार्मस, आर्ट्स एण्ड साइंस*, वॉ0 8, इश्शू–12, पृ0 271–288
- शर्मा, राजीव कुमार (2021). अशासकीय माध्यमिक विद्यालय में कार्यरत अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य तथा अकादमिक तनाव का उनके शिक्षण प्रभावशीलता पर प्रभाव का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफॅ एजुकेशन, मॉर्डन मैनेजमेण्ट, एप्लाइड साइंस एण्ड सोशल साइंस*, वॉ0 3, नं0 01, पृ0 253–256
- सिंह, धर्मेन्द्र (2018). प्रारम्भिक स्तर पर अध्यापकों की व्यावसायिक प्रभावशीलता का अध्ययन, *चेतना : इण्टरनेशनल एजुकेशनल जर्नल*, ईयर–3, वॉ0 1, पृ0 243–248

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

हिन्दी कहानी की विरासत

प्रो0 अशोक सिंह

कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

(क) प्रस्थान

मानव-सभ्यता के विकास-क्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ऐसे रहे जिन्होंने मानव-सभ्यता के विकास की दुनिया को ही परिवर्तित कर दिया। आग व पहिए के अविष्कार के बाद भाषा का अविष्कार निःसंदेह एक क्रान्तिकारी घटना रही होगी। इससे पूर्व मानव अपनी अनुभूतियों व विचारों को या तो संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता होगा अथवा चित्र बनाकर। भाषा के रूप में उसे एक ऐसा सशक्त माध्यम उपलब्ध हो गया जिससे न केवल वह अपने सुख-दुःख, आशा-निराशा को एक-दूसरे से बाँटने में सक्षम हुआ; अपितु अपनी जरूरतों को पूरा करना भी उसके लिए अब अपेक्षाकृत सरल हो गया। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु समाज की कल्पना बिना भाषा के अधूरी थी। इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति के साथ ही समाज अस्तित्व सामने आया।

आरम्भ के लोग एक-दूसरे के सामने बैठकर कहानियाँ सुनते थे। लिपि चिह्नों के विकास ने मानव को अपनी अनुभूतियों को एक लम्बे समय तक सहेज कर रखने का मार्गप्रशस्त किया। आगे चलकर कहानियाँ लिखी व पढ़ी जाने लगीं। ''इतना निश्चित है कि भारत में कहानी की परम्परा पाश्चात्य प्रभाव से हरगिज विकसित नहीं हुई क्योंकि लोक और शास्त्र, दोनों में कहानी की एक समृद्ध परम्परा रही है। ....संक्षेप में कहें तो भारतवर्ष में कथासाहित्य का विशाल भण्डार रहा है। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धार्मिक वाङ्मय में उपदेशपरक कथाओं की परम्परा तो है ही, स्वतन्त्र रूप से भी नीतिकथा और लोककथा की परम्परा चली आ रही है। नीति कथा के पात्र मानव, मानवेतर पशु-पक्षी रहे हैं। नीतिकथाएँ तो भारत की सीमा लाँघकर बाहर तक फैल चुकी हैं। 'पंचतन्त्र' ऐसी ही नीति कथाओं का आगार है। इसी परम्परा में हितोपदेश भी आता है। इन कथाओं में दोनों पक्षों पर बल है- कुतूहलतर्यक घटना-शृंखला की भी और वर्णनों द्वारा मार्मिकता लाने की भी।''

सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही लिखित कहानी का उद्भव हुआ, ऐसी मान्यता अधिकांश विद्वानों की है क्योंकि ऋग्वेद में कहानी के बीज मिलते हैं और ऋग्वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। लिपिबद्ध कहानियों की यह परम्परा ऋग्वेद से आरम्भ होकर आज तक चली आ रही है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पहले कहानी की एक लम्बी परम्परा भारतवर्ष में मिलती है। यह परम्परा वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य से होती हुई हिन्दी साहित्य तक चली आई है। ऋग्वेद के संवाद-सूक्त, उपनिषदों की रूपक कथाएँ, रामायण की अन्तर्कथाएँ, महाभारत के उपाख्यान, जातक कथाएँ, वृहत्कथा, वासवदत्ता, दशकुमारचरित, कादम्बरी, वृहत्कथाश्लोक, कथासरितसागर, वैताल पंचविंशतिका, शुकसप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, प ंचतन्त्र, हितोपदेश, प्राकृत तथा अपभ्रंश में प्राप्त कथाकाव्य, हिन्दी के आदिकाल के चारण काव्य तथा मध्यकाल के प्रेमगाथाकाव्यों, वैष्णववार्त्ताओं और अन्ततः भारतेन्दुकालीन कथात्मक रचनाओं में हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पूर्व कहानी का विकास क्रम देखा जा सकता है।

(ख) प्रगति

स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी कहानी

आधुनिक हिन्दी कहानी का उद्भव बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष से ही माना जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'सरस्वती' को इसका श्रेय दिया जाता है। इससे पूर्व भारतेन्दुकाल में जो कथात्मक गद्य साहित्य उपलब्ध होता है, वह कलात्मक रूप से कहानी विधा में नहीं आता। हिन्दी कहानियों का प्रारम्भ अधिकांश विद्वानों और हिन्दी साहित्य इतिहास लेखकों ने एक स्वर से 'सरस्वती' के प्रकाशन से स्वीकार किया है। 'सरस्वती' के

प्रारम्भिक अंकों में प्रकाशित रचनाओं में हिन्दी कहानी की स्वरूप रचना हो रही थी। 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे थे। ''इन प्रयोगों में शेक्सपीयर के नाटकों के इतिवृत्त के आधार पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ, स्वप्न कल्पनाओं के रूप में रचित कहानियाँ, सुदूर देशों के कल्पनात्मक चरित्रों को लेकर लिखी गई संवेदनात्मक कहानियाँ, कल्पनात्मक यात्रा वर्णन की कहानियाँ, आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत कहानियाँ, संस्कृत नाटकों की आख्यायिकाएँ तथा घटना-प्रधान सामाजिक कहानियाँ प्रमुख हैं।'' इस प्रकार हिन्दी कहानी को एक नवीन विधा के रूप में स्थापित करने में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। इस सन्दर्भ में डॉ. सुरेश सिन्हा ने अपना मत प्रकट करते हुए आरम्भिक कहानियों की निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत की है-'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'इन्दुमती', 'गुलबहार', 'प्लेग की चुड़ैल', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'पंडित और पंडितानी', 'दुलाईवाली'। उपर्युक्त तालिका के अतिरिक्त कहीं-कहीं माधव प्रसाद मिश्र कृत 'मन की चंचलता' (1894), तथा माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) आदि कहानियों का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु अधिकांश विद्वान 'सरस्वती' में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (1900) को ही प्रथम मौलिक कहानी के रूप में स्वीकारते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है-''इनमें यदि मार्मिकता की दृष्टि से भावप्रधान कहानियों को चुनें तो तीन मिलती हैं- 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली'। 'इन्दुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली' का नम्बर आता है।''

प्रारम्भिक हिन्दी कहानियों में वर्णनात्मकता, स्थूलता, घटनात्मकता, आकस्मिकता और कुतूहलपूर्णता विद्यमान है। इस तरह इन कहानियों में आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास के लक्षण विद्यमान हैं। प्रेमचन्दपूर्व हिन्दी कहानियों में कहानी विधा को सशक्त आधार देने व कलात्मकता की ऊँचाई पर ले जाने का श्रेय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' (1912) को जाता है। यह कहानी सृजनात्मकता और रचनात्मकता की अनुपम कहानी है। भाव, संवेदना, शिल्प व उद्देश्य की दृष्टि से भी इस कहानी ने हिन्दी कहानी के इतिहास में मील के पत्थर का काम किया। एक बिल्कुल नये विषय को जिस कौशल से इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है उसकी प्रशंसा में विजयमोहन सिंह लिखते हैं- ''प्रथम महायुद्ध इस कहानी में पृष्ठभूमि नहीं, कथाक्षेत्र है जिसकी कल्पना भी उस समय असम्भव थी। प्रथम तो क्या द्वितीय महायुद्ध पर भी हिन्दी में शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण कहानी लिखी गई हो। इस कहानी का शीर्षक ही जिस तरह पूरी कहानी में मंडराता रहता है वह रचनात्मकता के उन्मेष का विलक्षण उदाहरण है। प्रविधि के रूप में तब तक 'पूर्व दीप्ति' (फ्लैश बैक) और चेतना का प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कांससनेस) का नाम हिन्दी में सुना नहीं गया था जिसका इस कहानी में अपूर्व कौशल से उपयोग किया गया है।''

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी कहानी को एक नई दिशा एवं दृष्टि मिली। यद्यपि वे सन् 1907 से ही उर्दू में कहानियाँ लिखने लगे थे, किन्तु सन् 1916 में जब उनकी 'पंच परमेश्वर' कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई, तब से वे हिन्दी कथा क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण लेखक के रूप में जाने-पहचाने गये। उन्होंने कहानी के प्राचीन कथा-शिल्प को तोड़कर युगानुरूप उसे नया रूप-रंग प्रदान किया। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक यथार्थ को केन्द्र में रखकर मानवीय संवेदना और हिन्दी कथा संसार से देवता, राजा और ईश्वर को अपदस्थ करके दीन, दलित, शोषित प्रताड़ित मनुष्य को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा आदि प्रारम्भिक लेखक प्रेमचन्द के ढंग पर आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहानियाँ लिख रहे थे। उनकी कहानियाँ घटनाप्रधान और इतिवृत्तात्मक हैं।

इस युग के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कहानीकार भुवनेश्वर भी हैं। भुवनेश्वर को कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठा नहीं मिली। उन्हें एक एकांकी नाटककार के रूप में स्वीकृति दी गई। लेकिन वे एक सशक्त कहानीकार भी थे। उन्होंने भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की ही तरह बहुत कम कहानियाँ लिखी, लेकिन ये कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए उन्हें हिन्दी कहानी के इतिहास से बाहर नहीं किया जा सकता। भारत भारद्वाज के शब्दों में- ''हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में भुवनेश्वर का उल्लेख नहीं किया गया तो यह कहानी इतिहासकार की भूल थी कि उन्होंने अपने विवेक का परिचय नहीं दिया, लेकिन भुवनेश्वर कहानीकार के रूप में इससे ओझल नहीं हो जाते। भुवनेश्वर ने कहानियाँ भी लिखीं हैं और ये कहानियाँ हिन्दी कहानी के विकास से कटी हुई नहीं हैं, बल्कि जुड़ी हुई हैं। ये कहानियाँ हाशिये की कहानियाँ नहीं हैं बल्कि

हिन्दी कहानी के बीच की कहानियाँ हैं। भुवनेश्वर की कहानियों का महत्त्व इस बात से भी प्रकट होता है कि प्रेमचन्द जैसे महत्त्वपूर्ण कथाकार ने न केवल भुवनेश्वर की कहानियों पर लिखा बल्कि उनकी कहानी 'मौसी' को अपने एक कहानी-संकलन में संगृहित भी किया।''

जयशंकर प्रसाद मूलतः रोमांटिक कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में प्रेम और भावात्मकता की प्रधानता है। इनकी सफल कहानियाँ प्रेम और अन्तर्द्वन्द्व को लेकर चलती हैं, जिनमें 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि प्रमुख हैं। यशपाल प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने वाले उल्लेखनीय कहानीकार हैं। रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन आदि कहानीकार इसी वर्ग के महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं। जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ को केन्द्र में रखकर अपनी कहानियों में मानव-मन को चित्रित किया। इन कहानीकारों पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का गहरा प्रभाव है। अज्ञेय इस परम्परा के तीसरे महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। इनकी कहानियों में सार्त्र आदि अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव दिखाई देता है। इन कहानीकारों के मध्य कुछ कहानीकार ऐसे भी थे जिन्होंने किसी विचार विशेष से प्रभावित न होकर स्वतन्त्र रूप से लेखन किया। ऐसे कहानीकारों में भगवतीचरण वर्मा और उपेन्द्रनाथ अश्क मुख्य हैं। विष्णु प्रभाकर, द्विजेन्द्र नाथ 'निर्गुण' तथा अमृतराय भी स्वतन्त्रता से पहले के प्रमुख कहानीकार हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी

सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। सदियों की गुलामी के बाद भारतीय जनमानस एक नये सवेरे को उल्लासपूर्ण नजरों से देख रहा था। अब उनके सारे सपने और आकांक्षाएँ पूरी होने वाली हैं, इसके प्रति आश्वस्त भारतीय जनता नये जोश व नई स्फूर्ति से ओत-प्रोत थी। कमलेश्वर के शब्दों में- ''देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ। आजादी केवल राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी, बल्कि विचारों की एक नवक्रांति का सपना भी उससे जुड़ा हुआ है।''

इस प्रकार स्वतन्त्र भारत में कहानीकारों की जो नई पीढी तैयार हुई उसने हिन्दी कहानी के वस्तु, शिल्प और संचेतना में व्यापक परिवर्तन किए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी क्षेत्र में जो उल्लेखनीय विकास हुए, वे हिन्दी कहानी के विभिन्न आन्दोलनों की देन हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी में कई आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। 'नयी कहानी', 'सचेतन कहानी', 'अकहानी', 'सहज कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समानान्तर कहानी' और 'जनवादी कहानी' के नाम से समय-समय पर उठने वाले कहानी-आन्दोलनों ने हिन्दी कहानी को नई समृद्धि, दृष्टि और कलात्मक ऊँचाई भी दी है और संकीर्णताओं और स्वार्थों के कारण उसे क्षति भी पहुँचाई है।

(ग) आन्दोलन

नयी कहानी आन्दोलन

स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी कहानी में कोई कहानी-आन्दोलन नहीं चला था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 'नयी कहानी' के रूप में एक ऐसा कहानी आन्दोलन प्रकाश में आया जिसने कहानी के पारम्परिक प्रतिमानों को नकार दिया और अपने मूल्यांकन के लिए नई कसौटियाँ निर्धारित की। यह स्वाभाविक भी था कि अब नये विचार, नये सपने और नयी राहों का उदय हुआ था। परतन्त्रता की पीड़ा से उभरी भारतीय जनता आजादी के उल्लास में एक नये जोश व नये उत्साह से सराबोर थी। अब नये प्रकार की चुनौतियाँ थी। आजाद हिन्दुस्तान को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना व सदियों से गुलाम भारतीयों को हीन भावना से उबारकर एक नये आत्मविश्वास से ओत-प्रोत करना। परन्तु इन सपनों और आकांक्षाओं की उम्र बहुत कम थी, भारत-पाक विभाजन के फलस्वरूप हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिक उन्माद ने आजादी की मिठास को कसैला बना दिया था। मानवता को सरेआम नंगा किया गया, इंसानियत का गला दबा दिया गया और मूल्यों व आदर्शों को मौत के घाट उतार दिया गया था। साम्प्रदायिकता का जो वहशीपन उन दिनों इन नवस्वतन्त्र विभाजित देशों के मध्य सुलग रहा था उसने स्वतन्त्रता के बाद की सारी उम्मीदों को धुआँ-धुआँ कर दिया। ऐसे समय में साहित्यकार जो स्वयं आजादी की बाट जोह रहा था, गहरे तनाव व अवसाद से भर गया। डॉ. विष्णु ओझा लिखते हैं- ''इसे अस्वीकार करना असम्भव-सा है कि आज की कहानी की भूमिका में दो महायुद्ध एवं भारत विभाजनजन्य विभीषिका, विषमता तथा संत्रास है। एक सार्वत्रिक टूटन, निरुद्देश्यता, असंगति, मानवीय सम्बन्धों की व्यर्थता, स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों की विद्रूपता आदि भी उसकी उपज है।''

इस आन्दोलन के मुख्य कहानीकार राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर थे। नयी कहानी आन्दोलन का मुख्य आग्रह 'परिवेश की विश्वसनीयता', 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'अभिव्यक्ति की ईमानदारी' के प्रति था। यह आन्दोलन कहानी को युग-सत्य से जोड़कर पाठक को समकालीन यथार्थ से यथार्थ रूप में परिचित कराने का ध्येय लेकर बढ़ा था। समय, काल और परिस्थितियां साहित्य को प्रभावित भी करती हैं और परिवर्तित भी। अब समय बदल चुका था। समयगत परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए डॉ. कुमार कृष्ण लिखते हैं- ''कहानियाँ नहीं बदली थी, समय की माँग बदली थी और समय की माँग ने ही अपनी थाती में से नये चुनाव किए थे। कथा-साहित्य में इस बदलते हुए आग्रह को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और यह बदलता हुआ आग्रह ही वह बिन्दु है जहाँ से हिन्दी कहानी एक 'नया मोड़' लेती है, यह नया मोड़ ही 'नयी कहानी' के नाम से अभिहित किया गया।''

स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता मिल जाने पर भारतीय जनमानस में एक नयी चेतना, नये विश्वास और नयी आशा-आकांक्षा का जन्म हुआ था जिसकी अभिव्यक्ति 'नयी कहानी' आन्दोलन की कहानियों में मिलती है। 'कहानी' तथा 'कल्पना' जैसी पत्रिकाओं ने नयी कहानी आन्दोलन को विस्तार देने का कार्य किया। 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'जिन्दगी और जोंक' (अमरकान्त), 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'आत्मा की आवाज' (कमलेश्वर), 'मलबे का मालिक', 'सौदा', 'नये बादल', 'आर्द्रा', 'परमात्मा का कुत्ता' (मोहन राकेश), 'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (राजेन्द्र यादव), 'दादी माँ' (शिवप्रसाद सिंह), 'गदल' (रांघेय राघव), 'बादलों के घेरे', 'डार से बिछुडी' (कृष्णा सोबती), 'साबुन', 'हंसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय), 'रसप्रिया' (फणीश्वर नाथ रेणु), 'गुल की बन्नो' (धर्मवीर भारती), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'मैं हार गई' (मन्नू भण्डारी), 'वापसी' (उषा प्रियंवदा), 'छुट्टियाँ' (रामकुमार), 'बदबू' (शेखर जोशी), आदि कहानियों में कथ्य, शिल्प तथा अभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से नयेपन का अनुभव होता है।

नयी कहानी आन्दोलन ने हिन्दी कहानी में एक नवीन चेतना को जन्म दिया। यह नयी कहानी की लोकप्रियता तथा रचनात्मकता का ही परिणाम है कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा जैसे कवि कहानी लेखन की ओर आकर्षित हुए। नयी कहानी ने कथ्यगत परम्परागत ढाँचों को अस्वीकारते हुए नये आयामों की खोज की, वहीं अभिव्यक्ति के स्तर पर नये-नये प्रयोग किए। नयी कहानी ने कहानी के प्लॉट में रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण जैसी अनेक विधाओं को समेटा जिससे नयी कहानी में प्रयोगधर्मिता, सांकेतिकता आदि गुणों का उदय हुआ। नयी कहानी की भाषा अकृत्रिम है। यह कोशगत अर्थों से कहीं अधिक व्यापक व गहरे अर्थों को ध्वनित करती है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता आदि नयी भाषा के अतिरिक्त गुण हैं। परन्तु 60 के दशक तक आते-आते यह आन्दोलन अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों में धँस गया। यह आन्दोलन वैचारिक प्रतिबद्धता पर कायम रहने में असफल रहा और पश्चिम के आकर्षण से स्वयं को बचा पाने में नाकाम रहते हुए बुजुआर् आधुनिकतावाद की वकालत करने लगा। व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ अधिक सक्रिय हो गई और उसका व्यापक फलक सिमटकर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की अभिव्यक्ति रह गया। इस प्रकार यह आन्दोलन बिखर गया और हिन्दी कहानी में एक नये आन्दोलन अकहानी आन्दोलन का जन्म हुआ।

अकहानी आन्दोलन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनमानस द्वारा देखे गए तमाम सपने व उनकी आकांक्षाएँ दम तोड़ चुकी थी। सन् 1962 में एक तरफ तो 'हिन्दी-चीनी, भाई-भाई' के नारे लगाए जा रहे थे तो दूसरी ओर भारत पर विश्वासघाती चीनी आक्रमण ने भारतीय जनता में मोहभंग की स्थिति को अत्यन्त भयावह बना दिया। अब तक भारत-पाक विभाजन के घाव व आन्तरिक कलह के जख्म भरे नहीं थे कि चीनी आक्रमण ने भारतीय जनता के मनो-मस्तिष्क को झकझोर दिया। इस प्रकार अकहानी एक तरफ जहाँ तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक विसंगतियों का परिणाम था तो दूसरी ओर नयी कहानी की जड़ता को तोड़ने का प्रयास था। ऐसे समय में हिन्दी कहानी जगत में एक नवीन कहानी आन्दोलन 'अकहानी आन्दोलन' का जन्म हुआ। यह आन्दोलन तात्कालीन मूल्यों तथा कथाशिल्प दोनों के अस्वीकार का आन्दोलन है। यह आन्दोलन पेरिस के 'एण्टी स्टोरी' का अनुकरण है और इस आन्दोलन पर अस्तित्ववादी चिन्तक सार्त्र और कामू के विचारदर्शन का प्रभाव है।

अकहानी में सम्बन्धों व मूल्यों के बिखराव को अभिव्यक्ति मिली है। अकहानी में सम्बन्धों के टूटने का ऐसा पीड़ाबोध है जो उसे पूर्ववर्ती कहानी से अलग करता है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के परिवर्तित रूप को अभिव्यक्त करने के

कौशल को डॉ. अशोक भाटिया इस आन्दोलन की उपलब्धि भी मानते हैं और सीमा भी। वे कहते हैं- ''इस आन्दोलन की उपलब्धि यह रही कि काम-सम्बन्धों का इन्होंने वर्जनाहीन तथा सहज वर्णन करके हिन्दी कहानी में एक उपेक्षित पक्ष को समृद्ध किया। किन्तु उन्मुक्त काम-सम्बन्धों के नाम पर इन्होंने सभी मर्यादाओं और श्लीलता की सीमाओं को तोड़ दिया। समलैंगिक सम्बन्ध, अप्राकृतिक मैथुन आदि का विस्तृत वर्णन इसका प्रमाण है।''

भारतीय जीवन मूल्यों व परम्पराओं का तिरस्कार अकहानी में मिलता है। अकहानी भारतीय पारिवारिक व सामाजिक व्यवस्था को भी अस्वीकार करती है। इस सन्दर्भ में श्री जयेन्द्र त्रिवेदी लिखते हैं-''सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार करना अकहानी का प्रमुख उद्देश्य था। अकहानी का 'अ' मात्र उपसर्ग न रहकर एक जीवन मूल्य माना गया जिसका हेतु पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक मूल्यों का विघटन करना था।''

अकहानी में संवेदनाओं और भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं है। ''अकहानी स्त्री के सतीत्व में विश्वास नहीं करती तथा विवाह संस्था की पतिव्रता के समक्ष भी प्रश्नचिह्न लगाती है। दाम्पत्य जीवन में सतीत्व, पतिव्रता धर्म तथा एकपत्नीत्व जैसे मूल्य यहाँ आकर बिखर गये हैं। प्रेम का परम्परागत अर्थ यहाँ शून्य हो गया है और स्त्री-पुरुष के बीच केवल शारीरिक सम्बन्ध मात्र रह गये हैं।''11 अकहानी शिल्प व भाषा के स्तर पर भी सभी प्रकार के परम्परागत उपकरणों का निषेध करती है। शिल्प की दृष्टि से अकहानी फैंटेसी, डायरी, निबन्ध, संस्मरण आदि विधाओं के निकट है।

'झाड़ी', 'शवयात्रा', (श्रीकांत वर्मा), 'सिर्फ एक दिन', 'अकहानी', 'बड़े शहर का आदमी', 'एक डरी हुई औरत' (रवीन्द्र कालिया), 'तरतीब', 'छुटकारा' (ममता कालिया), 'पिता', 'फैंस के इधर-उधर' (ज्ञानरंजन), 'वे दोनों' (विजयमोहन सिंह), 'रक्तपात', 'आइसबर्ग', 'कबन्ध' (दूधनाथ सिंह), 'आदमी' (प्रयाग शुक्ल), 'एक पति के नोट्स', 'फुंसिया' (महेन्द्र भल्ला), 'मरी हुई चीज', 'निर्मम', 'बगैर तराशे हुए' (सुधा अरोड़ा), 'सुबह का डर', 'लोग बिस्तरों पर' (काशीनाथ सिंह), 'पिता-दर-पिता' (रमेश वक्षी), 'शीर्षकहीन' (गंगाप्रसाद विमल) जैसी कहानियों में अकहानी आन्दोलन की प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। अकहानी ने परम्परागत कथ्य व शिल्प को छोड़कर नये-नये प्रयोगों से हिन्दी कहानी के विकास को गति दी है। परन्तु इस आन्दोलन का अनास्थावादी दृष्टिकोण व पाश्चात्य विचारकों (कामू, काफ्का, सार्त्र) के विचारों को आधार बनाकर सोची गई स्थितियों-परिस्थितियों पर आधारित कृत्रिम कथा-विधान सबसे बड़ी सीमा है। अकहानी भारतीय समाज की उपज नहीं थी। इस प्रकार इस आन्दोलन की सामाजिक स्वीकार्यता अधिक नहीं थी और यह अपने ही दायरों में सिमट कर रह गया।

सचेतन कहानी आन्दोलन

सन् 1964 में डॉ. महीप सिंह ने 'आधार' पत्रिका का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकाल कर हिन्दी कहानी में एक नये आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसे 'सचेतन कहानी' आन्दोलन का नाम दिया गया। इस आन्दोलन की मुख्य विशेषता यह है कि इसने सचेत रूप से जीवन में सक्रियता, आशा, आस्था और संघर्ष का भाव संचारित करने पर बल दिया। नयी कहानी आन्दोलन की प्रतिक्रिया में शुरू किया गया यह कहानी आन्दोलन अनास्था, कुण्ठा, अवसाद व निराशा के वातावरण से निकलने की छटपटाहट और कुछ नयी आशाओं और उम्मीदों के साथ जीवन को अनुभूत करने पर बल देता है। डॉ. हेतु भारद्वाज इस सन्दर्भ में कहते हैं कि ''सचेतन कहानी उस स्वस्थ दृष्टि से सम्पन्न कहानी है जो जीवन से नहीं, जीवन की ओर भागती है। इसमें नैराश्य, अनास्था और बौद्धिक तटस्थता का प्रत्याख्यान किया जाता है और मृत्यु-भय, व्यर्थता एवं आत्मपराभूत चेतना का परिहार भी। सचेतन कहानी में आत्म-सजगता है और संघर्षेच्छा भी। वह व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नये मूल्यों के निर्माण का स्वर मुखरित करती है।''

सचेतन कहानी में भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ; परन्तु इधर के कहानीकारां का दृष्टिकोण अकहानी वाला दृष्टिकोण नहीं था। यह कहानी न तो सेक्स की अन्धी गलियों में भटकती है और न ही भय या कुण्ठा से ग्रस्त है। सचेतन कहानी के नारी पात्र अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील हैं। सचेतन कहानी आन्दोलन मुख्यतः वैचारिक आन्दोलन था, शिल्प के सन्दर्भ में किसी विशेष प्रकार का आग्रह-दुराग्रह इसमें नहीं है। सचेतन कहानी नयी कहानी और अकहानी के समान शिल्प के बोझ तले न दबकर सहज अनुभवों को सहजता से अभिव्यक्त करने पर बल देती है। सचेतन कहानीकारों का मानना है कि सफल कहानी वही है जिसका कथ्य पाठकों तक सहजता से संप्रेषित हो जाए।

परन्तु यह आन्दोलन कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर कहानी को कोई नवीनता दे पाने में असमर्थ रहा और महीप सिंह व उनके कुछ साथी कहानीकारों के मध्य ही सीमित रह गया। इस प्रकार यह आन्दोलन खत्म हो गया।

सचेतन कहानी आन्दोलन को गति देने वाले कहानीकारों में महीप सिंह के अतिरिक्त मनहर चौहान, कुलदीप बग्गा, नरेन्द्र कोहली, वेदराही, श्रवण कुमार, योगेश गुप्त, हेतु भारद्वाज, रामदरश मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, धर्मेन्द्र गुप्त, सुरेन्द्र अरोड़ा व हृदयेश आदि प्रमुख हैं। महीप सिंह की 'उजाले का उल्लू', 'स्वराघात', तथा 'धुंधले कोहरे', जगदीश चतुर्वेदी की 'अधखिले गुलाब', मनहर चौहान की 'बीस सुबहों के बाद', सुरेन्द्र अरोड़ा की 'बर्फ', रामकुमार भ्रमर की 'लौ पर रखी हुई हथेली', वेदराही की 'दरार' तथा सुखवीर की 'दीवारें और उड़ने वाला घोड़ा' जैसी कहानियाँ 'सचेतन कहानी' का स्वरूप स्पष्ट करती हैं।

सहज कहानी आन्दोलन

सन् 1968 में 'नयी कहानियाँ' पत्रिका का स्वामीत्व श्री अमृतराय ने खरीद लिया तथा उन्होंने अपने सम्पादन में इसे इलाहाबाद से निकालना शुरू किया। इस पत्रिका के सम्पादकीय 'सहज कहानी' शीर्षक के अन्तर्गत छपते थे। इन सम्पादकीयों के शीर्षक तथा अमृतराय के कहानी सम्बन्धी विचारों से ही सहज कहानी आन्दोलन का प्रारम्भ माना जाता है। आडम्बरों से मुक्त, बनावट से परे तथा ओढी हुई वैचारिकता से आजाद कहानी ही सहज कहानी है। सहज कहानी के विषय में अमृतराय द्वारा लिखे सम्पादकीयों में सहज कहानी के लिए आवश्यक जिन गुणों का उल्लेख मिलता है उनमें अमृतराय कहानी में कथारस की अनिवार्यता पर बले देते हैं, सहज कथानक सहज शिल्प में अभिव्यक्त होना चाहिए और कहानी में सरसता, भावुकता व संवेदना का गुण होना चाहिए। अमृतराय स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-''नयी कहानी की खोज में सहज कहानी खो गयी।''14 वे कहानी में कहानीपन को जरूरी मानते हैं और नयी कहानी और अकहानी ने कथ्य और शिल्प के स्तर पर जो अतिरिक्त उत्तेजना व जल्दबाजी दिखाई उसका वे विरोध करते हैं। सहज कहानी आन्दोलन अमृतराय तथा उनके द्वारा 'नयी कहानियाँ' में लिखी गई टिप्पणियों तक ही सीमित रहा। उन्होंने सहज कहानी का शास्त्र तो प्रस्तुत किया पर उनके विचार केवल वैचारिक स्तर पर ही रह गये, अपनी कल्पना व अपने दृष्टिकोण को धरातल देने में वे असमर्थ रहे। अतः 'नयी कहानियाँ' पत्रिका के बन्द होने के साथ-साथ इस आन्दोलन का भी समापन हो गया। स्वयं अमृतराय के अलावा सुधा अरोड़ा ने भी इस आन्दोलन का समर्थन किया।

समानान्तर कहानी आन्दोलन

अक्टूबर, 1974 के 'सारिका' के अंक से कमलेश्वर द्वारा समानान्तर कहानी विशेषांकां की शृंखला के प्रकाशन से यह कहानी आन्दोलन अस्तित्व में आया। समानान्तर कहानी का केन्द्रीय बिन्दु 'आम आदमी' है। इस आन्दोलन के प्रस्तोता कमलेश्वर का मानना है कि आम आदमी की जिन्दगी के विविध पहलुओं को, चाहे वे किसी भी रूप में हों, हम अपनी कहानियों में निरूपित करते हैं और उसके साथ ही जिन्दगी को इस कदर सड़ा देने वाली पूँजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ निरन्तर जूझते रहना कर्त्तव्य मानते हैं। इस प्रकार इस कहानी आन्दोलन में आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति है और हर स्थिति में वही नायक भी है। पूरी कहानी का ताना-बाना उसी के इर्द-गिर्द बुना जाता है तथा वह अपनी पूरी चेतना व ऊर्जा के साथ युगीन विसंगतियों के विरुद्ध डटकर मुकाबला करने को उद्यत दिखाई देता है। डॉ. हेतु भारद्वाज के शब्दों में- ''समानान्तर कहानी जीवन के स्पन्दन के साथ चलने वाली रचनात्मक विधा है और वह अपनी पूरी रचनात्मक शक्ति के साथ आम आदमी के नायकत्व को स्थापित कर भ्रष्ट राजनीतिक और चतुर पूँजीवादी व्यवस्था से संघर्ष कर सामने आ गयी है।''

समानान्तर कहानी सामन्तवादी मूल्यों को अस्वीकार करते हुए नये मूल्यों की स्थापना का बीड़ा उठाती है। वह अपने केन्द्रीय पात्र 'आम आदमी' को इतना सशक्त व सक्षम बना देना चाहती है कि वह दैत्याकार व्यवस्था से न केवल संघर्ष करने का साहस जुटा पाये अपितु निरंकुश व्यवस्था को अपने तीखे प्रहारों से छिन्न-भिन्न भी कर पाये। ''समानान्तर कहानी तटस्थता और निरपेक्षता को पीछे छोड़ संबद्धता की बात करती है, वह मूल्यों को व्यवहार में लाये जाने के प्रति सजग है। उन्हें कार्यान्वित भी करना चाहती है। इस दृष्टि से आज का समय इतना भयावह है, क्योंकि सामान्य व्यक्ति इतना असहाय है कि वह भ्रष्ट नैतिकता का खुलकर विरोध नहीं कर सकता। जब तक सामान्य जन में

अनैतिक को अस्वीकार करने की शक्ति नहीं आती तब तक नये मूल्य स्थापित नहीं हो सकते। इस दिशा में समानान्तर कहानी सक्रिय है।''

इस प्रकार इस आन्दोलन में वैचारिक या कथ्य के स्तर पर कोई अतिरिक्त विशेषता प्रतीत नहीं होती और कमलेश्वर द्वारा 'सारिका' का सम्पादन छोड़ने के साथ ही यह कहानी आन्दोलन समाप्तप्राय हो गया। 'मानसरोवर के हंस', 'इतने अच्छे दिन', 'रातें' (कमलेश्वर), 'एक चालू आदमी' (दिनेश पालीवाल), 'आदमी' (आशीष सिन्हा), 'हरिजन सेवक', 'लहू पुकारे आदमी' (मधुकर सिंह), 'तमाशा' (स्वदेश दीपक), 'अंधे कुएँ का रास्ता' (अरुण मिश्र), 'चौथा आश्चर्य', (जवाहर सिंह), 'यन्त्र पुरुष' (सुरेश सेठ), 'सुरंग में पहली सुबह' (बसंत कुमार) आदि कहानियाँ समानान्तर कहानी आन्दोलन की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

सक्रिय कहानी आन्दोलन

पाश्चात्य शब्द 'एक्टिव स्टोरी' के अनुकरण पर राकेश वत्स द्वारा सम्पादित 'मंच' पत्रिका के मार्च 1978 अंक को 'सक्रिय कहानी विशेषांक' के रूप में निकाला गया। इस विशेषांक के प्रकाशन से ही सक्रिय कहानी आन्दोलन का जन्म माना जाता है। सक्रिय कहानी का सर्वाधिक बल सक्रियता पर है। यह सक्रियता पात्रों तथा विचारों दोनों स्तरों पर है। इस आन्दोलन की कहानियाँ अपने पात्रों को शोषक-शक्तियों के विरुद्ध खड़ा होने का न केवल हौंसला देती हैं अपितु उनके संघर्ष में सहयोग भी करती हैं। राकेश वत्स ने 'सक्रिय कहानी की भूमिका' में सक्रिय कहानी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है- 'चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी, जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेवारी अपने सिर लेती है।''

सक्रिय कहानी आन्दोलन व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए सामूहिक मानवीय मूल्यां की स्थापना पर बल देता है। यहाँ स्वहित को परहित से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति है अर्थात् यह कहानी व्यक्तिगत स्वार्थों और लाभों को समाजगत लाभों में बदलने की नीयत रखती है। सक्रिय कहानी शोषित व पीडित वर्ग को संगठित कर शोषक वर्ग के प्रति संघर्ष पर बल देती है। जनसमर्थक मूल्यों तथा समानता की स्थापना इस कहानी आन्दोलन का मुख्य ध्येय है। 'उसका फैसला' (सुरेन्द्र सुकुमार), 'जंगली जुगराफिया' (रमेश बत्तरा), 'पहली जीत' (विकेश निझावन), 'आखिरी मोड़' (कुमार संभव), 'काले पेड़' (राकेश वत्स), 'एक न एक दिन' (नवेन्दु), 'लोग हाशिये पर' (धीरेन्द्र आस्थाना) आदि कहानियों में सक्रिय कहानी आन्दोलन की प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। सक्रिय कहानी आन्दोलन कहानी की कलात्मकता पर कोई बात नहीं करता, वह मात्र कथ्य पर जोर देकर चुप हो जाता है। सक्रिय कहानी आन्दोलन अपना कोई व्यक्तिगत आधार बना पाने में असमर्थ रहा क्योंकि इसकी प्रवृत्तियाँ समानान्तर व जनवादी कहानी आन्दोलन का मिश्रण-सा प्रतीत होती हैं।

जनवादी कहानी आन्दोलन

सन् 1982 में दिल्ली में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही हिन्दी कहानी में जनवादी कहानी आन्दोलन का सूत्रपात माना जाता है। 13-14 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), 'कथन' (दिल्ली), 'उत्तरगाथा' (मथुरा-दिल्ली), 'उत्तरार्ध' (मथुरा), 'कंक' (रतलाम) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारंभ हो गई। जनवादी कहानी आन्दोलन की वैचारिकता मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित है। इस कहानी आन्दोलन में सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषक व पूँजीपति वर्ग के प्रति गुस्सा व परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था का भाव इस आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्तियों में है।

जनवादी कहानी खोखले आदर्शों में विश्वास नहीं रखती, वह जीवन के यथार्थ चित्रांकन पर बल देती है। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया से सही तौर पर जुड़ने व शोषण, अन्याय तथा उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा होने के प्रति प्रतिबद्ध यह कहानी समस्याओं को जमीनी स्तर पर उठाकर उनके समाधान के लिए प्रयत्नशील है। मजदूर और किसान जनवादी कहानियों के केन्द्रीय पात्र हैं। ''जनवादी कहानी किसान-मजदूर के संघर्ष की कहानी है तथा वह इस संघर्ष को बहुत सूक्ष्मता के साथ उभारती है। जनवादी कहानी जीवन के यथार्थ के सन्दर्भ में सत्य की पराजय दिखाकर भी सत्य की ओर आकर्षित करने का कार्य करती है।''

इस कहानी का शिल्प पक्ष की अपेक्षा वैचारिक पक्ष पर अधिक बल है। जनवादी कहानी सीधी-सादी व लोकजीवन से जुड़ी भाषा तथा सामान्य भाषा के मुहावरों का प्रयोग करती है। उसका मानना है कि कथ्य का अपना शिल्प होता है। चारों ओर जो जीवन बिखरा हुआ है, वही कहानी का मसाला है। पात्रों की कमी नहीं है। शिल्प के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। कथ्य का अपना शिल्प होता है, उसी को रखते जाओ। किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना कहानी का कार्य नहीं है। परन्तु जनवादी कहानी की विषय-वस्तु एक सीमित दायरे तक सिमट कर रह गई, जीवन के व्यापक अनुभवों के चित्रण का इसमें अभाव है। दूसरा स्वयं को जनवादी कहलाने के उत्साह में कुछ कहानीकार सोची-समझी स्थितियों पर कहानियाँ लिखने लगे जिससे इस आन्दोलन को क्षति पहुँची।

जनवादी कहानी आन्दोलन को गति देने वाले कथाकारों में 'सुधीर घोषाल', (काशीनाथ सिंह), 'आस्मां कैसे-कैसे', 'सूरज कब निकलेगा', (स्वयंप्रकाश), 'सुबह-सुबह', 'अब यही होगा', (हेतु भारद्वाज), 'दिल्ली पहुँचना है', 'मछलियां' (असगर वजाहत), 'मौसा जी', 'टेपचू' (उदय प्रकाश), 'राजा का चौक', 'काले अंधेरे की मौत' (नमिता सिंह), 'कसाईबाड़ा', (शिवमूर्ति), 'बीच के लोग', (मार्कण्डेय), 'अपराध', (संजीव), 'देवीसिंह कौन', 'कल्प वृक्ष' (रमेश उपाध्याय) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त आन्दोलनों के अध्ययन के पश्चात निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि थोड़े हेर-फेर के साथ सभी कहानी आन्दोलन, कहानी के विकास की ही कामना करते हैं। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष में जन्मीं हिन्दी कहानी इक्कीसवीं सदी में अपने सशक्त, समृद्ध व प्रौढ़ रूप में प्रवेश करती है।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी

बीसवीं सदी के प्रथम वर्ष में जन्मीं हिन्दी कहानी एक पूरी सदी जिसमें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, सदियों के संघर्ष के पश्चात् भारत की खंडित आजादी, भारत-पाक विभाजन की त्रासदी, आजादी के बाद भारतीय जनमानस की आशाओं और आकांक्षाओं का दमन व पाकिस्तान तथा चीन के आक्रमणों की विभीषिका, पाश्चात्यीकरण के फलस्वरूप भारतीय पारिवारिक व सामाजिक ढांचे के विध्वंश आदि अनेक प्रकार के अनुभवों को स्वयं में समेटे इक्कीसवीं सदी के प्रगतिशील वातावरण में प्रवेश करती है।

यद्यपि इक्कीसवीं सदी की परिस्थितियाँ भी बीसवीं सदी की परिस्थितियों से ज्यादा अलग नहीं है। फिर भी सूचना, संचार व विज्ञान-तकनीक के विकास ने विचार और व्यवहार के स्तर पर अनेक परिवर्तन किए हैं। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी अत्याधुनिक तकनीकों से लैस कहानी है। कथ्य और शिल्प दोनों में ही आधुनिक शैलियों व विचारों का प्रभाव इस कहानी पर दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी में कई प्रकार की वैचारिकताएं एक साथ चलती हैं जिनमें अन्तर्विरोधों के होते हुए अन्तर्सम्बन्ध भी हैं। बीसवीं सदी के अन्त से कुछ समय पूर्व हिन्दी कहानी जिन विषयों को लेकर गंभीर थी, उनका सघन व विस्तृत स्वरूप इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों में मिलता है।

बीसवीं शताब्दी में जो समस्याएँ अपने भ्रूण रूप में भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश को विचलित किए हुए थी, उन्होंने इक्कीसवीं सदी में आधुनिक उपकरणों की मदद से अपनी ताकत में इजाफा कर अनेक नई चुनौतियों को जन्म दिया। इक्कीसवीं सदी के कहानीकार को भी उसी अनुपात में 'अपडेट' होने की आवश्यकता थी और इन विसंगतियों की सघनता व स्वरूप को ध्यान में रखते हुए अपने वैचारिक व शिल्पगत हथियारों को तैयार करना था।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी में जो विमर्श मुख्यतः उभर आये हैं और जिन्होंने कहानी को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। उनमें स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श तथा आदिवासी-विमर्श मुख्य हैं। दलित रचनाकार स्वानुभूति और सहानुभूति में अन्तर करते हैं। वे सवर्ण लेखकों की दलित संदर्भों से जुड़ी कहानियों को दलित लेखन में शामिल नहीं मानते। यहाँ तक की वे प्रेमचन्द, निराला और नागार्जुन के साहित्य को भी दलित-विमर्श के अन्दर नहीं मानते। उनका मानना है कि उनके पास दलित पीड़ा की स्वानुभूति नहीं है क्योंकि वे नहीं जानते कि दलित का दर्द क्या होता है। दलित-विमर्श पर इक्कीसवीं सदी में अनेक दलित रचनाकार अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ कहानी लेखन कर रहे हैं जो न केवल अपनी पीड़ा का ही मार्मिक चित्रण करते हैं अपितु अपने समाज की कमजोरियों को रेखांकित कर उनसे उभरने के लिए भी प्रयत्नशील दिखते हैं। दलित रचनाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल

चौहान, विपिन बिहारी, राजेन्द्र बड़गूजर आदि के साथ-साथ सुशीला टाकभौरे व रजत रानी 'मीनू' आदि महिला कहानीकार सक्रिय हैं। दलित विमर्श को 'हंस' (राजेन्द्र यादव), 'युद्धरत आम आदमी' (रमणिका गुप्ता), 'अपेक्षा' (तेज सिंह), 'दलित साहित्य' (जयप्रकाश कर्दम) तथा 'बयान' (मोहनदास नैमिशराय) आदि पत्रिकाएँ गति दे रही हैं।

यदि इक्कीसवीं सदी की कहानी के परिदृश्य की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो बढ़ता हुआ आतंकवाद, भूमंडलीकरण और बाजारवाद का आक्रमण, उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार, पाश्चात्य जीवन मूल्यों का आकर्षण, राजनीतिक दलों का भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण, सांप्रदायिक दंगे, धार्मिक कट्टरता, मीडिया और जनसंचार माध्यमों का दुरुपयोग, दलित और नारियों पर अत्याचार, जातिवाद का आतंक, आर्थिक असन्तुलन से उपजा आक्रोश, शिक्षित बेरोजगारी तथा बुनियादी जरूरतों की अनुपलब्धता आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जो इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी की जमीन तैयार करती है। और यह निसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की कहानी इन स्थितियों पर पूरे बल से प्रहार करने में सक्षम हैं।

वर्तमान युगीन परिवेश

इक्कीसवीं सदी का भारतीय समाज एक ऐसे युग में जी रहा है जहाँ वह एक तरफ अपने परम्परागत मूल्यों तथा आदर्शों को बनाए रखना चाहता है वहीं दूसरी तरफ पश्चिम की चकाचौंध उसे आकर्षित कर रही है। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में भूमण्डलीकरण और बाजारवाद ने हमारे जीवन-मूल्यों तथा जीवनादर्शों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। नैतिकता की परिभाषाओं में स्खलन तथा निरन्तर हो रहे परिवर्तन के कारण भारतीय जनमानस परम्परा और आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व में फँसा है।

इक्कीसवीं सदी के समाज में यह अन्तर्द्वन्द्व नई समस्याओं को जन्म दे रहा है। देखने में सुखद तथा आकर्षक लगने वाली आधुनिक सभ्यता वस्तुतः संवेदना तथा भावना के धरातल पर हमारे मनों में शून्यता भर रही है और हम तनाव, अवसाद तथा बेचैनी अनुभव कर रहे हैं। इन्हीं स्थितियों-परिस्थितियों से इक्कीसवीं सदी का युगीन परिवेश निर्मित हुआ है। सामाजिक स्तर पर अनेक दावों-वादों के बावजूद आज भी भाईचारे तथा समन्वय की भावना का अभाव है और समाज में व्यक्ति और परिवार बिखराव की स्थिति का सामना कर रहे हैं और समाज में जाति, धर्म तथा संप्रदाय के आधार पर भेदभाव जारी है। राजनीतिक आदर्शों तथा मूल्यों का पतन अपने चरम पर है और सभी राजनितिक दल जनाकांक्षाओं पर खरे उतरने में असमर्थ रहे हैं। आर्थिक स्तर पर विश्व की शक्तिशाली अर्थव्यवस्थाओं में शामिल भारत का एक तबका सुविधासंपन्न है और दूसरा तबका बुनियादी जरूरतों के लिए जूझते हुए तिल-तिलकर जी रहा है। धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर विसंगतियाँ तथा विद्रूपताएँ अपने घिनौने रूप में सामने आई हैं। आस्था और श्रद्धा के केन्द्रबिन्दु धर्म में पाखंडियों तथा आपराधिक छवि के लोगों का वर्चस्व बढ़ा है जिसके चलते एक आम आदमी का धर्म से विश्वास उठता जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था में संतोषजनक परिवर्तन हुए। भारतीय कंपनियों के वैश्विक हस्तक्षेप तथा विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के भारत में आने से विश्व-व्यापार में भारत की नियमित सक्रिय भागेदारी से भारत की अर्थव्यवस्था विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाने लगी। आज भारत विश्व के दूसरे सबसे तेजी से उभरते बाजार के रूप में सामने आया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन को भारत की अर्थव्यवस्था के लिए एक बहुत बड़े संकट के रूप में देखा जा रहा था परन्तु आज स्थिति दूसरी है। भारत की अनेक कम्पनियाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में तब्दील होकर विश्व बाजार में अपनी धाक जमा रही हैं। आज भारत विश्व की ताकतभर अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। सामाजिक कल्याण योजनाओं पर सरकार का खर्च रिकार्ड स्तर पर है। देश की प्रतिव्यक्ति आय तीन सौ डॉलर के स्तर से उछल कर सत्रह सौ डॉलर के स्तर को पार कर गई है और राष्ट्रीय बचत दर बाईस फीसदी से बढ़ कर छत्तीस फीसदी हो गई है। चीन के निर्यात आधारित विकास मॉडल के विपरीत भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी, दवा और ऑटोमोबाइल क्षेत्र का विकास करके कौशल आधारित विकास मॉडल विकसित किया है।

आज धर्मगुरु अहिंसा, संयम और त्याग की अपेक्षा हिंसा और भोग में विश्वास रखते हैं। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के अन्त तक इन धर्मगुरुओं का सच हमारे सामने आता है और हम स्वयं को एक विचित्र स्थिति में पाते हैं। इन सन्तों की वास्तविकता यह है कि इनके भक्त तो दाने-दाने को मोहताज हैं और ये स्वयं दूध-मलाई में डूबे विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। भारत जैसे ऋषि-मुनियों के देश में जहाँ सन्त-महात्मा पर्णकुटियों तथा कन्दराओं में लोक-कल्याण की

साधना में लीन रहते थे। आज हमारे समाज में उपस्थित ये तथाकथित सन्त-महात्मा आलीशान गाड़ियों में सुरक्षाकर्मियों के रक्षाकवच में घूमते हैं। वातानुकूलित भव्य भवनों में निवास करने वाले इन संत-महात्माओं के जीवन से सत्य, सादगी, सद्‌गुण, ब्रह्मचार्य तथा अनुशासन कोसों दूर है। इन संन्यासियों के जीवन में गृहस्थाश्रम के सभी सुख मौजूद हैं।

इक्कीसवीं सदी का युगीन परिदृश्य सांस्कृतिक स्तर पर संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। इस युग में भारतीय धर्मभीरु समाज परम्परागत रूढ़ियों तथा मान्यताओं को छोड़ना नहीं चाहता और दूसरी तरफ वह आधुनिक चकाचौंध से भरी पाश्चात्य जीवन-शैली के सम्मोहन से ग्रस्त होते हुए भी उसे पूरी तरह अपनाने से कतराता है। परम्परा और आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व में फँसा वर्तमान समाज भारतीय जीवन मूल्यों तथा आदर्शों को त्यागकर पश्चिम की भौंड़ी तथा भोग-विलासपूर्ण संस्कृति को अपना रहा है। जिसके चलते हमारी सभ्यता और संस्कृति चरमरा रही है और हमारे रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का ह्रास हो रहा है। आज भारतीय त्यौहारों के प्रति आकर्षण घट रहा है और विदेशी वैलेन्टाइन्स-डे आदि उत्सवों की ओर युवाओं का आकर्षण बढ़ रहा है। हम सांस्कृतिक, वैचारिक तथा नैतिक स्तर पर व्यापक पतन की ओर बढ़ रहे हैं। हमने भौतिक समृद्धि को ही जीवन का असली आनन्द मान लिया है और आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता को पीछे धकेल दिया है। हम ज्यों-ज्यों भूमण्डलीकरण के प्रभाव में आकर इण्टरनेट, मोबाइल व अन्य आधुनिक संचार माध्यमों के जरिये एक दूसरे से, एक से दूसरे देश-राज्य व जिले से जुड़ रहे हैं त्यों-त्यों अपने ही परिजनों, अपने ही अड़ोसियों-पड़ोसियों और गाँव जनपदों से भावनात्मक रूप से कट रहे हैं। उनके प्रति हमारे सरोकार सिमटते जा रहे हैं। अपनी संस्कृति, कला, पर्व-उत्सव, गीत-संगीत सभी से हमारा नाता खत्म होता जा रहा है। यह इस युग की एक बड़ी विड़म्बना है कि वैश्वीकरण के अन्तर्गत जिस 'ग्लोबल विलेज' की हम बात कर रहे हैं वहीं हमें अपने ही गाँव की सभ्यता और संस्कृति विस्मृत हो चुकी है। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी का सांस्कृतिक परिदृश्य अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त है जहाँ मानवीय मूल्यों की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ और सुख-सुविधा को महत्त्व दिया जा रहा है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी कहानी का इतिहास प्राचीन भारतीय साहित्य और वाङमय से आरम्भ होता है। हिन्दी कहानी में अपने प्रारम्भिक दौर से ही युगीन विसंगतियों तथा विद्रूपताओं पर प्रहार करने तथा समाज को सही दिशा में अग्रसर करने का प्रयास परिलक्षित होता है। प्रेमचन्द के आगमन के बाद हिन्दी कहानी भारतीय ग्रामीण और शहरी जीवन को एकसाथ रेखांकित करती है।

जीवन और जगत के अनेक पहलुओं की अभिव्यक्ति इस दौर की हिन्दी कहानी में यथार्थ रूप में प्रकट होती है। स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी कहानी का अध्ययन-विश्लेषण इस तथ्य की पुष्टि करता है। हिन्दी साहित्य की एक सशक्त गद्य विधा के रूप में स्थापित हो चुकी हिन्दी कहानी स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन और समाज से गहरा रिश्ता रखती है। इस दौर की हिन्दी कहानी तात्कालीन भारतीय सामाजिक- राजनीतिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों-परिस्थितियों को विभिन्न कहानी आन्दोलनों के माध्यम से मुखरित करती है। सैद्धान्तिक तथा वैचारिक स्तर पर उथल-पुथल के इस समय में अनेक कहानी आन्दोलन भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के साथ सामने आते हैं। इन कहानी आन्दोलनों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इनकी मत-भिन्नता ने हिन्दी कहानी के बहुमुखी विकास में अविस्मरणीय भूमिका का निर्वहन किया। कथ्य, शिल्प, भाषा, संवेदना और चेतना के स्तर पर अनेकानेक प्रयोगों ने हिन्दी कहानी को हिन्दी साहित्य की विशिष्ट विधा के रूप में पहचान दिलाई। साहित्य की प्रवृत्तियाँ युगानुरूप परिवर्तित होती रहती हैं क्योंकि साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसी कारण से साहित्य की दृष्टि और सरोकारों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। हिन्दी कहानी में विभिन्न आन्दोलनों का उदय तथा पतन इस तथ्य को प्रमाणित करता है। समयगत परिवर्तनों के बावजूद साहित्य की संवेदनात्मक और भावात्मक भूमिका सभी युगों में समान बनी रहती है। हिन्दी कहानी भी इससे अछूती नहीं है। यह कहानी भी अपने युग तथा समय से गहरा जुड़ाव रखती है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी की दृष्टि और सरोकारों में भारी परिवर्तन देखने में आते हैं। परन्तु वर्तमान कहानीकार संवेदनशील होकर मानव मन और उसके संवेदन की रचनाएं भी लिखता है और अत्यंत जटिल और बौद्धिक विमर्शों पर भी विचार-मंथन करता है। इस सदी की कहानियों में कहानीकार राजनीतिक-आर्थिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर भी हस्तक्षेप करता है। इस सदी में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रकाश में आती हैं जो बिलकुल अनछुए पक्षों को परिप्रेक्ष्य में लाती हैं।

निष्कर्षतः वर्तमान सदी की हिन्दी कहानी किसी वाद और विचारधारा में न फंसकर विभिन्न विमर्शों में स्वयं को अभिव्यक्त कर रही है। इस कहानी के सरोकार विस्तृत हैं और हमारे समय के सभी ज्वलन्त मुद्दों पर वह निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टि से अपना पक्ष रखती है।

सहायक सूची :

1. हिन्दी कहानी का इतिहास– डॉ0 गोपाल राय
2. हिन्दी कहानी का उद्‌भव एवं विकास– देवी शंकर अवस्थी
3. हिन्दी कहानियों का शिल्प–विधान– डॉ0 अशोक अस्थाना
4. हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास– डॉ0 रामचन्द्र तिवारी

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

Water Management in Ancient Times

Dr. Vivek Sengar
Assistant Professor, Department of History
Sri Varshney College, Aligarh

It is during Chalcolithic Age (3000 B.C. - 700 B.C.) irrigation had started and enabled the human beings to settle as farmers along the banks of rivers or in between two rivers. The irrigation helped our ancestors to find simpler ways to produce food. Initially, flood water was stored in reservoirs and then was taken to farms using small canals. Then there are evidences of digging of canals from normal flow of rivers.

Ourancient literature is full of references of irrigation methods. Yajurved mentionsdams and canals in details. A critique of Vedas, Nighantumentions 14 types of wells.[1]Smruties mentions many ponds and reservoirs. The authors of Smruties give paramount importance to the beneficial public works like digging of wells, constructing reservoirs and canals. Bruhaspati, one of the authors of the Smruties calls the building and repairing of dams as the most pious of jobs on account of any king. Sutra Literature appreciates the crops taken on the water of canal. Dhammapad explains different types of irrigation methods.[2]Kaushik Sutra has explained a religious ceremony to be performed during the Flow of canal in Farms.

In ancient times it is clear that people were using various means and methods of controlling and regulating one of the most important resources at their disposal, water.

Water Management in Indus Valley Civilization

The excavation at Dholaveera in the desert of Kuchchh has unearthed remnants of wonderful reservoir dating back to the era of Indus Civilization (3000 B.C. – 1500 B.C.). This reservoir had extremely efficient drainage system. In Harappa, there are evidences of seven hundred wells in the geographic area of a single village.

Constructing small barrier dams on both sides of river and using the collectedsediment for agriculture was common in Indus civilization. Carrying this waterthrough canal up to agricultural land led to having very effective and developed irrigation systems in Harappa and Mohenjodaro which were very much flourished and prosperous urban centers of ancient India.

The evidences of irrigation during Indus Civilization times can also be unearthed at places which are miles apart from each other. In Maharashtra which is supported by valleys of Narmada and Godavari, both, we find evidences of age old irrigation techniques. The excavations at Inamgaon, Tehsil - Shirur, District - Pune in today's Maharashtra state had shown earthen dams with foundation made up of stones. Theywere connected to Ghodnadi with the help of canals.

Water Management in Pre Vedic Times

With the arrival of Aryans (1800 B.C. - 1600 B.C.), Harappan culture faded and there after Aryans started farming along with cattle rearing in the same geographic zones. Rig-Veda (1500 B.C. - 1200 B.C.) describes this first phase of establishment of Aryans in this

land. It discusses about life and times of Aryans. It deals in details about their social organization, their farming and their crops. Initially, Aryans selected areas on the banks of five rivers in the northern and north-western regions of India fortheir settlements.

1. River Sutlej (Old name Shutudru or Satad)

2. River Jhelum (Vitasta or Baisasta)

3. River Chenab (Chandrabhaga or Askini)

4. River Biyas (Vipasha or Bipasa)

5. River Ravi (Varusini, Purushni or Irawati)

Aryans had employed labourers to dig canals from these rivers to their farms. They achieved certain degree of excellence in their jobs with the passage of time and definitely there were certain specialists. The Vedic wells were of two types Kachcha and Pakka. Pakka wells were properly built-up wells using stones, while Kachcha wells were the raw pits dug to serve the purpose. Both types of wells were constructed for irrigation and as sources of drinking water[3].

Water Management inMaurya Dynasty

In Post Vedic Period, in North India cattle rearing and farming, both werè important professions and canal irrigation was very much dominant method of irrigation. Thefields were also bordered with heightened stone walls in order to increase their waterholding capacity. Dams were built at strategic locations and the dam walls were not continuous. There were slots kept for gates which would enable the users to control the release of water. Construction of reservoirs for irrigation was also a major activity undertaken by rulers of those times.

A regional head of emperor Chandragupta Maurya had constructed a huge reservoir, Sudarshan at Girnar nearJunagadh in Saurashtra Region.[4]

Kautilya or Chanakya who was mentor of Chandragupta Maurya wrote a wonderful treatise which is known as Kautilya'sArthshastra. Great importance to irrigation for agriculture and to state productions was given. The State did not depend solely upon rain for agricultural production and depended more on irrigation for the same to keeps faster pace of development. Methods of lifting of water were prevalent during those days like Rahats using bulls, water lifting machines including pulleys and windmills. There was people's participation in building of water canals for new settlements. Finewas imposed on those who did not participate in above mentioned tasks or those whoharm the canal structure or those who waste water. Many taxes were levied to coverthe incurred costs and maintenance costs like water utilization tax, irrigation tax, canal protection tax, de-siltation tax and taxes on various crops. Kautilya and his followers were thinking about water management very seriously and their generations were implementing all these things very meticulously.

Not only this, there was a separate Irrigation Department in the royal court of Chandragupta which took care of construction of dams and canals, control and regulation of irrigation, maintenance of structures etc. We get enough evidences about this in contemporary sources like rock edicts and inscriptions.

Along with these inscriptions, the records of foreign travelers who visited the Mauryan Empire during these times are also very important.

In 300 B.C. Megasthenes, of Greek EmperorSelukasNeketor, visited in the court ofSamrat Chandragupta. According to him officers of Chandragupta used to regularly inspect the openings of canals and also that every farmer got enough water for his farms.

Kanishk (78 A.D. – 107 A.D.) was the most powerful of Kushan kings whose empire was extended uptoKabul, Gandhar (today's Afghanistan) to the valley of Ganga. In the entire stretch of empire, the Kushan Kings had built many wells using bricks. Gupta dynasty (300 A.D. – 550 A.D.) followed them and ruled over two third of Indian Subcontinent. The areas under their control included today's Andhra Pradesh, Madhya Pradesh, Gujarat, Rajasthan, Bengal, Sindh and Punjab regions. The notable literary works of the time include Kamasutra byVatsyayan, BrihatSanhita by Varahmihir and Amarkosh by Amarsingh The book Amarkosha was about agricultural activities, classification of land and irrigation. The land is classified by Amarsingh in 12 parts out of which one part is river.

After Guptas, the notable work in this region was done by Parmar dynasty which ruled Madhya Pradesh in 10th century. A.D.. Creation of Bhopal Lake is the most noteworthy work by this dynasty. The expanse of this reservoir is 31 Sq. Km. Canals which were dug around this reservoir totook its water to distant areas especially in the drought prone areas. This lake was constructed by BhojpalParmar.

Eastern Indian Region was ruled over by Pal dynasty starting with 760 A.D. for more than 2 centuries. Entire Gaund Region that is today's Bengal was controlled by themand they had built reservoirs all over the region for storing water for the purpose of drinking and irrigation.

The literature of the time is also rich in references about the water management andagricultural activities.Rishi Parashar in 8th century A.D. in his treatise, Krushiparashar, about irrigation. This book în true sense also is an encyclopaedia of agriculture and deals in details with techniques of lifting of water and techniques of watering the plants. Details about (waterwheel)also given in the book.[5] Rishi Parashar also deals in details about care to be taken during and after sowing Rice. The continuous references about keeping the paddy fields wet till the grains ripen show his deep understanding of the process of maturation of food grains. He also does not forget to warn that if we don't do so we may lose on the harvest. In the same book the author deals with the building and maintenance of types of reservoirs, canals, sub-canals and regulating water supply through them to the standing crops in order to improve the harvest.

References:-

1. The Nighantu and the Nirukta : The oldest treatise on Etymology by LakshmanSarup, MotilalBanarasidass Publication – 1998, Page 153.
2. Economic Life and progress in Ancient India – Calcutta – 1945. P- 135.
3. RigVeda, R.I. 1942 and R.X. 2.9.4
4. मौर्यस्य राज्ञस्य चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेणवैश्येनपुष्पगुप्तेनकारितं, अशोकस्य मौर्यस्य यवनराजेनतुषास्पेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतकृता।—जूनागढ़ लेख
5. The Institutes of Parasara Tr. By Krishna Komal Bhattacharya, Calcutta 1887, Page. 37, 38.

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

ईशावास्योपनिषद् में मानव जीवन के मूलकर्त्तव्य

डॉ0 देवेन्द्र कुमार
असि0 प्रो0 एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

वैदिक वाङ्मय भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राण तत्व है। यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधार है। यह युगों–युगों से प्रवाहित होने वाली वह पवित्र धारा है जो कि अनेक संक्रमण–व्युत्क्रमणों को पार करती हुई आज भी प्रवाहित हो रही है। इस धारा में अवगाहन कर मानव हृदय को परम विश्रान्ति प्राप्त होती है। वैदिक वाङ्मय के ज्ञान को सरल विधि से प्रकट करने का श्रेय उपनिषदों ने प्राप्त किया है। वेदों के सारभूत होने के कारण ही उपनिषद् वेदान्त कहलाये। उपनिषदों में समता, बन्धुता कर्मशीलता, त्याग की भावना आदि शान्ति के मानवीय मूल्य निहित हैं। उपनिषद् साहित्य केवल जीवन की मुक्ति का मार्ग ही नहीं बतलाता अपितु वर्तमान समय में जीवन जीने की कला को प्रदर्शित करते हुए अनेक समस्याओं से ग्रस्त मानव समाज का वैश्विक स्तर पर कल्याण करने में समर्थ है।

सम्पूर्ण विश्व में वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन प्रत्येक क्षेत्र हिंसादि जैसी समस्याओं से ग्रसित है। जिसका समाधान करने में शासन भी असमर्थ है। भ्रष्टाचार, अपहरण, बलात्कार आतंकवाद, जातिवाद हिंसा, सीमावाद आदि अनेक कुरीतियों से मनुष्य के हृदय से सुख–शान्ति मानों समाप्त ही हो गई हो। प्रत्येक मानव का किसी न किसी रूप में पोर–पोर कराह रहा है, उसे कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। इनमें अधिकांश समस्याएं तो मनुष्य की मानसिकता पर निर्भर करती है। जिनका समाधान मनुष्य स्वयं खोज सकता है। आधुनिक समय में इन चुनौतियों का समाधान यदि कहीं है तो वह भारतीय उपनिषदों में है। अतः वैदिक वाङ्मय मानव की सुख–शान्ति उसके अस्तित्व की रक्षा और त्रिविध दुःखों का नाश कर उसे स्वस्थ एवं शान्तचित होकर एक आदर्शमय जीने की प्रेरणा देता है।

दुःखत्रयाऽभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टेसाऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।।[2]

त्रिविध दुःख से पूर्ण निवृत्ति सांसारिक उपायों से होना सम्भव नहीं है इसलिए मनुष्य आदिकाल से परमशान्ति तथा शाश्वत सुख की खोज करता रहा है। त्रिविध दुःखों से आशय है कि मनुष्य के जीवन में तीन प्रकार के दुःख होते है – आध्यात्मिक दुःख, आधिभौतिक दुःख और आधिदैविक दुःख। ये तीनों दुःख किसी न किसी रूप में मनुष्य को घेरे रहते हैं। इन तीनों प्रकार के दुःखों से पूर्ण निवृत्ति ही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है।

1. आध्यात्मिक दुःख –आध्यात्मिक दुःख उन दुःखों को कहते हैं जो व्यक्ति के आन्तरिक कारणों से उत्पन्न या अभिव्यक्त होता है। यह आध्यात्मिक दुःख दो प्रकार का होता है– शारीरिक और मानसिक दुःख। इनमें जो शारीरिक कारण जैसे वात, पित्त और कफ की विषमता आदि से जो उत्पन्न होते हैं, वे शारीरिक दुःख कहे जाते हैं और मानसिक कारणों जैसे– काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि से जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें मानस या मानसिक दुःख कहा जाता है। उक्त आध्यात्मिक दुःखों की निवृत्ति होने पर व्यक्ति का जीवन कल्याणकारी होता है।

2. आधिभौतिक दुःख– आधिभौतिक दुःख वह दुःख होता है जो संसार के विभिन्न प्राणियों जैसे–मनुष्य, सर्प, पशु, आदि एवं स्थावर पदार्थ जैसे वृक्ष, पर्वत आदि के कारण उत्पन्न होता है। उसे आधिभौतिक दुःख कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के प्रति क्रोधादि करके कष्ट पहुँचाता है, मारता है अथवा प्रताड़ना देता है तो वह दुःख आधिभौतिक दुःख कहा जायेगा।

3. आधिदैविक दुःख– यह तीसरे प्रकार का दुःख किसी सांसारिक प्राणी द्वारा नहीं प्राप्त होता है अपितु यह दुःख देव, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत आदि के आवेश कारण तथा दैवीय आपदा जैसे–आँधी, तूफान, बाढ़, घनघोर वर्षा, प्लेग एवं कोरोना जैसी महामारी के कारण उत्पन्न होता है, उसे आधिभौतिक दुःख कहते हैं। वैदिक वाङ्मय तीनों प्रकार के दुःखों से निवृत्ति कराने में समर्थ है, इसके विश्व कल्याणमयी उपदेशों को आत्मसात कर व्यक्ति स्वयं का, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का कल्याण कर सकता है।

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं। इनके द्वारा मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति कर सकता है। उपनिषद् शब्द 'उप' (समीप), नि (निष्ठा) उपसर्ग पूर्वक सद् (सद्लृविषरणगत्यवसादनेषु) धातु से क्विप् प्रत्यय होकर बनता है। यहाँ सद् धातु के तीन अर्थ हैं–विषरण, गति, और अवसादन। विषरण का अर्थ है–नाश। गति का अर्थ है–प्राप्त होना तथा अवसादन का अर्थ है–शिथिल करना। इस प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ–ऐसा ज्ञान या विद्या जिसके द्वारा अविद्या का नाश, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति तथा सांसारिक बन्धनों को शिथिल किया जा सके। उपनिषदों की संख्या के विषय में कहा जाय तो इनकी संख्या 108 से लेकर 200 तक मानी गई है किन्तु जिनमें एकादश उपनिषद् प्रमुख हैं–ईष, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्ड्यूक्, तैत्तिरीय, एतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर उपनिषद्। उक्त उपनिषदों में ईशावास्योपनिषद् लघुकाय एवं एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है। जो शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का चालीसवाँ अध्याय है। इस उपनिषद् में केवल 18 मंत्र हैं, जिसमें कर्म ज्ञान का समुच्चयवाद का बीज पाया जाता है। लघु होने पर भी इसमें अनेक ऐसे संकेत हैं, जिनसे आश्चर्यजनक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। यह एक ऐसा पूर्ण उपनिषद् है कि मानो परमार्थिक जीवन का एक परिपूर्ण नक्शा थोड़े में ही खींचा गया हो। वह वेदों का सार एवं गीता का बीज है। इसे प्रथम उपनिषद् के रूप में मान्यता प्राप्त है इसके प्रथम मन्त्र में ''ईशावास्यम्'' पद सर्व प्रथम आने से इसका नाम ''ईशावास्य'' पड़ा। ईशा= ईश्वर के द्वारा, वास्य = व्याप्त है अर्थात् यह सब कुछ ईश्वर के द्वारा व्याप्त है। इस उपनिषद् में ईश्वर के गुणों का वर्णन है, अधर्म त्याग का उपदेश है। सभी कालों में सत्कर्मों को करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सभी प्राणियों में आत्मा को परमात्मा अंश जानकर अहिंसा की शिक्षा दी गई है। समाधि द्वारा परमेश्वर को अपने अन्तःकरण में जानने और शरीर की नश्वरता का उल्लेख किया गया है।

वर्तमान समय में मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बुरी तरह ग्रसित है। यह मेरा है, यह मेरा नहीं है। यह भावना उसके अन्दर घर कर गई है। मोह दुःख के सागर में डुबकी लगाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेता है। वह धनार्जन के लिए निम्न से निम्न कार्य करने में भी संकोच नहीं करता किन्तु वह नहीं जानता कि धन किसी का भी नहीं होता? अतः ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मन्त्र का उपदेश है–

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुज्जीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम्।।[3]

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी चर–अचर जीवन व्याप्त है वह सब ईश्वर के द्वारा बनाया गया है। इसलिए संसार की प्रत्येक वस्तु का त्याग करते हुए भोगों को भोगना चाहिए। किसी के धन के प्रति वासना नहीं रखनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहे तो इस सम्पूर्ण संसार में जो भी जीवन है, सब ईश्वर से भरा है। कोई चीज ईश्वर से खाली नहीं है यहाँ केवल उसी की सत्ता है, वही एक मालिक है। यह समझकर व्यक्ति को सब कुछ उसी को समर्पण करते हुए, उसी का प्रसाद समझकर वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है सब ईश्वर का है– ऐसी भावना रखनी चाहिए। जो

मनुष्य इस प्रकार की भावना से युक्त होगा, किसी भी वस्तु को अपना नहीं मानेगा तो वह सबका और सब उसका हो जायेगा। जब व्यक्ति के हृदय में सम का भाव होता है तब वह सबका और सब उसके हो जाते हैं। समानता के भाव का संकल्प ही मनुष्य को उसके अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाता है। यहाँ इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक उपभोग करने चाहिए। त्याग पूर्वक उपभोग से आशय है कि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग तो कीजिए किन्तु उसमें आसक्ति का भाव नहीं होना चाहिए। यदि वस्तुओं के प्रति आसक्ति होगी तो मोह भी होगा और मोह ही दुःख उत्पन्न करता है। अतः अनासक्त भाव से वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। इसे एक उदाहरण के द्वारा भी समझा जा सकता है जैसे–मान लीजिए आप किसी बस या ट्रेनादि में यात्रा करते हैं। जब तक आप यात्री के रूप से उस साधन का उपभोग करते हैं। तब आपकी उस साधन के प्रति आसक्ति नहीं होती, आप त्यागपूर्वक उसका आनन्द के साथ उपभोग करते हैं और गन्तव्य तक पहुँचने के बाद प्रसन्नता के साथ उस साधन का त्याग भी करते हैं। परिणाम स्वरूप आपकी यात्रा भी पूर्ण हो जाती है और आपको दुःख भी नहीं होता है। इसी प्रकार जीवन यात्रा में जो भी आपके पास साधन, मित्रादि जो भी सम्बन्ध है, उनका यदि बस या ट्रेनादि के समान त्याग पूर्वक उपभोग करते हैं तो आपका जीवन आनन्दमय व्यतीत होगा और जीवन यात्रा सुखमय व्यतीत होगी।

मनुष्य की इच्छाएं अनन्त होती हैं, और ये इच्छाएं कभी भी पूर्ण नहीं होती। यदि एक इच्छा पूर्ण होती है तो दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है, फिर तीसरी, चौथी इस प्रकार इच्छाओं का अन्त ही नहीं होता। 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' इस मन्त्रांश के द्वारा यही उपदेश दिया गया है कि यदि जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो तो किसी के धन की इच्छा मत करो क्योंकि धन की तृष्णा कभी भी शान्त नहीं होती। इसी धन की तृष्णा के कारण ही मनुष्य बड़े–बड़े अपराधों को करने से संकोच नहीं करता है। परिणाम स्वरूप उसे दुःख की प्राप्ति होती है। यह धन किसी के पास स्थायी नहीं रहता। यह चंचल स्वभाव वाला होता है अतः धन की तृष्णा नहीं रखनी चाहिए। पुरूषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की गणना की गई। इस क्रम में धर्मानुसार ही अर्थ को अर्जित करना चाहिए क्योकि धर्मानुसारेण अर्जित किया गया धन ही मनुष्य को सुख–शान्ति प्रदान करता है। अतः मनुष्य को दूसरों के धन का लालच नहीं करना चाहिए और न ही ईर्ष्या का भाव जागृत होना चाहिए। इस प्रकार उक्त मन्त्र में मनुष्य को सभी सम्पदाओं के अहंकार का त्याग करने का सूत्र दिया है तथा ईश्वर–समर्पण, भोग्य वस्तुओं का प्रसाद रूप में ग्रहण आदि जीवनव्यापी सिद्धान्त को बताया गया है।

आजकल देखा जाता है कि व्यक्ति बिना कार्य किये हुए धन की अभिलाषा रखता है और वह आलसी का जीवन व्यतीत करना चाहता है। वह इच्छा रखता है कि कर्म न करना पड़े और जीवन सुखमय व्यतीत हो जाय परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है ? कि कर्म भी करना न पड़े और सुख भी मिल जाये। ईशावास्योपनिषद् का उपदेश है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[4]

अर्थात् व्यक्ति को ''इस संसार में सद्कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। यही एक मार्ग है इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है और इस प्रकार के कर्म से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होते। इस मन्त्र में विश्वकल्याण के श्रेष्ठतम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि मनुष्य को सदैव निष्काम भाव से कर्म करते हुए सौ वर्षो तक जीवन यापन की इच्छा रखनी चाहिए। यदि मनुष्य अनासक्त भाव से कर्म करता है तो कर्म में वह लिप्त नहीं होता है। बिना कर्म किए ही दूसरे के धन की अभिलाषा करना, परिश्रम टालने की प्रवृत्ति ही मनुष्य के अन्दर अपराध का बीजारोपण का कार्य करती है। बिना कर्म किए फल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को केवल असफलता, निराशा एवं दुःख की ही प्राप्ति होती है। मनुष्य के जीवन में सद्कर्म ही एकमात्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति भौतिक उन्नति के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होता है। ईशावास्योपनिषद् का सीधा उपदेश है कि कर्महीन अर्थात् कर्म करने से बचने वाले व्यक्ति को जीने अधिकार नहीं है। यदि वह सुखमय एवं समृद्धिशाली जीवन चाहता है तो उसे सद्कर्म करना ही होगा यही एक मात्र कल्याण का मार्ग है, किन्तु यदि व्यक्ति कर्म को टालता है तो उसका जीवन भारयुक्त

होकर शापमय हो जाता है। जाने–अनजाने में सभी मनुष्य यही कर रहे हैं। और इसी से दुःख भोग रहे हैं। दुनिया में जो भी पाप कर्म हैं, वे सब इसी अकर्मठता से पैदा हुए हैं। अतः दुःख निवृत्ति हेतु कर्मठ होना आवश्यक है। यही कर्मठता व्यक्ति को सुख के साथ–साथ सांसारिक उन्नति की प्राप्ति कराती है। इसी के कारण मनुष्य स्वयं का परिवार, गांव, देश एवं विश्व का कल्याण करने में समर्थ हो सकता है।

यदि मनुष्य कर्मों को करते हुए आसक्त रहता है तो वह कर्म बन्धन में बंध जाता है, उसे कदापि मुक्ति प्राप्त नहीं होती, उसकी भोग प्रधान वृत्ति हो जाती है यह भोग प्रधान वृत्ति ही उसे दुःख प्रदान करती है। मनुष्य ईश्वर को ध्यान में रखते हुए कर्म करता है तो उसे सुख प्राप्त होता है। यह संसार ईश्वर द्वारा रचा गया है, संसार की प्रत्येक रचना में ईश्वर की सत्ता है, उसी का अंश विद्यमान है, बिना ईश्वर की सत्ता के एक सूखा तिनका हिल भी नहीं सकता है, तो मनुष्य ऐसे ईश्वर को कैसे भूल सकता है? उसे ईश्वर को सदैव सुख अथवा दुख में निरन्तर स्मरण करना चाहिए। इसके विपरीत यदि मनुष्य उस ईश्वर को भूलकर केवल उसकी बनाई दुनिया को ही सबकुछ समझकर आसक्ति से युक्त होकर केवल सांसारिक पदार्थों का उपभोग करने में व्यस्त रहता है और वह उस परमेश्वर का तिरस्कार कर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करता है तो ऐसा अहंकारी व्यक्ति नरक की पीड़ा को सहन करता है।

व्यक्ति निजकर्मानुसार स्वर्ग और नरक को भोगता है। भगवान ने दोनों ही मनुष्य के लिए बनाये हैं जो व्यक्ति निज शुभ कर्मों को ईश्वर को समर्पित करते हुए करता है तो उसे इसी जीवन में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग से तात्पर्य उसे सुख की प्राप्ति होती है और इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य भगवान को भूलकर, सद्कर्म निष्ठा को त्यागकर केवल आलस्य से युक्त होकर जीवन व्यतीत करता है तो उसे इसी जीवन में दुःख तो प्राप्त होगा ही साथ ही मरने के बाद भी अनेक असुरों की योनियाँ होती है जो दुःखरूप अन्धकार से आच्छादित होती हैं, वे सब उसे प्राप्त होती है। कर्मनिष्ठा को छोड़कर व्यक्ति आलस्य को अपनाने लगता है तो ऐसे मनुष्यों को इसी जीवन में नरक भोगना पड़ता है। ऐसे मनुष्य ''असुरों के जो प्रसिद्ध नानारूपात्मक (योनियाँ एवं नरकरूप) लोक हैं, वे सभी अज्ञान तथा दुःखरूप अन्धकार से आच्छादित हैं जो कोई भी आत्महत्या करने वाले प्राणी हैं, वे मरणोपरान्त उन्हीं लोकों को पुनः–पुनः प्राप्त करते हैं।[5] अर्थात् मरने के बाद काम–भोग परायण व्यक्ति को कूकर–शूकर आदि आसुरी योनियों में और भयानक नरकों में भटकना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को ईश्वर को समर्पित करते हुए कर्मों को करना चाहिए जिससे वह सद्गति को प्राप्त कर सके। अनासक्त भाव से किए गये कर्मों का फल शुभ एवं शान्तिदायक होता है। ईश्वर के प्रति समर्पित व्यक्ति को कदापि किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. ईशावास्योपनिषद् / मंगलाचरण
2. सांख्यकारिका / ईश्वरकृष्ण / कारिका– 01
3. ईशावास्योपनिषद् / मन्त्र – 01
4. ईशावास्योपनिषद् / मन्त्र–02
5. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
   ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।
   (ईशा0उ0 / मन्त्र–03)

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

Water Management in Ancient Times in South India

Dr. Vivek Sengar
Assistant Professor, Department of History
Sri Varshney College, Aligarh

River Narmada was considered as a boundary between North and South parts of Indian Subcontinent. For our ancestors crossing Narmada was meant starting of Dakshianpath[1] that is journey towards South. Today's South India is constituted by fivestates.

1. Karnataka,
2. Andhra Pradesh,
3. Telangana,
4. Tamilnadu
5. Kerala.

The earliest references of water management date back to two millennia.Choul Raj from South, constructed barriers on River Cauvery in first century A.D. known asGrand Anicuts and even today, after 1900 years, this system of storing water and supplying it to agriculture is effectively working[2]. Two different types of dynasties ruled over South India during 1st century A.D. to 300 A.D. The Pandya, Chola and Pallavas belonged to Tamil Group while Chalukya and Rashtrakutas were from Deccan. The life style of people and their social, economical status is referred to in Sangam Literature[3](300 B.C. – 300 A.D.). Rice production using horticultural means started during these times. People residing on the sea shores were aware about the rice production well before. All the big empires in South India flourished on the banks of rivers and the rulers had shown deep interest in agriculture. Because of the rulers and subjects and horticultural methods they had employed forrice production, South India became for entire of India. Turmeric production also started here during these times.

There were many methods of storing water and many methods of improving fertility of soil. Entire life of people during these times moved around agriculture and irrigation was an integral part of it. So, use of wells and ponds to irrigate the fields was integral part of agriculture. Bulls were used to fetch water out of wells. Apart from small wells and canals, many dams were built on Cauvery and Vaigai rivers to control the floods and regulate the water for irrigation of the fields. The Cholas had built many tanks for the purpose of irrigation. One of the most famous rulers of Chola Dynasty, Karikala[4] had built a bund on Cauvery as a protective measure from regular floods.During Gupta times, well irrigation was a regular feature. Small bunds were also built and flow of water was regulated for better irrigation. Bandhya was a type of canal used to direct water inside the fields and water was then stored in the fields.

Chalukya Dynasty[5] (6th to 12th Century A.D.) was founded by King Pulakeshi I. This dynasty ruled over Maharashtra and parts of Karnataka for more than two centuries.

Chalukya King Vikramaditya VI[6] mentioned in his inscriptions that he had created Bhimsamudra, a reservoir at Ganeshwadi, Tal. Nilanga, Dist. Latur, Maharashtra. In different time frames, the Chalukya Kings created such reservoirs at various places like Aradhyapur, Sagaroli, Mahur (Dist. Nanded) in Maharashtra.

Chalukayas had built many reservoirs and wells which were known as Baravas in Maharashtra. Kirtivarman II was the last king of Chalukyas who was defeated bywasShantidurg of Rashtrakuta Dynasty. Rashtrakutas also had concentrated in improving irrigation facilities. They had built many reservoirs in Maharashtra. In Tamilnadu, Singhwarman[7] (550 A.D.) had founded Pallava Dynasty. This dynasty had built many reservoirs in Tamilnadu which are known as Talav or Tatak. Mahendrawarman I also followed footsteps of his predecessor and initiated building of many reservoirs. ParmeshwaraTatak and TiraynneriTatak were built during 7th century. The inscriptions in which Jalyantras are mentioned also date back to 7th century A.D. Vairimega, Gudimalan and UkaiTataks were built at the end of 8th century A.D. and Kanakawallari and KaveripakTataks were built in 9th century A.D..Kaveripak is huge reservoir with a bund of 6.4 Km stretching from North to South.

Chola Dynasty founded by King Chola in 975 A.D. dominated South India till the beginning of 13th century A.D. They had constructed Barrier Bunds on many subrivers and major rivers also. On Cauvery they had constructed Vennara and Arasil Bunds. Such Bunds or Dams were very famous in Tanjawar district. In 10th century A.D. Cholas has constructed Tangunda and Chickbalpur dams in Karnataka. If we consider state as a unit, Karnataka never had the natural reservoirs and Karnataka's soil has Granite stones to great extend which do not allow water to get absorbed. The absorption potential of this soil is just 1%. Therefore, whenever a bund was constructed at the top level of the catchment on the stream, the soil never held water and allowed it to flow down. For this water, the visionary builders added another bund which also collected the overflowing water and then they created the series of bunds not only in one catchment but also in all possible catchments. This gave rise to series of bunds of variable heights in the region which allowed the excess water to be collected in the next bund. This downwardly regulated flow of water kept the entire region wet and irrigated through the year.

In Karnataka there are 38,080 such dams out of which Ramsagar, Vyassamudra, Ayankere, Sulekere are really big. Sulekare has circumference of 64 Km from which various canals were dug to take this water to fields.

Water is revered as God in Karnataka in ancient times. At local level they have constructed reservoirs known as Kere. They dug Kunte which were slightly deeper storage ponds and had built small ponds known as Katte made up of stone, soil and limestone. They had also constructed small wells which may be open or closed. They had constructed wells inside the reservoirs also. There was a system to erect a small bund inside the reservoir to maximize usage of its water.

Here, we are considering state as a unit for the study of water management because we consider a state as a unit of administration in India. So, if we consider state as a unit, in ancient times, there was a complete system of water management in Karnataka which was managed from top to bottom in any catchment area and therewere supporting systems like canals to take the water to irrigate the fields and therewere smaller structures which were used as sources of drinking water for local people. In one of the Southern States, Telangana,

Kakatiya Dynasty (1163 A.D. – 1323 A.D.) also worked on the principles of Water Management which helped their subjects immensely.

Cholas had also built reservoirs in Tamilnadu. After Pallavas, Cholas continued this activity here. CholavardhiTalav, Sohativallam and TakkolamTalavas are the examples.

In Pudducherry (Modern Pondicherry) also reservoirs were built during 6th to 11th century A.D. They are living examples of ancient reservoir construction technology. The reservoirs are still functional even after centuries have passed after theirfoundation was laid. The reservoirs can be categorized as independent reservoirs or reservoirs in series. For example, 100 reservoirs were built in series in the Valley ofPalar.

Indians in ancient times while establishing permanent and regular water supply surveyed for potential areas and constructed reservoirs according to their needs. According to the needs and availability of resources our ancestors had created and modified structures that would manage Water efficiently.

Reference :

1. Dakshindpath – South Indian Real
2. Originated from Tamil Language anaikattu&Kannad Language – Anekattu
3. Artificial dam or barrier made of earth built across a river or stream.
4. History of South India K.A. NilkantSastri Oxford University Press – Page No. 64 Year 2011
5. दकनकाप्राचीनइतिहास– सं0 गुलाम खाज़दानीपेज– 189 मैकमिलनकम्पनीआफइंडियालिमिटेडनईदिल्ली– 1977
6. History of South India K.A. NilkantSastri Oxford University Press – Page No. 66 Year 2011
7. History of South India K.A. NilkantSastri Oxford University Press – Page No. 30 Year 2011

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख ललित निबन्ध

किरन पाल
शोध छात्रा
राम अवध यादव गन्ना कृषक पी.जी. कॉलेज,
ताखा, शाहगंज, जौनपुर

'कदम की फूली डाल' विद्यानिवास मिश्र जी का एक अन्य प्रमुख निबंध संग्रहहै, जिसका प्रकाशन 1956 ईस्वी में हुआ। कुल 22 निबंधों से आबद्ध यह संग्रह अपने आप में उत्कृष्ट है। इसमें संकलित निबंधों की चर्चा अन्य संग्रह में भी की गई है। इसमें संग्रहित निबंधों के बारे में स्वयं डॉक्टर विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं–"प्रणय या मैत्री की जिस भूमि में छतनार छितवन का बिरवा रोपा था, वह भूमि आज रेत रेत हो गई है। उन्हीं भावुक क्षणों की प्रतिक्रियाएं ही इनमें अधिक हैं जो अर्धरात्रि के नीरव में मानसिक उद्वेलन मंथन की विवशताओं के परिणाम हैं।"[1]

यह निबंध संग्रह तीन भागों में विभाजित है। प्रथम खंड– यात्रा खंड, दूसरा खंड– चिंतन खंड तथा तीसरा खंड–स्वप्न खंड के नाम से है। प्रथम खंड, यात्रा खंड में कुल 9 निबंध संग्रहीत हैं। 'मुकुट मेखला नूपुर', 'राष्ट्रपति की छाया', 'अमरकंटक की सालती स्मृति', 'रुपहला धुआं', 'कलचुरिओं की राजधानी गुर्गी', 'रेवा से रींवा', 'होइहैं शिला सब चंद्रमुखी', 'बेतवा के तीर पर', 'विंध्य की धरता धरती का वरदान' आदि।

चिन्तन खण्ड मैं भी 9 निबंध उदधृत है। इस खंड के निबन्धों मे। "भारतेन्दु युग का आभार", "कला में दैनिक आग्रह", "साहित्य और इतिहास", "दिग्भ्रम क्यों?", "रससिद्धांत और दान", "नये मापदण्ड की मांग", "कृष्णकाव्य और भारतेन्दु", "मेघदूत का"सन्देश", "लोकसाहित्य की भूमिका"आदि हैं।

स्वप्न खण्ड के अंतर्गतकुल चार निबंध संकलित किये गए हैं जो इस प्रकार हैं–"अनेन किन छिंतराम", "चिरैया एक बोलेले", "ढेरे–धेरे मुरली बजाउ", "कदम को फूली डोल"। यदि हम इन खंडों में संकलित निबंधों की विशेषताओं को अवलोकित करें तो प्रथम भाग के निबंध सौंदर्य दर्शन तथा पर्यटन से संबंधित दिखाई पड़ते हैं। मिश्र जी जब विंध्य प्रदेश के सूचना विभाग में सेवारत थे, उस समय उन्होंने जिन जिन दर्शनीय स्थानों का भ्रमण किया था उन सभी स्थानों का यात्रा विवरण इन निबंधों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। द्वितीय भाग में ऐसे निबंध सम्मिलित हैं जिनके द्वारा आधुनिक जिज्ञासाओं का समाधान संभव हो पाता है, क्योंकि इनमें समकालीन समस्याओं को उजागर किया गया है। तृतीय भाग के निबंध स्वानुभूति का अंकन करते दिखाई पड़ते हैं।इन निबंधों की विशेषता इनमें चित्रित संस्कृतिक चेतना है। इनमें साहित्य, प्रकृति तथा अंतर्मन के सौंदर्य के साथ–साथ मानवीय मूल्यों की संवेदना की पड़ताल की गई है। डॉ. विभूराम मिश्र भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार–"ये निबंध लेखक की अध्ययनशीलता और सांस्कृति चेतना–संपन्नता के प्रमाण हैं। निबन्धों में साहित्य, प्रकृति और मानव मन के सौन्दर्य की परख की गई हैं।"[2]

विद्यानिवास मिश्र के श्रेष्ठ निबंध संग्रहों में इस निबंध संग्रह को शामिल किया गया है, जिसमें 24 निबंधों का संकलन है। इन निबंधों में भारतीय संस्कृतिके प्रतीक चिन्हों का जैसे विवरण सा दिया गया हो। भारतीय संस्कृति के मूल्य तथा मान्यताओं को भी इन निबंधों में भावभूमि प्रदान की गई है। सत्य धर्म, जीवन धर्म, दान धर्म, जैसे मानवीय मूल्य इन निबंधों को उत्कृष्टता के चरम पर अवस्थित करते हैं। ये निबंध जातीय अस्मिता की पहचान के साथ–साथ मन की अतल गहराइयों में उतर कर शिवत्व का बोध कराते हैं। इनकी उत्कृष्टता का व्याख्यापन करते हुए श्री नारायण चतुर्वेदी लिखते हैं–"ये निबंध उच्च कोटि के ही नहीं हैं, यह भारत की आत्मा के दर्पण हैं। अन्य आधुनिक निबंधों ने मुझे

इतना आकर्षित और प्रभावित नहीं किया जितना कि इन निबंधों ने। मेरा निश्चय मत है कि उनका स्थाई मूल्य है, और आज से 100 वर्ष बाद भी वे उतने ही ताजे और पठनीय रहेंगे, और उतने ही शिक्षाप्रद और उपयोगी भी, जितने आज हैं। इन निबंधों ने हिंदी साहित्य में पंडित विद्यानिवास मिश्र का स्थाई स्थान निश्चित कर दिया है।"[3]

इनमें भगवान शिव, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम तथा गौतम बुद्ध जैसे भारतीय संस्कृति के शिखर पुरुषों तथा आराध्य देवों के उल्लेख हैं, तो दूसरी तरफ हिमालय, सायंकाल, भोर, विंध्य, जैसे संस्कृति के प्रतीक चिन्ह उपस्थित हैं। मांगलिक प्रतीक चिन्हों का भी इन निबंधों में चित्रण है, जिसमें –दूब, दधि, अक्षततथा चंदन आदि हैं। इन निबंधों में लेखक का व्यक्तिगत व्यक्तित्व तथा व्यापक ज्ञान के चित्रण के साथ–साथ उनकी प्रगाढ़ चिंतन क्षमता की छाप दृष्टिगत होती है। इस निबंध संग्रह में संग्रहित निबंधों में से कुछ निबंध जैसे 'विजयादशमी पर एक पत्र', 'भ्रमरानंद के पत्र', 'गंगायाम घोषः', 'बेचिरागी गांव', 'भोर का आवाहन', 'संध्या का ध्यान' जैसे निबंध 'भोर का आवाहन' निबंध संकलन में संग्रहीत है तथा 'हल्दी दूब' और 'दही अच्छत' नामक निबंध 'गांव का मन' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहित है।

'अहमवृतात्सत्य मुपैमि'निबन्ध में सत्य–धर्म का प्रख्यापन करते हुए उसे अविभाज्य माना गया है। अनादिकालसे मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति सत्य का अन्वेषण करना रहा है। वह झूठ का निषेध करता है और सत्य की स्थापना का प्रयास करता है इस निबंध में युधिष्ठिर और राम को लेकर सत्य के स्वरूप का व्याख्यापन है।

"दाम्यतदत्तदयध्वम्" एक लघु निबन्ध है जिसमें दान की महत्ता प्रतिपादित की गयी हैं। दान हिंदू धर्म शास्त्रों में बहुत ही महत्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ कर्म माना गया है। संसार में दया के समान कोई धर्म नहीं। इसे ही मानव जीवन का मंत्र माना गया है। "मा पुरो जरसो मृथाः" में देश की संस्कृति एवं जीवन दर्शन को समझाया हैं। धार्मिक तथा साहित्यिक संदर्भों के द्वारा कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है। इसी प्रकार का मंतव्य "कर्मयोगशास्त्र" निबंध में भी है। इसमें भगवान श्री कृष्ण द्वारा श्रीमद भगवत गीता में वर्णित कर्मयोग की विवेचना की गई है जिसे स्वर्गीय लोकमान्य तिलक द्वारा अपने सम्यक प्रयासों से जनसामान्य तक पहुंचाया गया।

"व्यक्ति और समष्टि की सन्धि" निबंध में आनन्द की प्रतिष्ठा की गई है। मनुष्य जीवन का सर्व प्रमुख लक्ष्य आनंद की प्राप्ति है। इसके अनुसार साहित्य का प्रमुख कार्य आनंद उत्पत्ति है। "कला, शक्ति और शिव" निबन्ध कला कीमहत्ता प्रतिपादित करते हुएशिवतत्व पर गहन चिंतन प्रस्तुत करता है। इस निबंध में पाश्चात्य कला दृष्टि तथा पौर्वात्य कला दृष्टि के बीच अंतर को रेखांकित करते हुए पौर्वात्य कला को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। "तांत्रिक कला की साध्य भूमि खजुराहो" में चित्रित कला पर गहन चिंतनात्मक दृष्टि द्वारा तांत्रिक कला की विवेचना करते हुए उस पर कुछ लोगों द्वारा लगाए गए आरोपों का तर्कपूर्ण खंडन सन्निहित है। "विनयी विध्याचल" में विध्याचल पर्वत तथा उसके आसपास स्थित भूभाग की नैसर्गिक सुषमा अंकित हुई है। विंध्याचल पर्वत के आसपास का समस्त वातावरण प्राकृतिक होने के नाते अत्यंत रमणीक है।

"नगाधिराज हिमालय" तथा "गंगायां घोषः" में हिमालय और गंगा को हमारी साँस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। नगाधिराज हिमालय में भगवान शिव तथा माता पार्वती के विवाह की चर्चा अंकित है तथा हिमालय को सांस्कृतिक विकास का प्रतीक प्रख्यापित किया गया है। "विजयादशमी पर एक पत्र" में हमारी अस्त होती परम्पराओं पर दुख व्यक्त किया गया है। "जयति जन निवासो देवकी जन्मवादः मेंश्री कृष्ण के जन्म से संबंधित कथानक का वर्णन है। "शिवजी की बारात" व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया निबन्ध है जिसमें भगवान शिव के द्वितीय विवाह का वर्णन बड़ी ही रोचकता के साथ किया गया है। "बौध्दावतारे" में गौतम बुध्द की गाथावर्णित है। इस निबंध में बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग के उल्लेख के साथ उसकी हिंदू धर्म के सिद्धान्तों तथा नियमों के साथ तुलना भी की गई है। महात्मा बुद्ध द्वारा हिंदू धर्म में व्याप्त रूढ़ियों पर करारा चोट इस निबंध की विषय वस्तु है। "बेचिरागी गाँव" में ग्रामीण परिवेश को उकेरा गया है। 'भारे का आवाहन' में भी ग्रामीण परिवेश का चित्रण है।

"संध्या का ध्यान" में भारतीय जीवन पद्धति में विवाह संस्कार का चित्रण हुआ है। भारतीय विवाह पद्धति में मांगलिक लोकगीतों के गाय जाने की परंपरा रही है। इस निबंध में भी मांगलिक लोकगीतों के माध्यम से लोकसंस्कृति चित्रित हुई हैं। "मुरली की टेर", "पूर्णमदः पूर्णमिदम्", "नमः शिवाय", निर्माल्य, "हल्दी–दूब और दधि अच्छत जैसे निबंधों के माध्यम से भारतीय संस्कृति तथा जीवन दर्शन पर प्रकाश प्रक्षेपित करने का प्रयास किया गया है। अपने इन निबंधों के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए स्वयं डॉ. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं–"मेरे ये निबंध तीन प्रकार के हैं, भारतीय संस्कृत की मूल मान्यताओं पर लिखे गए निबंध, भारतीय संस्कृति के आराध्यों पर लिखे गए निबंध और भारतीय मांगलिक प्रतीकों पर लिखे गए निबंध।"[4]

'तुम चंदन हम पानी' निबंधसंग्रह के बारे में श्री नारायण चतुर्वेदी की उक्ति समीचीन जान पड़ती है–"इन निबंधों ने अतल के अंधकार में छिपे उन मांगलिक तत्वों पर प्रकाश डाल कर उन्हें आलोकित कर दिया है, जिससे हम साधारण जन भी जो भौतिकता, नवीनता और सुविधा के घटाटोप से घिरे रहने के कारण उन्हें देख नहीं पाते उन्हें स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।"[5]

यह निबंध संग्रह दो भागों में विभक्त है जिसमें पहले भाग का शीर्षक 'आंगन का पंछी' तथा दूसरे भाग का शीर्षक 'बंजारा मन' है। इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन 1962 में वाणी प्रकाशन द्वारा किया गया। सेवानिवृत्ति के बाद गोरखपुर लौटने पर उन्होंने इन निबंधोंकी रचना की। स्वयं लेखक ने इस बात को रेखांकित किया है–

"सरकारी नौकरी छोड़कर जहां एक ओर बड़ी राहत मिली, वहीं विश्वविद्यालय का स्थिर एवं बिजडित वातावरण देखकर परायापन भी जगा।पहली मनः स्थित के अंतर्गत निबंध 'आंगन के पंछी' है और दूसरा मनः स्थिति के 'बंजारे मन' हैं।"[6]

इस निबंध संग्रह की रचना रचनाकार ने बड़ी दुविधात्मक स्थिति में किया था, इसीलिए इसे दुविधा मन से रची गई रचना कहा। इसीलिए इसका शीर्षक भी दुविधात्मक है। लेखक स्वयं इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखता है–"छितवन की छांह' मेरे मादक दिनों की देन है, 'कदम की फूली डाल' मेरे विंध्य प्रवास का फल है और 'तुम चंदन हम पानी' मेरे संस्कृति अन्वेषण की उपलब्धि है। अब जो चौथा संग्रह आपके हाथों में है, दुविधा के क्षणों की सृष्टि है। इसलिए इसका शीर्षक भी दुविधात्मक है। वर्षों तक जिस भोजपुरी वातावरण के स्मृति चित्र उरेहता रहा, उसी में मनचाहे पद पर जब वापस लौटा तो दो विपरीत भावनाएं मन में उठीं। अपने आंगन में लौटने की खुशी और घर पोसू होने की आशंका। इसलिए जहां मन आंगन का पंछी बनकर चहका, वही उसका बंजारापन उसे विगत और अनागत दिशाओं में रमने घूमने के लिए अकुलाता भी रहा।"[7]

'आँगन का पंक्षी' शीर्षक के अन्तर्गत 11 निबन्ध संग्रहीत किये गए हैं, जिनमे'आँगन का पंक्षी', 'पार्थिव धर्म', 'आम्रमंजरी', 'फूलतवपात', 'अग्रपुरुष', 'संस्कृत की पाषाणी', 'नया दौर', 'प्रभुत्व ज्वर', 'अस्पताल', 'ये विपथगाएँ', 'जयति मंगलाकाली', 'दियेवाती का मेल'आदि निबन्ध संग्रहित है। 'वनजारा मन' शीर्षक के अन्तर्गत 'सदा अनन्द रहे एहि द्वारे', 'डयोढ़े दर्जे का खातिमा', 'डेरी बनाम खेती', 'नरनारायण', 'इकाई बनाम दहाई', 'मलय के अंचल में', 'मेरी रूमाल खो गई' 'कमल भक्षकों के देश में', और 'वनजारा मन' आदि निबन्ध हैं।इन निबंधों में मुख्यतः लोक संस्कृति ही मुखरित हुई है। इनकी रचना तथा भाषा शैली अत्यंत गंभीर सहज व सुंदर है। साथ ही विषय वस्तु उत्कृष्ट कोटि की है।

आंगन का पंछी निबंध मैं गौरैया नाम की पक्षी का वर्णन है जिसे आंगन की पंछी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। गौरैया पंछी निशंक तथा निर्भीक रूप से मानव की सहचर बनकर उसके आंगन में मंडरातीहै। तुलसी के विरवे की महत्ता का भी इस निबंध में व्याख्यापन है।गौरैया तथा तुलसी के बिरवा को केंद्र में रखकर पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का चित्रण है। 'पार्थिव धर्म' में पृथ्वी की क्षमाशीलता का वर्णन है। माता सीता की जीवन गाथा को लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। 'आम्र मंजरी' में वसंत ऋतु का वर्णन है जिसे विभिन्न संस्कृत कवियों के श्लोकों द्वारा वर्णित किया गया है। महाकवि कालिदास के ग्रंथों मैं शिव पार्वती तथा दुष्यंत शकुंतला के प्रसंगों में आम्र मंजरी के माध्यम से काम की प्रयोजनीयता प्रतिपादित हुई है। फूल तब पात द्वारा सिद्धांत रचना की विभिन्न

चरणों का प्रतिपादन है जिसे फूल तथा पात्र के उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। निबंधकार के अनुसार–"पहले फूल आते हैं, तब पल्लव आते हैं, तब कोयल बोलती है, उसी प्रकार कोई सिद्धांत या मत पूर्ण विकसित होता है।"[8]

इसमें निबंधकार यह मानता है कि किसी को भी अपनी बात समझाने के पहले उसकी बात समझना आवश्यक है, क्योंकि कोई भी विवाद तभी सार्थकता को प्राप्त कर सकता है जब हम उस वाद को समझें।

'अग्र पुरुष' निबंध में श्री कृष्ण को ही अग्र पुरुष तथा लोक पुरुष के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें महाभारत काल में महाराज युधिष्ठिर द्वारा किए गए राजसूय यज्ञ तथा उसमें घटी घटनाओं का चित्रण है, जिसमें पितामह भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ पुरुष घोषित किया गया था, जिसे देखकर शिशुपाल द्वारा विरोध किए जाने पर श्री कृष्ण द्वारा उसके वध का घटनाक्रम दर्शाया गया है। 'संस्कृति की पाषाणी' निबंध में पाषाण कालीन संस्कृति का वर्णन तथा खजुराहो के कंदर्पेश्वर मंदिर की चित्रकारी का विशेष उल्लेख है। कंदर्पेश्वर का शिल्पी कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वह लेखक, कलाकार होने के साथ–साथ आचार्य और दार्शनिक भी है, क्योंकि बिना इन गुणों के वह इतनी सुंदर चित्रकारी करने में समर्थ न हो पाता। 'नया दौर' निबंध में शासकीय योजनाओं को निगलते हुएभ्रष्ट तंत्र तथा स्वार्थी राजनीति का चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। 'प्रभुत्व ज्वर अस्पताल' निबंध में मंत्रियों तथा अधिकारियों द्वारा अपने अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों पर प्रभुत्व जमाने की भावना व्यक्त की गई है, जिसे आधार बनाकर निबंधकार व्यंग कसता है। 'ये विपथगाएं' निबंध उन साहित्यकारों को फटकारता दिखाई पड़ता है जोधन, पद, पुरस्कार तथा अन्य सुख सुविधाओं की चाहत में साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध नहीं दिखाई देते। लेखक की दृष्टि में ऐसे ही साहित्यकार 'विपथगा' है। लेखक ऐसे साहित्यकारों को राजस्थान की मृग मरीचिका में चले जाने का आग्रह करता है। 'जयंती मंगला काली' निबंध में परिवर्तित होती परंपराओं तथा उसके प्रति बदलते मानवीय दृष्टिकोण का उल्लेख है। इस निबंध में आध्यात्मिक शक्तियों काली, दुर्गा, पार्वती, शिव, रावण आदि का भी उल्लेख है। 'दीया बाती का मेल' निबंध में अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं के माध्यम से लोक परंपराओं तथा स्मृतियों को जागृत किया है और उसी के माध्यम से सामाजिक सद्भावना को पुष्ट करता है। 'सदा अनंद रहे यही द्वारे' पत्रात्मक शैली में लिखा गया निबंध है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में निवास कर रहे लोगों के बीच आपसी प्रेम तथा सद्भावना व्यक्त की गई है। 'ड्योढ़े दर्जे का खातिमा' निबंध में कवियों तथा साहित्यकारों द्वारा कवि सम्मेलनों में भाग लेने के लिए मची होड़ पर व्यंग कसा गया है। इसी कारण रेलवे विभाग ड्योढ़े दर्जे का टिकट बंद कर दूसरे दर्जे का टिकट चालू कर देता है। 'डेरी बनाम खेती' निबंध के द्वारा खेती को अत्यधिक परिश्रम का समझकर दूसरे कामों को ढूंढने की लोगों की मानसिकता पर व्यंग्य कसा गया है, साथ ही साहित्यकारों की कल्पनात्मक उड़ान को भी व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'नर और नारायण' उपन्यास मनुष्य को नारायण की आराधना की तरफ ले जाता है। 'मलय के अंचल' निबंध में दक्षिण के नैसर्गिक सुषमा से परिपूर्ण कला तीर्थों के चित्रण के साथ लेखक के दक्षिण भारत की यात्रा काउल्लेख है। 'मेरी रुमाल खो गई' में जीवन से आनंद के नष्ट हो जाने पर दुख व्यक्त किया गया है। इसमें लेखक की कुछ सामान्य आदतों का भी उल्लेख है। 'इकाई बनाम दहाई' निबंध में उस मानवीय अवस्था का वर्णन है जिसमें वह स्वच्छंद होकर भी स्वयं को विवश ही समझता है और इसे समय का तकाजा मानता है। 'कमल भक्षकों के देश में' आलोचकों की दृष्टि पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया गया है। आलोचना के क्षेत्र में अपनाए जा रहे नए–नए आयामों पर व्यंग के माध्यम से प्रहार किया गया है। शोध छात्रों तथा शोध निर्देशकों की मानसिकता पर भी यह निबंध करारा व्यंग करता है। इस संग्रह के अंतिम निबंध 'बंजारा मन' में अध्यापकीय वृत्ति का चित्रण है।

संदर्भ :

1. *डॉ. श्याम सुंदर पांडेयः विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्यः संदर्भ और अभिव्यक्ति; पृष्ठ –67, संस्करण– 2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)*

2. *डॉ. दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 61 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

3. *डॉ. निशी भदौरिया : निबंधकार विद्यानिवास मिश्र; पृष्ठ– 20, प्रथम संस्करण –2014 (रोली प्रकाशन कानपुर)*

4. *डॉ. दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 62 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

5. *डॉ. दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 61 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

6. *डॉ. दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 63 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

7. *डॉ. एस एल कुमारी : डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध :आलोचनात्मक अध्ययन; पृष्ठ– 50, प्रथम संस्करण –2017 (अपर्णा प्रकाशन कानपुर)*

8. *डॉ. दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 62 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

हिन्दी उपन्यास का परिचय एवं सामाजिक चेतना भूमि

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़
सम्पादक- World Translation एवं International Literary Quest
प्रधान सम्पादक- Shodh

उपन्यास का सामान्य अर्थ है 'सामने रखना इसमें प्रसादन/प्रसन्न करने का भाव निहित रहता है। किसी घटना को इस तरह सामने रखा जाय कि उससे दूसरे को प्रसन्नता हो तो उपन्यस्त करना कहा जायेगा। उपन्यास लोक जीवन की व्यापक अपेक्षाओं के दबाव में साहित्यिक विधा के रूप में अस्तित्व में आया। इसे आधुनिक लोक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। इसकी शुरूआत हमारे आख्यान साहित्य से ही हो गयी थी। ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले उपन्यास का संकेत संस्कृत के आख्यानों में मिलते हैं। यह जरूर है कि मध्यवर्गीय समाज की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं ने अपने आस–पास के जीवन को अंकित करनें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनुकूल परिस्थितियां पाकर इसका विकास भारतेन्दु युग से ही हो गया। उपन्यास के बारे में लिखा है **'यह शब्द उप (समीप) तथा न्यास (थाती) के योग से बना है जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है। इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है इसमे हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है।'**[1]

इसके सन्दर्भ में मुंशी प्रेमचन्द का मानना है **'मै उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है।'**[2] सबका निहितार्थ यही है कि उपन्यास में ऐसे चरित्र हो जो पाठक को सम्मोहित कर ले, इसमे अपने आस–पास के चरित्र रहने चाहिए जो सद्व्यवहार एवं सद्विचार से सजीव चित्रण प्रस्तुत कर सके।

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना की शुरूआत तो हिन्दी के प्रथम उपन्यास श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा लिखित उपन्सास 'भाग्यवती' (1877) से ही हो जाती है। ये शुरूआती उपन्यास आर्यसमाज व सनातनधर्मी सिद्वान्तों के इर्द–गिर्द लिखे गये थे। ये सब उपन्यास समाज को दिशा देने के लिए लिखे गये थे। हलाकि यह उपन्यास छोटा था लेकिन शुरूआती दौर के हिसाब से बहुत ठीक था। बांग्ला में सामाजिक उपन्यास पहले से था लेकिन हिन्दी में यह प्रथम था क्योंकि भारतेन्दु जी ने **'पूर्ण प्रकाश ' और 'चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद कराया था। भारतेन्दु युगीन सुधारवादी आग्रहों के अनुकूल ही इसमें एक ओर यदि बृद्व विवाह के दोषों का उद्घाटन किया गया था तो वही इस समस्या के निदान के रूप में लड़कियों की शिक्षा पर बल दिया गया था। मध्यवर्ग के पढ़े– लिखे लोग नव विकसित गद्य रूप (उपन्यास) के पाठक रहे हैं और उन्हीं में से कुछ अपने या अपने आस–पास के जीवन को अंकित करने की लालसा से उत्प्रेरित होकर ही उसमे रचनात्मक हस्तक्षेप की दिशा में अग्रसर हुए है।'**[3]

'भाग्यवती' मे फुल्लौरी जी ने बालविवाह का विरोध , विधवा विवाह की स्वीकृति, विवाह मे फिजूल खर्ची के स्थान का सादगी पर बल दिया गया है । फुल्लौरी जी सनातन धर्मी ब्राह्मण होते हुए भी व्याख्यान और कथाओं के माध्यम से धार्मिक आडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िगत अंधविश्वासों के विरूद्व संघर्ष किये। विवाह में दहेज, आतिशबाजी जैसे फिजूलखर्ची के विरोधी थे, इन्होने अवैज्ञानिक विवेकरहित कर्मकांडो का विरोध किया । इनके उपन्यास की नायिका भाग्यवती सद्व्यवहार व सेवा के बल पर भारतीय स्त्री के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है।

'गबन' में मुंशी प्रेमचन्द जी ने फिजूलखर्ची के दुष्परिणामों को उद्घाटित किया है। **'एक शिक्षित व गुणवती स्त्री अपने मायके और ससुराल दोनो ही परिवारों में कैसे उजाला कर सकती है। जो भी उसके सम्पर्क में आता वह पहले की अपेक्षा बेहतर बन कर निकलता है, अपनी शिक्षा के कारण वह अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पाखण्ड और अंधविश्वासों से स्वयं बचती व दूसरे को भी बचाती भी है।'**[4]

शिक्षा के बल पर 'अलका' का विजय 'कुल्लीभाट' का कुल्ली 'निरूपमा' का निरू भी सामाजिक परिवर्तन करने की बात करते हैं।

इसके बाद अग्रेजी ढंग का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' (1882) में लिखा गया है। इसमें श्रीनिवास दास जी अपने समकालीन मध्यवर्गीय समाज और सम्पूर्ण देश–दशा का परिचय दिया है। नायक मदन मोहन नव शिक्षित मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है, इसमें निजी व वास्तविक लगने वाली घटना का वर्णन है। चरित्रों का क्रमिक विकास न दिखाकर उन्हें अपनी मानवीय दुर्बलताओं एवं सबलताओं से संयुक्त कर हमारे जाने पहचाने जीते जागते मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। समाज के बीच ही मनुष्य के जीवनानुभव का विस्तार होता है इससे उसमें प्रौढ़ता या परिपक्वता आती है। यौवनावेग व स्वार्थी लोगो के वशीभूत आदमी सही रास्ते से वंचित हो जाता है। यही ठोकरें ही उसका गुरू बनती है।

ब्रजकिशोर विकासोन्मुख मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। वह स्वदेशाभिमानी के साथ– साथ देश की दशा से भी परिचित है। ब्रिटिश शासन के लोग इतने पीड़ित थे कि प्रत्यक्ष रूप से स्वदेश व स्वराज्य की बात नहीं कर सकते थे, ऐसे समय इस उपन्यास में एकता अखण्डता की बात की गयी है। वह एकता के पक्ष में है। दुःख या ठोकरें ही आदमी की परीक्षा लेते है। यह सदियों से देखते आ रहे हैं, यह सामाजिक सत्य भी है।

एकता में विघटन से ही देश का नुकसान होता है। उन्नीसवी सदी में जब हमारे देश में राष्ट्रीयता के बीज अभी पृष्टभूमि मे थे ऐसे में एकता की बात की आवश्यकता थी। अकर्मण्यता के कारण ही देश की उन्नति नहीं हो पा रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द जी भी अकर्मण्ता को ही देश की उन्नति की सबसे बड़ी बाधा बताते है। आरम्भिक उपन्यासों का मुख्य प्रेरक तत्व समाज सुधार की भावना थी। परीक्षा गुरू को सब मिलाकर नीतिपरक और उपदेशात्मक उपन्यास कहा जाता है जो कि समाज के विकास के लिए अति आवश्यक है। इसमें कुसंगतग्रस्त युवक मदनमोहन को केन्द्र में रखकर समाज के ऐसे चरित्रों की तरफ संकेत किया है। **'पिता से विरासत में मिली अकूत सम्पति व व्यवसाय को संभालकर रख पाने की क्षमता उसमें नही है मित्रों और चापलूसों से घिरकर वह उस सम्पति को नष्ट कर देता है। अहंकार और मिथ्या प्रदर्शन उसके चरित्र में घुसी बुराइयॉ है। उसकी दरबारी करने वाले, खुशामदी मुसाहिब उसे लूटकर अपना घर भरने लगते है, इसी सारे लोगों के बीच व्रजकिशोर (वकील) उसका वास्तविक मित्र व हितैषी है लेकिन कुसंगति की पट्टी बंधी होने के कारण मदनमोहन उसके महत्व को नहीं पहचान पाता है।'**[5]

इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यासकार भी जो सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार करने में मुख्य थे। जैसे बालकृष्ण भट्ट की 'रहस्य कथा' 1879, 'नूतन ब्रह्मचारी' 1886, 'सौ अजान एक सुजान' 1892। इन्होंने सामाजिक यथार्थों व समाज में व्याप्त कुरीतियों को व्यंग्य के रूप में चित्रण किया है। समाज में पसन्द के अनुरूप मनोरंजक व असरकारी बनाने के लिए भट्ट जी ने उपन्यासों में श्लोक व उर्दू के शेर भी डाल दिये है। आधुनिक काल की शुरूआत में शेर खूब पसन्द किये जाते थे इसलिये भट्ट जी ने इसका सहारा लिया ताकि एक बड़ा सहृदयी पाठक वर्ग तैयार हो जाय और समाज को दिशा दे। पाठक वर्ग को या देश की जनता को क्या चीज पसन्द है इसका अंदाजा भट्ट जी को अच्छे तरीके से था। 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास नीतिपरक एवं उपदेशात्मक है। चरित्र निर्माण पर बल दिया गया है। पं0 चन्द्रशेखर नामक जो सदाचारी विद्वान शिक्षक थे वे एक युवक को कुसंगत व दुर्गुण से बचाकर सुमार्ग पर लाने का कार्य करते है। समाज निर्माण का उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' में भी ब्रिटिश प्रभाव की जगह भारतीय परम्परा को अपनाने की बात कही गयी है।

इसी कड़ी में दूसरे उपन्यास लेखक राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू' 1890 में लिखा है। इसकी पृष्ठभूमि काशी है। इन्होने इसमें मध्यकाल के दुस्साहसी शासकों की खराब नीति व कुशासन का उद्घाटन किया है। वे बताते है कि मध्यकालीन शासकों ने कट्टरता के बल पर समाज के दो मुख्य समुदायों (हिन्दू–मुसलमान) में आपसी बैर उत्पन्न करके शासन किया। उस बैर भाव को अब समाज नकार कर हिन्दू– मुसलमान में मित्रता के रूप में स्थापित किया।

इसमें सन्देश दिया कि दोनो वर्गो में आपसी सौहार्द बना रहना चाहिए ताकि एकता बनाकर देश की स्वत्रंत्रता में सहायक बन सके। सनातन हिन्दू धर्म के सहारे साम्प्रदायिक सौहार्द या सद्भाव बनाने का रास्ता बताया गया है। गोवध की समस्या को उठाया गया है, सामान्य रूप से समाज और धर्म का मामला मिला जुला रहता है। समाज में धार्मिक आडम्बर व ढोंग चलते रहते है। यही समस्याये तो उपन्यास की विषयवस्तु बनती है। इसमें नैतिक आग्रह का दबाव बना रहता है। यह समाज में अतिआवश्यक है। संस्कारों का निर्माण करना सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य रहता है।

लज्जाराम शर्मा का उपन्यास 'धूर्त–रसिक लाल' 1890 में मित्रघात व विश्वासघात का वर्णन है। किसी के घर को कलंकित करके आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी' 1899 में तो दो परस्पर सभ्यताओं (रमा–पश्चिमी सभ्यता –लक्ष्मी भारतीय सभ्यता) की समीक्षा है। 'आदर्श दम्पति' 1904 में भी समाज की कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है । यह स्त्रियों की असुरक्षा से सम्बन्धित है।

इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य सामाजिक कुरीतियो, कमियों, विकृतियों, अन्यायों, अग्रेजी शिक्षा व सभ्यता के दुष्परिणामों का विरोध करना था। लेखकों ने उस परतंत्रता के समय में भी भारत के समाज को एक नई दिशा देने का काम किया। उस समय कुछ सामाजिक संगठन थे जो समाज मे चेतना या जागरूकता का सन्देश प्रचारित कर रहे थे। उन्हीं संस्थाओं में राजाराम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित संस्था व गोविन्द रानाडे द्वारा स्थापित प्रार्थना समाज कुछ जादा ही महत्वपूर्ण थे। सामाजिक उपन्यास जन साधरण में ज्यादा प्रचलित हो जाते है क्योकि उसमें समाज की समस्याओं का ही वर्णन रहता है । ग्रामीण समाज की समस्या को उठाया गया है।

किशोरी लाल गोस्वामी (1865–1932) ने समाज में मानवीय प्रेम के विभिन्न पहलुओं को बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। उस समय समाज सुधार की लहर चल रही थी। किसी भी राष्ट्र के स्वरूप और संस्कृति को निश्चित और सुसंगठित दिशा व दशा देने के लिए स्वस्थ समाज की जरूरत होती है। स्वस्थ समाज के एक दूसरे से सम्पर्क बनाने में साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। बिना समाज के कोई साहित्य नही हो सकता है। और बिना साहित्य के समाज का अस्तित्व खतरे में रहता है। तत्कालीन भारत में राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करना था इसी कारण सभी की समस्याओं को सुना गया और उन्हें एक धारा में लाने का प्रयास किया गया। सामाजिक सुधार आन्दोलन 1820 के दशक से ही चल रहे थे। उसी सुधारवादी जीवन दृष्टि का ही परिणाम इन सब उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। गोस्वामी जी ने अपने उपन्यासों में सहज भाषा के माध्यम से सामाजिक पाखण्ड का उद्घाटन किया है। समाज में नैतिक यौनभावना को इन्होने अपने उपन्यास में स्वीकार किया।

किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा आदि लेखकों ने समाज को नैतिक दृष्टि देने का काम किया। सती साध्वी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यापार, वैश्याओं के कुत्सित जीवन, देवदासियों की विनाशलीला आदि का चित्रण किया गया है। लेखकों का उद्देश्य सकारात्मक रहा है। इन सब नारकीय दूषित जीवन के गलत परिणाम को दिखाकर उच्च नैतिक जीवन स्थापित करने का काम किया है। अपने राष्ट्र के प्रति चेतना जागरित करके समाज में राष्ट्र भक्ति की भावना भरने का प्रयास किया गया है। मानवीय प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन किया गया क्योंकि अभी यथार्थ से सम्बन्धित वातावरण नहीं हो पाया था। इन्हीं सब उपन्यासों ने आगे के उपन्यास के लिए पृष्ठभूमि तैयार किया। जीवन के वास्तविक समस्या को केन्द्र में रखा गया है।

समाज के रीति–रिवाजों से ही सामाजिक शिष्टाचार व नियम रूथापित किये जाते थे। इन सब सामाजिक रीति–रिवाजों को उपन्यासों के माध्यम से प्रसारित व प्रचारित किया जाता था। शुरूआती उपन्यासों में पात्रों का चरित्र पहले निश्चित होता था, घटनाओं या समाज को वह अपने चरित्र से

प्रभावित करता था। लेखक अपने सामाजिक दृष्टिकोण को व्यंगात्मक उपन्यास के माध्यम से या यौनभावना वाले उपन्यास के माध्यम से आगे बढ़ाता है। समाज को केन्द्र में रखे बिना किसी भी उपन्यास या साहित्य की कल्पना करना कठिन है। पात्रों के आपसी भावों व विचारों के माध्यम से साजाजिक सद्भाव को किस तरह स्थापित किया गया है इसे 'निःसहाय हिन्दू' उपन्यास में भी बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यही सब उपन्यास प्रेमचन्द युग के लिए सामाजिकता–पारिवारिकता की व्यापक पृष्ठभूमि तैयार किये थे। उपन्यास धीरे–धीरे राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना का सहचर बनने के लिए तैयार हो रहा था जिसे साम्राज्यवादी व सामन्तवादी शक्तियों की कमियों को उजागर करना था।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से ही भारत में निर्णायक परिवर्तन हो रहे थे। विदेशी साम्राज्यवादी बाधाओं के बावजूद भी देशी पूजीवाद उदित हो रहा था। समाज की प्रवृत्तियों व परिस्थितियों का उल्लेख करने से उपन्यास में ताजगी आ जाती है। सहृदय पाठक अपने आस–पास के परिवेश व गतिविधियों को बड़ी तल्लीनता से जानना चाहता है। उपन्यास में उसकी जिज्ञासा पूरी हो जाती है।

सन्दर्भ सूची :

1. हिन्दी साहित्य कोश 1 : सम्पादक– धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृष्ठ–121
2. साहित्य उद्देश्य : प्रेमचन्द भार्गव प्रेस इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1954, पृष्ठ–54
3. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश, चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–11,12
4. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश, चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–17
5. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश चतुर्थ संस्करण 2008, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–13

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

भक्ति–आन्दोलन में संत रैदास का योगदान

डॉ0 विकास कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, (हिन्दी विभाग), श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
सम्पादक- International Literary Quest एवं World Translation तथा Shodh)

काशी शब्द 'काश' (अर्थात् चमकना) से बना है। आध्यात्मिक दृष्टि से काशी का अपना विशेष महत्त्व है। विश्व में ऐसा कोई प्राचीन नगर नहीं है जो काशी से अधिक प्राचीन हो। इसकी प्राचीनता एवं अखण्डता अक्षुण्ण है। काशी को कई अन्य नामों से भी जाना जाता रहा है। जिसके संकेत पुराणों व अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। वे हैं– वाराणसी, अविमुक्त, आनन्दकानन, आनन्दवन, अलर्कपुरी, रुद्रावास, महाश्मशान, स्वर्गपुरी, जित्वरी (जय प्रदान करने वाली), पुष्पवती, सुसंघन, सुदर्शन, रामनगर, ब्रह्मवर्धन, मोलिनी, केतुमती।

ऐसा ज्ञात होता है कि उपर्युक्त नामों में काशी सर्वाधिक प्राचीन नाम है जिसका उल्लेख अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा में है। ऐसी सम्भावना है कि काशी अथर्ववेद काल से भी प्राचीन है। वाराणसी, काशी की राजधानी थी। वासुदेव अग्रवाल ने वाराणसी की चर्चा काशी राज्य के राजधानी के रूप में की है।

दशकुमार चरित में भी वाराणसी को काशी राज्य का नगर बताया गया है। काशी के विस्तार क्षेत्र के बारे में पौराणिक अनुश्रुति से हमें यह जानकारी मिलती है कि काशी वरुणा तथा असि नामक दो नदियों के बीच में स्थित है। 'आइने अकबरी' में कहा गया है कि वरणा एवं असि के मध्य में बनारस एक विशाल नगर है और एक धनुष के रूप में बना है जिसकी प्रत्यंचा गंगा हैं। तीर्थ के रूप में वाराणसी का नाम सबसे पहले महाभारत मे मिलता है। काशी को सभी तीर्थों में सर्वोच्च तथा धार्मिक जीवन का केन्द्र माना जाता है। चारों धामों की यात्रा तथा दर्शन करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है किन्तु मोक्ष नहीं मिलता लेकिन काशी में जन्म लेने वाले या निवास करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैसा कि इसके एक नाम अविमुक्त से स्पष्ट होता है।

मत्स्य0 ने कहा है कि– ''वाराणसी मेरा सर्वोत्तम तीर्थस्थल है, सभी प्राणियों के लिए यह मोक्ष का कारण है।'' जो काशी में मरते हैं उन्हें यम नहीं बल्कि काल भैरव दण्डित करते हैं। धार्मिक दृष्टिब से भी काशी का विशेष महत्व रहा है काशी में गंगा के उत्तर वाहिनी होने से यह हिन्दुओं के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही काशी एक महान धार्मिक केन्द्र तथा अति पवित्र तीर्थ स्थलों में से एक रहा है।

अतीत से ही सभ्यता की जननी भारतभूमि अपने सुपुत्रों के कारण ख्यात रही है। इस संदर्भ में काशी का अपना अलग महत्व है। इस पावन भूमि में नास्तिक एवं आस्तिक सभी संतों ने जगह पायी। महावीर, बुद्ध, महादेव, रामानन्द, कबीर, तुलसी की प्रज्ञा ज्योति यहीं प्रखर हुई। मान्यता है कि काशी के कण–कण में शिव (कल्याण) वर्तमान हैं। इसी परम्परा की कड़ी के रूप में 'संत रैदास' इतिहास के क्रान्तिकारी महापुरुषों में से एक हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि जन्म से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण नहीं होता, अपने कर्मों के माध्यम से वह ब्राह्मण से भी ऊपर ब्रह्म पद पा सकता है।

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के संतों में संत रैदास जी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इनकी जन्मतिथि के बारे में विद्वानों में मतभेद है। इनके जन्म स्थान के बारे में भी कोई प्रामाणिक साक्ष्य

उपलब्ध नहीं है और न ही उनकी रचनाओं द्वारा उनके जन्मस्थान का पता चलता है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म काशी में हुआ था। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी का अनुमान है कि संत रविदास सम्भवतः काशी में ही रहा करते थे। रैदास जी की बानी में भी प्रारम्भ में रैदास जी का जीवन चरित्र प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि यह महात्मा भी कबीर की तरह काशी में पैदा हुए थे। 'रैदास रामायण' में भी संत रविदास के जन्मस्थान के विषय में लिखा गया है–

'काशी ढिग मांडुर स्थाना, शूद्र वरण करत गुजराना।

मांडुर नगर लीन अवतारा, रविदास शुभ नाम हमारा।।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि रविदास जी का जन्म मांडुर नामक स्थान पर हुआ था तथा यह मांडुर बनारस में स्थित मंडुआडीह है। रैदास जी की बानी में इनके पिता का नाम 'रग्घू' तथा माता का नाम 'घुरबिनिया' बताया गया है। उनकी रचनाओं से भी जन्म लेने का पता नहीं चलता है, लेकिन उनकी जाति का स्पष्ट परिचय मिलता है। उनके पदों से यह स्पष्ट होता है कि वे चर्मकार थे–

'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।'

'नीचे से प्रभु उँच कियेा है, कह रैदास चमारा।'

'चरन–सरन रैदास चमइया'

इन पंक्तियों में रैदास जी ने स्वयं स्पष्ट किया है कि वे चर्मकार (चमार) थे। उन्होंने अपनी तपस्या से सिद्ध कर दिया कि कोई भी सबका वंदनीय बन सकता है।

जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि बचपन से ही इनकी प्रवृत्ति संतों जैसी थी। रैदास 12 वर्ष की अवस्था से ही मिट्टी की बनी रामजानकी की मूर्ति की पूजा करने लगे थे।

संत रैदास जूतों की मरम्मत एवं नये जूते बनाने का कार्य करते थे तथा अपने बनाये हुए जूते साधु–संतों को बिना कुछ लिए ही दे दिया करते थे। वे निरभिलाषी, उदार, संतोषी तथा त्यागी प्रकृति के थे। वे कहते हैं–

धन–जोबन हरि ना मिलै, दुःख दारून अधिक अपार।

एकै एक वियोगियां ता कौ सब जानै संसारा।।

कबीर की तरह रैदास भी रामानन्द के शिष्य थे। इनका कोई हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त नहीं है और न ही कोई ऐसा प्रमाणिक उल्लेख ही मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि वे शिक्षित रहे होंगे।

रैदास जी के समय अनेक सामाजिक तथा धार्मिक विसंगतियाँ फैली हुई थी। रैदास ने इन्हें दूर करने का प्रयास किया तथा कहा कि अहंकार शून्य सात्विक भगवद् भक्ति से ही परमतत्व का सान्निध्य संभव है–

'कहा भयो जे नाचे अरू गायै, कहा भयो तप कीन्हे।

कहा भयो जे चरन पखारे, जो लौं परम तत्त नहिं चीन्हें।।

कहा भयो जे मुड़ मुड़ायो, वह तीरथ व्रत कीन्हें।

स्वामी दास, भक्त अरू सेवक, जो परम तत्त नहिं चीन्हें।।

कहै 'रैदास' तेरी भक्ति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।

तज अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हू चूनि खावै।।

उस समय हिन्दू समाज बहुजातीय व्यवस्था के आधार पर बँटा हुआ था। वर्णभेद और जातिभेद के कारण समाज की आन्तरिक स्थिति कमजोर होती जा रही थी। रैदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों की जातीय संकीर्णता पर प्रहार करते हुए तत्कालीन समाज को एकता का संदेश दिया। रैदास धर्म को व्यक्तिगत साधना की वस्तु मानते थे। साथ ही व्यक्तिगत मानते हुए भी मानवधर्म के रूप में सीापित करना चाहते थे, जिसमें सामाजिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है।

तत्कालीन समाज में र्ध साम्प्रदायिकता का पर्याय बन गया था। संत रैदास ने इसे दूर करने तथा मूलधर्म की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया। उनका कहना है कि–

तपनि दियो पै तवनि न जाई, माला पहरि घणेरी लाई।

कहै 'रैदास' मरम जूं पाऊँ, देव निरंजन सत् कर ध्याऊँ।।

उनका कहना था कि केवल तिलक लगा लेने तथा माला पहन लेने से निरंजनदेव का मर्म नहीं जाना जा सकता, उसका रहस्य तो सच्चा ध्यान लगाने से ही जाना जा सकता है।

'ऐसी भगति न होई, रे भाई,

रामनाम बिनु जो कछु करिये, सो सब भरम कहाई।।

भक्ति न मुंड–मुड़ाई, भक्ति न माल दिखाई।

वे भाला पहनकर और सिर मुड़ाकर दिखावा करने को भक्ति नहीं मानते थे। ऐसा माना जाता है कि रैदास जी कबीर के समकालीन थे। कबीर की तरह उन्होंने भी वेद शास्त्रों की मर्यादा, जय–तप, पूजा–पाठ, तीर्थ आदि प्रायः सभी बाह्य आडम्बरों, मिथ्याचारों को अस्वीकार कर दिया था, लेकिन कबीर की तुलना में ये सरल प्रकृति के थे तथा सरलता से इन्होंने समाज में व्याप्त बुराईयों का विरोध किया। इनके संदेशों में आत्मसमर्पण एवं दीनता की भावना झलकती है। उनका कहना था कि ''सभी में हरि है और सब हरि में हैं'' रैदास जी प्रेम और वैराग्य की मूर्ति थे। ब्राह्मण भी उनके आगे श्रद्धा से सिर झुकाते थे। इनका सर्वाधिक प्रभाव निम्न वर्ण की जातियों पर प्रभाव पड़ा तथा इन्होंने उनके उत्थान के लिए कार्य किया। मानव मात्र में समानता इनका मुख्य उद्देश्य था।

संत रैदास जी का जीवन त्याग एवं प्रेम से परिपूर्ण था। मान्यता है कि उनकी प्रसिद्धि से प्रभावित होकर तत्कालीन सुल्तान सिकन्दर लोदी ने उन्हें दिल्ली आमंत्रित भी किया। संत रैदास सुल्तान के अनुरोध को स्वीकार कर दिल्ली गये थे।

संत रैदास का काल विरोधों का काल था। जनमानस की छटपटाहट, अंतर्द्वन्द्व एवं वेदना को समझते हुए उन्होंने भक्ति मार्ग के प्रताप को दिखाया। समाज में व्याप्त कुरीतियों पर उन्होंने कुठाराघात भी किया। मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य विधानों का विरोध कर, अभ्यन्तरिक साधना पर बल दिया। मूलतः रैदास जी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। लोक अनुश्रुति है कि गंगा स्नान के समय देवी गंगा ने उनके कठौते में स्वयं उपस्थित होकर आशीर्वाद किया। आज भी 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' अनुगूँज समाज में सुनाई देती है।

निश्चय ही मध्यकालीन काशी में संत रैदास का उद्भव समाज को निराशा के गर्त से उठाने वाला है। उन्होंने समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व कर ब्राह्मण एवं शूद्र दोनों को एक कर दिया। इनका मोक्ष स्थल 'गंगा तट' है। नीचे की चंद पंक्तियाँ उनके व्यक्तित्व को व्यक्त करने में सक्षम है–

'अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी।

प्रभु की तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंगसंग बास समानी।

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवन चन्द चकोरा।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी ज्योति बनै दिन राती।

प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।

प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एक महान आन्दोलन था तथा संत रैदास जी इस आन्दोलन के एक महान संत थे। इन्होंने वर्षों से चली आ रही सामाजिक बुराइयों एवं धार्मिक दिखावे को दूर करने तथा सामाजिक समरसता का भरपूर प्रयास किया। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में इनकी सेवायें महत्वपूर्ण हैं। इसके लिए भारतीय एवं भारतीय इतिहास इनका सदा ऋणी रहेगा।

संदर्भ सूची :

1. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास– हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. रैदास बानी– डॉ0 ध्रुव देव
3. सोच विचार, काशी अंक, जुलाई 2011
4. विजडम हेराल्ड, जुलाई–सितम्बर, 2011

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

सांस्कृतिक संवाददाता और कला समीक्षक विनय उपाध्याय से नाटककार और रंगनिर्देशक अलखनंदन पर बातचीत

चन्द्र पाल

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय–500046

विनय उपाध्याय मूलतः सांस्कृतिक संवाददाता हैं। कला समीक्षक के रूप में उनकी यात्रा लगभग पैंतीस वर्षों से अनवरत जारी है। वर्तमान में रबिन्द्रनाथ टैगौर विश्वविद्यालय भोपाल में बतौर निदेशक सेवाएं दे रहे हैं। दैनिक भास्कर नई दुनिया और इंडिया टुडे में वर्षों से लिखते आ रहे हैं। आप अपने आप को एक स्वतंत्र पत्रकार मानते हैं। शब्दों का दरवेश स्तंभ वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। प्रधानमंत्री राष्ट्रपति तथा विश्व हिन्दी सम्मेलन में आपने मंच संचालन किया है। पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने आपकी तारीफ की है। आपने अलखनंदन के नाटकों पर समीक्षाएँ लिखी हैं। आपने अलखनंदन के सृजनात्मक कार्य को नजदीक से वर्षों तक भोपाल में देखा है। हैदराबाद विश्वविद्यालय के शोधार्थी चन्द्रपाल ने नाटककार रंगकर्मी रंगनिर्देशक तथा पत्रकार अलखनंदन के व्यक्तित्व और कृ तित्व पर उनसे एक विस्तृत शोधपरक साक्षात्कार लिया है। प्रस्तुत हैं इसके संपादित अंश–

ऐसे मुझे बड़ी मुश्किल से दो तीन साल भी नहीं हुए थे और अलखनंदन जी के संपर्क में मेरा आना हुआ। मैं और अलख जी उस समय फजल ताबिश के प्रस्ताव पर एक दूसरा आगरा बाजार बना रहे थे और उसमें जब वो कास्ट क्रेडिट चुन रहे थे। तब उनको कुछ संगीत से जुड़े लोग चाहिए थे। तब मैं आकाशवाणी में यहाँ पर डेलीगेट अप्रूव्ड सिंगर था। यहाँ आकाशवाणी में खबर आई है तो पता चला है कि यार अलखनंदन बड़े रंगकर्मी हैं। उनको संगीत से जुड़े लोग चाहिए। यह जानते हैं कि हम थोड़ा बहुत संगीत को प्रेम भी करते हैं। तो हम चले गए और चले गए तो संयोग से ये हुआ कि उन्होंने हमारा सिलेक्शन कर लिया गया और उसमें दो फकीर होते हैं। जो नजीर की नज्मों को पूरे समय शुरू से लेकर आखिर तक गाते हैं। तो उसमें एक मैं था और एक था सुधीर नेमा जो अब एन एस डी चला गया और फिर बड़े बड़े ऐड में आता है। हम दूर हो गए हैं तो मैंने दो महीने तक अलकनंदन के आगरा बाज़ार की उस कार्यशाला को अटेंड किया और उसके तीन दिन मंचन हुए थे टिकट से रवीन्द्र भवन में। तो रंग कर्म को इस बहाने से और इस दुनिया में पहली बार इस प्रकार दाखिल हुआ। तो ऐसा रहा फिर अलख जी से खूब जुड़े रहे। फिर हाँ मैं जिनके साथ बाद में 30 सालों तक वृंद गान के एक समूह में रहा। ओमप्रकाश चौरसिया वो उनके प्रिय रंग संगीतकार हुआ करते थे उनके नाटकों में संगीत वही देते थे। अलखजी से बहुत सारी दूसरी बातें होती रही। बहुत सारा जोड़ते रहे।

चन्द्र पाल– सर अलखनंदन जी का जो व्यक्तित्व है और जो आपका एक उनसे रंग संबंध है आप जिनसे जुड़े रहे हैं। एक लंबे समय से आप अलख जी को जानते हैं। उनको याद करते हुए सर आपकी टिप्पणी।

देखिये, एक्चुअली मैं मूलतः तो खंडवा का निवासी हूँ, और मैं अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद जब मैं 1986 में भोपाल आया और भोपाल में जब मैंने संस्कृति के क्षेत्र में काम करने का संकल्प लिया, अपना लक्ष्य निर्धारित किया और उन्हीं दिनों में भोपाल में रहते हुए मुझे याद आता है कि 1988 का बरस था वो 88 ;ा 89 का और यहाँ पर भोपाल के इस पूरे के पूरे कला जगत में, जो बड़ी बड़ी विभूतियां काम कर रही थीं। अलग अलग संगीत में भी, नृत्य में भी। नाटक में भी रूपंकर है ना और साहित्य के क्षेत्र में भी। ये तमाम विधाओं में है तो उसमें उस समय यह मालूम हुआ कि अलखनंदन

जैसे एक वरीष्ठ रंगकर्मी भी यहाँ पर काम करते हैं और उन्होंने भी जबलपुर और यहाँ वहाँ से सब कुछ अपना काम करते हुए और भोपाल को अपना एक बसेरा अपनी कर्मस्थली बना रखा है । और मुझे यदि मालूम पड़ा था कि वे भारत भवन में जो रंग मंडल स्थापित हुआ था और वहाँ भी उनको काम करने का सहायक निर्देशक के रूप में ब व कारंत के साथ काम करने का मौका मिला था। लेकिन मेरा अलखनंदन जी से जो राबता बना, जो नाता बना वो एक बड़ा सुखद संयोग उसके साथ ही बड़ा सुखद प्रयोग प्रसंग है। उन दिनों में उर्दू अकैडमी जो थी उस के सचिव थे फजल ताबिश। जो बड़े शायर भी थे। उन्होंने ये तय किया कि हबीब तनवीर ने जो आगरा बाज़ार नज़ीर अकबराबादी की नज़्मों को लेकर नाटक खुद लिखा और किया। उसके समानांतर एक और आगरा बाज़ार एक नई शैली का भी बनाना चाहिए। तब उन्होंने अलखनंदन को यह प्रस्ताव दिया और अलखनंदन जी उस समय इस आगरा बाजार को अपनी तरफ से अपनी शैली में उसको तैयार कर रहे थे। और तब उनको जो उस नाटक के नए किरदारों की और स्टेज और बैकस्टेज के लोगों की जरूरत है। क्योंकि वो मल्टीकास्ट प्ले था। उसे कई सारे किरदारों की जरूरत थी। और तब चूंकी नज़ीर अकबराबादी की नजमों को जोड़कर वो नाटक तैयार किया गया था। लिहाजा यह जरूरी है कि उन नज्मों को ठीक से गाने वाले भी हों। दो फकीर जो गाकर चलते हैं तो वो फकीर के रूप में उनको तो ऐसे किरदार चाहिए थे। ऐसे व्यक्ति चाहिए थे ऐसे कलाकार जो कि उसको गा सके। क्योंकि उसमें उर्दू और हिंदी के मिश्रण से उसको तैयार किया था, नजीर ने वो लिखी थी । तो तब ऑडिशन हुए। मैं आकाशवाणी में उस समय कैजुअल अनाउंसर था और बी ग्रेड सिंगर भी था। तो ये उड़ते उड़ते खबर वहाँ पहुंची और तब फिर जो हम लोगो ने भी अलखनंदन जी से संपर्क हुआ और जब हमने ऑडिशन दिया तो ऑडिशन में अलखनंदन जी ने हमें सिलेक्ट कर लिया। उसमें एक मैं भी था। तो अलखनंदन जी से मेरा उस आगरा बाजार के प्रोडक्शन के दौरान मेरा उनके साथ परिचय हुआ। और फिर उसके बाद में मैंने अलखनंदन जी की शैली को उनके व्यक्तित्व को उनकी रंग दृष्टि को मैंने बहुत करीब से देखना शुरू किया। उसके बाद तो फिर कई सारा सिलसिला बना और मैंने किया । तो एक ये मेरा अलखनंदन जी से जुड़ने का ये इस तरह से एक सिलसिला बना है।

चन्द्र पाल– अलख जी के कवि व्यक्तित्व पर सर आपकी राय।

देखिए मैं ये तो नहीं कहूंगा कि मैं उनके कवि व्यक्तित्व को बहुत ठीक ढंग से उनके प्रति अपनी कुछ ऐसी कोई आलोचकीय राय गढ़ूँ लेकिन हाँ, मैं यह जरूर मानता था कि अलखनंदन जी उन थोड़े से रंगकर्मियों में मैं अपने हिंदी जगत में पाता हूँ जिनको मैं वर्सेटाइल रंगकर्मी कहूँगा यही बहुआयामी होना है। और देखिए मेरा ये निजी तौर पर मानना है और अलखनंदन जी से जब मेरी पत्रकारिता के दौरान मैं एक सांस्कृतिक पत्रकार के रूप में भोपाल में लंबे समय तक काम किया। ये तो अलग इत्तफाक है कि मैं उनके नाटक में काम किया, लेकिन जो मैं लगातार इस सांस्कृतिक पत्रकारिता में मैं जिन लोगों को बहुत नजदीक से मैंने देखना और पढ़ना शुरू किया, उसमें जब अलख नंदन जी को मैंने पाया तो मैंने देखा कि अलखनंदन एक वर्सेटाइल जो है वो आर्टिस्ट के रूप में मुझे दिखाई दिए। सृजनधर्मी के रूप में दिखाई दिए और मैंने ये देखा है कि अलख नंदन जी से जब बातचीत होती थी। तो उन्होंने मुझे ये कहा कि देखिए जो रंगकर्म है वो सामूहिक कलाओं के साथ विकसित होने वाली विधा है। है ना, वो कलाओं का समुच्चय है और उसमें सिर्फ और सिर्फ उस थोड़ी सी देर तक बनने वाली कार्रवाई मंच की नहीं है, जब उसको संभव करने के लिए हम अपने पुरुषार्थ को बटोरते हैं, काम करना शुरू करते हैं। तब उसमें सबसे पहले हमें साहित्य के पास जाना पड़ता है। है ना, एक अच्छा कथानक हमें चुनना पड़ता है तो एक साहित्यिक कृति के रूप में। पहला संवाद जो है वो नाटक का एक साहित्यिक कृति से होता है यानी शब्दों से होता है और उसके बाद में फिर हम अन्य कलाओं के पास जाते हैं। उसमें संवाद भी उसमें अभिनय भी है। उसमें नृत्य भी है, उसमें चित्रकारी भी है। उसमें संगीत भी है तो तमाम कलाएं मिलकर जो है वो रंगमंच की परिभाषा को संभव करते हैं। लिहाजा अलखनंदन का मानना था कि मुझे सारी की सारी विद्याओं का मैं बहुत बड़ा ज्ञाता भले ही न हूँ लेकिन उन सारे के सारे इन कलाओं के सरोवर के पास मुझे जरूर जाना चाहिए और मेरी सारी की सारी विधाओं की जानकारी होना जरूरी है। तब उन्होंने कहा कि मुझे साहित्य के केवल और केवल नाट्य विधा को नहीं मुझे। उपन्यास और कहानी के पास भी जाना चाहिए। मुझे कविताओं

के पास भी जाना चाहिए। ठीक है मुझे एक व्यंग्य को भी ठीक से पढ़ते आना चाहिए। लिहाजा अलखनंदन जी ने अपने सृजनधर्मी मन को जब टटोला। तो उन्होंने ये माद्दा अख्तियार किया धीरे–धीरे अपने अध्ययन और अध्यवसाय से कि वे केवल नाटक की विधा को नहीं जाने। वे कविताओं को भी जाने और ऐसे इस छटपटाहट में इस बेचौनी में इस तिसनगी के साथ वो कविताओं के पास भी गए और कविताओं के पाठक बहुत अच्छे थे ही लेकिन उनके भीतर एक कवि मन भी था तो अलखनंदन ने जो है वो कविताओं को लिखना भी शुरू किया और मुझे याद है कि अलखजी जब कविताओं की किताबों उन्होंने मुझे दी भी थीं। जब वो कविताएँ कुछ मुझे पढ़वाईं भी तो मैंने देखा कि अलखनंदन के पास में हमारे समय और समाज और मनुष्य के मन को पढ़ने की एक बड़ी ताकत थी।

चन्द्र पाल– सर अलखनंदन जी का जो बाल रंगमंच की तरफ जो रुझान हुआ उसके ऊपर आपकी कोई ऑब्जर्वेशन हो–

हाँ देखिए। वो एक उनका नाटक था 'सलोनी गौरैया', तो सलोनी गौरैया का जब संगीत तैयार हो रहा था तो वो संगीत तैयार किया ओमप्रकाश चौरसिया जी ने। और ओमप्रकाश चौरसिया अलख जी के प्रिय संगीतकारों में शुमार थे और वो उनको ही हमेशा बोलते थे कि मेरी शैली को। ओमप्रकाश चौरसिया बहुत अच्छे से समझते हैं तो उन्होंने हमेशा रंग संगीतकार के रूप में ओमप्रकाश चौरसिया जी को ही पहला प्रस्ताव हमेशा दिया। और संयोग की बात ये है कि उन दिनों में ओम प्रकाश चौरसिया एक 'मधुकरी' नाम की संस्था उन्होंने स्थापित की थी और मधुकली वृंद यानी वृंदगान प्रदान के माध्यम से। हमारी हिंदी की प्राचीन, अर्वाचीन और आधुनिक कविताओं के गायन का वृंदगान का सिलसिला उन्होंने शुरू किया था। मैं उन खुशनसीब लोगों में से हूँ जिन्हें 30 साल तक ओम प्रकाश चौरसिया के साथ उनके समूह में रहकर वृंदगान किया। मैं एक गायक के रूप में उस समूह में शामिल रहा। तो ओमप्रकाश चौरसिया जी जब अलखनंदन जी का संगीत तैयार करते थे तो उसकी सारी की सारी तैयारी जो है वो वृंदगान के कुछ कलाकारों के साथ जुड़ के करते थे। तो इस बाल नाटक के पास जाने का मौका मिला। और तब मुझे पता चला कि अरे मैंने जिस आगरा बाजार के रंगकर्मी के साथ में काम किया, निर्देशक के साथ काम किया। वो इन बच्चों को लेकर भी काम करते थे तो 'सलोनी गौरैया' के बहुत सारे गीत जो थे वो मैंने उस समय सुने सीखे। और अलखनंदन जी के बाल रंगमंच भी को भी मैंने उस दृष्टि देखना जाना शुरू किया।

चन्द्र पाल– उस समय में जो अलख जी ने कुछ नवीन प्रयोग किए हैं, नाटक जगत में, रंगमंच में उनकी कोई खास छाप में जो कुछ एक दो उदाहरण अगर –

हाँ, देखिए मैं मतलब मेरे सामने उस समय मैं जिन नाटककारों को जिन रंगकर्मियों के काम को देख रहा था तो मेरे सामने भोपाल में रहकर तो एक तरफ मुझे कारन्त जी दिखाई देते थे फिर हबीब जी के नाटक भी यहाँ होते थे। बन्सी कौल यहाँ पर एक डाइरेक्टर थे वो थे। मैं रंगायन की बात करूँ तो यहाँ की जो गैर व्यवसायिक संस्थान रंग नाटकों के थे उसमें मैं देखता है कि प्रशांत खिलवडकर के डायरेक्शन में बहुत सारे नाटक होते थे। तो ये जब इन रंगकर्मियों के नाटकों को देखता था और फिर मैं उसमें अलख जी को देखता था। तो मैंने देखा कि देखिए अलख जी ने सबसे पहले तो ये किया यूं मैं उनकी शैली की बाकी चीजें बात करूँगा, लेकिन अलख जी ने 'नट बुंदेले' की स्थापना की है, उनके उस संस्थान की स्थापना में जो नाम है वो है नट बुंदेले यानी वे बुंदेलखंड की लोक संस्कृति से बहुत इन्सपाइर थे। उन्होंने कहा कि मध्यप्रदेश में जो कि मालवा, निमाण, बघेलखंड और बुंदेलखंड इन चार मुख्य जनपदों में मध्यप्रदेश विभाजित है और इन चारों को जोड़कर ही मध्यप्रदेश का चेहरा आवाम की वॉयस उसकी आवाज़ जो है उसमें बनती है। तब उन्होंने कहा कि मैं चूँकि बुंदेलखंड का बाशिंदा रहा हूँ बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का रस पीकर अलखनंदन जी बाहर आए थे निकालकर आए थे तो उनमें छाप बहुत गहरी बुन्देली लोक संस्कृति की थी, तो उन्होंने सबसे पहले तो क्या किया कि बुंदेली पूरे के पूरे स्वांग को बुंदेलखंड की बाकी पूरी की पूरी वाचिक परंपरा को बुंदेलखंड के जनपदों में कायम सारी रंग शैलियों को नृत्य शैलियों को करीब से देखा और फिर वो आये। इस हिंदी रंगकर में उनकी सक्रियता बढ़ी। और फिर उन्होंने प्रमुख रूप से अलखनंदन जी की शैली और प्रयोग को मैं देखना चाहूँ तो वो बुन्देली लोक संस्कृति से इन्सपाइर मुझे नजर आती है।

चन्द्र पाल– सर एक सवाल अलख जी के नाट्यशिल्प नाट्यविधान पर भी है, जिस पर सर मैं चाहूंगा कि आप थोड़ी सी रौशनी डालें ।

देखिए ये जो बात है वो नाट्यविधान, नाट्य शैली की अगर हम बात करें तो ये लगभग यहीं से अगर जोड़कर फिर मुझे बात करनी पड़ेगी कि वो चूँकि लोक संस्कृति से जुड़कर आये थे। तो एक्चुअली क्या था कि अलखनंदन जी का जो अपना अध्ययन चिंतन था, वो तो निश्चित रूप से पूरा का पूरा हमारे आधुनिक नाटकों के एक पूरे के पूरे भरे पूरे जो समाज था। एक पारसी शैली को भी उन्हें करीब से देखा। हमारी लोक शैली को भी देखा। और अलख जी के पास संस्कृत नाटकों की की छाप भी उनके पास भरपूर थी। तो इस तरह से ये तीन शैलियाँ जिनको हम खास तौर पर देखते हैं। इन तीनों शैलियों का समावेश उनके पास में था। अलखनंदनजी कथानक को उठाते हुए ये देखते थे की ये किस शैली में अट रहा है। मसलन यदि मैं उनकी उस 'चंदा बेड़नी' की बात करता हूँ तो चंदा बेड़नी निश्चित रूप से पूरी की पूरी गाथा है। है ना, उसका अपना अवसाद, उसका जीवन और उसकी जिंदगी की एक अत्यंत नाटकीय त्रासदी जिसकी वो शिकार होती है। अंततः वो पूरी की पूरी चंदा बेड़नी में हमें दिखाई देती है। चंदा बेड़नी का ट्रीटमेंट उन्होंने पूरा का पूरा बुंदेली लोक संस्कृति की शैली में निबद्ध होकर किया। तो एक तो अलखनंदन की वो रंग दृष्टि हमारे सामने दिखाई देती है। दूसरा यदि मैं 'ताम्रपत्र' को देखता हूँ तो मुझे 'ताम्रपत्र' नाटक में बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं। वो उसमें बिल्कुल पूरी उसे फारसी शैली में मुझे दिखाई देती है। और उसमें हमारी लोक शैली भी है मतलब कुल मिलाकर एक आधुनिकीकरण कर उनका चेहरा क्या हो सकता है ताम्रपत्र मुझे दिखाई देता है। एक अन्डर्टोन एक बहस पूरी की पूरी और उसके ऊपर उसके साथ साथ जब मैं 'भगवद अज्जुकीयम' की बात करता हूँ तो मुझे संस्कृत नाटकों की परंपरा से होकर गुजरते दिखाई देते हैं। की जो संस्कृत नाटकों की परंपरा थी तो अलख जी जो है वो इस तरह से मुझे एक एक ऐसे कोलाज मुझे दिखाई देता है जो कि लोक और शास्त्र की संधि पर खड़ा हुआ एक रंगकर्मी है।

चन्द्र पाल– अलख जी ने सर कविताओं का भी मंचन किया हैं, जैसे कि रवीन्द्रनाथ की कविताओं को उन्होंने 'काव्य रंग' के नाम से किया था और श्रीकांत वर्मा की कविताओं को उन्होंने 'मगध' और सर, मुक्तिबोध जी की एक कविता 'अंधेरे में' भी उन्होंने नाट्य मंचन किया है तो कविताओं का मंचन अगर आपने देखा हो तो सर उस पर आपकी कोई राय।

देखिए ये तो तय है कि मुझे ये देखने का मौका मिला भोपाल में रहते हुए। लेकिन इसके साथ जुड़कर मुझे याद जो कौंध रही है इस वक्त मुझे याद है कि एक बार स्वराज संस्थान में संजय मेहता एक कविता के रंगमंच के प्रोजेक्ट को लेकर एक उन्होंने संवाद स्थापित किया था। और वो जिन लोगों को इसमें डिसकोर्स में बोलने के लिए कहा था। उसमें मुझे याद है कि अलख जी भी थे। उसमें मुख्य वक्ता के रूप में कुमार अंबुज थे। और मुझे भी बुलाया था। और संजय मेहता तो उसमें खैर थे ही थे। तो कविता और रंगमंच को लेकर उसके नाते तारीख को लेकर एक लंबा दो ढ़ाई घंटे का एक परिसंवाद जैसा हुआ था। और तब हम लोगों ने अलख जी के इस पूरे के पूरे मतलब हम लोगों ने भी अपनी बातें कही हैं। लेकिन अलख जी की जो दृष्टि मुझे समझ में आयी कि वह कविता के रंगमंच को लेकर जो बात करते थे तो उनका कहना था कि अव्वल तो कविता अपने आप में एक स्वायत्त विधा है। कविता को रंगमंच पर ले जाने के लिए कविता कितनी बाकी रह जाती है, क्योंकि कविता अपने आप में सबसे पहला पार्ट कविता का एक कवि के मन में सबसे पहले आता है। वो लिखे जाने के पहले आ जाता है जो भावनाओं के रूप में घनीभूत अनुभूतियों के रूप उसके भीतर रहता है। दूसरा पार्ट वह है जब वो शब्दों में उसको उतारता है। और तीसरा पार्ट वह है कि जब उसको कोई उसका पाठ करता है। और रंगमंच पर अगर ले जाएंगे तो पाठ के साथ–साथ उसको अभिनय भी करना है। तो चार पाठों में कविता कितनी बाकी रह जाती है तो कविता का रंगमंच मजाक नहीं है। कविता का रंगमंच आप को कहानी और उपन्यास या नाटक के मंचन से ज्यादा चुनौती मां•ता है। आपके भीतर तो कविता के अन्डर्टोन को उसके भीतर के उस संवाद को जो उसके भीतर कवि का रह गया है। उसको तलाशना रंगशैली में उसको तलाशना और उसको रूपायित करना। उसको व्यक्त करना और जनता तक उसको पहुंचाना। यह अपने आप में बहुत जटिल विधा है। तो अलख जी ने जब मुक्तिबोध की 'अंधेरे में'

मुक्तिबोध वैसे भी फैंटेसी की कवि हैं। ये जटिल संवेदनाओं के कवि हैं। उनकी संरचना भी उतनी आसान नहीं है। और 'अंधेरे में' तो लंबी कविता है। तो उस के सिलसिले को कायम रखना तो उसके लिए जब तक आप एक अभिनेता के भीतर 'अंधेरे में' जैसी कविता पूरी भीतर तक नहीं उतरेगी। उसके उसकी स्नायुओं में उसके रगों में उसके रक्त में नहीं जाएगी। तब तक उसको कैसे ऐक्ट करेगा तो अलख जी का कहना था कि कविता के मंचन से पहले सबसे पहले तो उस कविता के प्रति उस किरदार को या रंगकर्मियों को और निर्देशक को बहुत गहरे उतरने की सबसे पहले जरूरत है। केवल 'अंधेरे में' कविता का मंचन हो रहा है तो केवल मुक्तिबोध के अंधेरे में नहीं। मुक्तिबोध की पूरी की पूरी काव्य व्यक्तित्व की समझ आपके भीतर होना बहुत जरूरी है। जैसा कि मैंने कहा कि मुक्तिबोध फैन्टैसी के कवि थे। ब्रह्मराक्षस को देख लीजिए। आप अंधेरे में की बात तो आप कर ही रहे हैं। मुक्तिबोध की कविताओं को देखें तो बहुत ही तो अलख जी का मानना था कि कविताओं का मंचन आसान चीज़ नहीं है और उसको कुछ चलताऊ ढंग से रंगकर्मियों को नहीं देखना चाहिए।

चन्द्र पाल– सर मेरा अगला सवाल आपसे ये है कि अलख जी ने जो लिखे नाटक हैं और उनके द्वारा जो निर्देशित नाटक हैं तो उनमें सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जो रूढ़ियाँ होती है, कुरीतियां होती है, पाखंड है तो उनका सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक पक्ष उनके नाटकों में किस तरह से अभिव्यक्त होता था–

देखिए, सबसे पहली बात तो ये है की अलख जी के नाटकों में जो वॉइस है। वो मैं ये जान पाया कि एक रंगकर्मी के रूप में की सबसे पहली बात तो जो नाटक है। नाटक की जो विधा है। हमको सबसे पहले उसके मकसद को जानना जरूरी है। नाटक जो है, वो एक लोकतान्त्रिक विधा है ये। है ना, जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा। ठीक है, और नाटक हमेशा यदि हम भारतेन्दु को प्रस्थान बिंदु माने हिंदी के आधुनिक एक नाटककार के रूप में 'अंधेर नगरी चौपट राजा' तो दरअसल आप देखें कि उस नाटक की शुरुआत वो पहला नाटक हमारा हिन्दी का क्या है, जो सबसे पहले सत्ता के प्रतिपक्ष में खड़ा होता है। उस पर व्यंग्य करता है। कटाक्ष करता है। और वो कटाक्ष किसकी तरफ से करता है, वो जनता की तरफ से करता है। जब जनता ये सोच रही है। उस नाटककार को नाटककार इस नाटक को क्यों लिखा, क्यों लिखा उसने ऐसा, इसलिए कि वो जनता की आवाज को जनता के बीच पहुंचाना चाहता है। अलख जी का यह मानना था की नाटक जो है वो सोसाइटी के वॉयस है, वो एक सामाजिक संवाद है। वे मनुष्य की आवाज है तो मनुष्य की आवाज। यदि आप पूरी ऑनेस्टी के साथ पूरी ईमानदारी के साथ नाटक में नहीं ले जाएंगे तो आपका जो रचनाकर्म है, आपका जो नाट्य कर्म है उस पर सवालिया निशान लगेगा। इसलिए हमेशा उन्होंने बहुत निर्भीक होकर रंगकर्म भी किया। उन चुनौतियों को हमेशा स्वीकार किया। तो जिनकी बात करें कि उसमें शायद सोशल डिस्कोर्स की बात हो, पोलिटिकल डिस्कोर्स की बात हो। कल्चरल डिस्कोर्स की बात हो, ये सारी की सारी चीजे बिल्कुल खुलकर वो नाटकों में ले जाते थे।

चन्द्र पाल– सर जैसे की लोक पर आपने बुंदेलखंड की संस्कृति का जिक्र किया तो मैंने ये देखा है, सुना है कि अलख जी ने 'वेटिंग फॉर गोडो' को छत्तीसगढ़ी में 'गोडोला देखत हन' और 'सुपना का सपना' भोजपुरी में, मगही शैली में और इसके अलावा चंदा बेडनी, 'स्वांग शकुंतला', 'राजा का स्वांग', 'उजबक राजा तीन डकैत' , 'मुर्गा देसी बांग विदेशी' उन्होंने जो है बुंदेली शैली में किए हैं। तो मेरा सवाल यह है कि क्या अलख जी ने लोकनाट्य का आधुनिक रूपांतरण किया है, मॉडर्नाइजेशन नहीं। मॉडर्न ट्रैन्स्फर्मेशन किया है क्या सर ?

ये तो तय है कि हमारा एक नाटककार जो है वो किसी भी चीज़ को किसी भी एलिमेंट को जब लेता है तो उसके साथ एक शब्द बड़ा पोपुलर सा है इम्प्राविज़ेशन। ठीक है इम्प्रवाइज़ करना। उसका पूरा आविष्कार करना, उसमें नई चीजें जोड़ना। पर नई तरह से उसकी तासीर करना। ये नाटक नाटक इसी में चलता है। ठीक है। मतलब ये है की हम जब रामलीलाओं की शैली को देखते हैं। ठीक है। तो आप ये देखिये की जहाँ से हमारी खुद तुलसी के समय में तुलसी ने ही अपने समय में उसने रामलीलाओं की एक परंपरा शुरू कर दी थी। तो आप भी जानते हैं। उन्होंने कहा कि करती सिर्फ इतना ही स्कूलों के पास ले जाना है तो मुझे जो है रंगमंच के पास ले जाना पड़ेगा। रामलीला

शुरू की लेकिन। तुलसी के समय में जिसपर शैली में रामलीला का मंचन होता था। वहाँ से चल के धीरे–धीरे अगर हम पूरे भारत के परिदृश्य को देखें तो रामलीला है वैसी नहीं है। लेकिन हम रामलीला करेंगे और उनको निश्चित रूप से देश से ही कहते है। जिसे तो वो अपनी तरफ से जनपद में उठके गयी और रामलीलाओं में अपना चेहरा अख्तियार किया। तो ठीक अगर हम सागर के आसपास के गांव की बात करें, जहा पर हम बुंदेली संस्कृति की जड़ों को देखते हैं। तो वहाँ से इंस्पिरेशन लेकर प्रेरणा लेकर वहाँ से लोक तत्वों को लेकर अलख जी भोपाल आते हैं। और भोपाल से एक दिन नागपुर में भी मंचित करने जाते हैं और मुंबई में भी। जब चंदा बेड़नी का मंचन करने जाते हैं या गए तो वो निश्चित रूप से उस लोक शैली को लेकर गए। लेकिन उस लोक शैली के साथ में उन्होंने अपना एक–एक रंग संस्कार नया रंग संस्कार उन्होंने किया। ठीक है।

चन्द्र पाल– सर अलख जी का संपूर्ण हिंदी नाटक रंगमंच में अगर उनके योगदान को हम रेखांकित करना चाहें तो सर उनके योगदान को किस तरह से रेखांकित किया जाना चाहिए?

देखिए, मेरा तो ये मानना है कि अलख जी का जो पदार्पण है। अगर हम देखें तो आजादी के बाद सक्रिय हुए रंगकर्मियों में हम उनको देखते हैं। तो आजादी के बाद की जो चिंताएं थी, आजादी के बाद का जो बदलते परिदृश्य हमारे समाज का है, हमारी संस्कृति का है, है ना? और ऐसे समय में इस पूरी की पूरी आजादी के बाद की जो नई हवाएं और आजादी की एक नई लो और समाज बिल्कुल टेक्नोलॉजी का भी आक्रमण। औद्योगिक क्रांति भी हमारे सामने है। ठीक है? इन तमाम चुनौतियों के साथ भारत अपनी जड़ों में, अपने संस्कारों में, अपनी परंपराओं में जो है वो कितना गहरा है? उनकी वैल्यू क्या है? और आज के समय में वो क्या सोच रहा है? इन सारी चीजों को शामिल करते हुए अलख, जिन्हें अपने रंग कर्म का एक रखते तो एक चेहरा तैयार किया ,एक चरित्र तैयार किया। तो मैं ये मानकर चलता हूँ कि अलखनंदन जी हमें हमारे इस पूरे बदलते आधुनिक परिदृश्य में एक ऐसे भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति सजग रहकर आधुनिक चिंताओं के साथ उसका सर्वश्रेष्ठ करने वाला, गठजोड़ करने वाला, संधि करने वाला रंगकर्मी है, जिसने की अपनी पूरी की पूरी एक पांव अपनी परंपरा पर रखा। दूसरा पांव उनका आधुनिकता के पास था। यानी परंपरा के ऊपर गहरा पांव रखते हुए आधुनिकता की ओर कदम आगे बढ़ाना। उनका यह मानना था कि अचानक आधुनिक हो जाने से कुछ नहीं होगा। एक तो हमारा परंपरा मित्र साथ हमेशा रहेगा। इसलिए उन्होंने बुंदेली लोक शैली को कभी छोड़ा नहीं।

चन्द्र पाल– सर, अलख जी से जुड़े एक आध कोई वाकया, कोई आपका संस्करण छोटा–मोटा हो तो शेयर कर सकते हैं।

देखिये! मैं थोड़ा व्यक्तिगत अगर हो जाऊं तो। अलखनंदन जी के साथ मेरा जो संबंध बना। और ये तो था कि मैं उनके नाटकों में काम करता हूँ। मुझे हमेशा कहते, ठीक है। तुम जर्नलिस्ट हो, तुम्हारी व्यस्तताएं बहुत बढ़ गई है और लेकिन तुम मंचन मत छोड़ो। तो तुम आओ मेरे यहाँ मेरे नाटक में आओ और तुम्हारा जो मैं सुनता हूँ कि तुम्हारी जो भाषा है और तुम्हारा जो बोलना भी है, ये सारी की सारी चीजें हैं वो जो बिल्कुल नाटक के पास है। और मैं.. मैं.. तुम्हे मैं तुमको कुछ न कुछ देना चाहता हूँ कैरेक्टर जरूर तुम आओ पर मेरी इतनी व्यस्तताएं है कि मैं उन रिहर्सल के लिए और अलख नंदन जी का जो डिसिप्लिन था रिहर्सल में। मैंने कहा अगर मैं हाँ भी कह दूंगा और मैं उस समय का पालन न कर पाया। डिसिप्लिन का तो मैं एक तो लेकिन वो मुझे बहुत प्यार करते थे और मुझ में एक संभावना हमेशा देखते थे की तुम्हारे पास एक सांस्कृतिक समझ है और आजकल इसका बड़ा टोटा है। क्योंकि अखबारों में काम करने वाले लोग जो है वो पार्ट टाइम होते हैं। आते हैं फिर चले जाते हैं। लेकिन मैं एक लंबे समय तक जो है काम करता रहा और मैं जब उन दिनों में 'नई दुनिया' में काम करता था। अलख जी अक्सर शाम को आ जाया करते थे। मेरे ऑफिस आ जाया करते थे। हमको सारी बहुत सारे नए प्रोजेक्ट उनके जो होते थे। संगीत नाटक अकैडमी का प्रोजेक्ट उनके पास एक आया तो उस पर जब काम करना शुरू किया तब भी उन्होंने उसे मुझसे शेयर किया। और कई बार होता था कि नट बुंदेले की जो है उनकी जो रिहर्सल होती थी तो रिहर्सल के दौरान मुझे बुला लेते थे और कई बार मुझसे पूछते थे की यार ये कैसा लग रहा है तुमको तो ये सारी की सारी

चीजे थी। एक बार की बात है कि उन्होंने एक संगीत नाटक अकैडमी के एक प्रोजेक्ट पर यहाँ एक नाटक किया। और उसका मंचन हुआ है। दुर्भाग्य है कि किसी अखबार में कोई खबर नहीं आयी और मैं भी उन दिनों प्रवास पर था। तब उन दिनों मोबाइल होते नहीं थे। अलख जी ने जाकर ऑफिस में पता किया तो उन्होंने कहा कि विनय तो है नहीं, अभी तो यात्रा पर गए, मैं तीसरे दिन लौटकर आया। अलख जी ने कहा की यार तुम चले गए तो अपने साथ पूरी की पूरी पत्रकारिता और संस्कृति को अपने साथ में लेके चले गए क्या? किसी अखबार में कुछ नहीं पूरा सन्नाटा पसरा हुआ है। उन्होंने कहा कि चाहे मेरे नाटक को तीन दिन हो गए हों। लेकिन, इसका मैं एक मंचन करूँगा और वो मंचन होने वाला है और उस मंचन में तुम जरूर आओगे। और तुम को जरूर इस पर लिखना है। तो उसका मंचन हुआ। वह नाटक ताम्र पत्र था और फिर मैं उसके बाद उसको देखने गए। आलोक चटर्जी उसमें एक किरदार थे। बिशना भी थी। मुझे याद आता हैऔर। उस नाटक को मैंने देखा और उसके बाद फिर मैंने उसकी रिव्यू की और वो रिव्यू जो है वो फिर बाद में। उन्होंने कहा कि ये एक अदद समीक्षा में अपनी पूरी रिपोर्ट भेज दूंगा। उसमें सिर्फ एक कागज़ दस्तावेज़ रहेगा कि अखबार में लिखा तो विनय उपाध्याय ने लिखा तो पूरी फाइल उन्होंने कहा है और उनके पास मेरी लिखी जितना मेरा लिखा हुआ है हमेशा वह कटिंग रखते थे और सबको कहते थे की देखो ये ऐसी समीक्षा नाटक की लिखी जानी चाहिए समझदारी के साथ तो मेरा सौभाग्य है कि अलख जी का ये प्रेम और यकीन मेरे साथ जुड़ा है।

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

जल जीवन से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याएं

पूर्णिमा कुमारी
शोध छात्रा
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

जल जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है ऑक्सीजन(हवा) के बाद मानव की दूसरी एवं सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता जल ही है इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं, किया जा सकता है। मनुष्य ही नही संसार के सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिए जल परमावश्यक है यह देखा गया है कि भोजन के बिना तो हम अशक्त एवं अकर्मण्य रहकर भी जी सकते है। परन्तु जल के बिना हम बहुत कम समय तक ही जीवित रह सकते है। जल रोगकारक एवं रोगशामक दोनो ही भूमिका निभाता है। जल से संबंधित स्वास्थ्य समस्याएं समाज के लिए विशेषतरू ग्रामीण समुदाय के लोगों के लिए अभिशाप है इनसे प्रतिवर्ष 50 लाख व्यक्ति संभवतः अकाल मृत्यु के ग्रास बनते है। एक अनुमान के अनुसार यह संख्या युद्ध में मरने वाले व्यक्तियों की तुलना में दस गुना अधिक है।

एक आकलन के अनुसार पूरे विश्व में 2.3 अरब व्यक्ति गंदे एवं अनुपयुक्त पानी से उत्पन्न रोगो की चपेट में है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार जल संक्रामक रोगों का बहुत बड़ा वाहक है। तथा विकासशील देशो में अस्सी प्रतिशत से भी अधिक दूषित जल से ही होती है। प्रतिघंटे एक हजार बच्चों की अतिसार के कारण मृत्यु हो जाती है। वर्तमान में हमारे देश में भी स्वच्छ पेयजल की स्थिति बहुत ही दयनीय है। जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। उससे अधिक गति से शहरीकरण का विस्तार हो रहा है। बढ़ताशहरीकरण अनेक अन्य समस्याओं के साथ–साथ मल–जल के निपटान की समस्या की और गंभीर बना देता है।

जल निश्चित तौर पर कई ऐसे रोगाणुओं और रसायनो को एक स्थान से दुसरे स्थान तक ले जाने का बहुत अच्छा वाहक है जो पानी के साथ हमारी अंगो में पहुंचकर अनेक के अनुसा रोगो को जन्म देते है। यूनीसेफ असमय ही मृत्यु के मुंह में चले जाने वालेआधी संख्या ऐसे शिशुओं की होती है। जो अपना पहला जन्मदिन भी नहीं मना पाते है। यह देखा गया है कि स्थान विशेष की जलवायु, भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, स्वच्छता संबंधी आदतें और सुविधाएं उपयोग में आने वाले जल की मात्रा, उसकी गुणवता और अपशिष्ट पदार्थों के निपटान की विधियां आदि सभी प्रकार से पानी के द्वारा होने वाले विभिन्न रोगो को प्रभावित करते है।

जल के माध्यम से फैलने वाले रोगो की पांच प्रमुख वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. स्वच्छता के अभाव में होने वाले रोग, जैसे– हैजा, मोतीझर (टायफायड), यकृत रोग, पोलियो आदि।
2. पानी की कमी, व्यक्तिगत स्वच्छता के अभाव और व्यर्थ पदार्थों के निपटान की उचित व्यवस्था न होने से सफाई–धुलाई की व्यवस्था नहीं हो पाती है। इन परिस्थितियों में खुजली, कंजक्टिवाइटिस, रोहे, टाइफस रोग (तंद्रिका जवर), कुष्ठ रोग तथा पैरा टायफाइड ज्वर प्रमुख रूप से हो जाते है।
3. पीने के पानी में उपस्थित जलीय जीव भी जल आधारित रोगो को जन्म देते है। जैसे नारू (गिनीवर्म) तथा मूत्र मार्ग आदि के संक्रमण इसी प्रकार के रोग से होते है।
4. पानी से संबंधित रोगवाहक कीटो से होने वाले रोगो में पीला बुखार, मलेरिया, फाइलेरिया, निद्रा रोग आदि प्रमुख है। अनेक रोग मच्छरो तथा मक्खियों के माध्यम से फैलते है। जोकि पानी में पैदा होते है।

5. मल निपटान की उचित व्यवस्था का अभाव भी अनेक रोगो को उत्पन्न करता है। अनुपचारित मल–जल में उगाई गई अथवा वैसे ही ऐसे पानी के संपर्क में आयी सब्जियों को बिना पकाए अथवा अच्छी तरह साफ न किए जाने से मल–जल में विद्यमान रोगाणु सरलता से हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते है।

शरीर में जल की कमी का प्रभाव (Effects of water deficiency in Body)

शरीर से जल का उत्सर्जन निरन्तर होता है। मल, मूत्र, पसीने, फेफड़े आदि के माध्यम से जल का उत्सर्जन होता है। अतः यह अत्यावश्यक है कि जल की उचित मात्रा प्रतिदिन आवश्यक रूप से ग्रहण की जाए ताकि शरीर में पानी की कमी नहीं रहने पाये। शरीर में पानी की कमी से निम्नांकित स्थिति उत्पन्न हो जाते है।

1. पाचक रसो मे असंतुलन होना– पाचन संबंधी गड़बड़ियां उत्पन्न हो जाती है।

2. शरीर से यूरिक अम्ल, यूरिया, विष, टांसिल आदि का पूर्णतः निष्कासन नहीं हो पाता है। इससे शरीर में विकार एवं रोग उत्पन्न हो जाते है।

3. व्यक्ति अशांत एवं चिड़चिड़ा हो जाता है।

4. भूख कम लगती है।

5. शारीरिक वजन कम हो जाता है।

6. शारीरिक वृद्धि प्रभावित होती है।

7. शरीर के तापमान वृद्धि हो जाती है।

8. वृक्क की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

9. रक्त की तरलता कम हो जाती है। अतः परिसंचरण में बाधा उत्पन्न होती है यदि शरीर में 10ः तक जल की कमी हो जाती है तो निर्जलीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

यदि शरीर में 15–20% तक जल की कमी हो जाती है, परिणाम होता है। व्यक्ति की मृत्यु। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शरीर में पानी की अल्प कमी है तो 'निर्जलीकरण के अल्प स्थान पर पानी की आपूर्ति में कमी' (Water Depelction) का प्रयोग करना उचित है निर्जलीकरण (Dehydration) का अर्थ है शरीर में उधिक मात्रा में पानी का निकल जाना।

जल के रसायजन्य रोग :

जल के रासायनिक प्रचलों में पेयजल उपयुक्तता निर्धारण में नाइट्रेट, फ्लोराइड एवं आर्सेनिक की अहम भूमिका होती है । परन्तु इनका अधिक सांद्रण दीर्घावधि में कई जानलेवा रोग उत्पन्न कर देता है। जो इस प्रकार से है।

नाइट्रेट :

भारतवर्ष के विभिन्न भागों के भूजल के रासायनिक विश्लेषण पर विदित हुआ है कि देश के कई भागों के भूजल में नाइट्रेट वृद्धि हो रही है यह वृद्धि क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न है। कहीं पर नगरीय देशों के मल–मूत्र, कृषिजन्य स्रोत, जैविक पदार्थो के क्षय, कीटनाशाक एवं कवकनाशकों का अत्यधिक उपयोग तथा भूगर्भीय चट्टानों आदि। भारतीय मानक व्यूरो ने इसकी मात्रा 45 मि0 ग्राम प्रति लिटर निर्धारित की है। अधिक मात्रा में श नाइट्रेट रक्त की आक्सीजन परिवहन क्षमता को क्षीण करके ब्लू बेबी या साइनोसिस रोग उत्पन्न होते है।

अनुसंधानो द्वारा विदित हुआ है कि अधिक मात्रा में नाइट्रेट जब भोजन अथवा जल के माध्यम से हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो यह नाइट्राइट में परिवर्तित हो जाता है। यह नाइट्राइट पुनरू द्वितीयक एमीन, एमाइड तथा कार्बोनेट से अभिक्रिया करके एन–नाइट्रोसो यौगिक बनाताहै। जिससे कैंसर रोग होते है।

फ्लोराइड :

पेयजल की उपयुक्तता निर्धारण में फ्लोराइड की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।दीर्घकाल तक अधिक फ्लोराइड युक्त जल का सेवन करना मानव एवं मवेशियों में कई प्रकार रोग हो जाते है। भारतीय मानक व्यूरो ने पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा 1.2 मि0ग्राम प्रति लीटर निर्धारित की है। हमारे शरीर में 60 प्रतिशत फ्लोराइड जल के माध्यम से तथा शेष खाद्य पदार्थो एवं औद्योगिक क्षेत्रों की वायु के माध्यम से प्रवेश करता है। फ्लोराइड की अधिकतम से होने वाले रोग को फ्लोरोसिस कहते है। भारत में 32 में से 18 राज्य फ्लोरिसस से प्रभावित है। तथा एक आकलन के अनुसार देश के 2.5 करोड़ लोग फ्लोराइड जन्य रोगों से पीड़ित है। पेयजल में फ्लोराइड की अधिकता से उत्पन्न होने वाले रोग निम्नलिखित है।

दांत एनेमल की क्षतिः– दांतों का आकार बिगड़ना, हाइपोटलासिया, अस्थि फ्लोरोसिस, अंककालीय फ्लोरोसिस, रक्त विकृति, गुर्दा व प्रजनन तंत्र पर कुप्रभाव पड़ता है।

दांत एव अस्थि फ्लोरोसिस की देशव्यापी समस्या के नियंत्रण एवं रोकथाम के लिए लोगों को विफ्लोरीकरण हेतु कई विधियां सरकार चलाई जा रही है। जिन्हें घरेलु स्तर पर भी अपनाया जा सकता है। सरकार द्वारा हैडपंप पर फ्लोराइड मुक्त करने के यंत्र भी स्थापित की जा रहे है। फ्लोरोसिस की रोकथाम हेतु लोगों को विटामिन सी युक्त भोज्य पदार्थों का सेवनकरने एवं जर्दा, गुटका, फ्लोराइड युक्त टुथपेस्ट, माउथवास, फ्लोराइड युक्त खाद्य पदार्थों का ज्यादा उपयोग नहीं करना चाहिए।

आर्सेनिक :

भूजल में आर्सेनिक प्रदूषण एक बड़े भू भाग में विकट समस्या बन गया है। इससे प्रभावित मानव शरीर में त्रिसंयोजी आर्सेनिक के घुलनशील यौगिकों का 95 प्रतिशत भाग अवशोषित होकर रक्त में मिलता है। जहां से यह रक्त कणों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुंचता है। हमारे शरीर में आर्सेनिक मुख्यतया नाखून तथा बाल में और उसके बाद त्वचा एवं फेफड़ों में संचयित होता है। स्वास्थ्य संगठनो के अनुसार पेयजल में आर्सेनिक का अनुमेय परास 0.05 मि0ग्राम प्रति लीटर है। इससे अधिक मात्रा कई रोग उत्पन्न कर देती हैं। जैसेरू खांसी, श्वासन रोग, गला बंद हो जाना, पाचन क्रिया में विकार, चर्म, कैंसर, तथा हाथ–पैर की उंगलियों में चकते आदि हो जाते है। हमारे देश में आर्सेनिक आविषालुता उन्मूलन हेतु घरेलु, सामुदायिक एवं राज्य स्तर पर कई फिल्टर तैयार किए गए है। जिनकेद्वारा इस रोग से मुक्ति पाई जा सकती है। स्वास्थ्य और शारीरिक प्रयोजन के अतिरिक्त दैनिक जीवन के कार्यों में इसका बहुत उपयोग होता है। जैसे– रसोई बनाना, बर्तन धोने, शौचालय, मूत्रालय, फर्श होने, स्नान करने, कपड़े साफ करने, खेतो की सिंचाई, नाली–नालों की सफाई और कल कारखानों को चलाने के लिए जल अत्यंत आवश्यक होती है।

जल की अधिकता के प्रभाव (Effect of Excess water intake)

जब एक स्वास्थ्य प्रौढ़ व्यक्ति 2 लीटर जल ग्रहण करता है तो यह जल सम्पूर्ण शरीर में शीघ्रता से वितरित हो जाता है। तथा आवश्यकता से अधिक जल 3 घंटे के भीतर गुर्दो के द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। अतः शरीर में जल संग्रह नहीं होता है।

सामान्यतः हमारे शरीर से मूत्र का निष्कासन 20 मिलि/घंटा होता है। अधिक जल के सेवन से इसकी मात्रा 1500 मिलि/घंटा तक बढ़ जाती है। उष्ण जलवायु में जल का निष्कासन पसीने के माध्यम से अधिक होता है।

परन्तु यदि शरीर द्वारा प्राप्त किये जल से शरीर द्वारा उत्सर्जित जल की मात्रा कम होती है तब शरीर में पानी की अधिकता (Excess of wate in Body) हो जाती है। इसके कारण शरीर से सोडियम एवं पानी का निष्कासन नहीं हो पाता है परिणामतः बाह्यकोशीय रसों की तरलता बढ़ जाती है। सोडियम की मात्रा अधिक होने से उतकों में पानी भर जाता है।

जल की अधिकता से व्यक्ति में निम्न लक्ष्ण दृष्टिगोचर हो जाते है।

1. व्यक्ति के शरीर में सूजन आ जाती है।

2. रक्त में प्रोटीन की कमी है जिससे सीरम प्रोटिन का रसाकर्षण दाब भंग हो जाता है। परिणामतः शरीर के उतकों में जल भर जाता है।

3. व्यक्ति का जी मिचलाने लगता है। वमन एवं घबराहट होने लगती है।

4. नाड़ी संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते है।

5. यकृत संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते है।

स्वच्छ पेयजल की सुलभता देश की प्रमुख समस्या है क्योंकि जल एवं जन स्वास्थ्य का राष्ट्रीय विकास से सीधा संबंध है स्वास्थ्य देशवासी की उस देश की आर्थिक व्यवस्था के मेरूदंड होते है। भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवो में बसने के कारण जल गुणवता की समस्या और गहन हो जाती है। हमें पेयजल की गुणवता एवं स्वच्छता के महत्व की न केवल शहरो में वरन ग्रामीण क्षेत्रों में भी जानकारी देनी होगी और पेयजल को आगामी पीढ़ी के लिए बचाकर रखना होगा।

जल का घरेलू, सामुदायिक, कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में मितव्ययता से उपभोग राष्ट्रीय विकास की कुंजी है।

संदर्भ सूची :

1. आहार विज्ञान एवं पोषण, ले0 डॉ. वृन्दा सिंह, पृ0सं0– 382, 383, 384, 385

2. आहर एवं पोषण ले0 – वर्मा एवं पाण्डेय – पृ०सं०– 213

3. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण स्वास्थ्य, अक्टूबर 2008, पृ0सं0– 13–17

4. जन स्वास्थ्य पृ0सं0– 618, 620

5. इंटरनेट

6. दैनिक जागरण 2020 पृ०सं०– 5

ISSN : 2319-7137, Volume: 16 /July-December : 2022

पूर्व किशोरावस्था की बालिकाओं के स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन

वैदेही कुमारी
शोध छात्रा
गृह विज्ञान विभाग
तिलका माँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

मानव जीवन एक सजीव प्रक्रिया है। यह शिशु अवस्था शुरू होकर मृत्यु अवस्था तक चलती है। जीवन में कई अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। जैसे शैशवास्था बाल्य अवस्था, पूर्व बाल्य अवस्था पूर्व किशोरावस्था एवं किशोरावस्था, प्रौढावस्था एवं वृद्धावस्था ।

पूर्व किशोरावस्था 12 से 15 वर्ष को अवस्था की कहते हैं। यह अवस्था परिवर्तन की अवस्था होती है।

पूर्व किशोरावस्था अवस्था बचपन तथा प्रौढ़ावस्था केबीच का परिवर्तन काल है। किशोरावस्था (Adolescence) शाद का हिन्दी रूपान्तर है। एडोलेसेन्स (Adolesence) लेकिन भाषा का शब्द एडोलस्कर/Adolescere) से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है। परिपक्वता की ओर बढ़ना (To Grow to Maturity)

शैशवावस्था के बाद वृष्टि की गति की तीव्रता सबसे अधिक पूर्व किशोरावस्था में ही होता है।

लड़कियों में 11–14 वर्ष के बीच में तथा लड़कों में 13–15 वर्ष के बीच वृद्धि की गति सबसे अधिक होती है। बच्चों का बचपना उनसे दूर भागने से लगता है। तथा (डंजमतदपजल) आने लगती है। यौन परिवर्तन (changes) इस अवस्था मे परिषक (Sexual changes) होने लगता है। लड़कियों में लड़को की अपेक्षा परिपक्वता जल्दी आती है। 14 वर्ष की अवस्था करते–करते कल तक की बच्ची एक पूर्व युवती बन जाती है। पूर्व किशोरावस्था में बाल्यवस्था के सभी शारीरिक, मानसिक तवा संवेगात्मक गुणों को समाहित होने लगती है। और उनका स्थान नये गुण ले लेते है। इसलिए परिवर्तना की दृष्टि से भी पूर्व किशोरावाला का अत्यधि महत्वपूर्ण है।

किशोरावाल्या के वैज्ञानिक अध्ययन के जन्मदाता जो स्टेनले होट इस अवस्था को तूफान तथा तनाव की अवस्था, कहा है। बिर्ग एवं डंट (Bigge and Hunt) के अनुसार किशोरावस्था के सभी शारीरिक मानसिक तथा संवेगात्मक गुणों के समुचित अर्थ को प्रकट करने वाला एक ही शब्द है। 'परिवर्तन' यह परिवर्तन शारीरिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जरशील्ड को सम्बन्ध में लिखा है। (Jershudt) : ने किशोरावस्था के संबंध में लिखा है।

"Adolescence is the Period throw which a growing Person makes transition from Childhood to Maturity"

किशोरावस्था में विकास की गति तीव्र होती है। इस अवस्था में न केवल बालब–बालिका का शारीरिक विकास ही होता है। बहिक उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। अर्थात उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक बुद्धि, खेल एवं संवेगात्मक विकास होता है। इन विकास के कारण व्यक्तित्व में अन्तर आता है। अतरू किशोर के जीवन जीने के ढंग में श्व्यापक परिवर्तन देखने की मिलता है। उनके भीतर असीम अर्जा, उमंग, उत्साह भरा होता है। उनमें कुछ कर गुजरने, कुछ कर दिखाने की लालसा भरी होती हैं। इस अवस्था में वे न तो पूर्णरूपेण बालक ही रह पाते है। ना ही वयस्क ही अतः पूर्व किशोरावस्था बालक एवं वयस्क के बीच की अवस्था होती है। पूर्व किशोरावस्था में

सामान्यतः शारीरिक परिवर्तन आरम्भ होते हैं। इस अवस्था में वृद्धि स्फूरण के कारण शारीरिक परिवर्तन बहुत तेजी से होते है। इस अवस्था में हार्मोनल परिवर्तन के कारण लैंगिक परिपक्वता आरंभ हो जाती है। पूर्व किशोरवास्था है। लड़कियों का विकास लड़को की अपेक्षा तेजी से होता है। इसलिए के अपनी ही आयु के लड़कों के मुकाबले बही लगने लगती है। पूर्व किशोरावस्था में किशोरावास्था का आगमन कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है। जैसे– (1) व्यक्तिगत भिन्नताएं (2) अंतःस्तावी ग्रथियों की क्रियाएं (3) अनुवांशिकता (4) खानपान (5) सामाजिक आर्थिक स्तर (6) ग्रास क्षेत्र का तापमान (7) स्वास्थ्य एवं पोषण ।

12 से 15 वर्ष की आयु को प्यूबर्ति पीरियड (Puberty Period) भी कहा जाता है। व्यूति शब्द की लैटिन भाषा के व्यूक्स्टस से उत्पत्ति हुई है। जिसका अर्थ है 'यौवनारंभ' या 'पुरूपरख की आयु'।

स्वातन्त्रयोत्तर काल के प्रारंभ के वर्षों से ही आत्मनिर्भरता के लक्षय को प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषि उत्पादन के क्षेत्र में विशेष प्राथमिकताएं दी गई है। इस बात की पुरजोर व्यवस्था राष्ट्रीय कृषि में की गई थी कि चूंकि भारत गांवों का देश है और करीब 80 प्रतिशत भारत की आबादी गांवो में बसती है। 20 प्रतिशत भारत की आबादी ही शहरों में जो किसी न किसी तरीके से भारत की अर्थवस्वस्था को नियंत्रित करती है। पचास के दशक पर यदि गौर करेंगे तो पायेंगे कि भारत केवल पांच करोड़ टन अन्न का उत्पादन करता था और शेष अन्न की आपूर्ति अन्य देशो से होता थी। हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पादन क्षमता से होने वाली वृद्धि ने भारत को खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के स्तर तक पहुंचा दिया। अन्न से भरा पेट व ज्ञान की सम्पन्नता को सामाजिक विकास करने का मुख्य आधार माना गया। ज्ञान के बढ़ते महत्व के साथ–साथ विकसित मानसिक क्षमता के महत्व को भी महत्वपुर्ण माना गया। विभिन्न कार्य के उपरान्त यह माना गया है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यामिक शक्तियों का विकास होना अति आवश्यक है। भारतीय स्वास्थ्य पद्धति में व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के पारस्परिक संबंधों को मान्यता दी गई है।

मानव विकास की प्रक्रिया में स्वास्थ्य की अहम भूमिका को ध्यान में रखते हुए मानव विकास सूचकांक के मानदंड के रूप में स्वास्थ्य को जब से शामिल किया गया है। तब से केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का शुभारंभ किया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के एशिया प्रशान्त सागर क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक आयोग (UNESCAP) द्वारा किए गए शोध अध्ययन के अनुसार स्वास्थ्य पर किए गए व्यय तथा आर्थिक विकास में घना संबंध है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानदंड के अनुसार प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष खर्च किये जाने वाले व्यय 36 होना चाहिए, परन्तु 20 से भी कम हो रहा है। जिसके परिणामस्वरूप सभी नागरिकों की पर्याप्त सुविधाएं नहीं मिल पा रही है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 में स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले 0.9 प्रतिशत राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के व्यय की अगले पांच वर्षो की अवधि में बढ़ाकर 2.3 प्रतिशत घरेलू उत्पाद व्यय के लक्ष्य प्राप्त किया जाना है। जबकि वर्ष 2018 में अपने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) 15.5 प्रतिशत आस्ट्रेलिया ने ता 10.1 प्रतिशत राशि न्यूजीलैंड ने तथा जापान ने 9.15 प्रतिशत राशि स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय किए।

यदि भारत में शिक्षा के स्तर की गुणवता की चर्चा की जाए तो हम पायेंगे के ग्राम पंचायतों को यह जिम्मेवारी दी गई है कि वो 6–14 वर्षों की आयु के बच्चों की शिक्षा के मौलिक अधिकार की रक्षा के साथ–साथ, सर्वशिक्षा को अपनी पंचायत में सफल बनाने, स्कूल के बाहर के बच्चों को स्कूल से जोड़ने, लड़कियों को स्कूल से जोड़ने के साथ–साथ गांव के स्कूलों के संचालन में सकारात्मक हस्तक्षेप के साथ–साथ शिक्षा समिति के माध्यम से सहयोग करें आदि सम्मिलित है। वर्ष 2010 तक 6 से 14 के आयु वर्ग के सभी बच्चों को उपयोगी तथा प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया था। पर वह लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाया। एक शोध के अनुसार भारत अपना कोई भी लक्ष्य तभी प्राप्त कर पाएगा, जब इसमें महिलाओं की भागीदारी अधिक हो सकेगी। एक लक्षित वर्ग के रूप में महिलाओं के लिए पंचायत, विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में एवं अपनी योजनाओं में उन्हें प्राथमिकता देकर उनके सशक्तिकरण में सहायक हो सकती है। महिलाओं की अधिक से अधिक सहभागिता भी योजनाओं को सफल बनाने में कारगर सिद्ध हो रही है। पंचायतों को इन्हीं भूमिकाओं को ध्यान में रखकर पटना जिले के ग्रामीण विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं के स्वास्थ्य को लक्षित कर वर्ग पृष्ठ से लेकर वर्ग अष्टम

तक की बालिकाओं के स्वास्थ्य को समाजशास्त्रीय अध्ययन करने की योजना बनाई गई। स्वास्थ्य योजनाओं के तहत विभिन्न प्रकार की शारीरिक कमी को अध्ययन करने का शोध आधार बनाया गया। छात्राओं के स्वास्थ्य तथा उनकी पारिवारिक आया का विवरण :–

क्र०सं० शारीरिक स्वास्थ्य के घटक उच्च आय वर्ग मध्य आय वर्ग निम्न आय वर्ग कुल

			50		50		100
रक्त अल्पता	20	40%	25	50%	40	50%	85
श्वांस की समस्या	10	20%	5	10%	15	15%	30
सर दर्द	10	20%	10	20%	15	15%	35
चक्कर आना	10	20%	10	20%	30	30%	50
कुल संख्या	50		50		100		200

पूर्व किशोरावस्था में आवश्यक पौटिष्क तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा

ICMR

Table: Daily Recommended Allowances for Adolescence: ICMR

पौष्टिक तत्व	किशोर	किशोर
	12–15	12–15
कैलोरी (K. Cal)	2450	2060
प्रोटीन (gm)	70	65
वसा (gm)	22	22
कैल्शियम (mg)	28	41
लोहा (hg)	28	41
विटामिन (A)	600	600
रेटीनॉल (mg)	2400	2400
B कैरोटीन (mg)	1.2	1.0
थायमिन (mg)	1.5	1.2
राइबोफ्लेविन (mg)	16	14
नियासिन (gm)	100	100
फोलिक अम्ल (gm)	2.0	2.0
विटामिन B12(gm)	2.0	2.0
विटामिन C (gm)	40	40

पटना जिला के ग्रामीण क्षेत्रों के सरकारी विद्यालयों में अध्ययनशील पष्ठ से वर्ग अष्टम वर्ग तक की पूर्व किशोरा अवस्था छात्राओं को केन्द्रित करके प्रश्नोतरी विधि के माध्यम से एनीमिया या खून की

कमी की स्वास्थ्य में होने वाली गिरावट पर अध्ययन का आधार बनाया गया। चयनित पूर्व किशोराअवस्था की छात्रा को उसके विभिन्न सामाजिक व आर्थिक परिवेश के आधार पर सम्मिलित किया गया। आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए तीन समूहों में इन छात्राओं को बांटा गया।

(1) उच्च आर्थिक स्थिति

(2) मध्य आर्थिक स्थिति

(3) निम्न आर्थिक स्थिति

इन आर्थिक स्थितियों को उनके परिवार द्वारा अर्जित की गयी मासिक आय के आधार पर निर्धारण किया गया। सामाजिक स्थिति को नियत गुणांक मानकर शोध अध्ययन किया गया। इन किशोरी छात्राओं की आयु 12 वर्ष से 15 वर्ष के आस पास थी जो विद्यालय में उपलब्ध आंकडों के आधार से प्राप्त हुआ था। इन छात्राओं की कुल संख्या 200 थी। जिसमें उच्च आय वर्ग से 50 छात्रा, मध्यम आय से 50 छात्रा तथा निम्न आय से 100 छात्रा सम्मिलित थी। आर्थात कुल छात्राओं की संख्या 200 थी।

आर्थिक आधार का स्वरूप – आर्थिक आधार को स्वास्थ्य की मानक ईकाई मानते हुए इसे तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

उच्च आय वर्ग – इस आय वर्ग के अंतर्गत वैसे लोगों की सम्मिलित किया गया था, जिनके पास

(1) सालो भर सरकारी / गैर सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध थे।

(2) जिनकी मासिक आय 25 से 30 हजार के बीच थी।

(3) जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 से 8 तक थी।

मध्य आय वर्ग रू इस वर्ग के अंतर्गत वैसे लोगों को सम्मिलित किया गया था, जिनके पास

(1) सरकारी / गैर सरकारी क्षेत्र में कार्य तो थे, पर आवश्यकतानुसार ही उन्हें अवसर प्रदान किया जाता था।

(2) जिनकी मासिक आय 10 से 12 हजार के बीच थी।

(3) जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 से 8 तक थी।

निम्न आय वर्ग – इस वर्ग के अंतर्गत वैसे लोगो को सम्मिलित किया गया, जिनके पास

(1) सरकारी / गैर सरकारी क्षेत्र में कार्य तो थे, पर आवश्यकतानुसार ही उन्हें अवसर प्रदान किया जाता था ।

(2). जिनकी मासिक आय 8 से 5 हजार के बीच थी।

(3) जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 से 8 तक थी।

परिणाम एवं चर्चा – गांव के सरकारी विद्यालय में अध्ययनशील छात्राओं के स्वास्थ्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन विषय पर किए गए शोध कार्य के उपरांत प्राप्त परिणाम के आलोक में परिचर्चा के क्रम में यह पाया जाता है कि भारत सरकार के राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 में संकेत दिया है कि स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले 0.9 प्रतिशत राष्ट्रीय सकल घरेलू (GDP) के व्यय को अवधि में बढ़ाकर 2–3 प्रतिशत राष्ट्रीय सकल घरेलु उत्पाद (GDP) व्यय के लक्षण की प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा। भारत सरकार की पहल को ध्यान में रखने पर यह पाया गया है कि एनीमिया या खून की कमी से निपटने के लिए लौह तत्व की गोलियों की आंगनबाड़ी, स्वास्थ्य केन्द्रो के माध्यम से उपलब्ध पंचायत के माध्यम से बांटा गया था। अमर्त्यसेन की मान्यता के अनुसार शिक्षा की भाँति स्वास्थ्य भी मनुष्य की उ मूलभूत क्षमता की प्रतीक है। और जीवन को समानता प्रदान करने में सबल सहायता भी है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी राज्यों को यह दायित्व सौपा है कि सरकार की ओर से भी नागरिकों को मर्यादापूर्ण

जीवन यापन के लिए आवश्यक स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध करायी जाएगी। (अनुच्छेद 47)। इतना ही नहीं मौलिक अधिकारों की सूची में जीने के अधिकार (Right to life) को भी शामिल किया है। उच्चतम न्यायलय की व्याख्या के अनुसार जीने के अधिकार का तात्पर्य मर्यादापूर्ण जीवन यापन की सुविधा से है और यह स्वास्थ्य के अधिकार पर निर्भर है। पुनः उसी न्यायलय में स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हुए एक अन्य मामले में (N D Jayal Vs Union of India SC 362) ने राय दिया है कि सर्वोच्च न्यायलय के स्पष्ट अभिमत के अनुसार सभी नागरिको को अपेक्षित स्वास्थ्य सेवा सुविधा कामौलिक अधिकार प्राप्त है।

शोध से एकदम स्पष्ट है कि हर बार की तरह अपेक्षित तिरस्कृत, लिंग भेद एवं ज्ञान से दूर व्यक्ति जो आर्थिक मार भी झेलता है सारी बीमारियों का वाहक होता है, सूचना और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अवश्य ही क्रान्ति आ गई पर इन दिशाहीनो के जीवन में क्रान्ति कब आयगी ?

शिशुओं एवं माताओं, बहनों के स्वास्थ्य में सुधार तथा संक्रामक रोगों, लिंग भेद, के नियंत्रण को प्राथमिकता दी जाए।

आर्थिक रूप से सहमें छात्र/छात्राओं में अभी भी चक्कर आने, सांस फूलना, सरदर्द होने की प्रतिशत संख्या अधिक है।

इनके स्वास्थ्य के स्तर में होने वाले गिरावट के उपरांत जो बातें सामने आती है। वतों का यह है कि आखिर सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाले राशि का सदुपयोग कैसे किया जाए?

ताकि सभी के पास स्वास्थ्य पहुंच सके।

जिससे हमारी भावी पीढ़ी के चिकित्सक एक आम आदमी को बेहतर स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने में सफल हो सके, साथ ही साथ सरकारी व गैर सरकारी दोनो ही स्तर पर विद्यालय में अध्यनशील छात्राओं के स्वास्थ्य की जांच प्रशिक्षित डॉक्टर/मेडिकल स्टाफ से कराई जाए तथा प्रभावित छात्र–छात्राओं को विभिन्न स्वास्थ्य सेवा केन्द्रो के माध्यम से स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराई जाए, जिसका विस्तृत ब्यौरा ग्राम पंचायत या ब्लॉक स्तर के पदाधिकारी के पास व विद्यालय के प्रधान के पास रिकार्ड के रूप में सुरक्षित व संरक्षित रखे जाएं, और उनके घरों में लिंग भेद भी ना किया जाए। ऐसा करके ही सबों के लिए स्वास्थ्य लक्ष्य को प्राप्त कर पाएगें एवं स्वास्थ्य तन के सपने को साकार कर सकेंगे।

संदर्भ सूचीः–

(1) ए0 के0 मुखर्जी– ए0 के0 मुखर्जी यूनिवर्सिटी न्यूज 133 (20) June, 1995

(2) अनुच्छेद 47

(3) Right to life depends on Right to health & state of punjabe vs mahinder singh chawla] AIR 1997sc 1225-

(4) N. D. ayal vs Union of India, popularly known as Tehri Dam Case (2004) Sc- 362.

(5) Social Reserach Journal, Past, Present, Future July December 2009- Page No-& 171, 172,173, 174.

(6) आहार एवं पोषण विज्ञान ले0– वृदां सिंह, पृ०सं० 575, 576, 577

(7) बाल मनोविज्ञान रू बाल विकास ले० डॉ डी० एन० श्रीवास्तव एवं डॉ प्रीति वर्मा, पृ० स० 371, 372

(8) आहार एवं पोषण (वर्मा एवं पाण्डेय) पृ० स०– 80

(9) आहार, पोषण एवं आहारिकी ले० – डी उषा वर्मापृ० स०–127 128

(10) Internet